ओ३म्

दयानन्द सरस्वती का स्त्री–विमर्श तथा उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

Dayanand Saraswati's Woman Deliberation And It's Impact on Modern Hindi Literature

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

को

पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

कला–संकाय

शोधार्थी

दत्तात्रेय गौतम

शोध–निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) कल्पना लाल

व्याख्याता – हिन्दी विभाग

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

2015

युगप्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती
जन्म - 1824 ई.
निर्वाण - 1883 ई.

शोध प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी दत्तात्रेय गौतम ने हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत **'दयानन्द सरस्वती का स्त्री विमर्श तथा उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव'** विषय पर कोटा विश्वविद्यालय, कोटा की पीएच. डी. उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में पूर्ण अवधि तक शोध कार्य किया है। शोधार्थी ने दयानन्द सरस्वती के स्त्री विमर्श को आधुनिक परिपेक्ष में उद्घाटित किया है एवं आधुनिक हिन्दी साहित्य में दयानन्द सरस्वती के योगदान को उल्लेखित किया है। शोधार्थी ने अपनी मौलिक उद्भावनाएँ प्रस्तुत की हैं।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सर्वथा मौलिक और प्रांजल भाषा में लिखी हुई एक साहित्यिक कृति है। मैं इस शोध प्रबन्ध को पीएच. डी. की उपाधि के लिए संस्तुति करती हूँ।

शोध निर्देशिका

डॉ. (श्रीमती) कल्पना लाल
व्याख्याता – हिन्दी विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कोटा

प्राक्कथन

महर्षि दयानन्द एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिसकी व्याख्या करना असम्भव से भी परे है वे समाज सुधारक एवं धर्माचार्य ही नहीं थे अपितु एक धुरन्धर योगी तपस्वी, भाष्यकार, वेदाचार्य, वैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक, राजनैतिक, कुशल प्रशासनिक, धीर, गंभीर, बलवान, ब्रह्मचारी, सदाचारी एवं दृढ़ राष्ट्रवादी विचार धारा युक्त महामानव थे। सृष्टि एवं व्यष्टि में ऐसा कोई विषय नहीं है जो उनसे स्पर्श हुए बिना रहा है।

समाज सुधारक एवं वेदों को पुनः प्रतिष्ठापित करने से तो उन्हें पूरा विश्व जानता है। समाज सुधार का प्रथम अंग मानव है। मानव दो अंगों से निर्मित हुआ है जिसमें स्त्री और पुरुष की संज्ञा प्रथम है। गाड़ी के दो पहियों की भाँति कोई भी छोटा–बड़ा न होकर समान होता है। फिर भी भारतीय समाज में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व में नारी नाम के पहिये को पुरुष प्रायः छोटा व कमजोर समझते, दर्शाते एवं ऐसा व्यवहार करते आए हैं, और यहीं से नर+नारी+परिवार+समाज+राज्य+विश्व की परिभाषा तैयार होती है।

विश्व का प्रथम बिन्दु कौन है ? – स्त्री

जबकि स्त्री व पुरुष दोनों हुए परन्तु यहाँ स्त्री को क्यों महत्ता दी गई ? वह इसलिए कि विश्व का बीज स्त्री ही पैदा करती है।

वह कैसे ? वह ऐसे यदि संसार के पूरे पुरुष मृत्यु को प्राप्त हो जाएँ तब भी केवल मात्र स्त्रियों के जीवित रहने पर यह विश्व कभी खत्म नहीं होगा इसके विपरीत यदि विश्व की समस्त स्त्रियों की मृत्यु हो जाए तो लगभग सौ वर्ष पश्चात् यह संसार समाप्त हो जायेगा। यहाँ पशु–पक्षियों व अन्य जीवधारियों के अलावा मनुष्य नहीं बचेगा।

यह इतना बड़ा सच है लेकिन स्त्री पुरुष से बनने वाला समाज इसे नहीं मानता। जिसमें स्वयं स्त्री भी शामिल रहती है और स्त्री को दूसरे दर्जे का समझा जाता है जबकि उसका स्थान प्रथम दर्जे का है।

इसी सच को दयानन्द सरस्वती ने समाज के सामने रखा है और अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में उदाहरण देते हुए लिखा है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैस्तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः विद्याः।।"

पूजा का अर्थ दयानन्द ने सत्कार बताया है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या नारी की पूजा से देवता कैसे आ सकते हैं तो पूजा का अर्थ सेवा होता है। नारी को स्वस्थ रखने के लिए उसकी अच्छी सेवा होना, अच्छा सत्कार होना अनिवार्य है। हमारा भाव उसके प्रति कल्याण कारक हो। जिससे वह सर्व क्लेश मुक्त हो और शिक्षा एवं विद्वता से अपना स्वास्थ्य बनाए रखे जो आगे जाकर पिता, पुत्र, भ्राता के रूप में संतान दे जिनमें से कोई देवतुल्य युक्त कार्य करे और इस समाज को उपकार व कल्याण से दृढ़ करे। सुव्यवस्थित मनुष्य ही स्थायी समाज एवं उन्नत राष्ट्र का प्रतीक है। जिसके पीछे एक स्त्री की पूजा छिपी हुई है। सामान्य सी बात है धरती को किसान अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए भली प्रकार सुरक्षित, दृढ़ एवं उन्नत करने का हर सम्भव प्रयास करता है। क्या उसे असुरक्षित, कमजोर एवं अनुपजाऊ रखता है, नहीं। उसके असाधारण प्रयास से ही उसे गुणवत्ता युक्त फसल प्राप्त होती है जो सारे विश्व की रक्षा करती है।

वही प्रकृति का सिद्धान्त प्रत्येक जीव पर लागू होता है किन्तु मनुष्य पर अधिक, क्योंकि मनुष्य एक विचार शील प्राणी है, सभ्य है।

इतनी उन्नति के पश्चात् यहाँ जो रहेगा वह देवत्व से युक्त होगा। देवता का अर्थ लोग चमत्कार से पूर्ण एवं आसमान से कूदकर धरती पर आने वाला समझते हैं, ऐसा नहीं है। ऋषि दयानन्द ने देवता का अर्थ स्पष्ट किया है।

देवता का अर्थ है दान देने वाला, प्रकाशित होने वाला और प्रकाशित करने वाला। इसलिए जहाँ स्त्रियों का सत्कार होगा वहाँ स्वमेव ही देवताओं का निर्माण प्रारम्भ हो जाएगा। वे मनुष्य ही होंगे लेकिन देवत्व से युक्त होंगे लेकिन जिस घर में स्त्री का सत्कार नहीं होगा, उसे पीड़ा दी जाएगी, क्या उसके घर में उत्तम संतान होगी ? नहीं।

दयानन्द का व्यक्तित्व बड़ा ही महान् था उनके सामाजिक सुधारों को देश ही नहीं अपितु संपूर्ण जगत जानता है। मूलतः गुजराती होने पर तथा संस्कृत के निष्णात् पंडित होने पर भी जितना हिन्दी भाषा का सुधार इन्होंने तथा इनकी संस्था आर्य समाज ने किया शायद ही आज तक किसी ने किया हो भारतेन्दु युग के साहित्यकार राधाचरण गोस्वामी महाकवि 'हरिऔध' से लेकर द्विवेदी युग के पूरे हिन्दी साहित्यकार एवं राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त, महाकवि नाथूराम शर्मा शंकर, आचार्य चतुरसेन शास्त्री से लेकर सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला तक ने जो हिन्दी का उपकार किया वह किसी ने नहीं।

दयानन्द की दृष्टि बड़ी पैनी एवं वैदिक थी। आधुनिक हिन्दी साहित्य में जो स्त्रियों की बुद्धि विकसित हुई है उसके उन्नायक दयानन्द ही रहे।

भारतेन्दु युग, मिश्र बन्धुओं के दयानन्द काल से लेकर द्विवेदी युग, छायावाद तथा छायावादोत्तर आज तक भी हिन्दी साहित्य के स्त्री साहित्य पर ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भाषा साहित्य पर दयानन्द का प्रभाव पड़ा है।

यही नहीं सारी सृष्टि के कण–कण पर दयानन्द का प्रभाव पड़ रहा है और पड़ता रहेगा। जिसका प्रमाण यह है कि दयानन्द ने जो विचार दिये वह वेदों के थे निजी विचार या मत उन्होंने नहीं चलाया। वेदों की प्राचीनता को सारी सृष्टि मान चुकी है। जो वेदों में घटित है वह सृष्टि में घटित है इसलिए शोध में यह प्रमाणित कर सिद्ध कर दिया कि दयानन्द का प्रभाव सार्वभौम है क्योंकि वह वैदिक ज्ञान है। स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों को मैने यथोचित पढ़ा है जिसमें दयानन्द के वेद भाष्य भी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त दयानन्द पर लिखे गए विभिन्न विद्वानों द्वारा सैकड़ों ग्रन्थों से यही प्राप्त होता है कि यदि आज के समय में भारत सरकार के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जो संस्कृत विषय में सायण, महीधर आदि के भाष्य अपनाकर शिक्षा दी जा रही है उसके स्थान पर स्वदेशी स्वामी दयानन्द के भाष्यों को रखा जाए तो निश्चित ही हम सुधार की बात को आगे बढ़ा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त दयानन्द के जीवन चरित्र पर सैंकड़ों शोध ग्रन्थ लिखे हैं उन सब में कहीं न कहीं नयाशोध अवश्य है लेकिन सबसे अधिक शोध उनका है जिन्हें भले कोई प्रामाणिक शोध उपाधि नहीं मिली हो किन्तु दस प्रामाणिक शोध उपाधि प्राप्त व्यक्ति एक संस्था बनाकर उन्हें देखे तो वे प्रामाणिक शोध उपाधि प्राप्त व्यक्ति भी उनके सामने तृणवत ही रहेगा। जिन्होंने अपना सारा जीवन दयानन्द के जीवन चरित्र के शोध के लिए बलिदान कर दिया। वे उस शोध के लिए पूरे भारत में भ्रमण कर प्रमाण इकट्ठे करते–करते ही मर गये। कितना बड़ा शोध होगा उनका। बाद में उस मूल लिखित सामग्री का अनुवाद एवं संपादन अलग–अलग व्यक्तियों द्वारा कर, छपवाकर प्रकाशित किया गया ऐसे दो विश्व के महान् शोध कर्ताओं को मैं हृदय, मन और बुद्धि से कोटि–कोटि श्रद्धांजलि देना चाहता हूँ। वे क्रमशः हैं प्रथम अमर शहीद पं. लेखराम आर्यपथिक एवं द्वितीय महामानव बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय।

इनके अतिरिक्त में अश्रुपूरित नयनों से जिसे लिखते हुए भी अश्रु टपक पड़े हैं मैं मेरे परम् पूज्य पिताश्री स्वर्गीय श्री प्रभुलाल गौतम को श्रद्धांजलि देना चाहूँगा जिन्होंने मुझे

प्रथम बार अंगुली पकड़कर इस धरती पर देवनागरी का प्रथम ज्ञान दिया, ऐसे विद्वान् चार भाषाओं के ज्ञाता, देवता तुल्य पिताजी का शोधकाल के बीच में ही अचानक देहान्त हो गया। उन्होंने ही मुझे इस शोध के लिए प्रेरित किया था। उनके ऋण से मैं कदापि उऋण नहीं हो सकता। उनकी स्मृति प्रतिदिन आँखों से होकर मस्तिष्क की संवेदना से टकराती है। पिताजी मेरे आदर्श थे लेकिन अब वे मेरी आत्मा में निवास करते हैं। वैसे भी वेद कहता है पुत्र पिता की आत्मा होता है। यह शोध ग्रन्थ पिताश्री को समर्पित है।

परम पूज्या माताजी श्रीमती रमा रमण देवी गौतम एवं अग्रज भ्रातृद्वय श्रीमान् भवानीशंकर गौतम एवं श्रीमान् चन्द्रवदन गौतम के स्नेह के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। अतुलनीय सहयोग प्रदान करने वाली अर्द्धांगिनी श्रीमती मीनू शर्मा एवं नौ वर्षीया बेटी सुश्री अर्यमा गौतम जो मुझे शोध के लिए प्रेरित करती है उनके प्रति मेरी कृतज्ञता है।

मेरे गुरु तो केवल पाँच वर्ष रहे किन्तु मित्र बीस वर्ष रहे जिनका भी देहान्त शोधकाल के दौरान हो गया। उनके उपकारों को मैं भुला नहीं सकता। हमने साथ–साथ जीवन में जो शोध किया आज भी याद आता है। श्रद्धेय गुरुदेव स्व. गोपीलाल मेहरा व्याख्याता राजकीय महाविद्यालय कोटा को मैं श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

राजकीय महाविद्यालय, कोटा में हिन्दी विभागाध्यक्ष रही श्रीमती मुरलिया शर्मा का मैं आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने मुझे स्त्री–विमर्श पर शोध के लिये बिन्दु चयन की प्रेरणा दी।

शोध प्रबन्ध के कुशल प्रस्तुतीकरण के लिए मैं शोध निर्देशिका परमादरणीया डॉ. कल्पना लाल के प्रति कृतज्ञाता प्रकट करता हूँ जिन्होंने मुझे अवर्णनीय सहयोग समय–समय पर प्रदान किया। इतना अच्छा सरल और स्नेहमयी व्यक्तित्व आज तक मैंने नहीं देखा। मैं 1994 से आपका शिष्य रहा हूँ। आपके स्नेह का उपकार भूलने योग्य नहीं है।

मेरे आध्यात्मिक मग के मित्र एवं आर्य समाज रामपुरा, कोटा के वर्तमान मंत्री योगाचार्य रमेश गोस्वामी जिन्होंने पुस्तकालय से ऐसी पुस्तकों का सहयोग किया जिनमें पृष्ठों के हाथ लगते ही पृष्ठ टूटते थे। योगाचार्य जी के साथ ही हृदय से जुड़े हुए मित्रों श्रीमान् महावीर प्रसाद कांटेवाले, पत्रकार श्री गिरराज सोनी एवं व्यवसायी श्री योगेन्द्र गोयल, डॉ. यशश्री गौतम एवं रमणश्री गौतम ने शोध के दौरान मेरे आत्म विश्वास में कमी नहीं आने दी। आपके इस कृत्य के लिए आभार प्रकट करता हूँ।

डॉ. कंचना सक्सेना ने शोध के लिए मेरी काफी मदद की और आवश्यकता पड़ने पर सदा मदद के लिए तैयार रहती हैं। यह शोध उनके सहयोग के बिना अधूरा था उनका

मैं आभारी हूँ। साथी नेता जी श्रीमान् विष्णु प्रसाद खण्डेलवाल एवं श्रीमान् बनवारी सोनी को शोध कार्य में सहयोग प्रदान करने के लिए आभार प्रकट करता हूँ।

जिनके सानिध्य से पिताजी की वैदिक रीति से अंत्येष्टि पूरे कोटा संभाग में एक ऐतिहासिक कार्य सिद्ध हुआ जिसे विभिन्न समाचार पत्रों ने बड़ी तत्परता से प्रकाशित किया ऐसे आर्य समाज रामपुरा के धर्माचार्य एवं हाड़ौती संभाग के अद्वितीय वैदिक विद्वान् आचार्य वृद्धिचंद जी गोस्वामी को एवं प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष शोधकार्य में सहयोग प्रदान करने वाले महानुभवों को मेरा सादर आभार प्रकट हो।

कुशल, अत्रुटिपूर्ण एवं तत्परता से टंकण करने के लिए खूशवन्त और सुश्री शबनम खान को धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होंने इस ग्रन्थ को रूप दिया वह प्रशंसनीय है।

पूज्य गुरुदेव अन्तर्राष्ट्रीय वैदिक विद्वान्, आर्य संन्यासी वर्तमान सीकर लोकसभा सांसद स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती का शोध के लिए सरल हृदय आशीर्वाद सदा रहा है। आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

उस महान् ऋषि को कोटि–कोटि प्रणाम जिसने राष्ट्र के सम्पूर्ण सुधारों के लिए ईर्ष्यावश अनेक बार लोगों द्वारा दिए गए विष के प्रभाव को सहन करते हुए 59 वर्ष तक इस राष्ट्र की सेवा में अपने आपको बलिदान कर दिया।

सबसे अधिक परमपिता परमात्मा, सच्चिदानन्देश्वर के लिए नमो नमः जिसने इस शोध कार्य को भयंकर विघ्नों के पश्चात् भी पूर्ण करने का आशीर्वाद प्रदान किया जिससे शायद मैं ऋषि ऋण से कुछ उऋण हो सकूँ। अस्तु !

संसार में सब मनुष्य समान हैं। जिनमें कोई बड़ा नहीं है और जिनमें कोई छोटा नहीं है।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

– ऋग्वेद 5/60/5

कोई स्त्री नहीं, कोई पुरुष नहीं। आत्मा का स्थाई कोई लिङ्ग नहीं होता।

न तस्य लिङ्गमस्ति। – सांख्य दर्शन

भूमिका

"मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान होता है।"
"प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्। धन्य वह माता है जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे।"

– दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती पर यह मेरा दूसरा शोध–प्रबन्ध है पहला लघुशोध प्रबन्ध एम.फिल् उपाधि हेतु 'दयानन्द और हिन्दी दलित साहित्य' नाम से शोध किया था। प्रथम शोध के पश्चात् ऐसा अनुभव हुआ कि दयानन्द का समुचित जीवन एवं कार्य किन्हीं एक क्षेत्र विशेष, जाति विशेष अथवा एक तरफा दृष्टिकोण युक्त न रहकर सम्पूर्ण मानव जाति तथा विश्व बन्धुत्व की भावना से ओत–प्रोत है यह किसी भी देश, काल, परिस्थिति में उपयोगी एवं मानव निर्माण व कल्याण का कार्य करने में अधिगम्य है। उनका कार्य क्षेत्र विपुल था। वे किसी एक दिशा में न जाकर सम्पूर्ण क्षेत्रों में सुधार के अग्रगामी थे। पूर्व में दयानन्द पर सैंकड़ों देशी–विदेशी शोधार्थियों द्वारा अनुसंधान हो चुके हैं किन्तु व्यापकता को देखते हुए मन में यह दृढ़ विचार था कि अभी और अनुसंधान दयानन्द पर हो सकते हैं।

दयानन्द के चिन्तन एवं कर्म का दायरा सिर्फ राजनीतिक, सामाजिक सरोकारों तक ही सीमित न था, बल्कि वे भाषा एवं साहित्य के प्रति भी काफी जागरुक थे। देश को विदेशी भाषा अंग्रेजी की दासता से मुक्त कराने के लिए उन्होंने विभिन्न प्रान्तों की मातृ भाषाओं तथा पूरे राष्ट्र के लिए सम्पर्क भाषा के निमित्त राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी का देशव्यापी प्रचार किया। राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी स्वीकार करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर मानसिकता तैयार करने में, या यूँ कहें, हिन्दी जागरण को पूरे राष्ट्रीय जागरण का एक अभिन्न अंग बनाने में दयानन्द सरस्वती की अतुलनीय भूमिका रही। साथ ही उन्होंने अपने सामाजिक–धार्मिक कार्यान्वयन के प्रचार–प्रसार में साहित्य का भी काफी उपयोग किया।

प्रथम लघु शोध प्रबन्ध 'दयानन्द और हिन्दी दलित साहित्य' में यह खोज महत्त्वपूर्ण रही कि भारत वर्ष में दलित हित की चर्चा तथा उन्हें समानता देने वाले पहले व्यक्ति

दयानन्द थे। जिन्होंने जातिप्रथा को पाप माना तथा दलितों को सवर्ण बनने का अवसर प्रदान किया। जिसका प्रमाण उनके द्वारा स्थापित संस्था आज भी जातिप्रथा का विरोध करती है और वहाँ कोई दलित एवं सवर्ण नहीं होता वहाँ सब मानव मात्र हैं।

इसी क्रम में दलित शब्द से ज्ञात हुआ कि स्त्री भी दलित की भी दलित निकली। तत्कालीन परिस्थितियों में स्त्रियों के साथ चाहे वे किसी भी धर्म की क्यों न हो पशुवत व्यवहार था। तब दयानन्द ने उस समय स्त्री मुक्ति की हूँकार भरी और आज उसे आजाद कराने का भरसक प्रयत्न प्रारंभ कर सारे राष्ट्र की स्त्रियों को ऐसा आत्म बल प्रदान किया कि वे अपना दलितपन, पिछड़ापन तथा दासता एवं गुलामी की जंजीरों को तोड़कर उनके राष्ट्रव्यापी स्वतंत्रता क्रान्ति के विद्रोह में भी रणचण्डी बनकर कूद पड़ी। इसके पश्चात् स्त्री जागरण का वह सिलसिला प्रारंभ हुआ जो जगजाहिर है। देश के प्रत्येक सुधारकों ने स्त्री जागरण एवं स्त्रियों के अधिकारों के लिए आन्दोलन तेज कर दिए।

प्रस्तुत शीर्षक बहुतों को अटपटा लग सकता है क्योंकि मैंने जब शीर्षक चुनाव किया था तब मुझे थोड़ी कठिनाई हुई थी मेरे द्वारा नहीं अन्यों के द्वारा। दयानन्द सरस्वती का स्त्री विमर्श वह भी हिन्दी साहित्य में ? वह तो समाज सुधारक थे, हिन्दी में उनका क्या काम ? किन्तु यहाँ एक ही उत्तर है कि दयानन्द समाज सुधारक थे, किन्तु जिस समाज के सुधारक थे उस समाज की भाषा हिन्दी थी और दयानन्द ने हिन्दी भाषा को समुन्नत करने का जो प्रथम प्रयास किया है वह सर्वविदित है, किसी से छिपा हुआ नहीं है। वह हिन्दी के लिये किया गया प्रथम प्रयास था। दयानन्द ने जब हिन्दी को देश का हिस्सा बनाने की सोची तब तक जिनके नाम से हिन्दी का युग चलता है भारतेन्दु जी पैदा भी नहीं हुए थे। भारतेन्दु युग से, द्विवेदी युग एवं आज तक के साहित्यकार दयानन्द से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभावित रहे हैं, इसका प्रमाण मैंने शोध प्रबन्ध में प्रस्तुत किया है।

स्त्रियों के प्रति जो विलासितापूर्ण साहित्य 1857 की क्रान्ति के पहले लिखा जा रहा था वह अचानक परिवर्तित कैसे हुआ ? यह शोध का विषय है। सभी साहित्यकार स्त्री जागरण की बात करने लगे थे, इसके पीछे केवल और केवल कारण दयानन्द ही था। भले बाद में एक और एक मिलकर ग्यारह स्त्री सुधारवादी हो गये हों, वह बात अलग है। परन्तु वह सब भी देश और स्त्री हित में ही रहा।

स्वामी दयानन्द को संन्यासी होने के कारण सम्पूर्ण देश की स्त्रियों की दशा की जानकारी थी। वे जहाँ भी जाते उन्हें यह समझने में देर न लगती थी कि स्त्रियों पर इस

देश में क्या बीत रही है, सबसे पहला कारण स्त्रियों की स्थिति ठीक न होने का अशिक्षा उन्होंने देखा। स्त्री अशिक्षा के कारण सामाजिक समानता के अधिकारों से वंचित थी। इसके अतिरिक्त वह बाल–विवाह, बाल–विधवा आदि में फैलते व्यभिचार, शोषण, अत्याचार जैसी कुप्रथाओं और समाज के षडयंत्र की शिकार बनकर दुःख से पीड़ित थी।

तत्कालीन स्थिति में स्त्री जाति पर जितना पाखण्ड तथा अत्याचार था उतना शायद पशु के अतिरिक्त किसी पर न था। स्वामी दयानन्द को पूरे भारत भ्रमण से यह सब विदित था। इसके कारण उनके राष्ट्र सुधार के कार्यक्रम में सबसे प्रथम बिंदु अब स्त्री को इन सामाजिक वर्जनाओं से मुक्त कराना था। उन्होंने वैदिक प्रमाण देकर सर्वप्रथम समाज में व्याप्त पाखण्ड को समाप्त करने की ओर लोगों का ध्यान केन्द्रित किया। जिसके कारण उन्हें समाज द्वारा कई बार मारने के प्रयासों तक की पीड़ा झेलनी पड़ी किन्तु वे अपने स्त्री जागरण के प्रयासों से अडिग रहे।

सर्वप्रथम स्त्री शिक्षा एवं समानता के लिए दयानन्द के प्रयास लोक विख्यात हैं। उन्होंने स्त्री को माता के रूप में सारे राष्ट्र की जननी कहकर भावी राष्ट्र निर्मात्री कहा। जिसे शिक्षित होने का सर्व प्रथम अधिकार है। नारी शिक्षा से ही समाज सुधार हो सकता है, ऐसा विचार स्वामी दयानन्द का था।

भारतीय एवं पाश्चात्य सभी चिन्तकों ने दयानन्द के नारी उत्थान के विषय में अपने ग्रन्थों में इस प्रकार की सम्मतियाँ दी हैं कि दयानन्द ने जितना कार्य नारी उत्थान के लिए किया उतना शायद ही कोई अन्य कर पाया है। भवानीलाल भारतीय जिन्होंने दयानन्द पर अनेक शोध ग्रन्थ लिखे उनके शब्दों में "गाङ्गेय तट पर विचरण करते हुए दयानन्द का यह धर्म प्रचार केवल पुरुष वर्ग तक ही सीमित नहीं था। वे नारी जाति के अभ्युत्थान के प्रबल पक्ष पोषक थे। कर्णवास निवासी ठाकुर गोपाल सिंह की एक वृद्धा ताई हंसा ठकुरानी को उन्होंने ओंकारोपासना तथा गायत्रीजप का उपदेश दिया। संभवतः शताब्दियों के पश्चात् भारत के धार्मिक रंगमंच पर दयानन्द ने ही प्रथम बार अवतीर्ण होकर धर्म तथा उपासना, परिवार एवं समाज–सभी क्षेत्रों में नारी को पुरुष के बराबर अधिकार प्रदान करने की बात कही। मध्यकालीन साधु संतों, दार्शनिकों और भक्तों ने तो नारी को अध्यात्मिक साधना के मार्ग में सदा बाधक ही समझा था तथा उसकी कुत्सा एवं निन्दा करने का कोई अवसर उन्होंने हाथ से नहीं जाने दिया। यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि परवर्ती युग के संतों, भक्तों तथा भाषा कवियों ने नारी जाति के प्रति अपना अनुदार दृष्टिकोण यत्र तत्र सर्वत्र प्रकट किया है। इस परिप्रेक्ष्य में जब हम स्वामी दयानन्द द्वारा

नारी उत्थान के लिए किए जाने वाले कार्यों की समीक्षा करते हैं तो सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि न केवल धर्म एवं समाज, बल्कि राजनीति, अर्थनीति आदि क्षेत्रों में भी नारी को स्वाधीन देखने का स्वप्न उस युग पुरुष ने उस समय संजोया था, जबकि उसके अधिकांश समकालीन धर्म संशोधकगण भी नारी विषयक प्रतिगामी मध्यकालीन विचारधारा से अपने को पृथक् नहीं कर सके थे।" दयानन्द का स्त्रियों को केवल मात्र शिक्षित करने का ही लक्ष्य न था वे स्त्रियों को वह सब प्रदान करना चाहते थे जो पुरुषों को प्राप्त था। स्त्रियों को वेद नहीं पढ़ने के मध्यकाल से चले आ रहे 'स्त्री शूद्रौ नाधीयतामिति श्रुतेः'। जैसे वाक्यों की कड़ी निन्दा की और कहा यह सब पाखण्डियों के बनाये कपोल कल्पित वाक्य हैं। उन्होंने कई स्थलों पर कहा है कि स्त्री और शूद्र माने जाने वालों के लिए वेदों में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि वे वेद न पढ़ें बल्कि वेदों को पढ़ना चाहिए।

वेदों को नहीं पढ़ने के वाक्यों को पाखण्डियों ने इसलिए चलाया है कि यदि शूद्र और स्त्रियाँ शिक्षित हो जाएंगे तो पाखण्डियों का क्या होगा। ऐसा लोगों ने उनसे प्रश्न भी किया है सत्यार्थ प्रकाश में दयानन्द ने लिखा है कि लोगों का प्रश्न था कि यदि 'जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे' शूद्र और स्त्रियाँ शिक्षित हो जाते हैं तो पाखण्डियों की दुकान चलनी बंद हो जाती है क्योंकि अशिक्षित को ही मूर्ख बनाकर उसका शोषण किया जाता। इसलिए स्वामी दयानन्द ने स्त्री व शूद्र शिक्षा पर प्रबल जोर दिया। महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भी स्वामी दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के उदाहरण को सामने रखकर दयानन्द की इस विषय में साफ–साफ सम्मति को प्रस्तुत किया है। 'निराला' ने दयानन्द और युगान्तर में लिखा है कि– "ज्ञान की ही हद में सृष्टि की सारी बातें हैं। सृष्टि की अव्यक्त अवस्था भी ज्ञान है। स्वामी जी वेदाध्ययन में अधिकारी भेद नहीं रखते वह सभी जातियों की बालिकाओं–विद्यार्थिनियों को वेदाध्ययन का अधिकार देते हैं यहाँ पर स्पष्ट है कि ज्ञानमय कोष चाहे वह जड़ विज्ञान से सम्बन्ध रखता हो, धर्म विज्ञान से नारियों के लिए युक्त हैं, वे सब प्रकार से आत्मोन्नति करने की अधिकारिणी हैं इस विषय पर आप सत्यार्थ प्रकाश में एक मंत्र उद्धृत करते हैं–

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।।"

–यजुर्वेद अ. 26/2

"परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ, वैसे तुम भी किया करो। यहाँ कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है, स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं (उत्तर) ब्रह्मराजन्याभ्याम् इत्यादि देखो, परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय (आर्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है, अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़-पढ़ा और सुन-सुनाकर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों को ग्रहण और बुरी बातों को त्याग करके दुःखों से छूटकर आनन्द को प्राप्त हों। कहिए, अब तुम्हारी बात माने वा परमेश्वर की ? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा, वह नास्तिक कहलायेगा क्योंकि 'नास्तिको वेद निन्दकः' वेदों का निन्दक और न मानने वाला नास्तिक कहता है।"

स्वामी जी ने वेद के उद्धरणों द्वारा सिद्ध किया है कि स्त्रियों की शिक्षा, अध्ययन आदि वेद-विहित हैं। उनके लिए ब्रह्मचर्य के पालन का भी विधान है।

इतने पर भी सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' संतुष्ट न होकर आगे लिखते हैं- "स्वामी जी की इस महत्ता को देखकर मालूम हो जाता है कि स्त्री समाज को उठाने वाले पश्चिमी शिक्षा-प्राप्त पुरुषों से वह बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वह संसार और मुक्ति दोनों प्रसंगों में पुरुष के ही बराबर नारियों को अधिकार देते हैं। इस एक ही वाक्य से साबित हो जाता है कि किसी भी दृष्टि से वह नारी जाति को पुरुष जाति से घटकर नहीं मानते थे।" इससे सहज ही में उजागर हो जाता है कि महर्षि दयानन्द स्त्री उत्थान की कितनी आशा अपने हृदय में रखते थे। वह भी ऐसे समय में जब सारे देश में इस कार्य का साथ देने के लिए उनके साथ कोई नहीं था। क्योंकि दयानन्द का उपरोक्त विचार तत्कालीन वातावरण में एक अचम्भित करने वाला तथ्य था। जब स्त्रियों को लोगों ने पाप योनि मान रखा था।

फिर भी स्वामी दयानन्द ने हार न मानी और जो कार्य किया उसे हम आज देख रहे हैं। नोबेल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध फ्रांसिसी साहित्यकार एवं इतिहासकार रोमां रोलां ने रामकृष्ण परमहंस की जीवनी की पृष्ठ भूमि में एक अध्याय 'बिल्डर्स ऑफ यूनिटी' में स्वामी दयानन्द के जीवन एवं व्यक्तित्व का विस्तृत मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि-

'स्त्रियों की दुर्दशा निवारण के लिए दयानन्द ने बड़ी उदारता के साथ कार्य किया।' इस छोटी सी पंक्ति से पूरे विश्व के यह बात समझ में आ जाती है कि दयानन्द ने स्त्रियों के लिए क्या नहीं किया, जिससे वे पुरुषों के बराबर आकर उनके बताए वैदिक मार्ग पर चलें। किन्तु खेद है कि वैदिक मार्ग पर चलना तो दूर स्त्रियाँ दयानन्द के नाम से भी परिचित नहीं हैं। आश्चर्य की बात तो तब होती है जब उच्च स्तर पर साहित्य में बड़ी–बड़ी पुस्तकें स्त्री–विमर्श के नाम से महिलाएँ लिखकर भले उनमें कुछ ऊलूल–जुलूल ही क्यों न भरा हो स्त्री विमर्श की प्रसिद्धि प्राप्त करने में अपना गौरव समझती हैं, किन्तु दयानन्द से सर्वथा अपरिचित सी हैं। महात्मा गाँधी ने अपने वक्तव्य में स्पष्ट लिखा है कि– "महर्षि दयानन्द के इस पवित्र देशोपकारी कार्य का कभी भी अपमान होगा तो मैं उसको महापाप समझूँगा।" इसी का परिणाम है दिल्ली जैसे जागरुक एवं राजधानी शहर में आज खुलेआम निर्भया जैसे काण्ड हो रहे हैं। यह स्त्रियों के द्वारा दयानन्द को न जानने के कारण गाँधी जी के महापाप का प्रबल वर्तमान उद्धरण है।

ऋषि दयानन्द के हृदय में दो पीड़ाएँ अत्यधिक थीं। गुलाम भारत को स्वाधीन देखना तथा समाज वेदानुकूल हो। उसमें अत्यधिक दुर्दशा महिलाओं की होने पर समाज कैसे स्वस्थ हो सकता है ? महिलाओं का सर्वांगीण विकास चाहने वाले वे वेदों के बाद प्रथम पुरुष थे। इतिहास को दोहराने पर स्पष्ट पता चलता है कि पशुओं के बाद यदि मनुष्यों में किसी पर जुल्म हुआ है तो वह नारी जाति ही है। कितनी भयानक पीड़ाएँ स्त्री ने भुगती हैं जो अवर्णनीय हैं। दयानन्द सरस्वती मात्र ऐसे पुरुष हुए जिन्होंने विश्व के इतिहास को हमारे समक्ष रखते हुए यह सिद्ध किया कि यह भारत वर्ष विश्वगुरु इसलिए था कि वेदों के अनुसार यहाँ स्त्री को पढ़ने तथा अन्य कार्यों में पुरुषों के समान ही अधिकार था किन्तु प्रकारान्तर से एक काल ऐसा आया जब लोग वेदों से विमुख हो गए और स्त्रियों को पैर की जूती समझा जाने लगा। कोई माने या न माने लेकिन दयानन्द ने स्त्री शिक्षा एवं दशा सुधार के लिए जो प्रयास किए उसका नारी जाति कभी ऋण नहीं चुका सकती। आज की उन्मुक्त होती स्त्रियों को एवं जो पिछड़ी हुई स्त्रियाँ हैं उनको दयानन्द को समझने की अत्यन्त आवश्यकता है। जिससे वे अपना सुरक्षित स्थान पुनः पा सकें और समाज को दृढ़ता प्राप्त करवाने में सहायक सिद्ध हों। 140 वर्ष पूर्व दयानन्द नाम एक महर्षि व समाज सुधारक का था, किन्तु आज दयानन्द नाम विचारधारा का है, एक क्रान्ति का है। जिस पर अनेकानेक अनुसंधान की सतत् आवश्यकता है। खोज की आवश्यकता है। स्त्रियों की दशा सुधार पर चिन्तन करना समाज सुधार का प्रथम अंग है।

ऐसा कोई विरला ही संन्यासी होगा जो मुक्ति इच्छा छोड़ अपने जीवन में अठ्ठारह बार विषपान का भागी बना। जिसने देश की स्त्रियों की दशा सुधार की चिन्ता पर चिन्तन कर उसे पुरुष के समकक्ष दर्जा दिलाने का पुरजोर प्रयत्न किया और उसमें सफलता प्राप्त की। दयानन्द से पहले इस ओर किसी का ध्यान तक नहीं गया। हालांकि कुछ प्रयास राजा राममोहन राय का था किन्तु उनका झुकाव अंग्रेजियत की ओर अधिक था।

वेदों में नारी देवी के शीर्षस्थ आसन से लेकर रामायण की सीता, महाभारत की द्रौपदी तथा पूजा से लेकर मंदिरों की देवदासी, नाथ साहित्य, सिद्ध साहित्य, श्रृंगार साहित्य और राजा राममोहन राय के सतीप्रथा विरोध से निरन्तर गुजरते हुए; सौन्दर्य की सामग्री के रूप में जकड़ी हुई, क्षुद्र मानसिकता व चूल्हा चौका से जिस्मफरोशी, बली–प्रथा की काल कोठरी से बाहर निकाल कर, नारी को प्रकाश पुंज सूर्य का दर्शन कराने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती का आज के युग में महत्त्व निर्विवादित है तथा नारी को समझने में दयानन्द के योगदान की चर्चा परमावश्यक है।

इस शोध में उनके ग्रन्थों में से सोलह प्रमुख हिन्दी ग्रन्थों का विषय दृष्टि हेतु साहित्य में प्रयुक्त स्त्री विमर्श के आधार रूप में चुना है। महर्षि ने जीवनानुभवों के साथ समकालीन परिवेश को ध्यान में रखते हुए जो प्रस्तुत किया वह वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पूर्णतः उपयोगी है। जिसे पाठक अपने जीवन में उतारकर आत्मलाभ के साथ सामाजिक साहित्यिक लाभ प्राप्त करने में दक्ष हो तथा सुख की वृद्धि करते हुए कुशल जीवन यापन करने में अग्रसर होकर साहित्य की मूल भावना स्वहित से स्वस्थ समाज का निर्माण करने में सफल हों।

आलोच्य लेखक के साहित्य में स्त्री–विमर्श को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विविध आयामों से रेखांकित करना प्रस्तावित शोध का विषय है। लेखक का विचार अन्वेषण स्त्री की समकक्षता समानता को अध्ययन का आधार बनाकर सम्पूर्ण रूप में मनुष्य मात्र का पूरा हक प्रदान कर सामाजिक एवं साहित्यिक कलंक को धो, स्त्री–पुरुष की समानता को पाठकों के समकक्ष उपस्थित करना शोध का मुख्य विषय है।

वर्तमान साहित्य में जब स्त्री–विमर्श की चर्चा अत्यधिक ज्वलंत विषय है तथा यह युग की माँग भी है जिसे दयानन्द सरस्वती ने आज से 140 वर्ष पूर्व ही अपने साहित्य में स्थापित कर दिया था तो आज हमारा यह कर्त्तव्य है कि उस व्यक्ति के कृतित्व की ओर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए, जिसमें वर्तमान विषय की समग्रता समाहित है।

युग द्रष्टा महर्षि दयानन्द की रचनाओं में नारी–विमर्श ही नहीं अपितु सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आर्थिक, दलित, प्रबल राष्ट्रवाद आदि विषयों पर विविध दृष्टिकोण प्रकट हुए हैं। स्वदेश के ही नहीं अपितु विदेशों के भी मूर्धन्य दार्शनिकों, साहित्यकारों एवं विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए वर्तमान में भी उनकी प्रासंगिकता को स्वीकारा है।

प्रस्तावित शोध के द्वारा पाठकों को यह बताना आवश्यक है कि मनुष्य व मनुष्यता को इस धरा पर लाने वाली नारी ही है उसका सर्वांगीण विकास ही सुखद सृष्टि है। साहित्य समाज का दर्पण है जो समाज में घटता है वह साहित्य में उतरता है। पुरुष व स्त्री में से यदि स्त्री पक्ष को कमजोर समझा जाता है तो वह साहित्यिक दृष्टि हो या वास्तविक जीवन दृष्टि, तो मनुष्य शब्द अपूर्ण है। महर्षि का शताधिक वर्ष पूर्व का स्त्री विचार क्या वर्तमान समय में अपेक्षणीय है ? क्या यह शोध के उद्देश्य को समाहित करने की क्षमता रखता है और यदि हाँ तो किन–किन विविध सोपानों को अपने भीतर समावेषित करता है ? अधिक विवेचनीय है।

यद्यपि दयानन्द को समाज सुधारक के रूप में ही देखा जाता रहा है किन्तु वह बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। हिन्दी भाषा प्रचार–प्रसार में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को नगण्य किया जाना कृतघ्नता होगी। जब देशवासी अंग्रेजी एवं अपनी–अपनी भाषाओं की ओर आकृष्ट थे तब सबसे पहले हिन्दी भाषा को संपूर्ण भारत में बोलने, पढ़ने, लिखने व राष्ट्रभाषा, राजभाषा के रूप में लागू करने का प्रबल समर्थन दयानन्द सरस्वती ने किया। इतना ही नहीं हिन्दी की ओर लोगों का ध्यान केन्द्रित करने में सफल भी हुए। मूलतः गुजराती भाषी एवं संस्कृत निष्णात् होते हुए भी अपने ग्रन्थ हिन्दी में लिखे एवं वेदों का भाष्य भी हिन्दी भाषा में ही किया इससे उनकी हिन्दी को स्थापित करने की भावना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। आश्चर्य की बात यह है कि अपनी मृत्यु के दस वर्ष पहले हिन्दी को सीखा इनकी समस्त पत्र पत्रिकाएँ आज भी हिन्दी में ही प्रकाशित होती रही हैं, किन्तु पीड़ा की बात यह है कि हिन्दी साहित्य में उनके लिए कोई स्थान नहीं है। जबकि हिन्दी साहित्य में जीवन चरित्र लिखने की परम्परा सर्वप्रथम दयानन्द से ही प्रारंभ है। दयानन्द पर सौ से अधिक जीवन चरित्र लिखे गए। इसके बाद तो हिन्दी साहित्य में जीवन चरित्र लिखने की बाढ़ सी आ गई थी 19वीं शताब्दी के अधिकांश लेखक व कवि दयानन्द से प्रभावित ही न थे कट्टर आर्यसमाजी, दयानन्द शिष्य परम्परा के भी थे। मैथिलीशरण गुप्त, निराला, अयोध्यासिंह उपाध्याय, आचार्य चतुर्सेन शास्त्री, रामधारी सिंह दिनकर आदि ने

उनसे प्रेरणा लेकर ही हिन्दी साहित्य भण्डार की वृद्धि की है मात्र पन्द्रह वर्ष की उम्र में पं. राधाचरण गोस्वामी दयानन्द के संपर्क में आने से हिन्दी के प्रमुख लेखक व पत्रकार बने, जिन्होंने बाल–विवाह विरोधी, विधवा–विवाह समर्थित साहित्य लिखा व हिन्दी के टीकाकार प्रसिद्ध हुए। आज भी दयानन्द की प्रेरणा से कई लेखक कार्य कर रहे हैं। इसलिए इनके साहित्य में स्त्री–विमर्श कड़वे किन्तु सत्य विषय पर शोध करने का निश्चय किया यह मेरी रूचि का विषय है।

महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को आधार बनाकर भारत देश के दो राज्यों के विश्वविद्यालयों (राजस्थान एवं हरियाणा) ने इनके नाम से विश्वविद्यालयों का नाम रखकर कृतज्ञता प्रकट की है। इतना ही नहीं इनका साहित्य आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली, मधुर प्रकाशन, दिल्ली, आर्य साहित्य भवन आदि प्रकाशन स्थलों के अतिरिक्त भी अन्य स्थलों से निरन्तर प्रकाशित हो रहा है।

श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर (राजस्थान), गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार उत्तराखण्ड, योग विश्वविद्यालय आर्यवन रोझड़ गुजरात, दयानन्द शोधपीठ पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से शोध कार्य जारी हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार के बाद देश में सबसे बड़ी श्रृंखला इनके दयानन्द एंग्लो वैदिक विद्यालयों (डी.ए.वी.) की रही। संस्कृत, गुजराती भाषा के मूल विद्वान् होते हुए भी इनका सम्पूर्ण साहित्य हिन्दी भाषा में रचित है। इससे इनकी हिन्दी भाषा के प्रति संवेदना, प्रेम तथा भारत में एक ही भाषा के प्रसार में अहम् भूमिका से राष्ट्रीय एकता लक्षित होती है। 1857 से लेकर 1883 तक इनका भाषा का प्रचार निर्विवादित है इसके पहले भी ये समाज सुधार में विरत थे किन्तु खुलकर कार्य 1857 से ही करने लगे थे। इसमें इनकी तीस से अधिक रचनाओं का योगदान भी निहित है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्वर्गीय प्रोफेसर महेश प्रसाद मौलवी ने 'महर्षि दयानन्द कहाँ और कब', 'दयानन्द के काल में रेल मार्ग' तथा 'महर्षि जीवन दर्शक' आदि कतिपय शोध परक पुस्तकें लिखी। दयानन्द शोधपीठ पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ से महापुरुष के जीवन एवं विचारों की सतर्क समीक्षा डॉ. भवानी लाल भारतीय ने की तथा दयानन्द के साहित्य से आर्थिक विचारों की समीक्षा डॉ. रामकृष्ण आर्य ने की। मैं भी पूर्व में दयानन्द और हिन्दी दलित साहित्य के नाम से लघु शोध कर चुका हूँ। इतना ही नहीं कई भारतीय एवं कई पाश्चात्य विद्वान् महर्षि दयानन्द पर शोध कार्य कर चुके हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों के बारे में यदि जाने तो हम भारतीयों को भी उनसे प्रेरणा लेकर दयानन्द पर और

अनेक शोध करने की प्रेरणा मिलेगी। स्वामी दयानन्द सरस्वती इस सृष्टि में वीर हनुमान एवं भीष्म पितामह के पश्चात् एक ऐसे अखण्ड ब्रह्मचारी हुए जिनके बराबर कोई नहीं हुआ तथा सृष्टि के प्रारंभ ब्रह्मा से जैमिनी ऋषि पर्यन्त पहले ऋषि परम्परा के अद्वितीय महान् व्यक्तित्व वाले पुरुष थे। पाँच हजार वर्ष पुराने इतिहास में ऐसा व्यक्तित्व मिलना कठिन ही नहीं असम्भव है। इनकी विचार क्रान्ति से देश-विदेश के लोग अत्यन्त प्रभावित रहे।

थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक कर्नल एच.एस. अल्काट तथा मैडम एच.पी. ब्लैवेस्ट्स्की ने अमेरिका से दयानन्द से पत्र व्यवहार किया और कालान्तर में भारत आकर प्रत्यक्ष भेंट की। जब 1877 में स्वामी जी ने वेद भाष्य लेखन और प्रकाशन का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ किया तो ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में कार्यरत प्रो. मैक्समूलर तथा प्रो. मोनियर विलियम्स ने उसका अध्ययन किया तथा अपने निष्कर्ष निकाले।

दयानन्द भारत की स्वाधीनता के लिए प्रयासरत थे किन्तु फिर भी वे अंग्रेज प्रशासकों, पत्रकारों तथा धर्म प्रचारकों से देश की समस्या पर विचारों का आदान-प्रदान किया करते थे। आर्य-समाज की स्थापना के बाद दयानन्द के विचारों का प्रभाव देश में ही नहीं वरन् विदेशों में भी फैलने लगा। अमेरिका के चिन्तक और दार्शनिक एण्ड्रू जैक्सन डेविस ने काव्योपम गद्य में उनके क्रान्तिकारी कार्यों का वर्णन किया है और उनके निधन के पश्चात् प्रो. मैक्समूलर ने एक विस्तृत लेख लिखकर उनके व्यक्तित्व तथा वाङ्मय की समीक्षा की। प्रसिद्ध साहित्यकार रोमां रोला ने रामकृष्ण परमहंस की जीवनी की पूर्वपीठिका में दयानन्द के जीवन एवं विचारों का सतर्क मूल्यांकन किया तो सारे विश्व में विदेशी उनके बारे में जानने के लिए आतुर हो गए।

उधर भारतीय स्वराज्य की उद्घोषणा करने पर ब्रिटिशकालीन गुप्तचर सेना से जुड़े लोगों ने भी दयानन्द विषयक अपनी सम्मति को उच्च अधिकारियों तक पहुँचाया था। पाश्चात्य जगत् के प्राध्यापकों, दार्शनिकों, शोधकत्ताओं, पत्रकारों तथा धर्म प्रचारकों ने अपनी-अपनी दृष्टि से दयानन्द के जीवन और व्यक्तित्व की बड़ी बारीकी से परीक्षा की इनमें इंग्लैण्ड, अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, रूस, आस्ट्रेलिया, मैक्सिको तथा कनाडा आदि के नागरिक हैं। जिनका लेखनकाल 1883 से लेकर बीसवीं शती के अन्तिम दशक तक जोरों पर रहा। यह प्रभाव दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् आग की तरह पूरे विश्व में फैला। सब उनके बारे में अधिक से अधिक जानना चाहते थे। वहीं ब्रिटिश सरकार को यह डर था कि कहीं दयानन्द ने आर्यसमाज के माध्यम से तख्ता पलटने का षडयंत्र तो नहीं किया। दयानन्द का प्रभाव इतना तेज था कि प्रत्येक व्यक्ति के मन में उनके बारे में जानने की

इच्छा थी क्योंकि मृत्यु के बाद तुरन्त पूरे विश्व से श्रद्धांजलियाँ आई जो दयानन्द की इस प्रसिद्धि को देखकर ब्रिटिश सरकार चौंक गई और उनकी संस्था आर्यसमाज को क्रान्तिकारी संघठन के रूप में शंका की दृष्टि से देखने लग गई। कई गुप्तचर ऐजेंसियाँ नियुक्त कर दी गई। जो समय–समय पर आर्यसमाज में होने वाली गतिविधियों की सूचना ब्रिटिश सरकार को भेजने लगी। इसका प्रमुख कारण यह भी था कि दयानन्द ने वैदिक विचारधारा के प्रचार के लिए पहले से ही ब्रिटेन में रहने या जाने वाले भारतीयों के लिए श्याम जी कृष्ण वर्मा को नियुक्त कर रखा था। श्याम जी कृष्ण वर्मा को ब्रिटेन में वैदिक विचारधारा के प्रचार के लिए भेजा था जो वैदिक धर्म के प्रचार के साथ भारतीय स्वाधीनता की भी ठोह ले रहे थे और ब्रिटिश सरकार की जानकारी भी रख रहे थे।

जिन पाश्चात्य शोधकर्मियों ने दयानन्द का वैचारिक मूल्यांकन किया उनमें प्रथम स्थान अमेरिका के जे.रीड ग्राहम का है जिन्होंने 1943 में आर्य समाज विषयक अपना शोध ग्रन्थ अमेरिका की येल यूनिवर्सिटी को प्रस्तुत किया था। दयानन्द को 'भारत का लूथर' कहकर यह शोधकर्ता उनकी निर्भीकता की प्रशंसा करता है तथा उन्हें प्रबल इच्छा शक्ति वाला बताता है। दयानन्द के अन्य चारित्रिक गुणों की चर्चा करते हुए डॉ. ग्राहम उन्हें सत्यान्वेषण में तत्पर, अत्यधिक जिज्ञासा वृत्ति वाले व्यक्ति एवं वस्तु की सच्ची पहचान करने में सक्षम बताते हैं। दयानन्द को वे प्रथम हिन्दू राष्ट्रवादी कहते हैं।

प्रिंसटन यूनिवर्सिटी (यू.एस.ए.) के प्रो. चार्ल्स हेमसेथ ने अपनी पुस्तक 'इण्डियन नेशनलिज्म एण्ड हिन्दू रिफार्म' में स्वामी दयानन्द पर अपने विचार पर्याप्त सन्तुलन एवं सतर्कता के साथ प्रस्तुत किए हैं।

शोधार्थी विद्वानों की श्रेणी में मिस्सोरी स्टेट यूनिवर्सिटी (यू.एस.ए.) में तुलनात्मक धर्म विषय के प्राध्यापक प्रो. जे.ई. लेवेलिन को भी रखा जाना चाहिए। उन्होंने अपनी पुस्तक 'दि आर्य समाज : ए फण्डामेंटलिस्ट मूवमेंट' में स्वामी दयानन्द के शास्त्र प्रमाण के सिद्धान्त की विस्तार से चर्चा की है। एतद् विषयक सभी तथ्यों को उन्होंने सुचारू एवं सतर्क ढंग से प्रस्तुत किया है।

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द के पंजाब आगमन (1877) तथा 1900 तक की इस प्रान्त की आर्य सामाजिक गतिविधियों की ऐतिहासिक विश्लेषण प्रधान शैली में विवेचना करने का श्रेय केन्सास यूनिवर्सिटी (यू.एस.ए.) के इतिहास विभाग के विगत प्रो. डब्लू. केनेथ जॉन्स को है, जिन्होंने अपने शोध प्रबन्ध 'दि आर्य धर्म' में विभिन्न स्रोत सामग्री के द्वारा आलोच्य विषय पर अपनी कलम चलाई है।

दयानन्द के जीवन, व्यक्तित्व, विचारों एवं कार्यों पर वर्तमान युग में जैसा सटीक, तथ्याश्रित तथा तटस्थ मूल्यांकन आस्ट्रेलिया की नेशनल यूनिवर्सिटी (कैनबरा) के दक्षिण एशिया अध्ययन के विगत प्रोफेसर डॉ. जे.टी.एफ. जॉर्डन्स ने किया है वैसा शायद ही किसी दूसरे ने किया हो। उनकी पुस्तक 'दयानन्द सरस्वती : हिज लाइफ एण्ड आइडियाज' में शोध और विश्लेषण, दोनों तत्त्वों का समुचित समावेश हुआ है। मिशनरियों के धार्मिक पूर्वाग्रहों तथा राजनीति में संलिप्त पत्रकारों की पूर्व निर्धारित धारणाओं से हटकर दयानन्द विषयक मूल्यांकन करने वाले पश्चिमी लेखकों में डॉ. जॉर्डन्स का शीर्ष स्थान है। उनके विवेचन का केन्द्र बिन्दु दयानन्द के विचारों की गत्यात्मकता है। दयानन्द सत्य के सतत जिज्ञासु हैं। सत्य की शोध दयानन्द के जीवन में अनवरत चलती रही, यही बताना डॉ. जॉर्डन को अभिप्रेत था। उनकी मेहनत और विचारों की पवित्रता स्वामी दयानन्द की देन को समग्रता से प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित करती है। उन्होंने दयानन्द के दार्शनिक और शास्त्र विषयक विचारों की समीक्षा करने के साथ–साथ उनके द्वारा स्वीकृत नैतिक एवं आचार परक मूल्यों, उनकी राष्ट्र परक विचारधारा स्त्रियों के प्रति किए गये प्रयास तथा समाज सुधार के व्यक्तित्व का अनुसंधान लेखक की सूक्ष्म विश्लेषण क्षमता को दर्शाता है उन्होंने स्वामी दयानन्द के लिए अपने शोध में लिखा है– "ऐसे थे स्वामी दयानन्द, एक निराला व्यक्ति जिसमें क्रियाशीलता कूट–कूट कर भरी है। सिद्धान्तनिष्ठ होने पर भी जो व्यावहारिक है, आत्मा और अन्तःकरण की गहराई तक पहुँचा हुआ किन्तु सदा वर्तमान की सोचने वाला तथा अच्छे भविष्य के लिए कर्म तत्पर।....अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि यही वे परस्पर विरुद्ध दिखने वाली प्रकाश किरणें हैं जो उस महापुरुष की महानता को उजागर करती हैं, जिसने स्वयं को उन्नीसवीं शताब्दी का असाधारण व्यक्ति बना दिया था।"

डॉ. जे.टी.एफ. जॉर्डन्स मूलतः बेल्जियम के निवासी थे इन्होंने नेशनल आस्ट्रेलियन यूनिवर्सिटी केनबरा में साउथ एशियन स्टडीज विभाग में प्राध्यापक तथा अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। इन्होंने स्वामी दयानन्द व स्वामी श्रद्धानन्द पर दो विशिष्ट शोधपूर्ण ग्रन्थ लिखे जो ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हैं दयानन्द सरस्वती : हिज लाइफ एण्ड आइडियाज इनका शोध ग्रन्थ है।

इनके शिष्य शोध छात्र आर थ्वाएत्स ने दयानन्द सरस्वती और 1857 का सिपाही विद्रोह नामक लघु शोध ग्रंथ लिखा।

मैक्समूलर न केवल स्वामी दयानन्द के समकालीन था बल्कि आयु में भी लगभग बराबर था। 1877 से मासिक पत्र के रूप में प्रकाशित होने वाले दयानन्द कृत ऋग्वेदादि

भाष्य भूमिका तथा पश्चातवर्ती प्रकाशित वेद भाष्य का वह ग्राहक था। भूमिका और भाष्य के अध्ययन के द्वारा वह दयानन्द के वेद विषयक विचारों पर स्वमत निर्धारित कर सका था। दयानन्द विषयक अपने लेख में मेक्समूलर ने यह स्पष्ट किया है कि उनके और स्वामी जी के वेद विषयक दृष्टि कोणों में मौलिक अन्तर है। दयानन्द ने जहाँ वेदों को ईश्वरीय प्रेरणा से प्राप्त कालातीत ज्ञान माना है वहाँ उनके विचार से वेदों का महत्त्व उनमें पाई जाने वाली ऐतिहासिक और सामाजिक जानकारी के कारण है इस लेख में मैक्समूलर ने एक नये तथ्य को उद्धृत किया है कि यात्रा में स्वामी दयानन्द उनके द्वारा (मैक्समूलर द्वारा) संपादित और ऑक्सफोर्ड से प्रकाशित ऋग्वेद की प्रति अपने साथ रखते थे। यह तथ्य भी मैक्समूलर को ज्ञात था कि दयानन्द ने उसके द्वारा किये गये वेदार्थ का तीव्र खण्डन किया है जिसको सत्यार्थ प्रकाश के 11वें समुल्लास में समझा जा सकता है। इसके पश्चात् भी जर्मन प्रोफेसर का दयानन्द विषयक आंकलन समग्र रूप से सहानुभूतिपूर्ण रहा है।

यहाँ पर पाश्चात्य विद्वानों के दयानन्द के प्रति हुए शोधों को प्रदर्शित करना एक मुख्य कारण था, जिसका विस्तार शोधार्थी की मस्तिष्क पीड़ा के कारण हुआ है जो स्वयं ने अधिक समय तक भोगी है। जब पाश्चात्य शोधकर्ता दयानन्द पर विभिन्न विषयों से शोध कर सकते हैं तो भारतीय शोधकर्ता क्यों नहीं कर सकता ? या फिर कहना होगा कि यहाँ शोध के प्रति जागृति कम है ? अथवा लोग महापुरुषों के बलिदान को भूल चुके ? जिनकी बदौलत आज हम स्वतंत्र हैं। फिर भी इतना तो है ही कि इन पाश्चात्य शोधों को यहाँ प्रकाशित करने से दयानन्द केवल भारत का विषय नहीं यह पूरी सृष्टि का विषय है।

महर्षि दयानन्द पर जो अभी तक शोध हुए हैं वह समुद्र में से गागर भरने के बराबर है अभी और अधिक शोध होने बाकी हैं।

वस्तुतः दयानन्द जैसे आध्यात्मिक साधना के सर्वोच्च सोपान पर प्रतिष्ठित योगी, ज्ञान, कर्म एवं उपासना के गूढ़तम रहस्यों के ज्ञाता महापुरुष का लोक कल्याण हेतु अपने जीवन को समर्पित कर, धर्म, समाज, राष्ट्र तथा विश्व मानवता की सेवा हेतु अपने को विसर्जित कर देना, इस देश के इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी। तभी तो गंगा तटवर्ती प्रान्त के निवासी एक महात्मा ने जब उनसे कहा कि यदि आप लोकोपकार के जंजाल में न पड़कर मोक्ष साधना में तत्पर होते तो इसी जन्म में आपको मुक्ति लाभ हो जाता। इसके उत्तर में स्वामी जी ने जो कुछ कहा वह उनके जैसे उदात्त व्यक्तित्व वाले मोक्ष प्राप्त करने वाले युग पुरुष के सर्वथा अनुकूल ही था उन्होंने कहा– "मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं

है। दयानन्द के नेत्र उस दिन को देखना चाहते हैं, जब देश के लाखों, करोड़ों निवासी अज्ञान, अविद्या तथा अंधविश्वासों की कारा से मुक्त होंगे तथा दैन्य, दारिद्रय, शोषण, अभाव तथा पराधीनता के पाशों को छिन्न–भिन्न कर सच्चे स्वराज्य की प्राप्ति कर लेंगे।" लोक कल्याण के लिए ब्रह्मानन्द को पुकारने वाले ऐसे लोकोत्तर पुरुष मानव जाति के प्रणम्य हैं।

भाषा को सरल एवं सहज प्रवाह में लिखने का प्रयास किया है, पाण्डित्य प्रदर्शन से शोधार्थी सर्वथा दूर रहा है किन्तु जहाँ संवाद वश कुछ क्लिष्ट शब्द आए वहाँ उनका प्रयोग करना आवश्यक हो गया साथ ही जहाँ उर्दू, फारसी, प्रचलित अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं की है।

प्रथम अध्याय में स्वामी दयानन्द सरस्वती के जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धियों के साथ सामाजिक सुधार में उनके योगदान के साथ उनकी कृतियों का विवरण प्रस्तुत किया है। जो विश्व प्रसिद्ध एवं रोंगटे खड़े करने वाली अद्वितीय घटनाएँ हैं।

द्वितीय अध्याय में भारतीय साहित्य में स्त्री–विमर्श के स्वरूप एवं अवधारणा को शोधपरक प्रस्तुत करने का प्रयास किया है जिसमें वैदिक साहित्य में अन्य भाष्यों की अपेक्षा स्वामी दयानन्द या उस आर्ष पद्धति के भाष्य अर्थों को लिया है। इसके अतिरिक्त जो आर्ष ग्रन्थ हैं उनके प्रमाणों के साथ ऐसे भी ग्रन्थों को लिया है जो वैदिक साहित्य में नहीं आते, जो केवल समाज में दुराचार फैलाने वाले अप्रमाणिक ग्रन्थ हैं, यह सब तुलनात्मक दृष्टिकोण को सामने रखते हुए उनके अंशों का प्रमाण आवश्यक था। वैदिक युग का काल सृष्टि के प्रारंभ से रामायण काल की समाप्ति तक रहा है। यह अत्यन्त विषद एवं दीर्घ काल रहा है जिसमें चारों वेदों में से ही स्वरूप एवं अवधारणा को लिया है।

मध्ययुग का काल महाभारत के युद्ध से एक सहस्र वर्ष पूर्व से स्वामी दयानन्द के प्रादुर्भाव तक चलता रहा। यदि दयानन्द का प्रादुर्भाव न होता तो यह मध्य युग आगे तक शायद आज तक भी चलता। हिन्दी साहित्य में मध्ययुग संवत् 1375 से 1900 तक माना है किन्तु वास्तविक मध्ययुग महाभारत के युद्ध से प्रारंभ है इसमें महाभारत कालीन स्त्री विमर्श को तथा बौद्ध–जैन पौराणिकों के धार्मिक पाखण्ड से होने वाले स्त्रियों के नुकसान का साहित्य पर प्रभाव का वर्णन है, बाद में संस्कृत, पाली प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य में स्त्री–विमर्श को ढूँढा है मुस्लिम और ईसाई सभ्यता के बीच में पलते भक्त, रीति साहित्य में स्त्रियों की दुरावस्था का आंकलन है।

आधुनिक युग का प्रारंभ दयानन्द (1824–1883) के कार्य क्षेत्र समय 1850 से प्रारंभ है। दयानन्द के राष्ट्रीय सुधारों में शामिल स्त्री–विमर्श की विशद शोधपरक व्याख्या की है। लोगों में उनका प्रभाव व्याप्त होने के कारण स्त्री उत्थान के साहित्यकारों के प्रयास को दिखाने का प्रयास किया है जो स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में विद्यमान हैं।

तृतीय अध्याय में स्वामी दयानन्द के स्त्रियोचित विचारों का शोधपूर्ण वर्णन है जिसमें दयानन्द के तत्कालीन नारी की वैदिक नारी से सम्मति बैठाने की विवेचना के प्रयास की विवेचना की गई है। यह एक सुधारात्मक दृष्टिकोण है यहाँ स्वामी दयानन्द के अकाट्य तर्कों द्वारा स्त्रियों को उच्च वैदिक सम्मान की प्रतिष्ठा हुई है साथ ही स्त्रियों के कर्त्तव्यों एवं आदर्श की रचना भी प्रमुख है।

चतुर्थ अध्याय में जो 1857 से लेकर आज के युग तक हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श हुआ है उसके क्रमिक विकास की शोधपूर्ण व्याख्या है।

पंचम अध्याय में आधुनिक हिन्दी साहित्य पर स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव को सिद्ध प्रमाणों द्वारा दिखाया गया है हिन्दी भाषा सुधार में स्वामी दयानन्द का योगदान तथा उनके राष्ट्रीय सुधार का एक हिस्सा स्त्री सुधार या स्त्री जागरण रहा है। हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल ऐसा समय रहा है। जब स्वामी दयानन्द का प्रभाव देश के प्रत्येक कोने में था जिसकी चर्चा ब्रिटिश साम्राज्य के गढ़ ब्रिटेन तक भी थी। इसलिए यहाँ इस बात का शोध हुआ है कि जो हिन्दी का आधुनिक साहित्य है वह किस प्रभाव से ग्रस्त है। दयानन्द के राष्ट्रीय सुधारों में भारतेन्दु युग से छायावादोत्तर एवं आज तक, जो प्रभाव स्त्री चिन्तन का पड़ा उसकी शोध परक व्याख्या, पूरी सतर्कता से ही नहीं की, अपितु दयानन्द के शिष्यों राधाचरण गोस्वामी, हरिऔध, मैथिलीशरण, कविशंकर, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' आदि हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि आज जो हिन्दी साहित्य की स्थिति और देश में महिलाओं की स्थिति है, वह सब केवल और केवल स्वामी दयानन्द के कारण है।

षष्ठ अध्याय में शोध प्रबन्ध के निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ हैं।

परिशिष्ट एक – परिशिष्ट लिखना अतिआवश्यक बन गया है क्योंकि स्त्री–विमर्श की प्रारम्भिक महिलाएँ सावित्री देवी फूले तथा रमा देवी रही हैं किन्तु वे भी ऋषि दयानंद से प्रेरित थीं। इसका प्रमाण प्रस्तुत किया है इसलिए स्त्री–विमर्श का उद्‌भव हिन्दी साहित्य में दयानंद से ही सिद्ध होता है।

परिशिष्ट दो में दयानंद के गुरु तथा स्वयं दयानंद का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया है तथा उनके द्वारा जाग्रति हेतु स्थापित किए मुद्रणालय का छायाचित्र है।

आशा है कि इस शोध ग्रन्थ से पाठक लाभ उठावें स्त्रियों को पुनः वैदिक कालीन गौरवान्वित सम्मान प्राप्त हो तथा स्वामी दयानन्द के अन्य सुधारों से संबंधित शोधार्थीगण शोध की परम्परा को आगे बढ़ाने के प्रयास करेंगे।

वैसे भी देश के पहले राष्ट्र कवि माने जाने वाले मैथिलीशरण गुप्त के बारे में दूसरे राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर यह सिद्ध कर चुके हैं कि– "साकेत के राम तो स्वामी दयानन्द के कृण्वन्तोविश्वमार्यम् का नारा लगाते हैं।"

अतः शोधार्थी को इस बारे में अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं कि आधुनिक हिन्दी साहित्य पर महर्षि दयानन्द सरस्वती के चिन्तन का प्रभाव कहाँ तक है ? कहना न होगा कि यह प्रभाव रामधारी सिंह दिनकर से आज तक विद्यमान है।

आर्य भाव कमनीय रत्न के अनुपम आकर।
विविध–अंधविश्वास–तिमिर के विदित–विभाकर।।
नाना–विरोध–वारिद–पवन कदाचार–कानन दहन।
हैं निरानन्द–तरु–वृन्द के दयानन्द–आनन्द घन।।

– अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

शोधार्थी

दत्तात्रेय गौतम

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय–वस्तु	पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	**i - v**
	भूमिका	**i - xvi**
1.	**अध्याय प्रथम**	**1 – 60**
1.00	**दयानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व**	
1.1	जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धियाँ	
1.2	सामाजिक सुधार के विविध सोपान	
1.3	कृतियों का संक्षिप्त परिचय	
	सन्दर्भ	
2.	**अध्याय द्वितीय**	**61 – 204**
2.00	**भारतीय साहित्य में स्त्री–विमर्श :**	
	स्वरूप एवं अवधारणा	
2.1	वैदिक साहित्य में स्त्री–विमर्श :	
	स्वरूप एवं अवधारणा	
2.2	मध्य युग में स्त्री–विमर्श : स्वरूप एवं अवधारणा	
2.3	आधुनिक युग में स्त्री विमर्श :	
	स्वरूप एवं अवधारणा	
2.3.1	स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श :	
	स्वरूप एवं अवधारणा	
2.3.2	स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श :	
	स्वरूप एवं अवधारणा	
	सन्दर्भ	

क्र.सं.	विषय-वस्तु	पृष्ठ संख्या
3.	**अध्याय तृतीय**	**205 – 255**
3.00	**दयानन्द सरस्वती की स्त्री विमर्श सम्बन्धी दृष्टि**	
	सन्दर्भ	
4.	**अध्याय चतुर्थ**	**256 – 287**
4.00	**आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का विकास**	
	सन्दर्भ	
5.	**अध्याय पंचम**	**288 – 371**
5.00	**आधुनिक हिन्दी साहित्य पर महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्त्री चिन्तन का प्रभाव**	
5.1	भारतेन्दु युग	
5.2	द्विवेदी युग	
5.3	छायावाद	
5.4	छायावादोत्तर काल	
	सन्दर्भ	
6.	**अध्याय षष्ठ**	**372 – 389**
6.00	**शोध-प्रबन्ध के निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ**	
	सन्दर्भ	
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	**390 – 398**
(क)	**आधार ग्रन्थ**	
(ख)	**सहायक ग्रन्थ/पुस्तकें**	
(ग)	**कोश एवं विश्वकोश**	
(घ)	**पत्र-पत्रिकाएँ**	
	परिशिष्ट – एक : स्त्री विमर्श के प्रथम प्राण	**399 – 406**
	परिशिष्ट – दो : छायाचित्र	**407 – 410**

ओ३म्

दयानन्द सरस्वती का स्त्री-विमर्श तथा उसका आधुनिक हिन्दी साहित्य पर प्रभाव (शोध-प्रबन्ध)

जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध
करते हो वह तुम्हारी मूर्खता,
स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।

– दयानन्द सरस्वती

अध्याय प्रथम

दयानन्द सरस्वती : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

"प्राचीन आर्यों में यह दृढ़ रीति थी कि प्रत्येक मनुष्य विद्याभ्यास करे। जब तक कि विद्या के भूषण से भूषित नहीं होते थे, तब तक पुरुष–स्त्री को विवाह करने की आज्ञा राजसभा से नहीं मिलती थी।"

– दयानन्द सरस्वती

"संस्कृति के क्षेत्र में भारत का आत्माभिमान स्वामी दयानन्द में निखरा...सत्य ही, रणारुढ़ हिन्दुत्व के जैसे निर्भीक नेता स्वामी दयानन्द हुए, वैसा और कोई नहीं।"

– रामधारी सिंह दिनकर

"दयानन्द इलियड अथवा गीता के प्रमुख नायक के समान थे, जिसने हरक्यूलिस की सी शक्ति के साथ हिन्दू अंधविश्वासों पर प्रबल प्रहार किये। वस्तुतः शंकराचार्य के बाद इतनी महान् बुद्धि का सन्त दूसरा नहीं जन्मा।"

– रोमां रोलां

दयानन्द जैसा ओजस्वी व्यक्तित्व वाला संन्यासी इस भारत भूमि पर आज तक दूसरा कोई नहीं हुआ जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था चारों ओर असाधारण भय लोगों में व्याप्त था स्वदेश स्वभाषा की कोई बात नहीं कर सकता था। दयानन्द ने विदेशियों की दासता के भयंकर राष्ट्रीय अपमान की व्यथा को तीव्रता से अनुभव किया और इसका मूलकारण तत्कालीन भारतीय समाज की विकृति को समझ कर उनका उन्मूलन करने के लिए प्रबल प्रयास किया जाति–पाँति और छुआछूत के अभिशाप, बाल–विवाह व विधवा विवाह जैसे सामाजिक अन्याय और अशिक्षा जैसी सामाजिक निर्बलताओं को दूर करने के लिए थोड़े से समय में ही दयानन्द ने अविश्वसनीय कार्य कर दिखाया। प्रत्येक विषय पर गूढ़ रूप से समालोचना करने के पश्चात् ही विशुद्ध व्यवहार करने की सलाह समाज में प्रसारित की। कोई भी कार्य अनुभव की कसौटी पर खरा उतारकर प्रस्तुत किया है। इनके द्वारा स्थापित संस्था आर्यसमाज ने विविध प्रकार के सुधारों को गति प्रदान की। जो परतंत्र भारत एवं स्वतंत्रता के बाद भी न भुलाई जाने वाली घटनाएँ हैं "हरिजनों का उद्धार, लड़कियों की शिक्षा के लिए सबसे पहले उसी ने कदम उठाया....जाति–पाँति भेदभाव, खान–पान को छुआछूत–चौका चूल्हा तक ही धर्म की श्रेष्ठता को सीमित रखने के विरुद्ध प्रचार करना उसके प्रवर्ततक स्वामी दयानन्द का ही प्रताप है। स्वामी दयानन्द का एक बड़ा उपकार कौमी जबान को है। उन्होंने ही तब महसूस किया और उसे कर दिखाया। जब इसका माहौल ऐसा नहीं था, गुजराती होते हुए उन्होंने राष्ट्र भाषा की अहमियत को समझा और अपना मशहूर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में ही लिखा। इसलिए शिक्षा–साक्षरता–यानी भाषा के क्षेत्र में भी आर्य समाज एवं महर्षि का योगदान अभूतपूर्व है।"[1]

स्वामी दयानन्द पर लोगों ने कई प्रकार के आक्षेप लगाए जिसमें भारतीयों ने उन्हें नास्तिक भी कहा क्योंकि उन्होंने मूर्ति पूजा का विरोध किया था तथा कई स्थानों पर शास्त्रार्थ में उन्हें ईंटे, पत्थर तथा विष भी खाना पड़ा परन्तु उस उदार मन ने कभी भी अपने साहित्य में इन सब कार्यों की निन्दा न करते हुए सहज में लिया और हँसते हुए यह कहकर सहा कि समाज सुधार में यह होना आश्चर्य नहीं, फिर मुस्कुराकर कि लोग अज्ञानी हैं इतने से ही उस पीड़ाजनक बात को समाप्त कर देते थे। एक बार पूना में न्यायमूर्ति गोविन्द रानाडे के आमन्त्रण पर शोभा यात्रा के दौरान ईंट पत्थर फैंके और बाद में एक व्यक्ति को दयानन्द बनाकर गधे पर बैठा जूतों की माला पहनाकर सारे नगर में घुमाया इस पर भी दयानन्द ने कोई प्रतिक्रिया नहीं की दयानन्द का व्यक्तित्व मान–अपमान से रहित उर्ध्वमुखी योगी का था इतना ही नहीं अन्त में स्वयं के रसोइये द्वारा जोधपुर के

महाराजा की वैश्या नन्हीं जान द्वारा बहकाने पर पैसे के लोभ में आकर दूध में विष के साथ काँच पीसकर देने पर भी उस रसोइये को बुलाकर अपनी जेब से पाँच सौ रुपए देकर नेपाल भगा दिया और कहा कि यहाँ रहेगा तो लोग तुझे मार देंगे। इससे बढ़कर महान् व्यक्तित्व का और कौनसा उदाहरण हो सकता है। विदेशी लोगों द्वारा जब दयानन्द की समीक्षा सत्यार्थ प्रकाश में देखी तो यह कहा कि उन्होंने दूसरे धर्मों को अच्छी प्रकार नहीं पढ़ने के कारण या नहीं समझने के कारण ऐसा किया है। यह अपने को विद्वान् मानने वालों का अन्तिम अस्त्र बौखलाहट ही है जबकि सैंकड़ों विद्वानों की सम्मत्तियों से तथा उनके विषद् अध्ययन से पता चलता है कि दयानन्द एक तपोनिष्ट संन्यासी या दार्शनिक ही न थे वे व्यक्तिगत जीवन में साधना द्वारा ऊँचे उठे हुए असाधारण योगी भी थे इस कारण यह कहना तो कतई युक्ति संगत नहीं है कि बिना ज्ञान के अज्ञानवश उन्होंने दूसरे धर्मों के बारे में कुछ अनुचित समीक्षा की है।

1.1 जन्म, शिक्षा एवं उपलब्धियाँ

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात में हुआ यह सभी जानते हैं किन्तु गुजरात के प्रान्त व स्थान को लेकर संदेह रहा तथा माता–पिता एवं परिवार के बारे में जानकारियाँ कुछ काल तक अव्यक्त रहीं। इसका मुख्य कारण उनका संन्यासी होना रहा है और वह भी ऐसा संन्यासी जो गरीबी व भुखमरी के कारण घर नहीं छोड़कर आया था। अत्यन्त विरक्ति तथा बहुत धनाढ्य परिवार राज्य की रियासत के जमींदार का पुत्र जिसके साथ छः सिपाही हमेशा निगरानी के लिए नियुक्त कर दिए गए थे। तीव्र विरक्ति होने से उन्होंने बहुत काल तक इस रहस्य को छिपाए रखना उचित समझा। उन्हीं के शब्दों में "प्रथम दिन से ही जो मैंने लोगों को अपने पिता का नाम और अपने कुल का स्थान बताना अस्वीकार किया, इसका यही कारण है कि मेरा कर्त्तव्य मुझ से इस बात की आज्ञा नहीं देता। यदि मेरा कोई संबंधी मेरे इस वृत्तांत से परिचय पा लेता, तो वह अवश्य मुझे ढूँढने का प्रयत्न करता । इस प्रकार उनसे दो चार होने पर मेरा उनके साथ घर जाना आवश्यक हो जाता ? इस तरह एक बार पुनः मुझे धन हाथ में लेना पड़ता अर्थात् गृहस्थ हो जाता। उनकी सेवा शुश्रूषा भी मुझे योग्य होती और **इस प्रकार उनके मोह में पड़कर सर्वसुधार का वह उत्तम काम जिसके लिए मैंने अपना जीवन अर्पण किया है जो मेरा यथार्थ उद्देश्य है, जिसके अर्थ जीवन बलिदान करने की किंचित सोच नहीं की और अपनी आयु को बिना मूल्य जाना और जिसके अर्थ मैंने अपना सब कुछ स्वाहा करना अपना मंतव्य समझा, अर्थात् देश का सुधार और धर्म का प्रचार, वह देश पूर्ववत् अंधकार में पड़ जाता।"**[2]

दयानन्द जहाँ भी जाते उनका व्यक्तित्व अत्यधिक ओजस्वी स्वाभाविक होने से सज्जनों को विशाल व्यक्तित्व के बारे में जानने की उत्सुकता का होना स्वाभाविक था। अपने जन्म व कुल स्थान के बारे में बताने का दयानन्द से कई व्यक्तियों ने कहा थियासोफिकल सोसायटी का उस समय अधिक बोल बाला था जो एक अंग्रेजी आध्यात्मिक संस्था थी उसके अध्यक्ष कर्नल अल्काट स्वामी जी से कई बार मिले। "पुनः अप्रेल 1879 में जब कर्नल अल्काट स्वामी जी से मिले तो उनके अनुरोध पर स्वामी जी ने स्वजीवन वृत्त लिखने की प्रतिज्ञा की।"[3] लोगों के अनुरोध से उनकी अपने बारे में बताने की इच्छा बन गई थी क्योंकि उस समय स्वामी जी को गृहत्याग किए लगभग चौंतीस वर्ष गुजर गए थे। उनकी आयु छप्पन वर्ष की हो गई थी बहुत अधिक आध्यात्मिक एवं समाज सुधार का कार्य कर चुके थे इसलिए उनके मन में अब संबंधियों द्वारा वापस ले जाने का भय न था। वीतराग दृढ़ संन्यासी दयानन्द के मन में यह भी था कि लोग मृत्यु के पश्चात् जीवन के बारे में चमत्कारपूर्ण, अतिशयोक्तिपूर्ण बातें लिखते हैं जिससे समाज में पाखण्ड फैलता है इसलिए भी– "ऋषि दयानन्द अपने जीवन चरित्र को लिखना चाहते थे। वह उनके एक पत्र से प्रतीत होता है। उस पत्र में स्वामी जी लिखते हैं यद्यपि मेरी इच्छा है कि मेरा स्वलिखित जीवनवृत्त जिसे आप अपने पत्र में प्रकाशित कर रहे हैं पूर्ण हो जाए पर अभी तक मैं उसके लिए यथोचित समय नहीं दे सका परन्तु यथा संभव शीघ्र ही जीवन कथा भेजूँगा। (थियोसोफिस्ट अप्रेल 1880 पृ.–190) परन्तु अनेक कारणों से वे ऐसा न कर सके यह प्रतीत होता है।"[4] समाज सुधार के कारण, भारत भ्रमण तथा सुशिक्षा का घोर अंधकार होने से उसको यथोचित करने के प्रयास के कारण उन्हें समय नहीं मिला। उनके लिए जीवन चरित्र से अधिक राष्ट्र सुधार प्रथम था। फिर भी कुछ अंक स्वकथित थियोसोफिस्ट में उनके जीवन चरित्र से संबंधित छपे। **"हिन्दी साहित्य के विद्वानों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऋषि दयानन्द द्वारा लिखित आत्मकथा हिन्दी में है और उसमें कवि कथाकार तथा इतिहासकार के तत्त्व एक साथ उपलब्ध होते हैं।"**[5] इसके अतिरिक्त पूना प्रवचन के दौरान भी उन्होंने अपने जीवन के बारे में बताया जिसे लोगों ने तुरन्त याद कर लिया तथा मराठी भाषा में छपवा दिया। "ऋषि ने अपना जीवन वृत्तान्त अन्य कई स्थानों में भी वर्णन किया, पर अन्य किसी ने उसे लेखबद्ध करने की ओर ध्यान न दिया। यदि कर्नल अल्काट और पूना के सज्जन इस ओर ध्यान न देते तो उस काल का जीवनवृत्त अन्धकार में विलीन हो जाता। यदि ऋषि के जीवन काल में ही अनुसंधान आरम्भ हो जाता तो प्रमाणिक जीवन

वृत्त लिखने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती।"[6] फिर भी अनेक शोध एवं अनुसंधानों के पश्चात् दयानन्द का जीवन चरित्र कई व्यक्तियों द्वारा लिखा गया है जिसमें लेखकों ने अपनी–अपनी गवेषणा एवं तत्परता को सिद्ध किया है।

इसके पश्चात् दयानन्द जीवन चरित्र पर सबसे अधिक शोध कार्य पूरा भारत भ्रमण कर अमर शहीद आर्य पथिक पण्डित लेखराम ने किया। "पण्डित जी ने पाँच वर्षों तक उसके संग्रह करने में अथक परिश्रम किया.....जितना दो मनुष्य भी नहीं कर सकते थे वे बीसियों स्थानों पर गये, सहस्रों मनुष्यों से मिले और ऋषि जीवन संबंधी घटनाओं को लिपिबद्ध किया।"[7] महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र लिखने की गवेषणा में ही एक महापुरुष का ओर नाम आता है वह है बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, इन्होंने भी असीमित तप व साधना का परिचय देते हुए अपनी मृत्यु के अन्तिम दिन तक जीवन चरित्र को नहीं छोड़ा। वैसे तो महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र पर शताधिक अनुसंधान हुए हैं, हो रहे हैं, किन्तु ये दो महानुभव पण्डित लेखराम व बाबू देवेन्द्रनाथ ही थे जो अनुसंधान के लिए खोज किए हुए संग्रह पत्रों को संग्रहित करते–करते ही बलिदानी हो गए। इनका अनुसंधान इतना विशद एवं मौलिक था कि सामग्री को संग्रहित करते–करते एक हत्या और एक की असामयिक मृत्यु हो गई बाद में पण्डित लेखराम द्वारा संगठित अंशों का संकलन कविराज रघुनन्दन सिंह निर्मल ने व बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के संग्रहित अंश पण्डित श्री घासीराम ने अनुवादित कर छपवाए। जो तथ्य व घटनाएँ किसी कारणवश उपर्युक्त गवेषकों से छूट गई उन्हें अन्य शोधकर्ताओं ने क्रमशः शोध करते हुए पूर्ण करने का प्रयास किया।

जन्म – साक्ष्यों के आधार पर दयानन्द का 'जन्म'[8] फाल्गुन कृष्ण 10 सम्वत् 1881 विक्रम मूलनक्षत्र में एक औदित्त्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। दयानन्द का बचपन का नाम मूलशंकर, मूलजी व दयाराम था जो गुजरात के मौरवी राज्याधीन टंकारा ग्राम में रहते थे। पिता का नाम करसन जी लाल जी तिवाड़ी था जो एक जमींदार थे। "स्वामी दयानन्द के पिता अपने ग्राम के ही नहीं अपितु समीपवर्ती प्रदेश के एक समृद्धशाली, वैभव सम्पन्न, भूमिपति तथा शासनाधिकार सम्पन्न राजपुरुष थे।"[9] "उनकी माता का नाम अमृता बेन (अमूबा) था।"[10] "और वह सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। कहा जाता है कि उनका गौत्र गौतम था।"[11]

शिक्षा – महर्षि दयानन्द की प्रारंभिक शिक्षा ब्राह्मण कुलोत्पन्न होने के कारण पाँच वर्ष में संस्कृताभ्यास अक्षर ज्ञान से आठ वर्ष उपनयनोपरान्त गायत्री मंत्रोपदीक्षा के साथ छोटी सी वय में अत्यधिक कठिनता युक्त सम्पूर्ण यजुर्वेद संहिता कण्ठस्थ करवा दी गई थी इसके साथ ही अन्य शास्त्रों के सूत्रादि का ज्ञान भी कराया गया था सम्पूर्ण शिक्षा कार्य कुशल आचार्यों द्वारा घर पर ही सम्पन्न हुआ। दयानन्द के शब्दों में– "14 वर्ष की अवस्था तक मैंने यजुर्वेद की संहिता कण्ठस्थ कर ली और कुछ वेदों का पाठ भी पूरा हो गया था और शब्द रूपावली आदि छोटे–छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पढ़ लिए थे।"[12] भव बन्धन से मुक्ति हेतु संन्यास ग्रहण के पश्चात् भी दयानन्द ज्ञान–विज्ञान के लिए विभिन्न, अत्यंत कुशल विद्वानों, संन्यासियों, योगियों से अपनी ज्ञान लिप्सा को शान्त करने में लगे रहे। मथुरा पहुँचकर व्याकरण के सूर्य प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती से दयानन्द ने पाणिनी व्याकरण को सिद्ध किया तथा शंका समाधान किया।

गुरुदक्षिणा में गुरु ने समस्त भारत से अज्ञान रूपी अंधकार, देश के युवकों में आत्मबल की कमी, पाखण्ड, धर्मान्धता, वेदार्थ की अधोगति को दूर करने का एवं पराधीन भारत से स्वाधीनता का वचन माँगने पर स्वयं की मुक्ति को छोड़ सम्पूर्ण भारतवासियों की मुक्ति की अभिलाषा से एक प्रचण्ड अग्नि को अपने हृदय में लेकर गुरु को दिया वचन अपने बलिदान समय तक पूरा किया।

महर्षि दयानन्द के द्वारा अपने जीवनकाल में किए गए समस्त कार्य उनकी उपलब्धियाँ हैं। जिसे सौ व्यक्ति भी अपने पूरे जीवनकाल में नहीं कर सकते। उनके एक–एक कार्य पर कई–कई शोध पुस्तकों का निर्माण हो चुका है एवं आगे भी हो रहा है ऐसा कोई विषय नहीं जिस पर दयानन्द ने सुधार न किया हो। वेदोद्धार, अछूतोद्धार, दलितोद्धार, नारी उत्थान, पाखण्ड की खण्डना, भारत की स्वाधीन–एकता, सुशासन, शुद्धविज्ञान, आर्थिक दृढ़ता, अन्धविश्वास की समाप्ति आदि पर भारतवासियों के सदियों से बन्द पड़े मस्तिष्क के कपाट खोले जिन्हें हम उपलब्धियों की संज्ञा दे सकते हैं।

इन लौकिक विषयों के अलावा भी दयानन्द ने आध्यात्मिक विषयों पर भी बड़ी गंभीरता से चर्चा की है जिन्हें योगी एवं मुमुक्षत्व के साधक जानकर मुक्ति जैसे कठिन विषय को प्राप्त कर सकते हैं महर्षि दयानन्द के व्यक्तित्व पर सहस्र शोध भी अल्प रहेंगे इस कारण उनका अति अल्प व्यक्तित्व दर्शाना आवश्यक होगा।

स्वामी दयानन्द सरस्वती की उपलब्धियों को यहाँ तीन विभागों में बाँटना उचित होगा। जिसमें पहला–स्वामी जी का स्वकथित जीवन चरित्र। दूसरा–भारतीय मनीषियों द्वारा दयानन्द के कार्यों पर अपने खोजपूर्ण विचार। तीसरा–विदेशी विद्वानों द्वारा दयानन्द पर की गई गवेषणा के आधार पर प्रकट किये गये उद्‌गार तथा विश्व के मानचित्र पर दयानन्द।

इन सबका विवरण विस्तार से न देकर अत्यल्प ही दिया जा रहा है क्योंकि महर्षि दयानन्द पर इतना शोध देश और विदेशों में हुआ है कि यहाँ सम्पूर्ण सम्मतियों तथा शोध आक्षेपों को यहाँ प्रस्तुत करना असम्भव है। इस कारण स्वामी दयानन्द के प्रति लोगों की धारणाओं से प्रस्तुत शोध में यह सिद्ध करना हितकर है कि दयानन्द पर अभी भी अनेक शोधों एवं गवेषणाओं की प्रबल संभावनाएँ मौजूद हैं। स्वामी दयानन्द के स्वकथित जीवन चरित्र को उपस्थित करने का इतना ही प्रयोजन है कि यदि इस शोध में यह जीवन चरित्र जो अमेरिका के थियोसोफिकल सोसायटी के कर्नल अल्काट और मेडम ब्लेवेट्स्की द्वारा संपादित तथा पूना आख्यानों से लिखित है न हो तो यह शोध अधूरा रहेगा। क्योंकि जीवन की घटनाओं को जाने बिना इस महान् व्यक्ति को जानना समझना बड़ा कठिन है। लोगों की धारणाएँ जीवन चरित्र को पढ़कर ही प्रबल बनती हैं तथा शोध की संभावनाएँ भी अधिक बढ़ जाती हैं। दयानन्द जीवन चरित्र लगभग सहस्रों पृष्ठों में शताधिक होने से यहाँ केवल सूक्ष्म व अधूरा ही प्रस्तुत है। यहाँ दयानन्द की उपलब्धियों के तीनों विभागों की चर्चा की जा रही है।

"स्वामी जी का स्वकथित जीवन चरित्र–सन् 1824 ई. से 1875 बचपन : वैराग्य : गृहत्याग व संन्यास

मेरा वास्तविक उद्देश्य : देश–सुधार व धर्म–प्रचार – हमसे बहुत लोग पूछते हैं कि हम कैसे जानें कि आप ब्राह्मण हैं। आप अपने इष्टमित्र भाई बन्धुओं के पत्र मँगा दें अथवा किसी की पहचान बता दें ऐसा कहते हैं, इसलिए मैं अपना वृत्तान्त कहता हूँ। गुजरात देश में दूसरे देशों की अपेक्षा मोह विशेष है। यदि मैं इष्ट मित्र तथा संबंधियों की पहचान दूँ या पत्र व्यवहार करूँ तो इससे मुझे बड़ी उपाधि होगी। जिन उपाधियों से मैं छूट गया हूँ, वही उपाधियाँ (कष्ट) मेरे पीछे लग जायेंगी। यही कारण है कि मैं पत्रादि मँगाने की चेष्टा नहीं करता।

पहले दिन से ही जो मैंने लोगों को अपने पिता का नाम और अपने कुल का निवास स्थान आदि नहीं बताया इसका कारण यही है कि मेरा कर्त्तव्य मुझको इस बात की आज्ञा नहीं देता, क्योंकि यदि मेरा कोई संबंधी मेरे इस वृत्तान्त से परिचित हो जाता तो वह अवश्य मुझे खोजने का प्रयत्न करता और इस प्रकार उनसे दो–चार होने पर मेरा उनके साथ घर जाना आवश्यक हो जाता अर्थात् एक बार फिर मुझको रुपया धन हाथ में लेना पड़ता अर्थात् मैं गृहस्थ हो जाता। उनकी सेवाटहल भी मुझे योग्य होती और इस प्रकार उनके मोह में पड़कर सबके सुधार का वह उत्तम कार्य, जिसके लिए मैंने अपना सबकुछ

बलिदान कर देना अपना मन्तव्य समझा है अर्थात् देश का सुधार और धर्म का प्रचार, वह देश यथापूर्ण अन्धकार में पड़ा रह जाता।

मेरा जन्म मोरवी (गुजरात) के एक समृद्ध औदीच्य ब्राह्मण के घर सं. 1881 में – संवत् 1881 विक्रमी, ध्रांग्ध्रा करके गुजरात देश में एक राज्यस्थान है। उसकी सीमा पर मच्छोकाहटा नदी के तट पर एक मोरवी नगर है। वहाँ संवत् 1881 वि. तदनुसार सन् 1824 में मेरा जन्म हुआ। मैं औदीच्य ब्राह्मण हूँ यद्यपि औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी हैं परन्तु मैंने शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा था।

पाँच वर्ष की अवस्था से अक्षर–अभ्यास, कुलधर्म, रीति–नीति तथा मंत्र–श्लोकादि की शिक्षा – मैंने पाँच वर्ष की अवस्था होने से पूर्व ही देवनागरी अक्षर पढ़ने का आरम्भ कर दिया था और तब से ही मेरे माता–पितादि वृद्ध लोग मुझको कुल धर्म और उसकी रीति सिखलाने लगे और मुझको बड़े स्तोत्र, मंत्र, श्लोक तथा उनकी टीकाएँ कंठस्थ कराया करते थे।

आठवें वर्ष में यज्ञोपवीतधारण के पश्चात् गायत्री तथा सन्ध्योपासन विधि की शिक्षा तथा शैव संस्कार डालने का प्रयत्न – आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत हुआ और उसी समय से गायत्री, सन्ध्योपासन करने की विधि सिखलायी गई और प्रथम रुद्री और तत्पश्चात् यजुर्वेद की संहिता आरम्भ की गई। इनके पढ़ाने वाले पिता जी थे। इसी वर्ष मेरी एक बहन उत्पन्न हुई। मेरे घर के समस्त मनुष्य शैव अर्थात् शिव के भक्त थे। वे चाहते थे कि यह भी उसी मत में प्रवीण हो जाये। उन्होंने बाल्यपन से ही उसके संस्कार डाल दिये थे। मेरे पिता विशेष रूप से मुझे इस ओर लगाना चाहते थे और इस मत के प्रदोषादिक व्रत करने को चेताया करते थे और कहा करते थे कि तू पार्थिव पूजन अर्थात् मिट्टी का लिंग बनाकर पूजन किया कर।

दसवें वर्ष में शिव की पार्थिव पूजा, विधिवत् शिवरात्रि व्रत रखने के लिए पिता का आग्रह – दशवें वर्ष से मैं साधारणतया पार्थिवपूजन किया करता था। मेरे पिता चाहते थे कि मैं नियमानुकूल उपवास करके शिवरात्रि का व्रत धारण, कथाश्रवण और जागरण किया करूँ अर्थात् पक्का शैव बन जाऊँ, परन्तु मेरी माता जी विरोध किया करती थीं कि यह उपवास के योग्य नहीं। यह बात उन दिनों सदैव कलह रहने का मूल कारण हो गई। पिता जी कुछ–कुछ व्याकरण आदि का विषय और वेद का पाठमात्र भी मुझे पढ़ाया करते थे। मन्दिर और मेल–मिलाप में, जहाँ–तहाँ मुझ को ले जाया करते और कहा करते थे कि शिव की उपासना सबसे श्रेष्ठ है। इसी खींचतान में मेरी अवस्था 14 वर्ष की हो गई।

14 वें वर्ष में यजुर्वेद कंठस्थ, शिवरात्रि का ऐतिहासिक व्रत– 14 वर्ष की अवस्था तक मैंने यजुर्वेद की संहिता कण्ठस्थ कर ली और कुछ वेदों का पाठ भी पूरा हो गया था और शब्दरूपावली आदिक छोटे–छोटे व्याकरण के ग्रन्थ भी पढ़ लिये थे। जहाँ–जहाँ शिवपुराणादिक की कथा होती थी वहाँ पिता जी मुझको पास बिठलाकर सुनाया करते थे। हमारे घर में साहूकारी अर्थात् लेन–देन का व्यवसाय होता था, भिक्षा की जीविका नहीं थी। जमींदारी भी थी जिससे अच्छी प्रकार घर के कामकाज चलते थे। पीढ़ियों से जमींदारी का पद बराबर चला आता था जो इस देश की तहसीलदारी के तुल्य है क्योंकि उसका काम भूमिकर की वसूली (प्राप्ति) थी और कई सरकारी सिपाही मिले हुए थे।

मेरे पिता ने इस वर्ष मुझे शिवरात्रि का व्रत करने की आज्ञा दी परन्तु मैं उद्यत न हुआ तब मुझे कथा सुनाई गई। वह कथा मेरे जी को बहुत ही मीठी लगी। तब मैंने उपवास करने का निश्चय कर लिया यद्यपि मेरी माता मुझे कहती थी कि तू उपवास मत कर क्योंकि मुझको सवेरे ही भूख लगती थी। इस कारण माता मेरी निरोगिता की दृष्टि से निषेध किया करती थीं कि यह प्रातःकाल ही भोजन कर लेता है इससे व्रत कभी नहीं हो सकेगा। पिता हठ करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिए क्योंकि कुल की रीति है। इस पर अत्यन्त आग्रह करके अन्त में उसके आरम्भ करने की कठोर आज्ञा दी और मेरी माता के कथन पर कुछ विचार न किया।

जब वह बड़ी विपत्ति और भूखे रहने का दिन, जिसको शिवरात्रि कहते हैं, आया जो माघ बदी त्रयोदशी के अगले दिन काठियावाड़ में मनाया जाता है। मेरे पिता ने त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुनाकर शिवरात्रि के व्रत का निश्चय करा दिया था। यद्यपि माता ने निषेध किया था कि इससे व्रती नहीं रहा जायगा तथापि पिताजी ने व्रत का आरम्भ करा ही दिया। जब चतुर्दशी की शाम हुई उससे पहले ही मुझे समझाया गया था कि इसी रात को मुझे पूजा के नियम भी सिखाये जायेंगे और शिवमंदिर में जागरण में सम्मिलित होना पड़ेगा। मेरे नगर के बाहर एक बड़ा शिवालय है। वहाँ शिवरात्रि के कारण बहुत लोग रात के समय जाते आते रहते हैं और पूजा–अर्चना किया करते हैं। मेरे पिता, मैं और बहुत से लोग वहाँ एकत्रित थे। पहले पहर की पूजा पूरी हुई और इसी प्रकार दूसरे पहर की भी। 12 बजे के पश्चात् लोग जहाँ के तहाँ मारे ऊँघ के झूमने लगे और धीरे–धीरे सब लेट गये। मैं उपवास निष्फल न हो इस भय से न सोया था और सुन भी रखा था कि सोने से शिवरात्रि का फल प्राप्त नहीं होता। इसलिए आँखों पर जल के छींटे मारकर जागता रहा। परन्तु मेरे

पिता का भाग्य मुझ से नीचे दर्जे का था। वह सबसे पहला मनुष्य था जो थकान आदि का कष्ट सहन न कर सका और सो गया और जागरण करने के लिए मुझको अकेला छोड़ दिया और पुजारी लोग भी बाहर जाकर लेट गये।

चूहे की करतूत और पार्थिव पूजा में अविश्वास के अंकुर, मूर्ति पूजा में अविश्वास – इतने में ऐसा चमत्कार हुआ कि मन्दिर के बिल में से एक ऊन्दर (चूहा) बाहर निकलकर पिंडी के चारों ओर फिरने लगा और पिंडी के ऊपर चढ़कर अक्षतादि भी खाने लगा। मैं तो जागता ही था इसलिए मैंने सब खेल देखा।

इस समय मेरे चित्त में भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होकर प्रश्न उठने लगे। तब मैंने अपने मन में कहा और यह शंका उठाई कि जिसकी हमने कथा सुनी थी क्या यह वही महादेव है ? या वह कोई और है, क्योंकि वह तो मनुष्य के समान एक देवता है जिसके विकराल गण, पाशुपतास्त्र, वृषभवाहन, त्रिशूल हाथ में जो डमरू बजाता, कैलाश का पति है, इत्यादि प्रकार का महादेव जो कथा में सुना था क्या संभव है कि यह पारब्रह्म हो ? जिसके सिर पर चूहे दौड़े–दौड़े फिरते हैं। चूहे की यह लीला देख मेरी बालबुद्धि को ऐसा प्रतीत हुआ कि जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े–बड़े प्रचण्ड दैत्यों को मारता है क्या उसे एक साधारण चूहे को भगा देने की भी शक्ति नहीं।

पिता से निःशंक प्रश्नोत्तर तथा असन्तोष – ऐसे बहुत से तर्क मन में उठे। मैं इन विचारों को बहुत समय तक न रोक सका। इसलिए मैंने अपने पिता को जगाया और बिना किसी प्रकार की झिझक के उनसे यह प्रार्थना की कि मेरे भ्रमों को सच्चे उपदेशों से दूर कीजिए और बताइये कि– यह भयानक मूर्ति महादेव की, जो इस मन्दिर में है क्या उसी महादेव के सदृश है जिसे पुराणों में पारब्रह्म कहते हैं अथवा यह कोई और वस्तु है ?

यह सुनकर पहले तो मेरे पिता ने क्रोध से लाल होकर मुझसे कहा कि तू यह बात क्यों पूछता है और यह प्रश्न क्यों करता है ? तब मैंने उत्तर दिया कि इस मूर्ति के शरीर पर चूहे दौड़े फिरते हैं और इसको खराब तथा भ्रष्ट करते हैं। इसके स्थान पर कथा का महादेव तो चेतन है, वह अपने ऊपर चूहा क्यों चढ़ने देगा और यह शिर तक नहीं हिलाता और न अपने आपको बचाता है। मैं इससे उस सर्वशक्तिमान और चेतन परमेश्वर के विचार प्राप्त करना असंभव समझता हूँ; इसलिए यह बात आपसे पूछता हूँ। तब पिताजी ने बड़े यत्न के साथ मुझको इस प्रकार समझाया 'कि कैलाश पर्वत पर जो महादेव रहते हैं उनकी मूर्ति

बना, आवाहन कर पूजन किया करते हैं, अब कलियुग में उसका साक्षात् दर्शन नहीं होता इसलिए पाषाणादि की मूर्ति बनाकर, उसमें उन महादेव की भावना रखकर, पूजन करने से कैलाश का महादेव ऐसा प्रसन्न हो जाता है कि मानो वह स्वयं ही इस स्थान पर विद्यमान हो और उसी की पूजा होती हो। तेरी तर्कबुद्धि बहुत बड़ी है, यह तो केवल देवता की मूर्ति है।

'शिव को प्रत्यक्ष देखकर ही उसकी पूजा करूँगा' निश्चय – इस उपदेश से मुझको कुछ भी शान्ति न मिली। प्रत्युत मेरे मन में और भ्रम हो गया कि इसमें कुछ गड़बड़ अवश्य है। मुझे उनकी बातों में कुछ कपट और लाग–लपेट प्रतीत हुई। तब मैंने संकल्प किया कि जब मैं उसको प्रत्यक्ष देखूँगा तभी पूजा करूँगा अन्यथा नहीं। थोड़े समय पश्चात् मुझे बालक होने के कारण भूख और थकान से दुर्बलता प्रतीत होने लगी इसलिए पिताजी से पूछा कि अब मैं घर जाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि सिपाही को साथ लेकर चला जा परन्तु भोजन कदाचित् न करना। मैंने घर जाकर माता से कहा कि मुझे भूख लगी है। माताजी ने कहा कि मैं तुझे पहले ही से कहती थी कि तुझ से उपवास न होगा परन्तु तूने तो हठ ही किया।

सब ओर से ध्यान हटाकर विद्याध्ययन में व्यस्त–फिर माता जी ने मुझे कुछ मिठाई खाने को दी और कहा कि तू पिताजी के पास मत जाना और न उनसे कुछ कहना अन्यथा मार खायेगा। भोजन खाकर मैं एक बजे के पश्चात् सो गया और दूसरे दिन आठ बजे उठा। पिताजी ने प्रातःकाल आकर रात्रि के भोजन का वृत्तांत सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर कहा तुमने बहुत बुरा काम किया। तब मैंने पिताजी से कहा कि वह मूर्ति कथा का महादेव नहीं था, मैं उसकी पूजा क्यों करूँ ? मेरे मन में (इस रात की घटना से) वास्तव में (मूर्ति पर) श्रद्धा नहीं रही थी। मैंने चाचा जी से कहा कि अध्ययन के कारण मुझसे उपवास और पूजा नहीं होती सो उन्होंने और माताजी ने मेरे पिताजी को समझा बुझाकर शान्त कर दिया कि अच्छी बात है पढ़ने दो। तब मैंने अपने अध्ययन में बहुत उन्नति की। निघण्टु, निरुक्त, पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों के पढ़ने की इच्छा करके एक पंडित जी से उन्हें आरम्भ किया और पढ़ता रहा और साथ ही कर्मकाण्ड विषय की दूसरी पुस्तकें भी। अब सारा समय विद्याध्ययन में ही व्यतीत होता था।

भाई बहिन – मुझसे छोटी एक बहन फिर उससे छोटा एक भाई फिर एक और भाई हुए अर्थात् दो भाई फिर एक बहन और हुए थे। तब तक मेरी 16 वर्ष की अवस्था हुई थी। (इससे प्रकट है कि स्वामी जी सबसे बड़े थे और उनके ज्ञानानुसार कुल तीन भाई और दो बहनें थीं)।

पहली मृत्यु (बहिन की) देखकर वैराग्य का उदय, सब रोते रहे – मृत्यु से बचने की सोचने में मेरी आँखें सूखी रहीं। मेरी सोलह वर्ष की अवस्था के पश्चात्, जो मेरी 14 वर्ष की बहन थी उसको विशूचिका हुई। जिसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि एक रात जबकि हम एक मित्र के घर नृत्य (सम्भवतः कत्थकों का नाच होगा अथवा भाँड़ों का क्योंकि काठियाबाड़ में पंजाब और भारतवर्ष के समान वेश्याओं के नाच की प्रथा नहीं है) के जलसे में गये हुए थे। तब अकस्मात् आकर भृत्य ने सूचना दी कि उसको विशूचिका हो गई है। हम सब तत्काल वहाँ से आये; वैद्य बुलाये गये; औषधि की, परन्तु कुछ लाभ न हुआ। चार घंटे में उसका शरीर छूट गया। मैं उसके बिछौने के पास दीवार का आश्रय लेकर खड़ा रहा। जन्म से लेकर इस समय तक मैंने पहली बार मनुष्य को मरते देखा था। इससे मेरे हृदय को परले दरजे का धक्का लगा और मुझे बहुत डर लगा। मारे भय के सोचने लगा कि सारे मनुष्य इसी प्रकार मरेंगे और ऐसे ही मैं भी मर जाऊँगा। सोच विचार में पड़ गया कि जितने जीव संसार में हैं उनमें से एक भी न बचेगा। इससे कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे जन्म–मरण रूपी दुःख से यह जीव छूटे और मुक्त हो अर्थात् उस समय मेरे चित्त में वैराग्य की जड़ जम गई।

सब लोग रोते थे परन्तु मेरी छाती में डर घुसने के कारण एक आँसू भी आँख से न गिरा। पिता जी ने मुझे पाषाणहृदय कहा। मेरी माता, जो मुझे बहुत प्यार करती थी, उसने भी ऐसा ही कहा। मुझे सोने के लिए कहा गया परन्तु मुझे शान्ति से निद्रा न आई। भला ऐसी अशान्ति में निद्रा कहाँ ? बार–बार चौंक पड़ता था और मन में नाना प्रकार की तरंगें उठती थीं। हमारे दश की प्रथा के अनुसार मेरी बहन के रोने के पांच–चार अवसर बीत गये परन्तु मैं तो रोया नहीं। इस कारण बहुत लोग मुझे धिक्कारने लगे।

जिस समय सारा परिवार रो रहा था, मैं मूर्ति की भाँति चुपचाप अलग खड़ा था। उस समय मुझको बहुत से मनुष्यों के जीवन, जो संसार में अनित्य हैं, नाना प्रकार के संकल्प–विकल्प अतीव शोक के साथ उत्पन्न हुए और जान पड़ा कि संसार में कोई भी ऐसा नहीं जो निर्दयी मृत्यु के पंजे से बच जाये। निश्चय एक दिन उस मृत्यु का सामना करना पड़ेगा। उस समय मृत्यु के दुःख निवारणार्थ औषधि कहाँ ढूँढता फिरूँगा ? और मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त किस पर भरोसा करूँगा ? कौन सा उपाय इसके लिए उचित है। सारांश यह है कि उसी समय पूर्ण विचारकर लिया कि जिस प्रकार हो सके मुक्ति प्राप्त करूँ जिसके द्वारा मृत्यु समय के समस्त दुःखों से बचूँ।

अन्त को यह हुआ कि इस संसार से मेरा जी एकाएक हट गया और उत्तम विचार करने में संनद्ध हो गया। परन्तु यह विचार अपने मन में रखा, किसी से कुछ कहा नहीं और यथापूर्व अध्ययनादि में लगा रहा।

चाचा की मृत्यु से वैराग्य की चोट और गहरी, विवाह टलवाने के प्रयत्न – जब मेरी अवस्था 19 वर्ष की हुई तब जो मुझसे अतिप्रेम करने वाले धर्मात्मा विद्वान् मेरे चाचा थे उनको विशूचिका ने आ घेरा। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देखने लगे, मैं भी पास ही बैठा हुआ था। मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों से आँसू बहने लगे, मुझे भी उस समय बहुत रोना आया। यहाँ तक हुआ कि मेरी आँखें फूल गईं। इतना रोना मुझे पहले कभी न आया था। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा जी के सदृश एक दिन मरने वाला हूँ।

इसके पश्चात् मुझे ऐसा वैराग्य हुआ कि संसार कुछ भी नहीं किन्तु यह बात माता–पिता जी से तो नहीं कही किन्तु अपने मित्रों और विद्वान् पंडितों को पूछने लगा कि अमर होने का कोई उपाय मुझे बताओ। उन्होंने योगाभ्यास करने के लिए कहा। तब मेरे जी में आया कि अब घर छोड़कर कही चला जाऊँ। तब मैंने अपने मित्रों से कहा कि मेरा मन गृहाश्रम में नहीं लगता क्योंकि मुझे निश्चय हो गया है कि इस असार संसार में कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं जिसके लिए जीने की इच्छा की जाये या किसी पर मन लगाया जाये। यह बात मेरे मित्रों ने मेरे माता–पिता से कह दी। उन्होंने विचार किया कि इसका विवाह शीघ्र कर देना ठीक है। जब मुझे माता–पिता का यह विचार तथा निश्चय विदित हुआ कि मेरी 20 वर्ष की अवस्था होते ही विवाह संस्कार सम्पन्न हो जायेगा तो मैंने अपने मित्रों से सिफारिश करवा कर यहाँ तक प्रयत्न किया कि मेरे पिता ने उस वर्ष मेरा विवाह स्थगित कर दिया।

बीसवें वर्ष के पूरे होते ही मैंने पिताजी से यह कहना आरम्भ कर दिया कि मुझे काशी भेज दीजिए, जहाँ मैं व्याकरण, ज्योतिष और वैद्यक ग्रन्थ पढ़ आऊँ। तब माता–पिता और कुटुम्ब के लोगों ने उत्तर में कहा कि हम काशी को कभी न भेजेंगे। जो कुछ पढ़ना हो यहीं पढ़ो और जितना पढ़ चुके हो वह क्या थोड़ा है। थोड़े दिन विवाह होने को शेष है अर्थात् तेरा अगले वर्ष विवाह होगा क्योंकि लड़की वाला नहीं मानता और हमको अधिक पढ़ाकर क्या करना है साथ ही माता जी ने भी यह कहा कि मैं भली–भाँति जानती हूँ कि विशेष पढ़े–लिखे लोग विवाह करना अनुचित समझते हैं और काशी चले जाने से विवाह में विघ्न

होगा। परन्तु जब मैंने अपने पिता से दो तीन बार आग्रह किया कि आप मुझको अवश्य काशी भेज देवें और जब तक मैं वहाँ से पूर्ण पंडित और अच्छा विद्वान् होकर न आऊँ तब तक विवाह होना ठीक नहीं तो इस मेरे बार–बार के अनुरोध पर माता भी विपरीत हो गईं कि हम कहीं नहीं भेजते और अब शीघ्र विवाह करेंगे। तब मैंने चाहा कि अब सामने रहना अच्छा नहीं, चुप हो गया क्योंकि देखा कि विशेष आग्रह से काम बिगड़ता है और कार्य सिद्ध नहीं होता। चूँकि घर में मेरा जी नहीं लगता था यह देख पिता जी ने जमींदारी का काम करने के लिए मुझे कहा परन्तु मैंने उसे स्वीकार न किया।

कुछ दिन पीछे मैंने कहा कि आपने काशी जाने से रोका, इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं परन्तु यहाँ से तीन कोस पर अमुक ग्राम में जो बड़े वृद्ध अपनी जाति के भारी विद्वान् रहते हैं और वहाँ हमारे घर की जमींदारी भी है, उनके पास जाकर पढ़ा करूँ ? इतना तो मान लीजिये। इस बात को माँ–बाप ने स्वीकार कर लिया और मैं प्रशंसित पंडित के पास कुछ समय तक अच्छी प्रकार पढ़ता रहा।

परन्तु दैव संयोग से एक बार बातचीत के समय उस पंडित के सामने मुझे इस बात को स्वीकार करना पड़ा कि मुझको विवाह से ऐसी प्रबल घृणा है जो मेरे मन से किसी प्रकार दूर नहीं हो सकती। जब पिताजी को यह सूचना मिली उन्होंने वहाँ से मुझे उसी क्षण बुला लिया और विवाह की तैयारी आरम्भ कर दी। मैं घर आकर क्या देखता हूँ कि अनेक प्रकार के विवाह के सामान तैयार हो रहे हैं। इधर मेरी अवस्था भी 21 वर्ष की पूरी हो गई थी। मेरे मन में तो घर छोड़कर निकल जाने की थी परन्तु ऐसी सम्मति कोई न देता था। पर जो देता था वह लग्न करने की सम्मति देता था। उस समय मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना लोग कदाचित् नहीं छोड़ेगे और न अब मुझ को भविष्य में विद्याप्राप्ति की आज्ञा मिलेगी और न माता–पिता मुझको अविवाहित रखना स्वीकार करेंगे। तब मैंने अपने मन में सोच–विचार कर यह निश्चय ठाना कि अब वह काम करना चाहिये जिससे जन्म भर को इस विवाह के बखेड़े से बचूँ। यह निश्चय मैंने किसी पर प्रकट न किया। एक मास में विवाह की तैयारी भी हो गई। प्रत्येक प्रकार की तैयारी देखकर मैं एक दिन सायंकाल संवत् 1903 में बिना किसी दूसरे को सूचित किये गुपचुप घर से इस निश्चय से कि फिर कभी लौटकर न आऊँगा, चल निकला।

विवाह की तैयारी और घर से पलायन – पहली रात्रि तो मैंने अपने ग्राम से आठ मील के अन्तर पर एक ग्राम के आस–पास व्यतीत की। दूसरे दिन एक पहर रहे रात्रि को उठकर

20 कोस अर्थात् 30 मील पर सायंकाल से पहले पहुँच गया और एक ग्राम में हनुमान के मन्दिर में जा रहा। मार्ग में इस चाल से गया कि प्रसिद्ध मार्ग और ऐसे ग्राम बचाता गया जिनमें कोई पहचान न सके। यह सावधानी मेरे बड़े काम आई क्योंकि घर से निकलकर तीसरे दिन मैंने एक राजपुरुष से यह सुना कि अमुक का लड़का घर छोड़कर चला गया है उसको खोजने के लिए सवार तथा पैदल मनुष्य यहाँ तक आये थे। यह सुनकर मैं आगे को चल पड़ा।

ठग वैरागी द्वारा ठगे गये– वहाँ एक और दुर्घटना घटित हुई अर्थात् जो मेरे पास थोड़े से रूपये और अँगूठी आदि आभूषण थे वे एक भिक्षुकों की टोली ने ठग लिये और कहा कि तुमको पक्का वैराग्य तब होगा कि जब अपने पास की सब वस्तुएँ पुण्य कर दोगे। उनके कहने से मैंने सब दे दिया। इसका वृत्तान्त इस प्रकार है कि मार्ग में एक वैरागी ने एक मूर्त्ति जमा रखी थी। हाथ में सोने की अंगूठियाँ डाल कर वैराग्य की सिद्धि कैसे हो सकती है। इस प्रकार (कहकर) मुझे चिढ़ाकर मेरी ओर से वे तीनों अंगूठियाँ उसने मूर्ति के समर्पण करा ली।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी शुद्ध चैतन्य बने, दूसरे नकली वैरागी से बचे – तत्पश्चात् लाला भक्त के स्थान में जो सायले ग्राम में है। वहाँ बहुत साधुओं को सुनकर चला गया। उस स्थान पर एक ब्रह्मचारी मिला, उसने कहा कि तुम नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाओ और उसने मुझे ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी और 'शुद्ध चैतन्य' ब्रह्मचारी मेरा नाम रखा और मेरे पहले वस्त्र उतरवाकर अपने समान मुझे कषायवस्त्र कराकर गेरुआ कुर्ता पहना दिया और हाथ में तूँबा दे दिया और मैं उनके थोक (समूह) में मिल गया और योगसाधना करने लगा। रात को जब एक वृक्ष के नीचे बैठा था ऊपर पक्षियों ने घू–घू करना आरम्भ किया। सुनकर मुझे भूत का भय लगा और मैं पीछे मठ में आ गया। इस नये वेष में वहाँ से चलकर 'कोट कॉंगड़ा' नामक एक छोटे से कस्बे में (जहाँ छोटा–सा राज्य भी है), जो अहमदाबाद, गुजरात के समीप है, आया। वहाँ बहुत से वैरागी थे और कहीं की रानी भी उनके फन्दे में फँसी हुई थी, उन्होंने मेरे वेष को देखकर ठट्ठा करना प्रारम्भ किया और मुझे अपने में फाँसने लगे परन्तु मैं उनके फन्दे से छूटकर भागा। रेशमी किनारे की धोतियाँ तुम्हीं रखो परन्तु मैं भागने का उपाय सोचता था और अपने निश्चय में वैसा ही दृढ़ था जैसे कि वे अपने यत्न में संलग्न थे। मुझको यही चिन्ता थी और इसी घात में था कि कोई अवसर भागने का हाथ लगे।

सिद्धपुर के मेले में, अपनी भूल से पिता की कैद में – कोट कॉंगड़े में मैंने सुना कि सिद्धपुर में कार्तिक का मेला होता है वहाँ कोई तो योगी अपने को मिलेगा और अमर होने का मार्ग

बता देगा इस आशा से मैंने सिद्धपुर की बाट पकड़ी। मार्ग में मुझे थोड़ी दूर पर पास के एक ग्राम का रहने वाला वैरागी मिला जो हमारे कुल से भली–भाँति परिचित था। उसको देखकर जैसे कि मेरा हृदय उमड़ कर नैत्र भर आये वैसी ही उसकी दशा देखने में आई। जब उसने मेरा सम्पूर्ण वृत्तान्त पास के धनादि का ठगा जाना और साहेला (सायेला) ग्राम के ब्रह्मचारी के पास मुंडना सुना और गेरुआ कुर्ता देखा तो प्रथम कुछ हँसा, पीछे उसने मुझको अतीव खेद के साथ घर से निकल आने पर धिक्कारा और पूछा कि क्या घर छोड़ दिया ? मैंने उसकी पहली भेंट के कारण स्पष्ट कह दिया कि हाँ, घर छोड़ दिया और कार्तिक के मेले पर सिद्धपुर (सिद्धपुर स्वयं रेलवे स्टेशन है और वहाँ सरस्वती नदी के तट पर कार्तिक का मेला होता है और औदीच्य ब्राह्मणों के लड़कों का मुंडन भी वहाँ होता है) जाऊँगा यह कह कर मैं वहाँ से चल दिया और सिद्धपुर में आकर नीलकंठ महादेव के स्थान में ठहरा कि जहाँ पर दण्डी स्वामी और बहुत ब्रह्मचारी पहले से ठहरे थे, उनका सत्संग और जो कोई महात्मा विद्वान् पंडित मेले में मिला उससे मेल–मिलाप किया, वार्ता की और दर्शनों से लाभ उठाया। इस अन्तर में उस पड़ौसी वैरागी ने जो कोट काँगड़े में मुझको मिला था जाकर मेरे पिता के पास एक पत्र भेजा कि तुम्हारा लड़का कषाय वस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी बना हुआ यहाँ मुझको मिलकर कार्तिकी मेले में सिद्धपुर को गया है।

ऐसा सुनकर तत्काल मेरा पिता चार सिपाहियों साहित सिद्धपुर को आया। मेले में मेरा पता लगाना आरम्भ किया। एक दिन उस शिवालय में जहाँ मैं उतरा था। प्रातःकाल एकाएक मेरे बाप और चार सिपाही मेरे सम्मुख आ खड़े हुए। उस समय वह ऐसे क्रोध में भरे हुए थे कि मेरी आँख उनकी ओर नहीं होती थी। जो उनके जी में आया सो कहा और मुझे धिक्कारा कि तूने सदैव को हमारे कुल को दूषित किया और तू हमारे कुल को कलंक लगाने वाला उत्पन्न हुआ।

मेरे मन में आतंक बैठ गया कि कदाचित् मेरी कुछ दुर्दशा करेंगे। इस डर से मैंने उठकर उनके पाँव पकड़ लिये। मेरा पिता मुझ पर बहुत क्रुद्ध हुआ।

पिता से डरकर असत्य भाषण, परन्तु ध्यान फिर भी भागने में रहा– मैंने प्रार्थना की कि मैं धूर्त लोगों के बहकावे में आकर इस ओर निकल आया और अत्यन्त दुःख पाया। आप शान्त हों, मेरे अपराधों को क्षमा कीजिये। यहाँ से मैं घर आने को ही था, अच्छा हुआ कि आप आ गये हैं। आपके साथ ही चलने में प्रसन्न हूँ। इस पर भी उनका कोपाग्नि शान्त न हुआ और झपट कर मेरे कुर्त्ते की धज्जियाँ उड़ा दीं और तूँबा छीनकर बड़े जोर से धरती पर दे मारा और सैकड़ों प्रकार से मुझे दुर्वचन कहे और दूसरे नवीन श्वेत वस्त्र धारण

कराकर जहाँ ठहरे थे वहाँ मुझको ले गये और वहाँ भी बहुत कठिन–कठिन बातें कहकर बोले कि तू अपनी माता की हत्या करना चाहता है। मैंने कहा कि अब मैं चलूंगा तो भी मेरे साथ सिपाही कर दिये और उन्हें कह दिया कि कहीं क्षण भर भी इस निर्मोही को पृथक् मत छोड़ो और इस पर रात्रि को भी पहरा जो देता था वह लग्न करने की सम्मति देता था। उस समय मैंने निश्चित जाना कि अब विवाह किये बिना लोग कदाचित् नहीं छोड़ेगें और न अब मुझको भविष्य में विद्याप्राप्ति की आज्ञा मिलेगी और न माता–पिता मुझको अविवाहित रखना स्वीकार करेंगे। तब मैंने अपने मन में सोच–विचार कर यह निश्चय ठाना कि अब

भागने का अवसर मिल गया, स्वजनों से अन्तिम भेंट – अब अन्धकार हुआ तब रात के सात बजे उस मन्दिर से नीचे उतरकर सड़क छोड़ किसी से पूछ वहाँ से दो कोस एक ग्राम था, वहाँ जाकर ठहरा और प्रातःकाल वहाँ से चला। इसी को अपने ग्राम के या घर के मनुष्यों की अन्तिम भेंट कहा जाये तो अनुपयुक्त नहीं होगा। इसके पश्चात् एक बार प्रयाग में मेरे ग्राम के कुछ लोग मुझको मिले थे परन्तु मैंने पहचान नहीं दी। उसके पश्चात् आज तक किसी से भेंट नहीं हुई।

नर्मदा तट तथा आबू पर्वत पर अनेक सच्चे योगियों से योग की शिक्षा

चाणोद कन्याली में प्रथम बार सच्चे दीक्षित विद्वानों से अध्ययन – बड़ौदा में एक बनारस की रहने वाली बाई से मैंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े–बड़े विद्वानों की एक सभा होने वाली है। यह सुनकर मैं तुरन्त उस स्थान को गया। पहुँचने पर एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेट हुई और उनसे अनेक प्रकार की शास्त्रविषयक बातें हुई अर्थात् उनसे भिन्न–भिन्न विद्या सम्बन्धी विषयों में बातचीत हुई। फिर उन्हीं से ज्ञात हुआ कि आजकल चाणोद कन्याली में बड़े उत्तम विद्वान् ब्रह्मचारियों और संन्यासियों की एक मंडली रहती है। यह सुनकर उस स्थान को गया जहाँ मेरी मानो प्रथम बार ही सच्चे दीक्षित विद्वानों और चिदाश्रम आदि स्वामी–संन्यासियों और कई एक ब्रह्मचारियों, पंडितों से भेंट हुई और अनेक विषयों पर परस्पर संलाप हुआ। पश्चात् मैं परमानन्द नामक परमहंस के पास पढ़ने लगा अर्थात् उनका शिष्य बन गया और उनके साथ रहकर कुछ महीनों में वेदान्तसार, आर्यहरिमेडीतोटक, आर्यहरिहरतोटक, वेदान्तपरिभाषा आदि और (दर्शन शास्त्र) फिलासफी की पुस्तकें अच्छी प्रकार पढ़ीं।

संन्यास लेने का प्रमुख कारण, पूर्णानन्द के शिष्य 'दयानन्द' बने – चूँकि मैं इस समय तक ब्रह्मचारी था इसलिए मुझको अपना खाना अपने हाथ से पकाना पड़ता था। जिसके कारण

मेरे अध्ययन में बड़ी बाधा पड़ती थी। इसी कारण इस बखेड़े से छूटने के लिए मैंने निश्चय किया कि यथाशक्ति प्रयत्न करके संन्यासाश्रम की चतुर्थ श्रेणी में प्रविष्ट हो जाऊँ। इसके अतिरिक्त मुझको यह भी था कि यदि मैं ब्रह्मचर्य्याश्रम में बना रहा तो किसी दिन अपने कुल की प्रसिद्धि के कारण घर वालों के हाथ पकड़ा जाऊँगा क्योंकि मेरा अभी तक वही नाम प्रसिद्ध है जो घर में था किन्तु जो संन्यासाश्रम ले लूंगा तो यावत्–अवस्था (जीवन भर के लिए) निश्चिन्त हो जाऊँगा।

एक दक्षिणी पंडित के द्वारा (जो मेरा बड़ा मित्र था) चिदाश्रम स्वामी से कहलाया कि आप उस ब्रह्मचारी को संन्यास की दीक्षा दे दीजिए, परन्तु उस महाराष्ट्र संन्यासी ने जो परम्–दीक्षित थे मुझको संन्यास देने से स्पष्ट इंकार कर दिया। इसलिए कि यह अभी नवयुवक है और कहा कि हम संन्यास नहीं देते, तथापित मेरा उत्साह भंग नहीं हुआ। लगभग डेढ़ मास तक नर्मदा तट पर रहा; इसके अनन्तर मेरी आयु के चौबीसवें वर्ष दो महीने के पीछे दक्षिणा से एक दंडी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आकर चाणोद ग्राम से कुछ कम कोस अथवा दो मील की दूरी जंगल–स्थित एक घर में ठहरे। उनकी प्रशंसा सुनकर परम मित्र पूर्वोक्त दक्षिणी पंडित मेरे साथ गये। वहाँ उन महात्माओं से ब्रह्मविद्या के कई विषयों में बातचीत हुई तो जान पड़ा कि ये दोनों इस विद्या में अत्यन्त प्रवीण हैं। संन्यासी जी का नाम पूर्णानन्द सरस्वती था। उनसे मैंने इच्छा पूर्ण करने के लिए सिफारिश करने को अपने मित्र की ओर संकेत किया और उन्होंने अच्छी प्रकार कहा कि महाराज! यह विद्यार्थी सुशील और ब्रह्मविद्या पढ़ने की अत्यन्त कामना रखता है परन्तु रोटी पानी के बखेड़ों के मारे इच्छानुसार विद्योपार्जन नहीं कर सकता, आप कृपा करके इसकी लालसा के अनुसार चौथे प्रकार का संन्यास दे दीजिये। यह सुनकर और मेरी नवयौवनावस्था देखकर उनका भी जी हटा परन्तु जब मेरे मित्र ने बहुत कुछ कहा सुना तब बोले ऐसा ही है तो किसी गुजराती संन्यासी से कहिये क्योंकि हम तो महाराष्ट्री हैं। तब उस मित्र ने कहा कि दक्षिणी स्वामी गौड़ों को भी संन्यास देते हैं जो पंच द्रविड़ों से बाहर हैं। यह ब्रह्मचारी तो गुर्जर अर्थात् गुजराती है जो पंच द्रविड़ों में है। इसमें क्या चिन्ता है। तब उन्होंने मान लिया और अति प्रसन्न हुए और मुझ को तीसरे दिन श्राद्धादि कराकर चौबीस वर्ष की अवस्था में संन्यास दे दण्ड ग्रहण कराया। और मेरा नाम दयानन्द सरस्वती रखा। उनकी आज्ञा लेकर मैंने दण्डस्थापन कर दिया क्योंकि उसके संबंध से बहुत कुछ कर्त्तव्य होता था कि जिससे पढ़ने में असुविधा होती थी। बस, संन्यास देने के कुछ काल पश्चात् स्वामी जी द्वारका की ओर चले गये और मैं कुछ समय तक चाणोद कन्याली में ठहरा रहा।

विभिन्न स्थानों पर गुरूओं द्वारा योगसाधन की क्रियात्मक शिक्षा– जब यह सुना कि व्यासाश्रम में योगानन्द नामक एक स्वामी रहते हैं, वे योगविद्या में अति निपुण हैं तो शीघ्र वहाँ पहुँचा और उनके पास योगविद्या पढ़ने लगा और उसके आरम्भ के सब ग्रन्थ अच्छी प्रकार पढ़कर और क्रिया सीखकर चित्तौड़ नगर को गया क्योंकि एक कृष्णाशास्त्री चितपावन दक्षिणी ब्राह्मण उसके आसपास में रहते थे। उनके पास जाकर कुछ व्याकरण का अभ्यास करके फिर चाणोद कन्याली में आकर ठहरा और राजगुरु से वेदों को सीखा और वहाँ कुछ समय तक निवास किया। **वहाँ कुछ दिन पीछे ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्द गिरि नामक दो योगियों से भेंट हुई। उनके साथ योग का साधन किया और हम तीनों मिलकर सदैव योगशास्त्र की चर्चा करते रहे। फिर वे दोनों योगी अहमदाबाद को चले गये और मुझको आज्ञा दे गये कि एक मास के पीछे तुम हमारे पास आना। हम तुमको उस स्थान पर योगसाधन के पूरे–पूरे तत्त्व और उसकी सब विधियाँ अच्छी प्रकार समझा देंगे। मैं वहाँ नदी के ऊपर दुग्धेश्वर महादेव के मन्दिर में उनसे जाकर मिला जहाँ उन्होंने योग विद्या के अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वों और उसके प्राप्त करने की विधि बताने की प्रतिज्ञा की थी। वहाँ उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की और अपने वचनानुसार मुझको निहाल कर दिया अर्थात् उन्हीं महात्मा योगियों के प्रभाव से मुझको पूर्ण योगविद्या और उसकी साधन क्रिया अच्छी प्रकार विदित हो गई। इसलिए मैं उनका अत्यन्त ही आभारी हूँ।** इसके पश्चात् मुझको विदित हुआ और सुना कि राजपूताने में आबू पर्वत की चोटियों पर बड़े–बड़े उत्तम योगिजन निवास करते हैं। इसलिए उनकी प्रशंसा सुन उस ओर चल दिया। वहाँ जाकर उनकी खोज करता हुआ अर्बुदा भवानी गिरि नामक चोटी पर और अन्य स्थानों पर योगिराजों से जा मिला। ये उन महात्माओं से अधिक ज्ञानी तथा विद्वान् थे। उनसे और भी विशेष योगसाधन के सूक्ष्म तत्त्वों को प्राप्त किया।

उत्तराखण्ड में पौने दो वर्ष तक विद्वानों तथा योगियों की खोज

संवत् 1911 तक इसी प्रकार भिन्न–भिन्न स्थानों में फिरकर महात्मा विद्वानों और योगिजनों से मिलकर आत्मिक और मानसिक शान्ति के उपाय तथा साधन प्राप्त करता रहा और विद्यार्थी बनकर जो मिलता था उससे विद्योपार्जन किया करता था। इसी प्रकार अनेक महात्माओं का सत्संग करता हुआ चलते तीस वर्ष की अवस्था में संवत् 1912 तदनुसार 11 अप्रैल हरिद्वार के कुम्भ के मेले की धूम सुनकर पहली बार वहाँ पहुँचा क्योंकि वहाँ पर श्रेष्ठ सुयोग्य योगी व तपस्वी प्रायः होते और परस्पर मिलते हैं जिनकी यह व्यवस्था किसी को विदित भी नहीं होती। मैं वहाँ आकर बहुत साधुओं और

संन्यासियों से मिला और जब तक मेला रहा, चंडी के पर्वत के जंगल में योगाभ्यास करता रहा और जब सब यात्री चले गये और मेला हो चुका तो वहाँ से ऋषिकेश को गया। वहाँ बड़े–बड़े महात्मा संन्यासियों और योगियों से योग की रीति सीखता और संत्संग करता रहा।

तत्पश्चात् कुछ दिनों तक अकेला ऋषिकेश में रहा। इसी समय एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मुझसे और आ मिले और हम सब के सब मिलकर स्थान टिहरी को चले गये।

टिहरी में पहली बार तन्त्रग्रन्थ दर्शन तथा उनसे घृणा – यह स्थान विद्या की वृद्धि के कारण साधुओं और राजपंडितों से पूर्ण और प्रसिद्ध था। इन पंडितों में से एक दिन एक पंडित ने अपने यहाँ मुझे निमन्त्रण दिया और नियत समय पर एक मनुष्य भी बुलाने को भेजा। उसके साथ मैं और ब्रह्मचारी दोनों उसके स्थान पर पहुँचे परन्तु मुझको वहाँ एक पंडित को मांस काटते और बनाते देखकर अत्यन्त घृणा आई। आगे जाकर बहुत से पंडितों को मांस और अस्थियों के ढेर तथा पशुओं के भुने हुए सिरों पर काम करते देखा। इतने में ही गृहस्वामी ने प्रसन्नतापूर्वक अत्यन्त सौहार्द से हमसे कहा कि भीतर चले आइये। मैंने कहा कि आप अपना काम किये जाइये, मेरे लिए कुछ कष्ट न कीजिये। यह कहकर झट वहाँ से निकल उल्टे पांव अपने स्थान का मार्ग लिया। थोड़े समय पश्चात् वही मांसभक्षी पंडित मेरे पास आया और मुझसे निमन्त्रण में चलने को कहा और साथ ही यह भी कहा कि यह मांसादि उत्तम भोजन केवल आप ही के लिए बनाये गये हैं। मैंने उससे स्पष्ट कह दिया कि यह सब वृथा और निष्फल हैं क्योंकि आप मांसभक्षी हैं। मेरे योग्य तो केवल फलादि हैं मांस खाना तो दूर रहा मुझे तो उसके देखने से ही रोग हो जाता है। यदि आपको मेरा न्यौता करना ही है तो कुछ अन्न और फलादि वस्तु भिजवा दीजिये, मेरा ब्रह्मचारी यहाँ भोजन बना लेगा। इन सब बातों को उक्त पंडित स्वीकृत कर और लज्जित होकर अपने घर लौट गया।

तत्पश्चात् मैं कुछ दिन तक स्थान टिहरी में रहा और उन्हीं पंडित जी से कुछ पुस्तकों और ग्रन्थों का वृत्तान्त, जिन्हें मैं देखना चाहता था, पूछता रहा और पता लगाता रहा कि वे ग्रन्थ इस नगर में कहाँ मिल सकते हैं। यह सुनकर पंडित जी ने संस्कृत व्याकरण, कोश जो बड़े–बड़े कवियों के बनाये हुए थे, ज्योतिष और तन्त्रादि पुस्तकों का नाम लिया। इनमें से तन्त्र की पुस्तकें मेरी देखी नहीं थीं; इसलिए उनसे मांगी और उन्होंने शीघ्र थोड़ी सी पुस्तकें इस प्रकार की ला दीं। उनके खोलते ही मेरी दृष्टि ऐसी अत्यन्त

अश्लील बातों, झूठे भाष्यों और बेहूदा वाक्यों पर पड़ी जिनको देखकर मेरा जी कांपने लगा। उसमें लिखा था कि माँ, बहन, बेटी, चूढ़ी, चमारी आदि से भोग करने और उन्हें नग्न खड़ा करके पूजने और इसी प्रकार मद्य, मांस, मछली, मुद्रा, मैथुन और विविध जन्तुओं का मांस खाने और ब्राह्मण से लेकर चंडाल पर्यन्त एक साथ भोजन करने इत्यादि बातों के लिए आज्ञा है और यह भी स्पष्ट लिखा था कि इन्हीं पांच शब्दों अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन आदि साधनों से जिनका नाम मकार से आरम्भ होता है, मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

केदारघाट आदि में पंडितों व ब्राह्मणों से भेंट – तत्पश्चात् मैं वहाँ से श्रीनगर को चल पड़ा। यहाँ मैंने केदारघाट पर एक मंदिर में निवास किया। यहाँ के पंडितों से बातचीत के समय जब कभी वादानुवाद का अवसर होता तो उनको उन्हीं तन्त्रों से हरा देता था। इस स्थान पर एक गंगागिरि नामक साधु से भेंट हुई और विदित हो गया कि यह एक अच्छा विद्वान् है। थोड़े दिन पश्चात् मेरी उसकी मित्रता भी हो गई। कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक मेरा उसका साथ रहा योगविद्या और अन्य उत्तमोत्तम विषयों पर आपस में बातचीत होती रही और प्रतिदिन के तर्क–वितर्क से यह बात सिद्ध हो गई कि हम दोनों साथ रहने योग्य हैं। मुझे तो उसकी संगत ऐसी अच्छी लगी कि दो मास से अधिक उसके साथ रहा।

केदारघाट से रुद्रप्रयाग को प्रस्थान – तत्पश्चात् पतझड़ के आरम्भ में अपने साथियों अर्थात् ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं सहित केदारनाथघाट से दूसरे स्थानों को चला और रुद्रप्रयाग आदि स्थानों में होता हुआ अगस्त्यमुनि की समाधि पर पहुँचा।

विकट पर्वत शृंगों की यात्रा व पंडितों व ब्राह्मणों की स्मरण रखने योग्य बातों का अध्ययन– आगे चलकर उत्तर की ओर एक पर्वत पर–जो कि शिवपुरी नाम से प्रसिद्ध है, गया। यहाँ शीत ऋतु के चार मास व्यतीत किये फिर ब्रह्मचारी और दोनों साधुओं से पृथक् होकर अकेला और बेखटक मैं केदारघाट को लौट गया। फिर गुप्तकाशी में पहुँचा–यहाँ बहुत कम ठकरा अर्थात् गौरीकुण्ड और भीम गुफा होता हुआ त्रियुगीनारायण के मन्दिर पर पहुँचा परन्तु थोड़े ही दिनों में केदारघाट को, जहाँ का निवास मुझको अत्यन्त प्रिय था, लौट आया और वहाँ निवास किया और कुछ ब्राह्मण पुजारियों और केदारघाट के पंडों के साथ तब तक निवास किया जब तक कि मेरे पहले साथी अर्थात् ब्रह्मचारी और दोनों साधु भी लौटकर वहाँ न आ गये। वहाँ के पंडितों और ब्राह्मणों के कार्यों को मैं सदा ध्यानपूर्वक देखता और स्मरणार्थ उनकी स्मरण रखने योग्य बातों का ध्यान करता रहता था।

पहाड़ों में योगी नहीं मिले – जब मुझे उनके वृतान्त का इच्छानुसार परिचय प्राप्त हो गया तो मेरे मन में आसपास के पर्वतों के भ्रमण करने की इच्छा उत्पन्न हुई जो सदा

हिमाच्छादित रहते हैं कि देखूँ और उन महात्माओं के दर्शन करूँ जिनका समाचार सुनता चला आता था किन्तु कभी भेंट नहीं हुई। अतः मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी क्यों न हो इस बात की अवश्य खोज करनी चाहिये कि वे महात्मा लोग, जैसा कि प्रसिद्ध है, वहाँ रहते हैं अथवा नहीं। परन्तु पर्वतीय यात्रा की भयानक कठिनाईयों और शीतकाल की प्रबलता के कारण प्रथम मुझको पर्वतीय लोगों से पूछना पड़ा कि वे उन महात्मा पुरुषों के वृतान्त से परिचित हैं या नहीं परन्तु भाग्य की विडम्बना देखो कि जहाँ भी पूछा वहाँ या तो निरी अज्ञानता पाई या अन्धविश्वास से भरी हुई गप्प हाँक दी। सारांश यह कि बीस दिन तक पथभ्रष्ट और भग्नहृदय फिरकर जिस प्रकार कि अकेला गया था वैसे ही लौट आया। क्योंकि मेरे साथी तो दो दिन पूर्व ही मुझको शीत की प्रबलता के भय से अकेला छोड़कर चले गये थे। इसके पश्चात् मैं उसी दिन वहाँ से नीचे उतर आया जहाँ पर मुझे दो मार्ग मिले जिनमें एक पश्चिम को और दूसरा नैर्ऋत्य को जाता था। तब मैं उस मार्ग पर जो जंगल की ओर था–झुक पड़ा। कुछ दूर तक चलकर मैं एक ऐसे घने वन में पहुँचा जहाँ की चट्टाने खण्ड–बंड (ऊँची–नीची) और नाले भी शुष्क थे और वहाँ से आगे को मार्ग भी न चलता था। जब मैं इस प्रकार घिर गया तो मन में सोचने लगा कि अब नीचे उतरना चाहिये अथवा और ऊपर चढ़ना चाहिये परन्तु चोटी की ऊँचाई और दुर्गम चढ़ाव के कारण मैंने विचार किया कि पर्वत की चोटी पर चढ़ना असंभव है। अतः विवश होकर शुष्क घास और सूखी झाड़ियों को पकड़–पकड़ कर मैं नाले के ऊँचे किनारे पर पहुँचा और एक चट्टान पर खड़े होकर जो चारों ओर दृष्टि डाली तो मुझको दुर्गम पहाड़ियों, टीलों और जंगल के अतिरिक्त, जिनमें मनुष्य का आना कठिन था और कुछ दिखाई न पड़ा। चूँकि उस समय सूर्य भी अस्त होने वाला था मुझको चिन्ता हुई कि इस सुनसान निर्जन वन में, बिना जल और ऐसे पदार्थ के जो जल सके, मेरी क्या दशा होगी। सारांश यह है कि मुझे उस विकट जंगल में ऐसे–ऐसे स्थानों पर घूमना पड़ा कि जहाँ के बड़े–बड़े काँटों में उलझ–उलझ कर कपड़ों की धज्जियाँ उड़ गई और शरीर भी घायल हो गया और पाँव भी लंगड़े हो गये। अन्त में अत्यन्त कठिनता से बड़े दुख और संकट के साथ उस मार्ग को पूरा करके पर्वत के नीचे पहुँचा और अपने आपको साधारण मार्ग पर पाया। उस समय रात्रि का अंधकार सब ओर छा रहा था इस कारण अनुमान से मार्ग ढूँढना पड़ा परन्तु मैंने प्रसिद्ध मार्ग से पृथक् न होने का बहुत ही ध्यान रखा। अन्त को ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ कुछ झोंपड़े दिखाई पड़े और वहाँ के मनुष्यों से ज्ञात हुआ कि यह मार्ग ओखीमठ को जाता है। यह सुनकर मैं उस ओर को चल पड़ा

और रात ओखीमठ में व्यतीत की। प्रातः जब मैं अच्छी प्रकार विश्राम कर चुका था वहाँ से गुप्तकाशी को लौट गया अर्थात् जिस स्थान से मैं पहले उत्तर की ओर चला था।

ओखीमठ का आडम्बर 'सत्य' योगविद्या व मोक्ष की खोज' के लिये पागल ने ऐश्वर्य को यहाँ भी लात मारी – परन्तु इस यात्रा की लालसा मुझे ओखीमठ को फिर ले गई ताकि वहाँ के गुफानिवासियों का वृत्तान्त जानूं। सारांश यह कि वहाँ पहुँच कर मुझे ओखीमठ के देखने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ जो कि बाहरी आडम्बर करने वाले पाखंडी साधुओं से भरा हुआ था। यहाँ के बड़े महन्त ने मुझे अपना चेला करने का मनोगत (विचार) किया। उसने इस बात की दृढ़ता के लिये भी मुझे लालच दिखाया कि हमारी गद्दी के तुम स्वामी होंगे और लाखों रूपए की पूंजी तुम्हारे पास होगी। मैंने उनको निःस्पृह भाव से यह उत्तर दिया कि यदि मुझे धन की चाह होती तो मैं अपने पिता की सम्पत्ति को जो तुम्हारे इस स्थल और धन दौलत से कहीं बढ़कर थी–न छोड़ता।

मेरा उद्देश्य – इसके अतिरिक्त मैंने यह भी कहा कि जिस ध्येय के लिये मैंने घर छोड़ा और सांसारिक सुख ऐश्वर्य से मुख मोड़ा, न तो मैं उसके लिये तुम्हें यत्न करते देखता हूँ और न तुम उसका ज्ञान ही रखते प्रतीत होते हो; फिर तुम्हारे पास मेरा रहना किस प्रकार संभव हो सकता है। यह सुनकर महन्त ने पूछा कि वह कौनसा ध्येय है जिसकी तुम्हें खोज है और तुम इतना परिश्रम कर रहे हो। मैंने उत्तर दिया कि मैं सत्य, योगविद्या और मोक्ष चाहता हूँ और जब तक यह अर्थ सिद्ध न होगा तब तक बराबर अपने देशवालों का उपकार, जो मनुष्य का कर्त्तव्य है– करता रहूँगा। यह सुनकर महन्त ने कहा कि यह बहुत अच्छी बात है और कुछ दिन और तुम हमारे पास ठहरो परन्तु मैंने इस बात का कुछ भी उत्तर न दिया क्योंकि मैं जान गया कि यहाँ कुछ पूर्ति न होगी।

बद्रीनारायण के रावल जी से शास्त्र–संलाप – अतः दूसरे दिन प्रातःकाल उठा और वहाँ से जोशीमठ को चल दिया। वहाँ कुछ दिनों दक्षिणी महाराष्ट्रियों और संन्यासियों के साथ जो संन्यासाश्रम की चतुर्थ श्रेणी के सच्चे साधु थे, रहा और बहुत से योगियों और विद्वान् साधु संन्यासियों से भेंट हुई और उनसे वार्तालाप में मुझको योग विद्या के विषय में और बहुत नई बातें विदित हुईं। उनसे पृथक् होकर फिर मैं बद्रीनारायण को गया। विद्वान् रावल जी उस समय उस मन्दिर का सबसे बड़ा महन्त था और मैं उसके साथ कई दिन तक रहा। हम दोनों का आपस में वेदों और दर्शनों पर बहुत–सा वादानुवाद हुआ। जब उनसे मैंने पूछा कि आसपास में कोई विद्वान् और सच्चा योगी नहीं है परन्तु उसने बतलाया कि मैंने सुना है कि प्रायः ऐसे योगी इसी मन्दिर के देखने के लिए आया करते हैं। उस समय मैंने यह

दृढ़ निश्चय कर लिया कि सारे देश में और विशेषतया पर्वतीय स्थानों में अवश्य ऐसे पुरुषों की खोज करूँगा।

अलखनन्दा के उद्गम की ओर अलखनन्दा की विकट मारक भँवर से प्रभु कृपा से छुटकारा– एक दिन सूर्योदय के होते ही मैं अपनी यात्रा पर चल पड़ा और पर्वतों के मध्यम में से होता हुआ अलखनन्दा नदी के तट पर जा पहुँचा। मुझे उस नदी के पार करने की तनिक भी इच्छा न थी क्योंकि मैंने उस नदी के दूसरी ओर एक 'मंग्रम' नामक बड़ा ग्राम देखा। इसलिये अभी उस पर्वत की घाटी में ही चलता हुआ नदी के बहाव के साथ–साथ जंगल की ओर हो लिया। पर्वत, मार्ग और टीले आदि सब हिमाच्छादित थे और बहुत घनी बर्फ उनके ऊपर थी इसलिये अलखनन्दा नदी के उद्गम स्थान तक पहुँचने में मुझको महान् कष्ट उठाने पड़े परन्तु जब मैं वहाँ गया तो अपने आपको नितान्त अपरिचित और विदेशी जाना और अपने चारों ओर ऊँची–ऊँची पहाड़ियाँ खड़ी देखीं तो मुझे आगे जाने का मार्ग बन्द दिखाई दिया। थोड़े समय पश्चात् सड़क पूर्णतया अदृश्य हो गई और उस मार्ग का मुझको कोई पता न मिला। मैं उस समय चिन्ता में था कि क्या करना चाहिये। विवश होकर मैंने अपने मार्ग की खोज के लिए उस नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। मेरे पहने हुए वस्त्र बहुत हल्के और थोड़े थे और सर्दी बहुत तीव्र थी। थोड़े ही समय पश्चात् ऐसी प्रबल सर्दी हो गई कि उसका सहन करना असंभव था। भूख और प्यास ने जब मुझको बहुत ही सताया तो मैंने एक टुकड़ा बर्फ का खाकर उसको बुझाने का निश्चय किया परन्तु उससे कुछ शान्ति प्राप्त न हुई। फिर मैं नदी को पैदल ही पार करने लगा। किसी–किसी स्थान पर नदी बहुत गहरी थी और कुछ स्थान पर पानी बहुत कम था परन्तु एक हाथ अथवा आधे गज से कम गहरा कहीं न था परन्तु चौड़ाई अर्थात् पाट में दस हाथ तक था अर्थात् कहीं से चार गज और कहीं से पांच गज था। नदी बर्फ के छोटे और तिर्छे टुकड़ों से भरी हुई थी जिन्होंने मेरे पाँव को अत्यन्त घायल कर दिया और मेरे नंगे पाँवों से रक्त बहने लगा। मेरे पाँव शीत के कारण बिल्कुल सुन्न हो गये थे जिसके कारण बड़े–बड़े व्रणों का भी मुझे कुछ समय तक ज्ञान न हुआ। इस स्थान पर अत्यन्त शीत के कारण मुझको मूर्च्छा–सी आने लगी। यहाँ तक कि मैं सुन्न होकर बर्फ पर गिरने को था। मैंने अनुभव किया कि यदि मैं यहाँ पर इसी प्रकार गिर गया तो फिर यहाँ से उठना मेरे लिये अत्यन्त कठिन और दुष्कर होगा। अतः बहुत दौड़धूप करके जिस प्रकार हुआ मैं बहुत कठिन चेष्टा करके वहाँ से सकुशल निकला और नदी की दूसरी ओर जा पहुँचा। यद्यपि वहाँ जाकर कुछ समय तक मेरी ऐसी दशा रही कि मैं जीवित की अपेक्षा मानो अधिक मृतकपन की अवस्था में था तथापि मैंने अपने शरीर के ऊपर के भाग को बिल्कुल नंगा कर लिया और अपने समस्त

वस्त्रों से जो मैंने पहने हुये थे–घुटनों या पाँव तक जंघाओं को लपेट लिया और वहाँ पर मैं नितान्त शक्तिहीन और घबराया हुआ आगे को हिल सकने और चल सकने के अयोग्य होकर खड़ा हो गया और इस प्रतीक्षा में था कि कोई सहायता मिले जिससे मैं आगे को चलूँ परन्तु इस बात की कोई आशा न थी कि सहायता कहीं से आवेगी। सहायता की प्रतीक्षा में था परन्तु बिल्कुल अकेला था और जानता था कि कोई स्थान सहायता का दिखलाई नहीं देता। अन्त में फिर मैंने एक बार अपने चारों ओर देखा और अपने सामने दो पहाड़ी मनुष्यों को आते हुए पाया जो कि मेरे समीप आये और मुझको प्रणाम करके उन्होंने अपने साथ घर जाने के लिए बुलाया और कहा कि आओ हम तुमको खाने को भी देंगे। जब उन्होंने मेरे कष्टों को सुना और मेरे वृत्तान्त से परिचित हुए तो कहने लगे कि हम तुमको 'सिद्धपत' पर भी पहुँचा देंगे परन्तु उनका मुझको यह सब कहना कुछ अच्छा प्रतीत न हुआ। मैंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि महाराज! खेद है कि मैं आपकी यह कृपायुक्त बातें स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मुझमें चलने की बिल्कुल शक्ति नहीं है। यद्यपि उन्होंने मुझको बड़े आग्रह से बुलाया और आने के लिए बहुत कुछ विवश किया परन्तु मैं उसी स्थान पर पांव जमाए हुए खड़ा रहा और उनके कथन तथा इच्छानुसार उनके पीछे चलने का साहस न कर सका। जब मैं उनको कह चुका कि मैं यहाँ से हिलने की चेष्टा करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझता हूँ और इस प्रकार कहकर मैंने उनकी बातों की ओर ध्यान देना भी छोड़ दिया अर्थात् उनकी बातों को मैंने फिर न सुना। उस समय मेरे मन में विचार आता था कि अच्छा होता यदि मैं लौट गया होता और इस प्रकार मैंने अपनी शिक्षा और अध्ययन को चालू रखा होत। वे दोनों मनुष्य इतने में वहाँ से चले गये और थोड़े समय में पहाड़ियों के मध्य में अदृश्य हो गये। वहाँ पर जब मुझको कुछ शान्ति प्राप्त हुई तो मैं आगे को चला और कुछ समय तक 'बासोधा' पर ठहर कर और 'मंग्रम' के आसपास से होकर मैं उसी शाम को आठ बजे के लगभग बद्रीनारायण में पहुँचा।

रावल जी से अन्तिम भेंट – मुझे देखकर रावल जी और उसके साथी, जो सब घबराये हुए थे, आश्चर्यचकित रह गये और उन्होंने मुझसे पूछा कि आज सारे दिन तुम कहाँ रहे ? तब मैंने जो कुछ हुआ था अक्षरशः सुना दिया। उस रात्रि को थोड़ा सा खाना खाकर, जिससे कि मेरी शक्ति नये सिरे से लौटती हुई प्रतीत हुई–मैं सो गया परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल शीघ्र ही उठा और उठकर रावल जी से आगे जाने की आज्ञा माँगी और अपनी यात्रा पर चल पड़ा और रामपुर को प्रस्थान किया। उस शाम को चलता–चलता मैं एक योगी के घर जा पहुँचा जो एक बड़ा भारी उपासक था और उसके घर पर रात काटी। वह योगी जीवित ऋषियों और साधुओं में एक अत्यन्त ऊँची श्रेणी का प्रसिद्ध ऋषि था और धार्मिक विषयों पर उसके साथ बहुत समय तक मेरी बातचीत हुई।

अपने निश्चय को पहले से अधिक दृढ़ करके मैं अगले दिन प्रातःकाल उठते ही आगे को चल दिया और कई वनों और पर्वतों में से होकर और चिल्कायाघाटी पर से उतर कर मैं अन्त में 'रामपुर' पहुँच गया और वहाँ पहुँचकर मैंने प्रसिद्ध रामगिरि के गृह पर निवास किया। यह व्यक्ति अपने जीवन की बहुत बड़ी पवित्रता और आत्मिक जीवन की शुद्धता के कारण बहुत विख्यात था। मैंने भी उसको विचित्र स्वभाव का देखा अर्थात् वह सोता नहीं था प्रत्युत सारी रातें बड़े ऊँचे शब्द से बातें करने में व्यतीत कर देता था और वह बातें वह प्रकटतया अपने साथ ही करता प्रतीत होता था। प्रायः बड़े ऊँचे शब्द से हमने उसको चीख मारते सुना और फिर कई बार हमने उसको रोते हुए और चीख मारते अथवा ध्वनि करते हुए पाया परन्तु जब उठकर देखा तो वहाँ उसके कमरे में उसके अतिरिक्त और कोई मनुष्य दिखाई न दिया। मैं इस बात से अत्यन्त चकित तथा आश्चर्यान्वित हुआ और मैंने उसके शिष्यों आदि से पूछा तो उन बेचारों ने केवल यही उत्तर दिया कि इसका ऐसा ही स्वभाव है परन्तु कोई मुझको यह न बतला सका कि इसका क्या अर्थ है। अन्त में जब मैंने कई बार उस साधु से निजी रूप से एकान्त में भेंट की तो मुझको विदित हो ही गया कि वह क्या बात थी और इस प्रकार से मैं इस बात का निश्चय करने के योग्य हो गया कि अभी वह जो कुछ करता है वह पूरी–पूरी योगविद्या का परिणाम नहीं प्रत्युत उसमें अभी कमी है और यह वह चीज नहीं है जिसकी मुझको खोज है और न यह पूरा योगी है प्रत्युत योग में कुछ निपुणता रखता है।

काशीपुर आदि की ओर– उससे विदा होकर मैं 'काशीपुर' गया और वहाँ से 'द्रोणसागर' पहुँच कर देह त्याग देना चाहिये ऐसी इच्छा हुई परन्तु यह विचार कर मन में आ गया कि ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् देह छोड़नी चाहिए। वहाँ से आगे 'मुरादाबाद' होता हुआ मैं 'सम्भल' में जा पहुँचा और वहाँ से 'गढ़मुक्तेश्वर' को पार करता हुआ फिर गंगा नदी के तट पर आ पहुँचा। उस समय और धार्मिक पुस्तकों के अतिरिक्त मेरे पास निम्नलिखित पुस्तकें भी थीं–शिवसंध्या, हठप्रदीपिका, केसराना संगीत–इन पुस्तकों को मैं अपनी यात्रा में प्रायः पढ़ा करता था इनमें से कुछ के विषय नाड़ीचकायत और नाड़ीचक्र अर्थात् मनुष्य की नाड़ियों को बताने वाली विद्या से सम्बद्ध थे। इनमें ऐसी बातों का ऐसा लम्बा चौड़ा वर्णन किया हुआ था कि मनुष्य पढ़ता–पढ़ता थक जाता था और उनको मैं कभी भी पूर्णरूप से अपनी बुद्धि के वश में न ला सका और न पूर्णरूप से कभी मैं उनको स्मरण कर सका और न पूर्णरूप से समझ सका।

शव को चीरकर नाड़ी–ग्रन्थ की जाँच, ऋषि की मौलिकता : असत्य से तीव्र घृणा – इससे यह विचार उत्पन्न हुआ कि पता नहीं यह ठीक भी है या नहीं। इनके ठीक होने में मुझको सन्देह पड़ गया। मैं प्रायः अपने सन्देह निवृत्त करने का प्रयत्न करता रहा परन्तु आज तक मेरे यह सन्देह दूर नहीं हो सके और मुझे इनको दूर करने का कोई अवसर भी प्राप्त न हुआ। एक दिन की बात है कि मुझको अकस्मात् एक शव नदी के ऊपर बहता हुआ मिला। उस समय ठीक अवसर मिला था कि मैं उनकी परीक्षा करता और अपने मन की उन बातों के विषय में जो उन पुस्तकों में लिखी थीं, अपने सन्देह की निवृत्ति करता। अतः उन पुस्तकों को जो मेरे पास थीं एक ओर अपने समीप रखकर वस्त्रों को ऊपर उठाकर मैं दृढ़तापूर्वक नदी में घुसा और शीघ्रता से भीतर जाकर शव को पकड़ कर तट पर लाया। मैंने उसको एक तेज चाकू से, अच्छी प्रकार जैसे मुझसे हो सकता था, काटना प्रारम्भ किया। मैंने हृदय को उसमें से निकाल लिया और ध्यानपूर्वक उसकी परीक्षा की और देखा और हृदय को नाभि से पसली तक काटकर मैंने अपने सामने रखकर देखने का यत्न किया और जो वर्णन पुस्तक में दिया था उससे समता करने लगा और इसी प्रकार सिर और गर्दन के एक भाग को भी काटकर सामने रख लिया। यह जानकर कि इन पुस्तकों और शव में आपस में कोई समानता नहीं मैंने पुस्तकों को फाड़ कर उनके टुकड़े–टुकड़े कर डाले और शव को फेंककर साथ ही उन पुस्तकों के टुकड़ों को भी नदी में फैंक दिया। धीरे–धीरे उसी समय से मैं यह परिणाम निकालता गया कि वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल और सांख्यदर्शन के अतिरिक्त समस्त पुस्तकें, जो विज्ञान और योगविद्या पर लिखी गई हैं, निरर्थक और अशुद्ध हैं।

कानपुर, इलाहाबाद व बनारस में – अगले पाँच महीनों में मैंने कई बड़े–बड़े स्थान जो कानपुर और इलाहाबाद के मध्य में थे–देखे। भाद्रपद तदनुसार अगस्त मास सन् 1856 के आरम्भ में रविवार को मैं मिर्जापुर के समीप बनारस में जा पहुँचा, जहाँ एक मास से अधिक काल तक मैं विन्ध्याचल अशोल जी के मन्दिर पर ठहरा। आसौज के प्रारम्भ में बनारस पहुँचा और उस स्थान पर जाकर उस गुफा में ठहरा जो बरना और गंगा के संगम पर स्थित है और जो उस समय भवानन्द सरस्वती के कब्जे में थी। वहाँ पर कई शास्त्रियों अर्थात् काकाराम, राजाराम आदि से मेरी भेंट हुई वहाँ मैं केवल 12 दिन ही रहा तत्पश्चात् जिस वस्तु की खोज में था उसके लिये आगे को चल दिया। मैंने चावल खाने बिल्कुल छोड़ दिये और केवल दूध पर अपना निर्वाह करके दिन रात योगविद्या के पढ़ने और उसके अभ्यास में संलग्न रहा।

योगियों की खोज में नर्मदा के स्रोत की ओर, हितैषियों की ओर से चेतावनी परन्तु अपने निश्चय पर अटल – चैत सुदी संवत् 1914 26 मार्च सन्1857 बृहस्पतिवार को वहाँ से आगे चल पड़ा और उस ओर प्रयाण किया जिधर पहाड़ियाँ थीं और जिधर नर्मदा नदी निकलती है अर्थात् उसके उद्गम स्थान की ओर चला (यह नर्मदा की दूसरी यात्रा थी।) मैंने कभी एक बार भी किसी से मार्ग नहीं पूछा प्रत्युत दक्षिण की ओर यात्रा करता हुआ चला गया। शीघ्र ही मैं एक ऐसे सुनसान और निर्जन स्थान में पहुँच गया जहाँ चारों ओर बहुत घने जंगल थे और वहाँ जंगल में अनियमित अन्तर पर झाड़ियों के मध्य में बहुत से स्थानों पर क्रम–रहित भग्न और सुनसान झोपड़ियाँ थीं और कहीं–कहीं पृथक्–पृथक् ठीक झोपड़ियाँ भी दिखाई पड़ती थीं। इन झोंपड़ियों में से एक झोंपड़ी पर मैंने थोड़ा सा दूध पिया और फिर आगे की ओर चल दिया परन्तु इससे आगे कोई डेढ़ मील के लगभग चलकर मैं फिर एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ से कोई बड़ा मार्ग दिखलाई न देता था और मेरे लिये यही उचित प्रतीत होता था कि उन छोटे–छोटे मार्गों में से (जिनको मैं न जानता था कि कहाँ जाते हैं) किसी एक को ग्रहण करूँ और उस ओर चल दूँ। शीघ्र ही मैं एक निर्जन और सुनसान जंगल में घुस गया। उस जंगल में बहुत से बेरियों के वृक्ष थे परन्तु घास इतना घना और लंबा–लंबा उगा हुआ था कि मार्ग बिल्कुल दिखाई न देता था। इस स्थान पर मेरा सामना एक बड़े काले रीछ से हुआ। वह रीछ बड़ी तीव्र और भयानक आवाज से चीखा और चिंघाड़ मारकर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा होकर मुझे खाने के लिए अपना मुख खोला। मैं कुछ समय तक निश्चेष्ट खड़ा रहा परन्तु तत्पश्चात् मैंने शनैः शनैः अपने सोटे को उसकी ओर उठाया और वह रीछ मुझसे डरकर उल्टे पाँव लौट गया। उसकी चिंघाड़ और गर्ज इतने जोर की थी कि यह गाँव वाले जो मुझको अभी मिले थे दूर से उसका शब्द सुनकर और लठ्ठ लेकर शिकारी कुत्तों सहित मेरी सहायता करने के लिये उस स्थान पर आये। उन्होंने मुझको इस बात की प्रेरणा देने का यत्न किया कि मैं उनके साथ चलूँ। उन्होंने कहा कि यदि इस जंगल में तुम तनिक भी आगे बढ़ोगे तो बहुत सी विपत्तियों का तुमको सामना करना पड़ेगा और पहाड़ियों व वनों में बहुत से भयंकर क्रोधी और जंगली पशु अर्थात् रीछ, हाथी और शेर आदि तुमको मिलेंगे। मैंने उनसे निवेदन किया कि आप मेरे कुशलक्षेम की कोई चिन्ता न करे क्योंकि मैं सकुशल और सुरक्षित हूँ। चूँकि मेरे मन में इस बात की चिन्ता थी कि किसी प्रकार नर्मदा के उद्गम स्थान को देखूँ इसलिये यह समस्त भय और आशंकाएँ मुझको मेरे इस निश्चय से नहीं रोक सकती थीं। जब उन्होंने देखा कि उनकी आशंकायुक्त बातें मेरे मन में कुछ भय उत्पन्न नहीं करतीं और मैं अपने निश्चय में पक्का हूँ, तब उन्होंने मुझे एक सोटी दे दी जो कि मेरे सोटे से बड़ी थी। ताकि मैं उससे अपने को बचाऊँ परन्तु मैंने उस सोटी को तुरन्त अपने हाथ से फेंक दिया।

विकट वन में रेंगकर चलना तथा लहूलुहान – उस दिन मैं निरंतर तब तक यात्रा करता हुआ चला गया जब तक संसार में चारों ओर अन्धकार न छा गया। कई घंटों तक मुझको मनुष्य की बस्ती का तनिक–सा भी चिह्न न मिला और दूर तक कोई गाँव मुझे दिखाई नहीं दिया और न किसी झोंपड़ी पर ही दृष्टि पड़ी और न ही कोई मनुष्य जाति मेरी आँखों के सामने आई परन्तु जो वस्तुएँ साधारणतया मेरे मार्ग में आईं, वे वह वृक्ष थे जो प्रायः टूटे हुए पड़े थे। जिनकी जड़ों को मतवाले हाथियों ने तोड़कर और उखेड़कर वहाँ फैंक दिया था। उसके थोड़ी ही दूर आगे बढ़कर मुझको एक बहुत ही बड़ा जंगल दिखायी दिया कि जिसमें घुसना भी कठिन था अर्थात् इतने घने बेर आदि के कांटेदार वृक्ष वहाँ पर लगे हुए थे कि उनके अन्दर से निकलकर जंगल और वन में पहुँचना बहुत कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव दिखाई देता था। पहले पहल तो मुझको उनके अन्दर से निकलना असंभव दिखाई दिया परन्तु तत्पश्चात् पेट के बल घुटनों के सहारे मैं शनैः शनैः सर्प के समान उन वृक्षों में से निकला और इस प्रकार उस रुकावट और कठिनाई को दूर किया और उस पर विजय प्राप्त की। यद्यपि इस महान् विजय को प्राप्त करने में मुझको अपने वस्त्रों के टुकड़ों का बलिदान करना पड़ा और कुछ बलिदान मुझको अपने शरीर के मांस का भी करना पड़ा क्योंकि उसके अन्दर से क्षत विक्षत होकर निकला। इस समय पूर्ण अन्धकार छाया हुआ था और अन्धकार के अतिरिक्त और कुछ दिखाई न पड़ता था। यद्यपि मार्ग बिल्कुल रुका हुआ था और दिखाई न पड़ता था परन्तु तब भी मैं अपने आगे बढ़ने के निश्चय को छोड़ नहीं सकता था और इस आशा में था कि कोई मार्ग निकट ही आयेगा। अतः मैं बराबर आगे को चलता ही गया और बढ़ता ही रहा यहाँ तक कि मैं एक ऐसे भयंकर स्थान में घुस गया कि जहाँ चारों ओर ऊँची–ऊँची चट्टानें और ऐसी–ऐसी पहाड़ियाँ थीं कि जिनके ऊपर बहुत घनी वनस्पति और पादपादि उगे हुए थे। परन्तु इतना अवश्य था कि बस्ती के वहाँ कुछ–कुछ चिह्न और लक्षण पाये जाते थे। शीघ्र ही मुझको कुछ झोंपड़ियाँ और कुछ कुटियाएँ दिखाई पड़ी जिनके चारों ओर गोबर के ढेर लगे हुए थे और शुद्ध जल की एक छोटी नदी के तट पर बहुत सी बकरियाँ भी चर रही थीं और उन झोंपड़ियों और टूटे–फूटे घरों के द्वारों और दराड़ों में से टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई पड़ता था जो चलते हुए यात्री को स्वागत और बधाई की आवाज लगाता प्रतीत होता था। मैंने वहाँ एक बड़े वृक्ष के नीचे जो एक झोंपड़ी के ऊपर फैला हुआ था, रात व्यतीत की और प्रातःकाल उठकर मैं अपने घायल चरणों और हाथ और छड़ी को नदी के पानी से धोकर अपनी उपासना तथा प्रार्थना करने के लिए बैठने को ही था कि इतने में ही किसी जंगली जन्तु के गर्जने की–सी ध्वनि मेरे कान में आई। यह ध्वनि टमटम की ऊँची ध्वनि थी। थोड़े ही समय पश्चात् मैंने एक बड़ी सवारी अथवा जुलूस आता हुआ देखा।

उसमें बहुत से स्त्री, पुरुष और बच्चे थे जिनके पीछे बहुत सी गौएँ और बकरियाँ थीं जो एक झोंपड़ी या घर से निकले थे। संभवतः यह किसी धार्मिक उत्सव की प्रथा पूरी करने के लिये आये थे जो रात को हुआ करता है। जब उन्होंने मेरी ओर देखा और मुझको उस स्थान पर एक अपरिचित जाना तो बहुत लोग मेरे चारों ओर इकट्ठे हो गये और अन्त में एक वृद्ध मनुष्य ने आगे बढ़कर मेरे से पूछा कि तुम कहाँ से आये हो ? मैंने उन सबसे कहा कि मैं बनारस से आया हूँ और अब मैं नर्मदा नदी के उद्गमस्थान की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूँ। इतना पूछ्कर वह सब मुझे अपनी उपासना में संलग्न छोड़कर चले गये। उनके जाने के आधा घंटा पश्चात् एक उनका सरदार दो पहाड़ी मनुष्यों सहित मेरे पास आया और एक ओर पार्श्व में बैठ गया। वह वास्तव में उन सबकी ओर से एक प्रतिनिधि के रूप में मुझको अपनी झोंपड़ियों में बुलाने के लिये आया था परन्तु पूर्व की भाँति मैंने अबके भी उनकी इस कृपा को स्वीकार नहीं किया क्योंकि वे सब मूर्तिपूजक थे (इसलिये स्वामी जी ने उनके पूजा के कार्य में सम्मिलित होना पाप समझा और अस्वीकार कर दिया)। तब उसने मेरे समीप अग्नि प्रज्वलित करने की आज्ञा अपने मनुष्यों को दी और उसने दो पुरुषों को नियत किया कि रातभर मेरी रक्षा करते हुए जागते रहें। जब मुझसे उसने मेरे खाने के विषय में पूछा और मैंने उसको बताया कि मैं केवल दूध पीकर निर्वाह करता हूँ तो उस कृपालु सरदार ने मुझसे मेरा तूंबा माँगा और उसको लेकर अपनी झोंपड़ी की ओर गया और वहाँ उसने उसको दूध से भरकर मेरे पास भेज दिया। मैंने उसमें से उस रात्रि थोड़ा सा दूध पिया। वह फिर मुझको दो रक्षकों के निरीक्षण में छोड़कर लौट गया। उस रात मैं बड़ी गहरी निद्रा में सोया और सूर्योदय तक सोता रहा। तत्पश्चात् उठकर अपने सन्ध्यादि से निवृत्त होकर मैं यात्रा के लिये उद्यत हुआ। सारांश यह कि नर्मदा के उद्गमस्थान से लौटकर मैं विशेष विद्याप्राप्तर्थ मथुरा में आया। नर्मदा तट पर तीन वर्ष तक यात्रा की और भिन्न-भिन्न महात्माओं से सत्संग करता रहा।

तीन वर्ष के नर्मदा- भ्रमण के पश्चात् मथुरा में आगमन- मथुरा में एक संन्यासी सत्पुरुष मुझे गुरु मिले उनका नाम विरजानन्द स्वामी है। यह पहले अलवर में थे। उनकी आयु 81 वर्ष की थी। उनको वेद शास्त्रादि तथा आर्ष ग्रन्थों में बहुत रुचि थी। वे दोनों आँखों से अन्धे थे और उनके उदर में सदा शूल का रोग रहता था। उनको आधुनिक कौमुदी शेखरादि ग्रन्थ अच्छे नहीं लगते थे। वह भागवतादि पुराणों का तो बहुत ही तिरस्कार करते थे। समस्त आर्ष ग्रन्थों पर उनकी बहुत ही भक्ति थी। आगे जब उनका परिचय हुआ तब उनके 'तीन वर्ष में व्याकरण आता है' ऐसा कहने पर मैंने उनके पास पढ़ने का निश्चय किया।

मथुरा के अमरलाल जोशी को कभी न भूलूँगा – मथुरा में एक भद्रपुरुष अमरलाल नाम का था। उसने भी जब मैं विद्याध्ययन करता था, उस समय जो मेरे पर उपकार किये हैं उनको मैं कभी न भूलूंगा। पुस्तकों की सामग्री, खाने–पीने का प्रबन्ध उसने बहुत ही उत्तम मेरा कर दिया। उसे जब कहीं बाहर रोटी खाने को जाना होता तो प्रथम मुझको घर से बनाकर खिलाता फिर आप बाहर जाता। इसी प्रकार वह पुरुष बहुत ही उदारचित्त था।

संवत् 1920–1921 वि. आगरा में – विद्याध्ययन के समाप्त होने पर मैं आगरे में दो वर्ष रहा परन्तु समय–समय पर पत्र द्वारा अथवा स्वयं मिलकर मैं स्वामी जी के पास से शंकाओं का समाधान कर लिया करता था। वहाँ से मैं ग्वालियर गया और वहाँ थोड़ा–सा वैष्णवमत का खंडन करना प्रारम्भ किया। वहाँ से भी मथुरा में स्वामी जी को पत्र भेजता रहा था। यहाँ ग्वालियर में एक माधवानुमताचार्य्य नामक पंडित था वह कारकुन (लेखक) का रूप बनाकर वाद आदि के सुनने के लिए बैठता। किसी समय मेरे मुख से जब कोई अशुद्धि निकलती तो झट पकड़ लेता। मैंने बहुत बार पूछा कि आप कौन हो परन्तु वह कहता कि 'मैं तो साधारण कारकुन (लेखक) हूँ, सुन–सुनकर परिचित हो गया हूँ वह ऐसा कहता। एक दिन 'वैष्णव खड़ी रेखा लगाते हैं' इस पर बातचीत चली तब मैंने कहा कि यदि खड़ी रेखा लगाने से स्वर्ग मिलता है तो सारा मुख काला कर लेने से स्वर्ग के आगे भी कुछ मिलता होगा, ऐसा कहते ही उसे बहुत क्रोध आया और वह उठकर चल दिया। तब मुझे खोज करने पर विदित हुआ कि यह अनुमताचार्य्य है। ग्वालियर से मैं करौली गया। वहाँ एक कबीरपन्थी मिला। उसने 'एक बीर उसका यह कबीर' ऐसा अनुवाद किया था और कबीर उपनिषद् है ऐसा वह मुझसे कहने लगा। वहाँ से आगे जयपुर को गया–वहाँ एक हरिश्चन्द्र विद्वान् पंडित था। वहाँ मैंने प्रथम वैष्णवमत का खंडन करके शैवमत की स्थापना की। जयपुर के राजा महाराज रामसिंह ने भी शैवमत को ग्रहण किया। इससे शैवमत का विस्तार हुआ और सहस्रों रुद्राक्ष मालाएँ मैंने अपने हाथ से दीं।

जयपुर से पुष्कर व अजमेर – जयपुर से मैं पुष्कर गया और वहाँ से अजमेर गया। अजमेर जाने पर शैवमत का भी खंडन करना आरम्भ कर दिया। वहाँ जयपुर के महाराज लाट साहब से मिलने के लिये आगरे जाने वाले थे। वृन्दावन में रंगाचार्य्य करके एक पंडित था। कहीं उससे शास्त्रार्थ न हो जाये इसलिये राजा रामसिंह जी ने मुझे बुलावा भेजा था। मैं जयपुर गया परन्तु मैंने शैवमत का भी खंडन करना प्रारम्भ कर दिया है यह समझते ही राजाजी को अप्रसन्नता हुई और मैं जयपुर छोड़कर निकल गया। फिर स्वामी जी के पास जाकर शंकाओं का समाधान कर लिया। वहाँ से फिर मैं हरिद्वार गया।

हरिद्वार के कुम्भ में पाखण्ड खण्डन का आरम्भ

मतमतान्तरों का खण्डन तथा सर्वस्वत्याग 'पाखण्डमर्दन' ये अक्षर लिखकर ध्वजा मैंने अपने मठ पर लगाई। वहाँ वाद–विवाद बहुत हुआ, फिर मेरे मन को ऐसा प्रतीत होने लगा कि सारे संसार से विरुद्ध होकर और गृहस्थियों की अपेक्षा भी बहुत–सी पुस्तकों आदि का खटराग रखकर क्या करना है, इस हेतु से मैंने सब छोड़ दिया और कौपीन लगाकर मौन धारण कर लिया।

तब से शरीर में जो राख लगानी प्रारम्भ की थी वह गत वर्ष बम्बई आने तक लगाता ही रहा था। रेल पर बैठने के समय से लेकर वस्त्र पहनने लगा। हरिद्वार में जो मैंने मौन धारण किया वह बहुत दिन नहीं रहा क्योंकि बहुत लोग मुझे पहचानते थे और एक दिन मेरी पर्णकुटी के द्वार पर किसी ने लिख दिया 'निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्' अर्थात् भागवत की अपेक्षा वेद कुछ भी अधिक नहीं है प्रत्युत भागवत के पीछे है। तब मुझसे वह सहन नहीं हुआ और मौनव्रत छोड़कर मैं भागवत का खंडन करने लगा।

युक्त प्रान्त में शास्त्रार्थों की धूम : काशी का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ – फिर ऐसा विचार किया कि ईश्वर कृपा से अपने को थोड़ा बहुत ज्ञान मिला है वह सब लोगों को कहना चाहिये। ऐसा निश्चय करके मैं फर्रुखाबाद आया। वहाँ से मैं रामगढ़ गया रामगढ़ में वाद–विवाद आरम्भ किया। वहाँ जब दो चार शास्त्री एक साथ बोलने लगते तब मैं 'कोलाहल' ऐसा कहता था। इसलिये आज तक वहाँ के लोग मुझे 'कोलाहल स्वामी' कहते हैं। वहाँ चक्रांकितों के दस आदमी मुझे मारने को आये परन्तु उनसे बड़े संकट से बचा। फर्रुखाबाद से मैं कानपुर आया और कानपुर से प्रयाग गया। प्रयाग में मुझे मारने वाले मारने के लिये आये परन्तु एक माधव प्रसाद करके भद्रपुरुष था उसने मुझे बचाया। यह माधवप्रसाद गृहस्थी मनुष्य ईसाई धर्म स्वीकार करने वाला था और उसने सारे पंडितों को नोटिस दिये थे कि अपने आर्य धर्म के विषय में मेरा समाधान तीन महीने के भीतर करा दें अन्यथा समाधान न होने की अवस्था में मैं ईसाई धर्म स्वीकार कर लूँगा। मैंने आर्यधर्म के विषय में उसका समाधान कर दिया और वह ईसाई होने से बच गया।

संवत् 1926 वि. – प्रयाग से मैं रामनगर गया। काशी में–रामनगर के राजा के कहने पर काशी के पंडितों से शास्त्रार्थ करने के लिए गया और उस वाद में 'प्रतिमा' ऐसा शब्द वेदों में है या नहीं ऐसा विषय चला। प्रतिमा शब्द वेदों में है परन्तु उसका अर्थ 'माप'

है ऐसा मैंने सिद्ध करके दिखला दिया। वह शास्त्रार्थ और स्थान पर छपकर प्रसिद्ध हुआ है–वह सब पढ़कर देखें। इतिहास से ब्राह्मण–ग्रन्थ ही ग्रहण करने चाहिये ऐसा भी वाद वहाँ चला था।

काशी में चार बार आह्वान, वेदों में मूर्तिपूजन मिला हो तो लावें–कोई उत्तर नहीं मिला– गतवर्ष के भाद्रपद में मैं काशी में था और आजतक चार बार मैं काशी में गया और जिस–जिस समय जाता हूँ तब–तब किसी को वेदों में मूर्तिपूजन मिला हो तो लावे ऐसा नोटिस देता हूँ परन्तु आजतक कोई वचन नहीं निकाल सके। इस प्रकार उत्तर भारत के सारे भागों में मैंने भ्रमण किया है। आज दो वर्ष से कलकत्ता, लखनऊ, इलाहाबाद, कानपुर, जबलपुर आदि स्थानों में धर्मोपदेश मैंने बहुत से लोगों को किया और **फर्रुखाबाद, काशी आदि स्थानों में आर्यविद्या सिखलाने के लिये तीन या चार पाठशालाएँ स्थापित कीं।** उनके पढ़ाने वालों की धूर्तता के कारण जितना लाभ होना चाहिये वैसा नहीं हुआ। पिछले वर्ष मैं बम्बई आया और बम्बई में गुंसाईं जी महाराज के पक्ष का खंडन बहुत प्रकार से किया और बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की।

बम्बई से अहमदाबाद, राजकोट में कुछ दिन जाकर धर्मोपदेश किया और इन दिनों तुम्हारे इस नगर पूना में लगभग दो मास हुए कि आया हूँ। इस समय अर्थात् 4 अगस्त सन् 1875 को मेरी आयु 49 या 50 वर्ष की होगी। इस प्रकार मेरा पूर्व का चरित्र है। आर्य धर्म की उन्नति हो उसके लिये मेरे सदृश बहुत से धर्मोपदेशक अपने इस देश में उत्पन्न होने चाहिये। अकेले के हाथ से यह काम ठीक नहीं होता है तथा अपनी बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल मैंने जो दीक्षा ली है, उसे चलाऊँगा ऐसा संकल्प किया हुआ है। आर्यसमाज की सर्वत्र स्थापना होकर मूर्तिपूजादिक दुष्टाचार सब स्थानों पर न हों, वेद और शास्त्र का सच्चा अर्थ प्रकट हो और उसके अनुकूल आचरण होकर देश की उन्नति हो ऐसी ही ईश्वर से प्रार्थना है। तुम्हारी सबकी सहायता से अन्तकरणपूर्वक मेरी यह प्रार्थना सिद्ध होगी ऐसी पूर्ण आशा है।"[13]

भारतीय मनीषियों द्वारा दयानन्द के कार्यों पर अपने खोजपूर्ण विचार– "ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुंजी प्राप्त की है, जो युगों से बन्द थे और उनसे पटे हुये झरनों का मुख खोल दिया।"[14]

"संसार के महापुरुषों को पहाड़ की चोटियाँ माना जाये तो दयानन्द सबसे ऊँची चोटी है।"[15] – महान् क्रान्तिकारी योगीराज श्री अरविन्द देशभक्त

"मेरा सादर प्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन में भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया। जिस गुरु का उद्देश्य भारत वर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम हो।

जिसने देश की पतित अवस्था में भी मानव समाज को सेवा के सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।"[16] – नोबल पुरस्कार प्राप्त रविन्द्रनाथ ठाकुर

"परस्पर के अंधकार में से सूक्ष्म और मर्म भेदी दृष्टि से उसी (ऋषि दयानन्द) ने सत्य को खोज निकाला था।"[17] – महर्षि अरविन्द

"मैं जैसे–जैसे प्रगति करता हूँ, वैसे–वैसे मुझे महर्षि जी का बताया मार्ग दिखाई देता है। ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पश्चात् जनता के साथ सीधा सम्पर्क रखने का मार्ग महर्षि दयानन्द ने खोज निकाला। "[18] –महात्मा गाँधी

"स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है, इसलिए केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनिया के वे पूज्य हैं।"[19]

–श्रीमती कस्तूरी बाई गाँधी

"ऋषि दयानन्द जाज्वल्यमान नक्षत्र थे, जो भारतीय आकाश पर अपनी अलौकिक आभा से चमके और गहरी निद्रा में सोये हुये भारत को जागृत किया। स्वराज्य के सर्व–प्रथम सन्देशवाहक तथा मानवता के उपासक थे।"[20] –श्री लोकमान्य तिलक

"स्वामी दयानन्द सरस्वती को मैं अपना मार्ग दर्शक गुरु मानता हूँ। उनके चरणों में रहकर मैंने बहुत कुछ पाया है। उनकी मुझ पर सदैव कृपा रहती थी। स्वामी जी की यह इच्छा थी कि विदेशों में भी वैदिक विचारधारा का प्रचार हो। उन्होंने मुझे विदेशों में वैदिक संस्कृति का प्रचार करने की प्रेरणा दी।"[21] – श्याम जी कृष्ण वर्मा

"महर्षि दयानन्द स्वाधीनता संग्राम के सर्वप्रथम योद्धा, हिन्दू जाति के रक्षक थे। उनके द्वारा स्थापित आर्य–समाज ने राष्ट्र की महान् सेवा की है और कर रहा है आजादी की लड़ाई में आर्य–समाजियों का बड़ा हाथ रहा। महर्षि जी का लिखा अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' हिन्दू जाति की रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला ग्रन्थ है। सत्यार्थप्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता।"[22]

– स्वतंत्र्यवीर सावरकर

"महर्षि दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया।"[23] –सुभाष चन्द्र बोस

"स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं। संसार में मैंने सिर्फ उन्हें अपना गुरु माना है। आर्यसमाज मेरी माता है। मेरा हृदय और मस्तिष्क दोनों को उन्होंने गढ़ा है। मेरे गुरु एक महान् स्वतंत्र मनुष्य थे, इसका मुझे अभिमान है।"[24] –लाला लाजपतराय

"सरदार भगत सिंह आर्य समाज की देन है। आर्यसमाज में मेरे दादा सरदार अर्जुनसिंह जी शामिल थे, फिर मेरे पिता सरदार किशनसिंह और चाचा सरदार अजीत सिंह जी को महात्मा हंसराज जी तथा लाला लाजपतराय के साथ समाज का कार्य करने का शुभ अवसर प्राप्त रहा है। हम चारों नहीं, बल्कि पाँचों भाई यानी सरदार भगतसिंह जी डी.ए. वी. स्कूल में पढ़ते रहे हैं– और हमारे विचारों और मानसिक उन्नति भी बड़ी हद तक आर्य–समाज की देन हैं। इसलिए और बहुत से दूसरे उपकारों के लिए हम आर्य समाज के ऋणी हैं।"[25] – अमर शहीद सरदार भगत सिंह के छोटे भाई रणवीर सिंह

"देव मंदिर में पूजा–पाठ करते देख श्री मुंशी इन्द्रजीत ने मुझे संध्या करने का उपदेश दिया। श्री मुंशी जी ने उसी अर्से में आर्य समाज संबंधी बहुत सी जानकारी दी। उसके पश्चात् मैंने 'सत्यार्थ प्रकाश' पढ़ा, और उससे मेरे जीवन का लक्ष्य बदल गया। 'सत्यार्थ प्रकाश' ने मेरे जीवन के इतिहास का एक नया पृष्ठ खोल दिया।"[26]

–रामप्रसाद बिस्मिल

"स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुयायी उन्हें देवता मानते हैं और वह वास्तव में देवता माने जाने योग्य थे भी। जिन्होंने ज्योति स्वरूप निराकार भगवान की उपासना की शिक्षा दी, इसके अतिरिक्त किसी और देवता को नहीं। हम स्वामी जी को निकट से जानते थे और उनका अत्यधिक आदर सम्मान करते थे। वह एक ऐसे विद्वान् एवं श्रेष्ठ व्यक्ति थे कि वह सभी धर्मानुयायियों के लिए पूज्य थे। वह एक ऐसा व्यक्तित्व था जिसका सानी तत्कालीन पूरे भारत में उपलब्ध न था।"[27]

–सर सैय्यद अहमद खाँ (अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट, दिनांक 6.11.1888)

"भारत के संविधान में सामाजिक क्षेत्र के लिए अनेक व्यवस्थाएँ महर्षि दयानन्द से प्रेरणा लेकर ही की गई हैं। स्वामी जी ने 'स्वराज्य' का जो सबसे पहले सन्देश हमें दिया था, उसकी आज हमें रक्षा करनी है।"[28]

– भारत के राष्ट्रपति श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

"आज देश में जो भी कार्य चल रहे हैं, उनका मार्ग स्वामी जी वर्षों पूर्व बता गये थे।"[29] –लोह पुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल

"अपनेपन के उद्दीप्त स्वाभिमान के साथ महर्षि ने सोये हुए समाज को जागृत किया। अनुकरण की गुलाम वृत्ति पर छा करके स्वतंत्र प्रतिभा युक्त राष्ट्रीय श्रद्धा का सन्देश दिया। जीवन का कोई भी कार्य क्षेत्र उनके विचारों से अछूता नहीं रहा।"[30]

–आर.एस.एस. संचालक गुरु गोलवलकर

"महर्षि दयानन्द महान् राष्ट्र नायक नेता और क्रान्तिकारी महापुरुष थे। उन्होंने ऐसे समय में देश का नेतृत्व किया, जिस समय बुराइयों की ओर संकेत करना भी कठिन काम था। उन्होंने हिन्दी राष्ट्र भाषा होने का घोषनाद किया और छुआछूत तथा जात–पांत के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा स्वराज्य और स्वदेशी की उन्होंने ऐसी लहर चलाई, जिससे इंडियन नेशनल कांग्रेस के निर्माण की पृष्ठ भूमि तैयार हो गई।"[31]

–स्वतंत्र भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री

"गाँधी जी राष्ट्र के पिता थे तो महर्षि दयानन्द सरस्वती राष्ट्र के पितामह थे। महर्षि जी हमारी राष्ट्रीय प्रवृत्तियों के और स्वाधीनता आन्दोलन के आद्य–प्रवर्तक थे। गाँधी जी उन्हीं के पद चिह्नों पर चले।"[32] –भूतपूर्व लोकसभा अध्यक्ष अनन्तशयनम् आयंगर

"महाराष्ट्र में जो स्थान छत्रपति शिवाजी अथवा समर्थ गुरु रामदास का है, वही स्थान भारत के राजकीय उत्थान में महर्षि दयानन्द का है।"[33] – एम.वी. गाडगील

"मैंने आर्य समाज का कार्य किया उन दिनों मैं आर्य समाज के उत्सवों में बड़े उत्साह से भाग लेता था–व्याख्यान देता था। मैं आर्य समाज के प्रभाव के कारण ही कांग्रेस में आया। मुझे इस बात को स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं कि स्वामी दयानन्द जी ने ही भारत की स्वतंत्रता का वृक्ष लगाया, महात्मा गाँधी ने उसे सींच कर बड़ा किया।"[34] –भूतपूर्व रक्षामंत्री श्री महावीर त्यागी

"स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार है–यह सिद्ध कर दिखाया। स्त्रियों को ऊपर उठाया, उनको समान अधिकार दिलाकर शिक्षणालय का मार्ग बताया। वैदिक संस्कृति का सच्चा स्वरूप समझाकर बताया कि स्त्रियाँ तो अपनी सिरताज और शोभा है। महर्षि ने कहा कि परदेशी शिक्षण को छोड़कर देशी शिक्षण प्राप्त करो।"[35]

–मेहरचन्द जी महाजन भूतपूर्व न्यायधीश सर्वोच्च न्यायालय

"यह तो अभी रहस्य की बात है कि कांग्रेस की कल्पना वास्तव में किस दिमाग से निकली। कोई भी इस कल्पना का मूल उत्पादक हो, कहीं से भी यह पैदा हुई हो, हम इन परिणामों पर अवश्य पहुँचते हैं कि यह कल्पना वातावरण में घूम अवश्य रही थी विदेशी शब्द कांग्रेस को छोड़िए, शब्दों के जाल में उलझने से क्या लाभ। इस कल्पना का मूल उत्पादक है महर्षि दयानन्द।"[36]

– डॉ. पट्टाभि सीता रमय्या इंडियन नेशनल कांग्रेस का इतिहास

"अगर वे भारत वर्ष में पैदा न हुए होते, तो आज हमको महात्मा गाँधी जी, महात्मा तिलक और लाला लाजपतराय जैसे देश भक्तों के दर्शन भी न प्राप्त होते। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट एवं विजयी संसार में हो चुके हैं, परन्तु स्वामी जी इन सबसे बढ़कर थे।"[37] –खदीजा बेगम, एम.ए.

"19वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है उससे हिन्दू जाति के साथ–साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुत लाभ पहुँचा।"[38] –श्री पीर मुहम्मद मूनिस

"स्वामी जी ने जाति सम्मुख जो–जो सुधार रखे वे नितांत आवश्यक और उचित थे।"[39] –आगा मुहम्मद सफ़दर साहिब

"जहाँ तक हमें मालूम है स्वामी दयानन्द का सम्बन्ध अपने जीवनकाल में मुसलमानों से अच्छा था और मुसलमान लोगों ने भी इनके साथ सदैव अच्छा व्यवहार किया।"[40] – जनाब मिर्जा याकूब बेग साहब

"यदि ऋषि ने 'सत्यार्थ प्रकाश' में अन्य धर्मों की स्वतंत्रालोचना की है, तो पुण्य कर्म ही किया है। अन्य धर्म वालों को उससे न तो घबराना चाहिए, न चिढ़ना चाहिए। उनका कर्त्तव्य है कि वे स्थिर चित्त से उस पर विचार करें, और उन्हें यदि ऋषि के बतलाए हुए दोष ठीक जंचे तो प्रसन्नतापूर्वक अपने धर्म का संस्कार करें। इससे तो उन्नति ही होगी। अतः ऋषि की विचार–स्वतंत्रता पुण्य वस्तु है। संसार उससे लाभ उठा सकता है। क्या ऋषि का यह गुण सम्मान योग्य नहीं ?"[41] –ज़हूरबख्श 'हिन्दी–कोविद'

विदेशी विद्वानों द्वारा दयानन्द पर की गई गवेषणा के आधार पर प्रकट किये गये उद्‌गार–

"संसार में उच्च प्रतिभाशाली पुरुष अनेक हुए हैं किन्तु इन सबमें हमें वह ज्वाला दिखाई नहीं देती जिसे वे दूसरों में प्रविष्ट करा सके। किन्तु स्वामी दयानन्द में यह गुण हमें दिखाई पड़ता है।...

मेरे मन में स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व और चरित्र के लिए विशेष सम्मान का भाव है। वे सर्वांग में पवित्रतावादी हैं और उन्होंने अपने विचारानुसार जीवन जिया है। वे एक योद्धा, सुदृढ़, स्वतंत्र, पौरुषवान तथा दबंग हैं। उन्होंने अपने ही देशवासियों से मिली अवज्ञा, निंदा तथा प्रपीड़न को वर्षों तक सहा यह उनके वीरतापूर्ण आचरण का उदाहरण है। वे सत्य के अप्रतिम पुजारी थे।"[42] –सी.एफ. एण्ड्रयूज

"स्वामी दयानन्द द्वारा जो महत्त्वपूर्ण कार्य किए गये हैं, मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ।"[43] – ए.डी. बर्नेट

"स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इस बात पर बल दिया और इसे एक सीमा तक सत्य कहा जाएगा कि प्राचीन भारत ने आध्यात्मिक और नैतिक क्षेत्र में विगत में जितना विकास कर लिया था, वहाँ तक आज का पश्चिम नहीं पहुँच पाया है। दयानन्द के परवर्ती काल में कुछ क्षेत्रों में तो यहाँ तक विश्वास किया जाता था कि प्राचीन भारत में वैज्ञानिक तथा तकनीकी ज्ञान जिस उन्नत दशा में था, वहाँ तक उन्नीसवीं सदी का यूरोप भी नहीं पहुँच सका था।"[44] –एल.एम. बाशम

"उनका कहना था कि वेदों में सती–प्रथा, बाल–विवाह, दहेज–प्रथा आदि का कोई उल्लेख नहीं है। इसलिए उन्होंने इन सबका विरोध किया। नारी जाति को उन्होंने यथोचित सम्मान दिया और अन्यों को भी नारी का आदर करने की शिक्षा दी।"[45]

–हाइला एस. कन्वर्स

"स्वामी दयानन्द की मृत्यु का समाचार मेरे लिए वज्रपात के तुल्य है। उनके देहावसान से भारत ने एक ऐसा दार्शनिक खो दिया है जिसके समान भारत में संभवतः अन्य दार्शनिक पैदा नहीं होगा।"[46] – फ्रेडरिक फैन्थम

"जहाँ तक उनके सामाजिक सुधारों का प्रश्न है, उन्होंने बाल–विवाह का विरोध किया तथा लड़के–लड़कियों तथा कुलीनों और अन्त्य वर्ग के सभी बालकों की अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया। उन्होंने विधवाओं की दशा सुधारने के लिए नियोग की प्रथा का समर्थन किया। जाति के बारे में उनका मत था कि इसका निर्णय व्यक्ति के गुणों के आधार पर

किया जाना चाहिए न कि जन्म के आधार पर। वे खानपान तथा विवाह से जुड़े अनेक जातीय प्रतिबन्धों को शिथिल करना चाहते थे। वे विदेश यात्रा के समर्थक थे किन्तु यह भी चाहते थे कि लोग विदेश में रहते समय सदाचारी तथा शाकाहारी रहें।...स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार था तथा वे पुरुषों के तुल्य शिक्षा प्राप्त करती थीं।...जबकि कन्याओं का अध्यापन स्त्रियाँ करें।...विवाह विषयक अपने सिद्धान्त को सन्तुलित करने के लिए उन्होंने विवाह के पहले लड़के–लड़कियों की समुचित शिक्षा की बात कही, नारी शिक्षा पर विशेष जोर दिया और कहा कि चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम सर्वाधिक महत्त्व का है।"[47]

– जे.रीड ग्राहम

"धर्म के अध्येता तथा प्रचारक के रूप में तो स्वामी दयानन्द का नाम ऊँचा है ही, इतिहास में एक महान् धर्म सुधारक की भूमिका में आकर भारत का उपकार करने वालों में उनका नाम अमर रहेगा।"[48] –ई.एफ. हैरिस

"दयानन्द के उपदेश और प्रार्थनाएँ विदेशी शासन को तुरन्त उलट देने के लिए नहीं, अपितु ऐसा सुधार करने के लिए हैं जिनसे हिन्दू भविष्य में अपना शासन करने में समर्थ हो सकें। गौरक्षा के बारे में दिये जाने वाले अवतरण (ऋषि दयानन्द के वाक्य) भी अपने आप में मुझे बगावत के लिए भड़काने वाले नहीं प्रतीत होते हैं, अपितु इनका उद्देश्य ऐसे शासक की प्रशंसा करना है जो गोहत्या को बंद करेगा। इसमें कहीं भी विदेशी शासन के विरुद्ध हथियार उठाने अथवा लड़ाई छेड़ने का आह्वान नहीं किया गया है।"[49]

– पी. हैरिसन (इलाहबाद का जिला मजिस्ट्रेट)

"दयानन्द उस प्रचलित जाति प्रथा के विरोधी थे जो अन्याय तथा निरुद्यम को प्रोत्साहित करती है, किन्तु वे वैदिकवर्ण व्यवस्था के हामी थे। ईश्वर के यहाँ से कोई व्यक्ति ब्राह्मण या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में जन्म नहीं लेता किन्तु वह जिस प्रकार का जीवन जीता है, उसी से उसके वर्ण का निर्धारण होता है नारियों को भी पुरुषों की भाँति मोक्ष का अधिकार है और उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार अधिकार मिलने चाहिए। उन्हें शिक्षित किया जाना चाहिए और अठारह वर्ष की आयु से पहले उन्हें विवाह के बंधन में न बांधा जाये। बाद में उन्होंने विवाह के लिए लड़की की आयु सोलह निर्धारित की। हिन्दुओं में बाल–विवाह के प्रचलन के कारण वे उन्हें 'लड़कों के लड़के' कहा करते थे। विधवाओं को उन्होंने पुनर्विवाह का अधिकार दिया ताकि माता के रूप में वे अपना कर्त्तव्य पालन कर सकें। अपने समकालीन, पश्चिम से प्रभावित सुधारकों की अपेक्षा वे अधिक क्रान्तिकारी

थे। उनके विद्रोह और सुधार की रूपरेखा व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा समाज के प्रति दायित्व के समन्वय पर आधारित थी। दयानन्द का व्यक्तिवाद एक ऐसे आदमी का व्यक्तिवाद नहीं था जो स्वयं को समाज से अलग कर अपने ही मोक्ष के लिए प्रयत्नशील होता है। उनका आग्रह था कि भारतवासी सामाजिक उद्यमों में अधिक से अधिक भाग लें जिससे समाज को गरीबी तथा अशिक्षा से मुक्त किया जा सके। मानव की पृथक् सत्ता को समाज के सुधार तथा स्वतंत्र बनाने में नियोजित करना है, यही विचार दयानन्द के थे जो हिन्दू जीवन में क्रान्तिकारी बदलाव लाने के लिए प्रस्तुत किये गये थे। यह तथ्य कि दयानन्द अपने इन विचारों को वैदिक सच्चाईयों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कर रहे थे, उनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी।"[50] – चार्ल्स एच. हेमसेथ

"स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के विषय में चाहे कोई मनुष्य कैसी ही राय कायम कर ले, परन्तु यह सबको मानना ही होगा कि वे एक महान् तथा श्रेष्ठ पुरुष थे। अपने देश के लिए गौरव रूप थे। दयानन्द को खोकर भारत को बहुत हानि उठानी पड़ी है।"[51]
– एलन आकटेवियो ह्यूम

"दयानन्द नवीन राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे। अपने उपदेशों तथा स्वयं के उदाहरण के द्वारा उन्होंने भारत के शिक्षित युवाओं पर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव को रोका और भारत के जीवनदर्शन तथा भविष्य का पुनर्निर्धारण करने का मार्ग प्रशस्त किया।"[52]
–हेन्स कोहन

"वास्तविक ज्ञान के अभाव में हिन्दू प्रारम्भ में मुसलमानों से पराजित हुए और बाद में ईसाई अंग्रेजों से। दयानन्द के अनुसार वे पराजित लोग थे जो अंधविश्वासों तथा गलतियों में डूबे हुए थे।"[53] – केनेथ डब्ल्यु जान्स

"दयानन्द ने एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का आदर्श रखा जो व्यक्ति के स्तर का निर्धारण उसकी शिक्षा के आधार पर करता था, न कि मात्र जन्म से। दयानन्द के ऐसे विचार पढ़े लिखे लोगों को पसन्द आये। उनके विचार में भौतिक उन्नति, आध्यात्मिक प्रगति तथा समाज में वर्चस्व प्राप्त करने का एक ही उपाय है–शिक्षा। शिक्षा से ही वैदिक सच्चाई का ज्ञान होता है तथा सुखद भविष्य को साधा जा सकता है। उनका कहना था कि सभी को वेदों का पवित्र ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। स्त्रियों तथा शूद्रों को जो वैदिक अध्ययन से वंचित रखा गया है, वह अन्यायपूर्ण है। इस बंधन को हटाना चाहिए। इतना अवश्य है कि यदि वेद का अध्ययन कठिन प्रतीत हो तो उसे सुगम बनाने के लिए आर्ष ग्रन्थों की सहायता ली जा सकती है।"[54] – केनेथ डब्ल्यु. जान्स

"दयानन्द की कार्ययोजना में शीघ्रता और धीरे–धीरे, इन दोनों तत्त्वों का विचित्र सम्मिश्रण का यदि कर्मकाण्ड, शिक्षा, सामाजिक संगठन तथा राजनैतिक सुधारों से लेकर प्रचलित रीति रिवाजों को समाप्त करने तक के उनके प्रस्तावों पर हम विचार करें तो इनमें अधिक क्रान्तिकारी कार्यक्रमों की कल्पना करना भी कठिन है तथापि सही अर्थ में इन्हें कार्यक्रम न कहकर आदर्श कहना चाहिए। इनमें एक ऐसी आदर्श स्थिति की कल्पना थी जो वेदों के स्वर्णयुग में देखी गई थी तथा स्वामी जी चाहते थे कि एक दिन पुनः उसे साकार कर दिया जाए।....दयानन्द का यह सुदृढ़ व्यक्तित्व आश्चर्यजनक क्रियाशील मनोभूमि से जुड़ा था। मूलतः वे सक्रिय व्यक्ति थे। संन्यासी बनने का मतलब उनके लिए यह नहीं था कि वे एक ऐसे क्षेत्र में चले जायें, जहाँ केवल ध्यान करते हुए एकान्त में रहना है। उन्होंने अपने प्रौढ़ जीवन के प्रारम्भिक पन्द्रह वर्ष मोक्ष की तलाश में व्यतीत किये, किन्तु उनकी यह गवेषणा धैर्य धारण करते हुए लक्ष्य के अचानक सामने आ जाने के लिए नहीं थी किन्तु उन्होंने इसके लिए क्रियाशीलता से भरपूर प्रचण्ड प्रयत्न किये जिनके कारण कभी–कभी उन्हें शारीरिक और मनोवैज्ञानिक कष्ट भी उठाने पड़े। अपनी दीर्घकालीन योग साधना के समय उन्होंने अपने शरीर को असीम शारीरिक और मानसिक साधनों से सम्पन्न कर लिया। अब उनमें कार्य करने की इतनी क्षमता आ गई जिसे देखकर अनेक शक्तिशाली लोग भी आश्चर्यान्वित हो जाते।....एक बार यदि वे किसी नैतिक या धार्मिक सिद्धान्त की सत्यता को जान लेते तो उन्हें उससे विमुख करने की शक्ति किसी में नहीं थी। जीवन भर प्रभावशाली लोग तथा उनके निकटस्थ मित्र यदा कदा उन्हें सिद्धान्तों से समझौता करने के लिए कहते किन्तु उनको निराशा ही मिलती। स्वामी दयानन्द को अपने दृष्टिकोण से विचलित करने का सामर्थ्य किसी में नहीं था।...स्वामी जी की व्यवहारिकता विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रश्न पर यथार्थता प्रकट हुई थी। उनकी मान्यता थी कि द्विजों में नियोग व्यवस्था ही सर्वोत्तम है किन्तु यदि नियोग को स्वीकृति नहीं मिलती है तो विधवाओं की वर्तमान दुर्दशा को देखते हुए उनका विवाह कर देना सर्वोत्तम है। तथापि यह कहना उचित है कि उनकी यह व्यावहारिक नीति सिद्धान्तहीन या विद्वेषपूर्ण नहीं थी।... ऐसे थे स्वामी दयानन्द, एक निराला व्यक्ति जिसमें क्रियाशीलता कूट–कूट कर भरी है, सिद्धान्तनिष्ठ होने पर भी जो व्यावहारिक है, आत्मा और अन्तःकरण की गहराई तक पहुँचा हुआ, किन्तु सदा वर्तमान की सोचने वाला, तथा अच्छे भविष्य के लिए कर्म–तत्पर, ऐसे मस्तिष्क वाला जो सदा परिवर्तित होने वाले संसार से भी उचित को ग्रहण करने के लिए तैयार, किन्तु संसार के अनुचित दबाव के आगे अदम्य सभी के लिए अच्छे और सुखद जीवन का सपना देखने वाला, केवल धार्मिक संतुष्टि ही नहीं, किन्तु सामाजिक और आर्थिक संतुष्टि को लक्ष्य

मानने वाला। दयानन्द की इन मौलिक चारित्रिक विशेषताओं के प्रकाश में ही स्वामी जी की सीमाओं तथा अतिवादिता, उनकी दृश्यमान कठोरता, उनकी कट्टरता आदि को भली–भाँति समझा जा सकता है। अन्ततः यह कहना समीचीन होगा कि यही वे परस्पर विरुद्ध दिखने वाली छायाएँ हैं जो महापुरुष की महानता को उजागर करती है जिसने स्वयं को उन्नीसवीं सदी का असाधारण व्यक्ति बना दिया था।"[55] – जे.टी.एफ. जॉर्डन्स

"आर्य समाज एक धार्मिक संस्था है जिसकी स्थापना स्वामी दयानन्द ने वेदों की शिक्षा का प्रचार करने के लिए की। स्वामी जी एक स्वप्नद्रष्टा थे जो निखिल विश्व में वेदों की शिक्षाओं का प्रचार चाहते थे।"[56] – जे. रेमजे मेकडॉनल्ड

"स्वामी दयानन्द मूलतः एक विद्वान् थे जिन्होंने अपने देश के धार्मिक साहित्य का गहरा अध्ययन किया था। वे सुधारक भी थे इसलिए उन्हें अपने जीवन में बदनामी सहनी पड़ी तथा उत्पीड़ित होना पड़ा, यहाँ तक कि, जैसा समाचार पत्रों से ज्ञात होता है, उन्हें विष देकर मृत्यु के मुख में भेज दिया गया। भारत में धार्मिक विचारों के परवर्ती विकास काल में धर्म के क्षेत्र में अनेक प्रकार की बुराइयों का समावेश हो गया था। स्वामी दयानन्द ने इनका विरोध किया क्योंकि वे यह जानते थे कि ये धार्मिक विकृतियाँ मध्यकाल की उपज है। प्राचीन वेदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में इनका कोई उल्लेख नहीं है। उन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन किया, जन्मनाजाति को अनुचित कहा, स्त्री शिक्षा का समर्थन किया और एक स्थिति विशेष में विधवा–विवाह का समर्थन किया। बनारस तथा अन्यत्र जहाँ उन्होंने पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ किये, सामान्यतः उनकी विजय हुई, तथापि विरोधियों से उन्हें कोई आँच न आये, इसके लिए यदा कदा पुलिस की सहायता भी ली गई। उनके मत का आधार वेद है। वेदों में जो उल्लिखित नहीं है वह मिथ्या तथा व्यर्थ है। जो वेदों में वर्णित है, वह उनकी दृष्टि में निर्विवाद रूप से ग्राह्य है, स्वीकार करने योग्य है। भारत के सभी पुरातन धर्माचार्यों की भाँति दयानन्द भी वेदों को ईश्वर प्रदत्त ज्ञान स्वीकार करते हैं। इस विचार ने उनके मन में इतनी दृढ़ता से अपना स्थान बना लिया था कि इसके विरोध में वे कोई तर्क सुनने के लिए तैयार नहीं थे।"[57] – फ्रेड्रिक मेक्समूलर

"महर्षि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए का नारा लगाया था। उन्होंने पश्चिम के अंधानुकरण को खत्म किया।"[58] –श्रीमती एनी बेसेण्ट

"स्वामी जी की दृष्टि में नारी को सुसंस्कृत बनाना ही उसे स्वतंत्रता देना है। वे शिक्षा के द्वारा नारी को स्वाधीन कराना चाहते थे। उन्होंने लिखा था– 'जो पुरुष विद्वान् और

स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे। फिर सुख कहाँ ? इसलिए जो स्त्री न पढ़े तो कन्याओं की पाठशाला में अध्यापिका क्यों कर हो सके तथा राजकार्य न्यायाधीशत्वादि, गृहाश्रम का कार्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति को प्रसन्न रखना, घर के सब काम स्त्री के अधीन रहना इत्यादि काम बिना विद्या के कभी ठीक नहीं हो सकते।'....स्वामी दयानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के असाधारण चरित्र वाले वे महापुरुष थे जिन्होंने अपनी मातृभूमि की वास्तविक दशा को भली–भाँति देखा था तथा अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उसे सुधारने में लगाया था। वे अपने देश को उस पुराण पंथी दृष्टिकोण से उबारना चाहते थे जिसने अनेक लोगों के जीवन को शून्यवत् बना दिया था। अपने कथन की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने मनुस्मृति का प्रमाण दिया– 'यह राजाओं का कर्त्तव्य है कि वह लड़कों और लड़कियों, दोनों की शिक्षा तथा ब्रह्मचर्य पालन की व्यवस्था करे।....जब मानवता के इतिहास में ऐसे महापुरुषों की तलाश होगी जिन्होंने दलित तथा उपेक्षित वर्ग के लोगों के अधिकारों की रक्षा के लिए पुराने पड़ गये नियमों और रिवाजों की चिन्ता नहीं की, तो स्वामी दयानन्द' का नाम सर्वप्रथम लिया जायेगा।"[59]

– जुआन मिगूएल डी मोरा

"निश्चय ही दयानन्द के तुल्य हिन्दी और संस्कृत का इतना श्रेष्ठ वक्ता समस्त भारत में मिलना दुर्लभ है।"[60]

– हेनरी स्टील ऑल्काट

"जिन सिद्धान्तों का प्रचार स्वामी दयानन्द ने किया, वे कुछ नये नहीं हैं। वे उतने ही प्राचीन हैं जितना हिमालय। वस्तुतः ये सिद्धान्त सच्चे अर्थों में हमें वास्तविक प्राकृतिक नियमों की ओर ले जाना चाहते हैं और समस्त प्रकार की प्रवंचना, धूर्तता, असत्य तथा कृत्रिमता का बहिष्कार करना सिखाते हैं। इन सब सिद्धान्तों का सार दो शब्दों में रखा जा सकता है, उदारता और विश्वव्यापी प्रेम।...निश्चय ही स्वामी दयानन्द एक महापुरुष थे और उन्होंने भावी पीढ़ियों की जिंदगियों को सुधारने का उत्तम कार्य किया। स्वाभाविक है कि उनके विचारों को अन्यथा रूप में अनेक प्रकार से व्याख्यात किया गया। यदि हम उनके जीवन की ओर देखें तथा उससे सम्बन्धित तथ्यों को जानें तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उनमें तीन दुर्लभ सार्वत्रिक तथा प्रशंसनीय गुण थे–सहानुभूति, सत्यनिष्ठा तथा आत्म–त्याग।"[61]

–टी.टी. ऑडोनेल

"उनके उपदेशों का मूल स्वर 'वेदों की ओर लौटो' था। उनका कहना था कि वेदों में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने मूर्तिपूजा का प्रतिषेध किया तथा गाय की पवित्रता की घोषणा की।"[62]

– एल.एस.एस.ओ.' माले

"स्वामी जी स्पष्टवक्ता थे और लाग लपेट में विश्वास नहीं करते थे।...आगे चलकर पता चला कि उन्हें मारने के लिए विष दिया गया था। शरीर त्यागते समय स्वामी जी के मुँह से जो वाक्य निकला, वह था ईश्वर तेरी इच्छापूर्ण हो। ओम् शान्ति।...दयानन्द ने वेदों का हिन्दी भाष्य किया है। उन्होंने वैदिक मंत्रों के बुद्धिगम्य अर्थ किये हैं।"[63]

– जॉन केम्पबेल ओमन

"दयानन्द का निष्कर्ष था कि वर्तमान धार्मिक विश्वास तथा सामाजिक संस्थाएँ अत्यन्त विकृत तथा भ्रष्ट हो चुकी हैं। इस विश्वास को लेकर उन्होंने उग्र सुधारवादी सिद्धान्त का प्रवर्त्तन किया जो पवित्र वैदिक परम्परा को पुनः स्थापित करता था। ....उनकी हत्या के अनेक प्रयत्न किये गये और अन्ततः उन्हें विष दे दिया गया।"[64]

– पीटर ए. पार्दू

"वेद भारत की राष्ट्रीय पहचान के स्रोत हैं, इस विचार के साथ 'भारत आर्यों का देश था तथा भारतीय आर्य ही थे' इन विचारों का पूरा तादात्म्य है। आर्य और भारतीय को समानार्थी बताना एक बड़ा राष्ट्रवादी कार्य था क्योंकि इण्डिया और हिन्दू शब्दों का मूल क्रमशः ग्रीक तथा फारसी भाषा में देखा जाता है। स्वामी दयानन्द भारतवासियों को आर्य नाम से पुकारने में कितने गंभीर थे यह उनके द्वारा प्रसारित उस निर्देश से स्पष्ट होता है जो उन्होंने 1881 की जनगणना के समय अपने शिष्यों को दिया था जिसमें उनसे आग्रह किया गया था कि वे अपने को आर्य लिखायें। 30 नवम्बर 1880 को श्री दयाराम को लिखे एक पत्र में उन्होंने निर्दिष्ट किया– **'आगामी जनगणना में वे इस प्रकार लिखायें– धर्म वैदिक, राष्ट्रीयता–आर्य....' दयानन्द पहला भारतीय विचारक था जिसने अनुभव किया कि भारत को एक राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। उन्होंने अपने इस विचार की सच्चाई को संस्कृत भाषा को भारत की जनभाषा के रूप में प्रचारित करके उजागर किया। आगे चलकर उन्होंने संस्कृत के स्थान पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद देने का निश्चय किया।"[65]**

– एन्थनी परेल

"भारत के एक सबसे बड़े स्वदेशी सुधार आन्दोलन के संस्थापक होने के कारण उन्हें आधुनिक भरत का निर्माता कहना सर्वथा उपयुक्त है।"[66] – एच.डी. ग्रिसवोल्ड

1.2 समाज सुधार के विविध सोपान

स्वामी दयानन्द का पूरा जन्म समाज सुधार तथा जनकल्याण के लिए ही था जब उनको अन्तिम बार विष दिया गया तब भी वे इन सामाजिक कार्यों से अवकाश प्राप्त न

थे। दयानन्द का जन्म ही समाज सुधार के लिए हुआ था। उनकी शिक्षा, उनका व्यक्तित्व तथा जो उपलब्धियाँ हैं तथा जहाँ–जहाँ दयानन्द गये शास्त्रार्थ किया लोगों का अंधकार दूर किया ये सब समाज सुधार के अंग हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने समाज सुधार हेतु अपनी उत्तराधिकारिणी श्रीमती परोपकारिणी सभा को स्थापित किया। आर्यसमाज का अर्थ ही आर्य=श्रेष्ठ है अर्थात् श्रेष्ठ व्यक्तियों का समाज जो दयानन्द के बाद भी दयानन्द के वैदिक दर्शन को समाज हित के लिए जीवित बनाये रखेंगे।

सामाजिक हित को ध्यान में रखते हुए स्वामी दयानन्द ने समाजोत्थान के लिए आर्य समाज नामक संस्था की स्थापना की उसका संविधान बनाया तथा उसे भारत के अनेक स्थलों पर स्थापित किया जिसके दस नियम समाज सुधार के दस स्तम्भ हैं–

1. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।
2. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।
3. वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।
4. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
5. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
6. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
7. सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिए।
8. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।
9. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

10. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें।

दयानन्द के अनुसार समाज का सुधार यदि इन दस नियमों का पालन व्यक्ति करता है तो स्वमेव ही हो जाता है। इन नियमों में धर्म, पन्थ कहीं भी आड़े नहीं आ रहा है। ये नियम विश्वकल्याण के अर्थ में हैं कोई विशेष समाज के लिए नहीं हैं। इनका पालन प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। ये सारी मानव जाति के लिए हैं।

स्वामी दयानन्द के कतिपय कार्य ऐसे हैं जो सर्वप्रथम रहे हैं। समाज सुधार के लिए जो प्रमुख अंग हैं जिनके सही होने पर समाज का सुधार हो सकता है ऐसे संपूर्ण अंगों पर स्वामी जी ने बड़ा प्रयास किया है। इस सुधार में सबसे प्रथम शर्त यह है कि समाज का सुधार मनुष्य के सुधार से संभव है। मनुष्य का सुधार उत्तम शिक्षा एवं उत्तम आचरण के बिना नहीं हो सकता। उत्तम शिक्षा व आचरण प्राप्त करने के लिए दयानन्द ने वेदों की ओर लौटने का मार्ग प्रशस्त किया। यदि वेदों का अर्थ सत्य होगा तब ही शिक्षा का महत्त्व है असत्य अर्थ से शिक्षा कुशिक्षा बन जाएगी इसलिए समाज सुधार के निमित्त दयानन्द ने सर्वप्रथम ये कार्य किए–

वेदों का सही भाष्य – स्वामी दयानन्द ने जो वेदों के भाष्य देखे वे पूर्ण रूप से गलत किए गये थे सबसे पहले स्वामी जी ने वेदों के भाष्य को योग दृष्टि को काम में लेते हुए सही–सही अर्थ में समाज के सामने प्रस्तुत किया।

मानवता की उत्तमता – स्वामी दयानन्द ने पुरुषों, स्त्रियों एवं शूद्रों को शिक्षा एवं वेदों के पढ़ने के अधिकारों का सतर्क प्रमाण दिया वह समाज में सबको उत्तम ज्ञान से युक्त करा सुदृढ़ समाज का निर्माण करना था स्वामी दयानन्द ने लिखा है कि– "लड़कों और लड़कियों को बोलने, सुनने, चलने, बैठने, उठने, खाने, पीने, पढ़ने, विचारने तथा पदार्थों के जानने और जोड़ने आदि की शिक्षा भी करनी चाहिए। जो वेदों को अर्थ सहित यथावत् पढ़ के शुभ गुणों का ग्रहण और उत्तम कर्मों को करता है, वही सबसे उत्तम होता है।"[67]

स्वस्थ परिवार का निर्माण – समाज की सुदृढ़ व्यवस्था के साथ परिवार की स्वस्थ प्रणाली पर स्वामी दयानन्द ने बल दिया। परिवार समाज की इकाई है और वह परस्पर मेल युक्त हों।

भाषा सुधार – स्वामी दयानन्द ने हिन्दी भाषा के सुधार के लिए जो प्रयत्न किए वे सर्वविदित हैं उन्होंने आर्य समाजी सदस्य के लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य कर दिया था। जितना हिन्दी भाषा का उपकार दयानन्द ने किया उतना आज तक कोई न कर सका।

यज्ञों पर बल – स्वामी दयानन्द वेदानुकूल आचरण की कहते हैं, यज्ञों की अनिवार्यता स्वामी जी ने प्रत्येक व्यक्ति के लिए बताई है। इसका धार्मिक कारण से कोई लेना देना नहीं है, इसके पीछे स्वामी जी का तर्क है, कि इतना प्रदूषण जो जल, वायु, पृथ्वी पर अधिक से अधिक फैल रहा है, यह मनुष्यों को भी रोगी बनाएगा, इसलिए शुद्ध पदार्थों को घी के साथ अग्नि में डालने से प्रदूषण नहीं होगा तथा वर्षा भी अच्छी होगी। वर्षा से ही सृष्टि की खुशहाली है यह एक वैज्ञानिक पर्याय है।

स्वाधीनता एवं स्वदेशी प्रयोग – स्वामी जी ने विदेशी राज्य से अपना स्वतंत्र राज्य अच्छा माना है विदेशी राज्य माता–पिता के समान हितकारी ही क्यों न हो परन्तु स्वाधीनता सुखप्रद है इसीलिए स्वामी जी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए भरसक प्रयास किया तथा देश के नागरिकों को स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की जानकारी दी जिससे घरेलू उद्योगों को सहायता मिलेगी और राष्ट्र मजबूत होगा।

आर्थिक सुधार – दयानन्द ने आर्थिक सुधार के काफी प्रयास किए। इनका 'गोकरुणानिधि ग्रन्थ' पूरा आर्थिक सुधार को लेकर है इसमें गाय की सुरक्षा और उसका पालन आर्थिक स्थिति मजबूत कर समाज को स्वावलंबी बनाता है। खेती की विद्या को जानना, अन्न की रक्षा, खाद, भूमि की परीक्षा, जोतना, बोना यह सब अर्थव्यवस्था को नियमित करने के साधन हैं। छोटे–छोटे लघु उद्योगों द्वारा समाज की स्थिति को ऊँचा उठाने के उपाय बताए हैं। किसान को राजाओं का राजा कहा है।

राजनीतिक सुधार – स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास में कुशल राजनीतिक सुधारों का वर्णन किया है। जिसमें उन्होंने राजधर्म, तीन सभा, दण्डधर्म, राजा के व्यसन, राज्य के अधिकार, प्रबन्ध सुरक्षा, संधि, व्यूह आदि सूक्ष्म राजनीति व्यवस्थाओं की चर्चा की है। दयानन्द ने लोकतंत्र प्रणालि की व्यवस्था बताई है "एक को स्वतंत्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए, किन्तु राजा को सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।"[68] सुधार का कितना सुन्दर प्रस्तुतीकरण दयानन्द ने किया है।

जाति भेद कर्मानुसार – दयानन्द ने मनुष्यों में केवल मनुष्य जाति मानी है अन्य नहीं। अपने–अपने गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर व्यक्ति की गणना होती है।

पाखण्ड का खण्डन – स्वामी दयानन्द ने जितना साहस तत्कालीन युग में दिखाया वह अद्वितीय था। जिस समय भारत की स्थिति अत्यन्त दयनीय तो थी लेकिन इन पाखण्डियों

का जाल ऐसा बिछा हुआ था कि कोई इनके विरुद्ध खड़े होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता था। दयानन्द ने पाखण्ड खण्डिनी पताका लहराकर इन पाखण्डियों के गृह में ही इनको पछाड़ा। सामाजिक कुरीतियों का खण्डन कर दयानन्द ने बड़ा उपकार इस राष्ट्र का किया।

अछूतोद्धार – दयानन्द ने अछूत समझे जाने वालों को शुद्धता से रहने का पाठ पढ़ाया उनके लिए शिक्षा की बात की उन्हें वेद पढ़ने का अधिकारी बताया तथा वे चाहे तो अपने गुणों से आगे बढ़ सकते हैं।

स्त्री उत्थान – स्वामी दयानन्द ने राष्ट्र उत्थान के साथ स्त्रियों की दुःख जन्य स्थिति की चिन्ता की उन्हें शिक्षा की ओर उन्मुख किया, विधवा–विवाह का अर्थ समझाया, बाल–विवाह के लिए रोक लगाई स्त्री को आगे लाने के लिए बार–बार गार्गी, मैत्रेयी के उदाहरण दिए। वेदों का मार्ग बताया। उसे पुरुष के समकक्ष सिद्ध किया। वेदों से यह प्रमाणित कर दिया कि स्त्री–पुरुष से अधिक सम्मानीय है वह वे सब अधिकार रखती है जो एक पुरुष को प्राप्त हैं। वे भारत की स्वाधीनता के साथ स्त्री स्वाधीनता की भी माँग करते थे। दयानन्द स्त्री शिक्षा को समाज सुधार की पहली अवस्था मानते थे। स्वामी दयानन्द ने समाज सुधार के क्रम में कृषि, पशु नस्ल सुधार से लेकर स्वराज्य एवं शासनाध्यक्ष कैसा हो तथा धर्म का स्वरूप क्या है तथा कैसा होना चाहिए तक प्रत्येक विषय पर कार्य किया है। पाखण्ड के खण्डन के लिए उन्होंने सहस्रों व्यक्तियों के बीच अकेले निर्भीक होकर कई जगह शास्त्रार्थ किए हैं जिनमें उन्हें कई बार ईंटे, पत्थर आदि का भी सामना करना पड़ा किन्तु यह समाज सुधार का कार्य नहीं छोड़ा।

इतना ही नहीं देशोपकारक कार्य के साथ उन्होंने मुक्ति जैसे कठिन विषय पर भी लोगों का मार्गदर्शन किया है तथा योग और प्राणायाम का वर्णन सत्यार्थ प्रकाश में कर मनुष्य को स्वस्थ रहकर देश सेवा करने के गुण भी सिखाये हैं और कहा स्वस्थ मनुष्य ही मुक्ति की कामना कर सकता है। स्वामी दयानन्द के सामाजिक सुधार के सोपान इतने अधिक हैं कि उनकी यहाँ विस्तार से चर्चा अनुचित ही होगी उसका तर्क सम्मत कारण यह है कि दयानन्द को पूरा विश्व एक समाज सुधारक के रूप में ही जानता है। उनका पूरा जीवन ही सामाजिक सुधारों पर बलिदान हो गया। इस कारण थोड़ा कुछ संक्षेप में ही बताया है।

स्वामी दयानन्द के सामाजिक सुधार के सोपान एक स्वतंत्र विषद ग्रन्थ लेखन के उपयुक्त हैं किन्तु यहाँ पूर्व में दिए गये स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों की सम्मतियों, शोधों, विचारों एवं विश्वकोशों में भी दयानन्द सरस्वती का समाज सुधार का कार्य विदित है। फिर

भी उनके जीवन के वे क्षण जो उन्होंने विभिन्न स्थानों पर कष्ट साध्य भ्रमण को समाज सुधार का सोपान बनाया उसे संक्षिप्त में प्रस्तुत करना उचित है। किन्तु शोध ग्रन्थ की विशालता के भय से यह सब यहाँ प्रस्तुत नहीं किया जा सकता वस्तुतः समाज में सुधार के दयानन्द के कार्य इतने अधिक है कि उस पर अलग से कई ग्रन्थों की रचना हो सकती है। फिर भी समाज सुधार के सोपान में कुछ अत्यल्प सार लिखना आवश्यक समझूँगा।

दयानन्द के गुरु का गुरुदक्षिणा का प्रण ही समाज सुधार से प्रारंभ होता है उन्होंने दयानन्द से गुरुदक्षिणा में माँगा– "देश का उपकार करो। सत् शास्त्रों का उद्धार करो। मत–मतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वैदिक धर्म फैलाओ।" इस आदेश को मानकर दयानन्द देश भ्रमण में निकल पड़े और यह स्थिति भारत की पाखण्डों, अन्धविश्वासों तथा कुसंस्कारों से भरी हुई थी इन सबको नष्ट करने का कृत संकल्प दयानन्द का था जिसमें उन्होंने लगभग सफलता प्राप्त की।

दयानन्द के समाजिक सुधार के विविध सोपानों को इस दृष्टि से भी देखा जा सकता है। **प्रथम क्रम– आत्मगौरव से नष्ट भारत में पुरुषार्थ भरा** देश का सामान्य व्यक्ति आत्महीनता से ग्रस्त होकर यह समझ बैठा था कि उसकी कोई संस्कृति नहीं है इस स्थिति में जनता का एक वर्ग ईसाई धर्म की ओर आकर्षित हो रहा था स्वामी दयानन्द का विचार था– "किसी विदेशी पक्ष को अंगीकार कर लेने से राष्ट्रीय भावना, जिसका वे पोषण करना चाहते थे संकट में पड़ जायेगी। उन्होंने इस सत्य को भी समझ लिया था कि मात्र उपदेश देने से कुछ कार्य होने वाला नहीं है इसके लिए पूरी ताकत से क्षेत्र में कार्य करना पड़ेगा। अतः उन्होंने इस सुधार के लिए हिन्दुओं को पुनः जागृत करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा दी 'मुल्लाओं और पादरियों ने पहली बार यह अनुभव किया कि उनके विश्वास की बिना किसी संकोच के आलोचना हो सकती है।"[69] इस्लाम और ईसाई मत की सत्यता दयानन्द ने लोगों के सामने रख दी इससे भारतीयों में अपने आत्म गौरव की वृद्धि हुई परिणाम स्वरूप उनमें अप्रत्याशित परिवर्तन हुआ वे अपने पुरुषार्थ के प्रति सचेत हुए। यही कारण था कि 1857 की क्रान्ति दयानन्द सरस्वती के पुरुषार्थ की याद दिलाती है।

दूसरा क्रम – पाखण्डों एवं अंधविश्वासों को जड़ से उखाड़ फैंकने का संकल्प– देश में पाँच हजार वर्ष से इतना पाखण्ड और अंध परम्पराएँ फैल चुकी थी कि इतनी कट्टरता से दयानन्द यदि उनका विरोध न करते तो शायद इनको उखाड़ फैंकने में इतनी सफलता न मिलती जितनी मिली है। मूर्ति पूजा का पाखण्ड समाज में सबसे अधिक स्त्रियों के शोषण

को बढ़ावा दे रहा था जिसका परिणाम बाल–विवाह, विधवा–विवाह निषेध, स्त्री–अशिक्षा, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा आदि था। पण्डों पुजारियों की इस राजनीति को दयानन्द ने समझा और सारे समाज में इनका विरोधकर एक तरह से खलबली मचा दी। पाखण्डियों का पाखण्ड ग्राहक था। अब उनकी आमद पर चोट हुई तो उन्होंने दयानन्द को मारने के कई विफल षडयंत्र रचे।

तीसरा क्रम – लोगों में आत्मबल व उत्कृष्ट भावना का विकास – भारतीय युवा शक्ति आलस्य, प्रमाद, उदासीनता, निष्क्रियता, भाग्यवादी बनकर दुर्बल थी जिसे उन्होंने पराक्रम, उत्साह एवं शक्ति से सम्पन्न किया सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है– पारस्परिक फूट, धार्मिक भेद, जीवन में शुद्धता का अभाव, शिक्षा की कमी बाल–विवाह इसमें स्त्री और पुरुष को अपना जीवन–साथी चुनने का अधिकार नहीं होता, इन्द्रिय–पराणता, असत्य तथा अन्य बुरी आदतें, वेदाध्ययन की अवहेलना तथा अन्य कुरीतियाँ भारतीय समाज के मुख्य पतन के कारण रहे हैं। भारतीय समाज को सुदृढ़ बनाने के लिए उन्होंने ब्रिटिश शासन एवं उन लोगों की अपने देश के प्रति श्रेष्ठता को दिखाया है जिससे हम यह देखें कि हमारी सभ्यता तो इनसे भी पहले की है उन्होंने लिखा है कि अंग्रेजों में "सामाजिक क्षमता अधिक श्रेष्ठ है, सामाजिक संस्थाएँ अधिक अच्छी हैं और उनमें आत्मोत्सर्ग, सार्वजनिक हित की भावना, साहस, सत्ता के प्रति आज्ञापालन का भाव और देश भक्ति है।" ये सब गुण दिखाकर दयानन्द भारतीयों को उनसे श्रेष्ठ बनाना चाहते थे।

चतुर्थ क्रम – स्वाधीनता विकसित करना – दयानन्द भारत में पहले व्यक्ति थे जो पराधीनता को बड़ा भारी पाप समझते थे और स्वाधीनता की बात ही नहीं करते थे इस क्षेत्र में उनके कार्य अनगिनत हैं। सत्यार्थ प्रकाश के छटे समुल्लास में लिखा है कि– "विदेशी राज से चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, स्वदेशी राज चाहे उसमें कितनी ही त्रुटियाँ क्यों न हों, अच्छा है।" इस प्रकार दयानन्द ने देश को आजाद कराने का प्राण नवयुवकों में फूँका।

पाँचवा क्रम – निर्भीकता का संदेश – दयानन्द ने जो उपदेश–साहसी बनने एवं कायरता को त्यागने के लिए दिया उसमें उनके साहसी आदर्श एवं निर्भीकता के गुणों को जानना चाहिए। वे स्वयं भी इतने निर्भीक एवं साहसी थे जिसका ब्रिटिश सरकार ही नहीं पूरा विश्व लोहा मान चुका था। वह वैसी ही निर्भीकता अपने देश के नागरिकों में देखना चाहते थे।

छटा क्रम – सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी– दयानन्द ही ऐसे व्यक्ति हुए जिन्होंने बिगड़े हुए हिन्दी भाषा के हालात पर काबू पाया है वे संस्कृत एवं गुजराती के प्रकांड विद्वान् थे उन्होंने देवनागरी हिन्दी को सारे भारत में बोलने एवं समझने तक ही नहीं बल्कि राजकार्यों में भी उपयोग करने की सलाह प्रदान की। अपने सारे ग्रन्थ हिन्दी में लिखे। वेदों का भाष्य हिन्दी में किया, अपनी संस्था आर्य समाज को अधिक से अधिक हिन्दी भाषा का प्रचार करने का आदेश दिया।

सातवाँ क्रम–स्वदेशी प्रयोग – स्वामी दयानन्द ने देश को स्वावलंबी बनाने तथा उसकी आजादी की पहली सीढ़ी आर्थिक रूप से अपने आपको सुदृढ़ बनाना माना। इस कारण उन्होंने स्वदेशी के उपयोग की सर्वप्रथम शिक्षा दी। स्वयं खादी एवं मोटा पहनते थे। वे स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेश का नारा लगाने वाले पहले भारतीय थे।

आठवाँ क्रम – व्यक्ति व्यक्ति की समानता – दयानन्द ने व्यक्ति की समानता पर जोर दिया। यह समाज की बड़ी भारी विषमता थी जिसे खत्म करने का दयानन्द ने प्रयास किया उन्होंने जातिप्रथा को खत्म कर दलितोद्धार की नींव डाली। वे वर्ण व्यवस्था को ठीक से नहीं समझने के कारणों की बड़ी तर्क संगत व्याख्या करते हैं। जाति–पाँति का झगड़ा मूर्खता के कारण सिद्ध करते हैं। गुण योग्यतानुसार मनुष्य अपनी पहचान बनाता है इसका विषद वर्णन उन्होंने अपने ग्रन्थों में दिया है। अस्पृश्यता के विरुद्ध उनका युद्ध भारत एवं भारत की एकता के लिए किया गया प्रथम एवं ऐतिहासिक कार्य है।

नवाँ क्रम – राजनीतिक सुधार – दयानन्द ने अपने सत्यार्थ प्रकाश के छठे समुल्लास में राज प्रबन्ध का बड़ा ही वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें सत्ता व्यवस्था का विधि के साथ शासन, सभाओं का वर्णन, सभाध्यक्ष, सभाध्यक्ष का सभा के अधीन, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, ग्राम प्रशासन की व्यवस्था, ग्राम से राज्य तक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था, लोककल्याणकारी स्वरूप, सुरक्षा, सक्षम प्रशासन व्यवस्था, न्याय, दण्ड एवं कर की कुशल व्यवस्था, अन्तर्राज्य संबंध, सैन्य व्यवस्था युद्ध तथा सार्वभौम मानवतावादी आदि सिद्धान्तों का जोरदार वर्णन है।

इसमें सबसे प्रमुख दयानन्द ने समुचित कठिन एवं सरल दण्ड का विधान किया है जो स्त्री एवं पुरुषों का अलग–अलग अर्थात् पुरुषों को पुरुष न्यायाधीश एवं स्त्रियों को स्त्री न्यायधीश दण्ड दे इसका प्रमुख कारण यह बताया कि स्त्रियों की कई ऐसी बातें होती हैं जिन्हें स्त्री–स्त्री के सामने प्रकाशित करके अपना पक्ष–विपक्ष रख सकती है। तथा अपने प्रति होने वाले अन्याय से बच सकती है दयानन्द दूर दृष्टि वाले महापुरुष थे।

दसवाँ क्रम – नारी उत्थान के महास्तम्भ – स्वामी दयानन्द सामाजिक सुधार में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सहयोग नारी की उन्नति को मानते थे। नारी की उन्नति के लिए दयानन्द ने जो किया आज उसे पूरा विश्व जानता है। दयानन्द ने विषद विश्लेषण के साथ अपने ग्रन्थों में नारी मुक्ति के अत्यन्त सूक्ष्म एवं प्रबल सत्य पोषक विचार व्यक्त किये हैं। इसके साथ ही उन्होंने कन्या विद्यालय, गुरुकुल आदि की स्थापना नारी को पुनः वैदिक दर्जा दिलाने के लिए की। स्त्रियों पर होते हुए अत्याचारों के विपक्ष में उनकी सामाजिक लड़ाई के लिए तो उन्हें पूरा विश्व जानता है किन्तु इससे भी अधिक लड़ाई उन्होंने स्त्रियों को शिक्षित करने के लिए लड़ी। वे पुनः स्त्रियों को वैदिक गौरवान्वित स्थिति में देखना चाहते थे उन्होंने समाज में पुरुषों की छोटी सोच के लिए अत्यंत आक्रोश एवं डाँटने के भाव में कहा कि– "जो तुम स्त्रियों के वेद पढ़ने का निषेध करते हो, तो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।"[70] इस प्रकार स्वामी दयानन्द स्त्री शिक्षा को लेकर बड़े चिन्तित भी थे इसलिए ही ऐसा प्रश्न करने पर उन्होंने बड़े उच्च स्वर में उपरोक्त कथन कहा इससे स्वामी जी की स्त्री शिक्षा के प्रति तीव्र सोच को परखा जा सकता है। ऐसे मूर्खतापूर्ण प्रश्नों के लिए स्वामी जी के पास कम अवकाश था। दयानन्द का मस्तिष्क हर समय यह उक्ति सोचने में व्यस्त रहता था कि जो 'मातृमान्' है उसे कैसे पुनः शिक्षित किया जाए।

स्वामी जी ने राष्ट्र से इन कुरीतियों को बाहर करने के लिए प्रत्येक युवा युवती में बुद्धि बल एवं शारीरिक बल की आवश्यकता समझाई इसी कारण उन्होंने माता के शारीरिक विकास एवं बल पर जोर डाला। उन्होंने लिखा है– "सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौवीशवें वर्षपर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं।"[71] इसके अतिरिक्त आधुनिक विचारधारा को व्यक्त किया जो वस्तुतः प्राचीन विचारधारा थी स्वयंवर। अपने विवेक अनुसार जीवन साथी चुनने का अधिकार दिया।

इसके अतिरिक्त दयानन्द ने इन्द्रियों की साधना पर भी स्त्री–पुरुषों को उनके भौतिक एवं आध्यात्मिक बल के लिए जागृत किया है यही कार्य उनकी संस्था आर्य समाज आज तक कर रही है। दयानन्द ने अपना सारा जीवन इन बुराईयों से अच्छाइयों की ओर समाज को ले जाने के लिए बलिदान कर दिया। वे समाज सुधार के युग प्रवर्त्तक, युग द्रष्टा तथा भारत भाग्य विधाता थे जो आज भी हमारे बीच उनकी संस्था के रूप में हमारे जीवन को निरन्तर उत्कृष्टता की ओर ले जाने का त्यागमय प्रयास में विरचित हैं।

रामधारी सिंह दिनकर का यह कथन उनकी संस्था के लिए आज भी उतना ही सारगर्भित है जितना पहले था। **"ईसाइयत और इस्लाम के आक्रमणों से हिन्दुत्व की रक्षा करने में जितनी मुसीबतें आर्य समाज में झेली हैं, उतनी और किसी संस्था ने नहीं। सच पूछिये तो उत्तर भारत में हिन्दुओं को जगाकर उन्हें प्रगतिशील करने का श्रेय आर्य समाज को ही है।"**[72]

1.3 कृतियों का संक्षिप्त परिचय

इस प्रकार दयानन्द ने अपने गुरु को समाजसुधार एवं इस राष्ट्र के सुधार की गुरुदक्षिणा को मरते दम तक चुकाया और आज भी आर्य समाज के रूप में चुका रहे हैं। यह सुधारों का सिलसिला पृथ्वी की विद्यमानता तक रहेगा। ऐसी थी दयानन्द की गुरु दक्षिणा। स्वामी दयानन्द द्वारा विरचित कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है। दयानन्द ने अनेक छोटे–बड़े ग्रन्थों की रचना की है किन्तु कई कृतियाँ प्रकाशित न हो सकीं एवं कई सुरक्षित न रहने के कारण विलुप्त हो गईं इस कारण जो कृतियाँ वर्तमान में इनकी उत्तराधिकारिणी संस्था श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर (राज.) एवं संसार में उपलब्ध हैं उन्हें यहाँ परिचय के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है।

पुस्तक का नाम, प्रकाशक का नाम तथा प्रकाशन वर्ष संवत् और ईस्वी सन् में दिया जा रहा है। पुस्तक में क्या है यह शोध ग्रन्थ की विशालता बढ़ने के भय से नहीं लिखा है। वस्तुतः इन ग्रन्थों में समस्त विश्व का सत्य ज्ञान जो दयानन्द ने अपने योग तप बल पर अर्जित किया था उसे सन्देश रूप में अखिल सृष्टि में प्रसारित करने के लिए भरा। जिससे प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से संसार एवं प्राणी मात्र अन्य जीवों का कल्याण हो सके।

"दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित (मुद्रित) ग्रन्थों का विवरण

क्र.सं.	नाम ग्रन्थ	मुद्रक–प्रकाशक	प्रकाशन संवत्
1.	संध्या	ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा	1920 वि. 1863 ई.
2.	भागवतखण्डन अपर नाम पाखण्डखण्डन	ज्वालाप्रकाश प्रेस, आगरा	1923 वि. 1866 ई.
3.	अद्वैतमतखण्डन	लाइट प्रेस, बनारस	1927 वि. 1870 ई.
4.	सत्यार्थप्रकाश (प्रथम संस्करण)	स्टार प्रेम, बनारस	1931 वि. 1875 ई.
5.	सत्यार्थप्रकाश (द्वितीय संस्करण)	वैदिक यंत्रालय, प्रयाग	1941 वि. 1884 ई.
6.	संध्योपासनादि पंचमहायज्ञविधिः	आर्य प्रेस, बम्बई	1931 वि. 1796 श.

7.	पंचमहायज्ञविधिः (संशोधित)	लाजरस प्रेस, बम्बई	1934 वि. 1877 ई.
8.	वेदान्तिध्वान्तनिवारण	ओरियन्टल प्रेस, बम्बई	1932 वि. 1876 ई.
9.	वेदविरुद्धमतखण्डन	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	1931 वि. 1875 ई.
10.	शिक्षापत्रीध्वान्तनिवारण	बम्बई	1931 वि. 1875 ई.
11.	आर्याभिविनयः	आर्यमण्डल प्रेस, बम्बई	1932 वि. 1876 ई.
12.	संस्कारविधिः	एशियाटिक प्रेस, बम्बई	1933 वि. 1877 ई.
13.	संस्कारविधिः (द्वितीय संस्करण)	वैदिक यंत्रालय, प्रयाग	1941 वि. 1884 ई.
14.	वेदभाष्यम् (नमूने का अंक)	लाजरस प्रेस, बनारस	1933 वि. 1876 ई.
15.	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	लाजरस प्रेस, बनारस	वैशाख 1934 वि. 1935 वि. (1–14 खण्ड)
		निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	1935 वि. 1878 ई. (15,16 खण्ड)
16.	ऋग्वेद भाष्य (7/62/2 तक)	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	1935 वि. 1877 ई.
		वैदिक–यंत्रालय, काशी	से 1956 वि. 1899 ई.
		प्रयाग, अजमेर	पर्यन्त
17.	यजुर्वेद भाष्य	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई	1935 वि. 1878 ई. से
		वैदिक यंत्रालय, काशी, प्रयाग	1946 वि. 1889 पर्य.
18.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	चश्मएनूर प्रेस, अमृतसर	1934 वि. 1877 ई.
19.	भ्रान्तिनिवारण	आर्यभूषण प्रेस, शाहजहाँपुर	1937 वि. 1880 ई.
20.	अष्टाध्यायी भाष्य (2भाग)	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	लेखनकाल 1935–36 वि. प्रका.काल : प्रथमभाग 1984 वि. 1927 द्वितीय भाग 1997 वि. 1940 ई.
21.	संस्कृतवाक्यप्रबोधः	वैदिक यंत्रालय, काशी	1936 वि. 1879 ई.
22.	व्यवहारभानु	वैदिक यंत्रालय, काशी	1936 वि. 1879 ई.
23.	गौतमअहल्या की कथा	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1879 ई. (अनुपलब्ध)
24.	भ्रमोच्छेदन	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
25.	गोकरूणानिधि	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.

26.	वेदाङ्गप्रकाश (14 भाग)	वैदिक यंत्रालय, काशी, प्रयाग	1936 वि.1879 से 1940 वि.1883पर्य.
27.	काशीशास्त्रार्थ	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
28.	हुगलीशास्त्रार्थ (प्रतिमापूजन विचार)	लाइट प्रेस, बनारस	1930 वि. 1873 ई.
29.	सत्यधर्म विचार (मेला चांदापुर)	वैदिक यंत्रालय, काशी	1937 वि. 1880 ई.
30.	जालन्धर शास्त्रार्थ	पंजाबी प्रेस, लाहौर	1934 वि. 1877 ई.
31.	सत्यासत्यविवेक (बरेलीशास्त्रार्थ)	आर्यभूषण प्रेस, शाहजहाँपुर	1936वि.1879ई. (उर्दू)
32.	चतुर्वेद विषय सूची	वैदिक यंत्रालय, अजमेर	2028वि.1971ई."[73]
		अथवा	
1.	"सन्ध्योपासनाविधि	वि.संवत् 1920 (ई. सन् 1863)	
2.	भागवत–खण्डन	वि.संवत् 1923 (ई. सन् 1866)	
3.	काशी शास्त्रार्थ	वि.संवत् 1926 (ई. सन् 1869)	
4.	सद्धर्म–विचार	वि.संवत् 1920 (ई. सन् 1863)	
5.	अद्धेतमत–खण्डन	वि.संवत् 1927 (ई. सन् 1870)	
6.	गर्दभतापिनीउपनिषद्	वि.संवत् 1931 (ई. सन् 1874)	
7.	सत्यार्थप्रकाश	वि.संवत् 1931 प्रथम संस्करण 1939 द्वितीय संस्करण, (ई. सन् 1874 प्रथम संस्करण, और 1882 द्वितीय संस्करण)	
8.	अथ सभाष्यसन्ध्योपास–नादिपंचमहायज्ञविधि	वि.संवत् 1931 (ई. सन् 1874)	
9.	वेदभाष्य का नमूना	वि.संवत् 1931 (ई. सन् 1874)	
10.	वेदविरुद्ध मत खण्डन	वि.संवत् 1931 (ई. सन् 1874)	
11.	वेदान्तिध्वान्त निवारण	वि.संवत् 1931 (ई. सन् 1874)	
12.	शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	वि.संवत् 1931 (ई. सन् 1874)	

13.	आर्याभिविनय	वि.संवत् 1932 (ई. सन् 1875)
14.	संस्कारविधि	वि.संवत् 1932 प्रथम संस्करण /1940 द्वितीय संस्करण
15.	चतुर्वेद विषय-सूची	वि.संवत् 1933 (ई. सन् 1876)
16.	वेद भाष्य का दूसरा नमूना	वि.संवत् 1933 (ई. सन् 1876)
17.	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	वि.संवत् 1933 (ई. सन् 1876)
18.	वेदभाष्य	वि.संवत् 1934 से 1940 तक (ई. सन् 1877 से 1883)
19.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	वि.संवत् 1933 (ई. सन् 1876)
20.	भ्रान्तिनिवारण	वि.संवत् 1934 (ई. सन् 1877)
21.	अष्टाध्यायी-भाष्य	वि.संवत् 1933-1936 (ई. सन् 1876-1879)
22.	आत्मचरित्र	वि.संवत् 1936 (ई. सन् 1879)
23.	संस्कृतवाक्य प्रबोध	वि.संवत् 1936 (ई. सन् 1879)
24.	व्यवहारभानु	वि.संवत् 1936 (ई. सन् 1879)
25.	गोतम-अहल्या और इन्द्र वृत्रासुर की सत्यकथा	वि.संवत् 1937 (ई.सन् 1880से पूर्व)
26.	भ्रमोच्छेदन	वि.संवत् 1937 (ई. सन् 1880)
27.	अनुभ्रमोच्छेदन	वि.संवत् 1937 (ई. सन् 1880)
28.	गोकरूणानिधि	वि.संवत् 1937 (ई. सन् 1880)
29से44 तक	वेदांगप्रकाश	वि.संवत् 1937 से 1940 (ई. सन् 1880 से 1883)

45. शास्त्रार्थ (छः शास्त्रार्थ लिखित रूप में उपलब्ध हैं)

46. प्रवचन (उपदेशमंजरी)

47. पत्र और विज्ञापन

महर्षि दयानन्द सरस्वती की कुल पुस्तकें 44 एवं उनके प्रवचनों के ग्रन्थ 3 हैं। अतः कुल पुस्तकें 47 हैं।"[74]

निष्कर्ष :

1. 'दयानन्द जैसा विश्व में दूसरा नहीं हुआ।' ऐसा अधिकतर विश्व में महान् व्यक्तियों ने कहा। जिसमें देशी एवं विदेशी महान् हस्तियों के साथ गूढ़ शोधार्थी भी शामिल रहे हैं।

2. विश्व के इतिहास में दयानन्द ऐसा प्रथम पुरुष है जिसे राष्ट्र के विभिन्न सुधारों को करने से रोकने के लिए अठारह से अधिक बार विष दिया गया।

3. दयानन्द का जन्म अत्यंत धनाढ्य परिवार में हुआ। दयानन्द की शिक्षा एवं उपलब्धियों का महत्त्व औरों से अधिक इसलिए अधिक बढ़ा हुआ है क्योंकि इनका सम्पूर्ण जीवन अनुसंधानात्मक एवं संसार को नई दिशा की ओर लेकर जाता है।

4. सृष्टि पर ऐसा कोई विषय नहीं रहा जो दयानन्द से भूल से भी छूटा हो।

5. इनकी कृतियों से ज्ञात होता है कि केवल भारत के ही शुभचिंतक न थे, वे विश्व मानवता की भलाई अपने विशाल हृदय में संजोये हुए महामानव थे।

6. ब्रह्मचर्य के कारण सुदृढ़ शरीर तथा अत्यंत कुशाग्र बुद्धि दयानन्द के प्रथम प्रयासों से ही आज भारत में हर क्षेत्र में स्वतंत्र विकास दिखाई देता है।

♦♦♦♦

सन्दर्भ 1.0

1. साहित्यकार मुंशी प्रेमचन्द के उद्‌गार (आर्य भाषा सम्मेलन आर्यसमाज लाहौर के वार्षिक उत्सव पर दिया गया भाषण)–महर्षि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ भाषण, पृ.सं.–5
2. ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वरचित लिखित वा कथित जन्मचरित्र सं. पंडित भगवद्दत्त, विक्रम संवत् 2008, पृ.सं.–9–10
3. वही, पृ.सं.–4
4. वही, पृ.सं.–5
5. महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारोह समिति की ओर से प्रकाशित महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका, अजमेर, उसे 6 नवम्बर 1983, सम्पादक –क्षीतिश वेदालंकार, पृ.सं.–101
6. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित मूल लेखक–बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, पृ.सं.–17
7. वही, पृ.सं.–17
8. जन्म के संबंध में विक्रमीय संवत् 1881 से सब सहमत हैं और यह स्वयं दयानन्द ने भी बताया है लेकिन तिथि और मास में विचारकों में भिन्नता है। इस कारण ख्रिस्ताब्द सन् कहीं 1825 है, कहीं 1824; दयानन्द के पुराने जीवनी लेखकों में अधिकांश ने 1824 ही लिखा है। अन्ततः वर्तमान अनुसंधान कर्ताओं ने 12/2/1825 को ही माना है।
9. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती : डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–8
10. वही, पृ.सं.–14
11. आर्यसमाज का इतिहास (प्रथम भाग) : इन्द्र वाचस्पति, पृ.सं.–310
12. पंडित लेखराम कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, अनुवादक : कविराज रघुनन्दन सिंह 'निर्मल', पृ.सं.–22
13. पण्डित लेखराम कृत महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र, अनुवादक : कविराज रघुनन्दन सिंह 'निर्मल', पृ.सं.–21–43
14. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–81
15. पूर्ण पुरुष का विचित्र जीवन चरित्र : कुन्दनलाल आर्य चूनियाँ वाला, अनीता आर्ष प्रकाशन 500/2 हलवाई हट्‌टा, पानीपत (हरियाणा)

16. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–81
17. वही, पृ.सं.–81
18. वही, पृ.सं.–81–82
19. दिव्य–दयानन्द : सं. आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक', पृ.सं.–18
20. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–81
21. वही, पृ.सं.–83
22. वही, पृ.सं.–84
23. वही, पृ.सं.–84
24. वही, पृ.सं.–86
25. वही, पृ.सं.–86
26. वही, पृ.सं.–87
27. महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका अजमेर (उसे 6 नवम्बर, 1983) पृ.सं. –131
28. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–87
29. वही, पृ.सं.–88
30. वही, पृ.सं.–89
31. वही, पृ.सं.–89
32. वही, पृ.सं.–90
33. वही, पृ.सं.–91
34. वही, पृ.सं.–91
35. वही, पृ.सं.–92
36. वही, पृ.सं.–94
37. दिव्य दयानन्द : सं. आचार्य सत्यानंद नैष्ठिक, पृ.सं.–20
38. वही, पृ.सं.–52
39. वही, पृ.सं.–68
40. वही, पृ.सं.–68
41. वही, पृ.सं.–94
42. स्वामी दयानन्द सरस्वती पश्चिम की दृष्टि में : डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–7, 10–11 सी.एफ. एण्ड्रूज ईसाई मिशनरी से संबद्ध।

43. वही, पृ.सं.–11, एल.डी. बारनेट एम.ए. डी.लिट–ब्रिटिश म्यूजियम से संबद्ध।

44. वही, पृ.सं.–12, ए.एल. बाशम–आस्ट्रेलिया की नेशनल यूनिवर्सिटी कैनबरा के प्रोफेसर।

45. वही, पृ.सं.–18, ह्यइला एच. कन्वर्स–'रिलिजियस वर्ल्ड' ग्रन्थ के लेखक।

46. वही, पृ.सं.–30 आर्य समाज एण्ड इट्स डिट्रैक्टर्स : ए विण्डिकेशन, पृ.–7

47. वही, पृ.सं.–45–49–52, जेम्स. रीड ग्राहम (जन्म 1907) अमेरिका के इस विद्वान् ने आर्यसमाज पर सर्वप्रथम शोधकार्य 1943 में किया तथा येल यूनिवर्सिटी से पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। इनकी शोध का विषय था– 'दि आर्यसमाज एज ए रिफोर्मेशन इन हिन्दुइज्म विथ स्पेशल रेफरेंस टू कास्ट'। मिशिगन विश्वविद्यालय ने इस शोध ग्रन्थ को माइक्रो फिल्म के रूप में सुरक्षित किया है। पृ.सं.–226–241

48. वही, पृ.सं.–64, इंग्लैण्ड के एडिसकोम्बे सरे, गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर के प्रिंसिपल।

49. वही, पृ.सं.–65, पी. हैरिसन–इलाहबाद के जिला मैजिस्ट्रेट थे। जब आलाराम सागर नामक एक धूर्त संन्यासी ने आर्यसमाज को राजद्रोही बताते हुए एक अभियोग दायर किया तो इन्हीं सज्जन ने दयानन्द तथा आर्यसमाज की शिक्षाओं को निर्दोष बताया था।

50. वही, पृ.सं.–71–79, चार्ल्स एच. हैमसेथ–प्रिंसटन विश्वविद्यालय न्यूजर्सी के प्रोफेसर।

51. वही, पृ.सं.–86, ए.ओ. ह्यूम (1829–1912) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक ए.ओ. ह्यूम सिविल सर्विस के चयनित अधिकारी थे। 1885 में उन्होंने बम्बई में कांग्रेस की स्थापना की। स्वामी दयानन्द से वेदों को लेकर उनकी चर्चा समाचार पत्रों के माध्यम से हुई थी।

52. वही, पृ.सं.–87, हैन्स कोहन–स्मिथ कालेथ यू.एस.ए. से सम्बद्ध प्रोफेसर।

53. वही, पृ.सं.–89, केनेथ डब्लू. जॉन्स–केन्सास स्टेट यूनिवर्सिटी मैनहट्टन के प्रोफेसर।

54. वही, पृ.सं.–91 केनेथ डब्लू. जॉन्स

55. वही, पृ.सं.–112–117, जे.टी.एफ. जॉर्डन्स–मूलतः बेल्जियम के निवासी डॉ. जॉर्डन्स नेशनल आस्ट्रेलियन यूनिवर्सिटी कैनबरा में प्रोफेसर।

56. वही, पृ.सं.–121, जे. रेमजे मैकडॉनल्ड–इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री।

57. वही, पृ.सं.–122, फ्रैड्रिक मैक्समूलर–(1823–1900) जर्मनी के प्रसिद्ध संस्कृतज्ञ केम्ब्रीज विश्वविद्यालय के प्रोफेसर।

58. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–82, भारत भक्त ऐनी बेसेण्ट।

59. स्वामी दयानन्द सरस्वती पश्चिम की दृष्टि मे : डॉ. भवानी लाल भारतीय, पृ.सं. –129–130, जुआन मिगूएल डि मोरा–मैक्सिको की नेशनल आटोनामेस यूनिवर्सिटी के भाषा विज्ञान शोध संस्थान के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् प्रोफेसर।

60. वही, पृ.सं.–133, हेनरी स्टील ऑल्काट (1823–1907) अमेरिका में जन्मे ऑल्काट ने मेडम ब्लैवेट्स्की के साथ 17 नवम्बर 1875 को थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की थी। 1879 में वे मेडम के साथ भारत आये तथा स्वामी दयानन्द से भेंट की। उन्होंने स्वामी जी विषयक अपने संस्मरण 'ओल्ड डायरी लीव्ज' नामक पुस्तक में विस्तार से लिखे हैं।

61. वही, पृ.सं.–132, आगरा कॉलेज आगरा के प्रिंसीपल थे।

62. वही, पृ.सं.–133, एल.एस.एस. ओ'माले – आई.सी.एस.।

63. वही, पृ.सं.–136, गवर्नमेंट कॉलेज लाहौर में विज्ञान के प्रोफेसर थे।

64. वही, पृ.सं.–136–137, मैक्ग्रा हिल एन्साइक्लोपीडिया ऑफ वर्ड बायोग्राफी के लेखक।

65. वही, पृ.सं.–139–140, एन्थनी परेल–यूनिवर्सिटी ऑफ कैलगरी (कनाडा) में राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक।

66. वही, पृ.सं.–63, ईसाइ मिशनरी

67. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–247

68. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द सरस्वती, सं. भगवद्दत्त, पृ.सं.–134

69. ग्लिम्प्सेस ऑफ दयानन्द : चमूपति, पृ.सं.–67

70. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द, सं. भगवद्दत्त, पृ.सं.–69

71. वही, पृ.सं.–76

72. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर, पृ.सं.–471

73. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती : डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–82–83

74. निष्काय परिवर्तन पत्रिका : वर्ष–18 अंक 11 नवम्बर 2007, पृ.सं.–12

अध्याय द्वितीय

भारतीय साहित्य में स्त्री–विमर्श : स्वरूप एवं अवधारण

"वेदों की ओर लौटो...
...वेदों में स्त्री को साम्राज्ञी कहा है।"
"यह पागलो की सी बनाई हुई पुराण ग्रन्थों की कथा सब मिथ्या है।"

– दयानन्द सरस्वती

"उन्होंने धीरे–धीरे पपड़ियों (सामाजिक कुरीतियों की पपड़ियों) को तोड़ने का काम न करके उन्हें एक ही चोट से साफ कर देने का निश्चय किया...दयानन्द के अन्य समकालीन सुधारक केवल सुधारक मात्र थे, किन्तु दयानन्द क्रान्ति के वेग से आये।"

– रामधारी सिंह दिनकर

'माता निर्माता भवति' जिस भी मनुष्य के भीतर थोड़ी भी बुद्धि एवं विवेक है वह इतना तो जानता ही है कि माता निर्माता होती है। संसार में यदि कोई भी किसी भी वस्तु को बनाता है तो उस पर अंकित करवाता है अमुक निर्माता है। इसी प्रकार माता जिस वस्तु का निर्माण करती है, वह है मानव; इसमें स्त्री एवं पुरुष दोनों हैं। वह अपने गर्भ में नौ माह तक मानव का निर्माण करती है।

यही निर्माण वैदिक काल से लेकर वह आज तक करती आ रही है और इसी से सृष्टि चक्र संचालित है।

वैदिक साहित्य में स्त्री को प्रथम स्थान प्राप्त था वह आदर्श का प्रतिमान थी। उसका स्वरूप अत्यन्त पवित्र तथा सम्मान युक्त माता के रूप में परिभाषित रहा। वहीं मध्ययुग (महाभारत के युद्ध से एक सहस्र वर्ष पहले से दयानन्द काल तक) में स्त्री का स्वरूप मिश्रित व्यवहार का रहा जिसमें उसको कहीं वैदिक तरीके से तथा कहीं विकृत रूप से पेश किया गया। महाभारत के युद्ध के कारण जो विद्रूपता समाज में फैली वह अत्यन्त ही दुःखद रही। किसी भी काल का पूर्ण रूप से अचानक उखड़ जाना संभव नहीं है। वैदिक काल सबसे महान् था जैसा समाज वैसा साहित्य इसीलिए वैदिक साहित्य में स्त्री सर्वोच्च स्थान प्राप्त थी वहीं मध्य काल में वह स्त्री कहीं सर्वोच्च किन्तु अहंकारयुक्त, कहीं युद्ध का कारण, तो कहीं उसका व्यवहार परिवर्तित होने से वह समाज में अपना वर्चस्व खोने लगी। मध्य काल के अन्त तक तो सारी भारतीय सभ्यता ही ध्वस्त हो चुकी थी।

मध्यकालीन साहित्य में धीरे–धीरे स्त्री एक माता से विदूषी, विदूषी से पत्नी, पत्नी से स्त्री, स्त्री से विविध प्रकार की संरचना वाली स्त्री, संस्कृत साहित्य में स्त्री के रूप का वर्णन कालिदासादि कवियों ने बड़ा ही सौन्दर्य पूर्ण किया है। यहां से प्राकृत, अपभ्रंश से होता हुआ हिन्दी साहित्य में स्त्री का चरित्र चित्रण उसका स्वरूप ही नखशिखादि से होता हुआ श्रृंगारिक रचनाओं में घूमने लगा। पहली शताब्दी से अठारवीं शताब्दी के मध्य तक तो स्त्री का जीवन घोर दुःखों से युक्त बन गया था।

कुछ अपवाद रचनाओं को छोड़कर मध्यकाल में हिन्दी साहित्य का स्वरूप स्त्री विमर्श के संदर्भ में केवल और केवल उसका सौन्दर्य वर्णन ही प्रमुख रहा है। सामाजिक महत्व इतना ही था कि स्त्री भोग्य वस्तु है। उसे छुपाकर रखने लग गए थे जैसे दूध, दही को बिल्ली के डर से छुपाकर रखा जाता है उसी प्रकार स्त्री को दूसरा न छीनकर ले जाए इसलिए पर्दे में रखने की प्रथा का आविष्कार हो चुका था।

मध्यकालीन युग में स्त्री स्वतंत्र नहीं थी वह पशु एवं दास से भी अधिक दयनीय एवं यातनापूर्ण स्थिति में थी। महाभारत के युद्ध के पश्चात् राजाओं में स्थिरता नहीं थी आपसी फूट अपना साम्राज्य विस्तार एवं युद्धों के कारण उनका भारतीय संस्कृति एवं सत्साहित्य के लिए कवियों, लेखकों को उत्साहित व प्रोत्साहित करने का अवकाश न था। मध्यकाल के पूर्वाद्ध में साम्राज्यविस्तार की लड़ाई ने साहित्य प्रदूषित किया तथा उत्तरार्द्ध में मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा सम्पूर्ण संस्कृति का सत्यानाश कर दिया इस बीच साहित्य अतिदूषित हो चुका था। स्त्रियों के प्रति उनकी नीति भोगवादी थी जो मात्र बच्चे पैदा करने की मशीन के अतिरिक्त कुछ न थी। स्त्रियों के प्रति मुस्लिमों में यह धारणा प्रबल हो चुकी थी कि स्त्री उस बिना हकी धरती के समान है जिसमें जितना हल चलाओगे उतनी ही उपजाऊ होकर वह अधिक फसल देने के काम आएगी।

अन्ततोगत्वा इसका असर हिन्दी साहित्य संस्कृति पर भी आना प्रारंभ हो गया अब स्त्री केवल भोग्या थी। इसका एक उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है– "हिन्दू भारत का साहित्य चाहे धार्मिक हो अथवा लौकिक यौन संकेत कथाओं, यौन प्रतीकवाद तथा प्रत्यक्ष प्रेम सम्बन्धी अवतरणों से परिपूर्ण है। मध्यकाल में इस प्रकार के प्रसंगों में वृद्धि हुई, जब देवी–देवता के संयोग द्वारा सृष्टि निर्माण को मूर्तियों के रूप में प्रदर्शित किया गया तथा मैथुन के चित्र मंदिरों की दीवारों पर अंकित किए गये। कुछ धार्मिक संप्रदायों ने सांस्कारिक सम्भोग को अपनी धार्मिक पूजा के अंग के रूप में प्रारंभ किया तथा इसे मुक्ति प्राप्ति का एक शक्तिशाली साधन माना। परन्तु उत्तर मध्ययुगों की अतिशयोक्तिपूर्ण यौन सम्बन्धी धार्मिकता का तात्पर्य केवल गम्भीर कामुकता से था जो भारतीय सामाजिक जीवन में सदैव विद्यमान रही। यौन–क्रिया वास्तव में प्रत्यक्ष रूप से धार्मिक कर्तव्य था। पति को प्रत्येक मासिक धर्म की समाप्ति पर आठ दिन के अन्तर्गत अपनी स्त्री के साथ अवश्य सम्भोग करना चाहिए।"[1]

यह सब साहित्य का आकार बना इसके विपरीत जो स्वस्थ परम्परा प्राचीन वैदिक काल में थी उनका वैज्ञानिक अर्थ न निकालकर उसे सुख प्राप्ति का साधन बनाया जो मनोरंजन तो करता ही था साथ ही ऐसे साहित्यकार को शासनाध्यक्ष स्वर्णमुद्रा देकर प्रोत्साहित भी करते थे। राजाओं की वासना पूर्ण करने युक्त साहित्य की ओर ही कवियों, लेखकों का ध्यान जाना संभव था। इससे सम्मान तथा अर्थ की सिद्धि होती थी और जो शासन तंत्र के प्रमुख थे वे वैदिक ज्ञान से नितान्त दूर थे। प्रमाद एवं भोग ही उनके राज्य का प्रमुख संचालन बन चुका था "स्त्री की स्थूल जंघाएँ, चौड़े नितंब परन्तु अत्यधिक क्षीण

कटि और भारी स्तन आदि हैं जो शारीरिक सुख प्राप्ति के निमित्त ही चुने गये प्रतीत होते हैं। अपनी नायिकाओं का विलासितापूर्ण शब्दों में स्वच्छन्द वर्णन कवियों का प्रिय विषय रहा है।"[2]

1857 की क्रांति केवल मात्र स्वतंत्रता के लिए ही क्रान्ति नहीं थी इसमें सभी तरह के सामाजिक बदलाव की माँग थी। धीरे–धीरे स्त्री के प्रति सम्मान में बढ़ोतरी होने लगी। 19वीं शताब्दी के साहित्य में स्त्री को वापस प्रतिष्ठा पूर्वक सम्मान की स्थिति प्राप्त होने लगी। 1857 के आस–पास ही स्वामी दयानन्द का भारत सुधार कार्य प्रारंभ होकर 1883 तक चला इसका असर सम्पूर्ण स्वतंत्रता पूर्व साहित्य पर एवं स्वातंत्र्योत्तर साहित्य पर पड़ा जिसमें भारतेन्दु हरिशचन्द्र से महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रसाद, पंत, निराला, दिनकर, गुप्त, चतुरसेन शास्त्री एवं आज के कवि, कथाकार, लेखक भी कहीं न कहीं आंशिक अथवा पूर्णतः दयानन्द से प्रभावित हुए बिना न रह सके। यहाँ आते–आते साहित्य में स्त्री का स्वरूप व अवधारणा दोनों में आमूलचूल परिवर्तन हुआ है।

2.1 वैदिक साहित्य में स्त्री विमर्श : स्वरूप एवं अवधारणा

वेद ईश्वर द्वारा प्रदत्त स्वप्रमाणित ज्ञान हैं यह ईश्वर की आज्ञा भी है वेदों की रचना मुख्यतः अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों ने की। सृष्टि को सुचारू एवं उन्नत क्रम से चलाने के लिए ईश्वर इन ऋषियों की आत्मा को निर्दिष्ट करता है। सृष्टि के अस्तित्व में आने के साथ जीवन प्रारम्भ होता है। वेदों की रचना आरम्भ हो जाती है। अर्थात् जितना प्राचीन ईश्वर उतना ही प्राचीन वेद है। वेदों की प्राचीनता को सम्पूर्ण विश्व एक मत से स्वीकारता है।

सृष्टि के प्रारम्भ से महाभारत युद्ध के एक सहस्र वर्ष पूर्व तक तथा कुछ अंशों में महाभारत युद्ध तक वैदिक युग माना जाता है। इस कारण से सृष्टि प्रारंभ से महाभारत तक वेदों के अतिरिक्त जो भी ग्रन्थ ऋषियों के द्वारा लिखे गए हैं वे सभी वैदिक कालीन कहलाएँगे। जैसे वेद, वेदांग, उपनिषद्, दर्शन, ब्राह्मण, व्याकरण आदि ये सब वेदों पर अनुसंघानात्मक ग्रन्थ हैं।

इस पूरे काल में जो भी स्त्री–विमर्श हुआ वह अत्यन्त ऊर्जावान था। सम्पूर्ण साहित्य स्त्री के सम्मान एवं गुणों की व्याख्या करता हुआ उसे गौर्वान्वित प्रशस्ति प्रदान करता है। वेदों में नारी के शील, गुण, कर्त्तव्य और अधिकारों का विषद वर्णन है। ऐसा उदात्त चित्रण संसार के किसी अन्य धर्मग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता।

वेदों में नारी का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुरुष और नारी समाज रूप और राष्ट्र रूप रथ के दो पहिये हैं जैसे एक पहिए से रथ नहीं चल सकता वैसे ही अकेले पुरुष या अकेली नारी से समाज और राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। प्रत्येक क्षेत्र में एक इकाई दूसरी इकाई की पूरक होती है। वैदिक साहित्य में पत्नी ही घर का आधार थी। घर की सुरक्षा, व्यवस्था, संचालन, निरीक्षण और समुन्नयन का पूरा उत्तरदायित्व पत्नी पर होता था। "पत्नी ही घर है"[3] पत्नी के कर्तव्य व महत्व दोनों मुख्य थे। वह परिवार की समृद्धि का आधार सुख की मूल, सन्तानोत्पत्ति का आधार थी। सुशील स्त्रियाँ पति को प्रिय होती थीं। वेद में उसे पति के समकक्ष रखा गया है। जैसे पत्नी के लिए पति आदर और स्नेह के योग्य है, वैसे ही पत्नी भी पति के लिए सम्मान और स्नेह की पात्र है। वेद में पति–पत्नी दोनों को दम्पती अर्थात् घर के स्वामी कह कर पुकारा है। 'वैदिक इण्डैक्स' के लेखक मैकडॉनल और कीथ 'दम्पती' शब्द के विवरण में लिखते हैं कि द्विवचनान्त रूप में पति–पत्नी दोनों के लिए 'दम्पती' शब्द का प्रयोग यह सूचित करता है कि ऋग्वेद के समय तक पत्नी को बहुत उच्च स्थान प्राप्त था।

वेद के अनुसार वधू पति–गृह में दासी बनकर नहीं, प्रत्युत "सम्राज्ञी बनकर आती है।"[4] वह केवल पति की दृष्टि में ही नहीं, अपितु सास, श्वसुर, देवर, ननद सबकी दृष्टि में "सम्राज्ञी होती है।"[5] पति उसके सम्पूर्ण दायित्व का निर्वाह करता है और कहता है "तुम मेरे साथ रहती हुई संतान और धन किसी भी दृष्टि से कष्ट अनुभव नहीं करोगी।"[6] "तुम मेरी आयु का अपहरण मत करना मैं तुम्हारी आयु का अपहरण नहीं करूँगा।"[7] "तुम गृहाश्रम को पूर्ण बनाना, इसमें पैदा होने वाले छिद्रों को भरना और अविचल होकर रहना।"[8] "मैं तुम्हें हृदय में रखने के लिए ग्रहण करता हूँ।"[9] "पत्नी को वह सत्य की विधात्री मानता है।"[10] वह कामना करता है कि सब देव हम दोनों को एक कर दें, "हम दोनों के हृदय ऐसे एक हो जाएँ जैसे पानी में पानी मिलकर पानी एक हो जाता है।"[11] इस प्रकार पति के घर में आने पर वह वधू प्रत्येक सदस्य के द्वारा अपने गुणों एवं कर्मों से उच्च स्थान प्राप्त थी।

स्त्री का सामाजिक स्तर भी अत्यधिक ऊँचा था वह "मङ्गलमयी और सुखमयी होती हुई पति–गृह में विशेष शोभा को प्राप्त करे।"[12] सारा समाज उसे "यशोमयी, कर्मण्य और सत्यं–शिवं–सुन्दरम् का आदर्श मानता है।"[13] वैदिक साहित्य में नारी की अन्य उक्तियाँ भी उसे दीन–हीन नहीं अपितु "गृहाश्रम की पताका, गृहाश्रम–रुप शरीर का मस्तक"[14] और "शत्रुओं से लोहा लेने वाली वीरांगना सिद्ध करती है।"[15] वैदिक मंत्रों में

अन्यत्र विश्लेषण करने पर वैदिक नारी अत्यन्त उज्ज्वल, प्रतापमयी, पति और सन्तानों के जीवन को ऊँचा उठाने वाली, सौहार्दमयी और यशोमयी के रूप में प्रकट होती है।

ध्यातव्य है कि वेदों में जो पृथिवी, उषा, नदी और गाय के वाची नाम हैं, वे प्रायः नारी के वाचक भी हैं। वे सब भी नारी की उच्चता और विविधतादि गुण–गरिमा पर प्रकाश डालते हैं, यथा– "पृथिवीवाची"[16] नामों में गौ, क्षमा, क्षिति, अवनि, उर्वी और मही शब्द नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः नारी की गमनशीलता कर्मण्यता क्षमाशीलता, निवासक शक्ति, रक्षक शक्ति, विशालता और पूज्यता को सूचित करते हैं। "उषा वाची"[17] नामों में विभावरी, सूनरी, चित्रामघा, अर्जुनी वाजिनी, सुन्मावरी और सूनृता नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः उसकी ज्ञानज्योतिर्मय, शुभ नेतृत्व क्षमता, अद्भुत ऐश्वर्यशालिता, सत्वगुणप्रधानता, बलवत्ता, सुखदायकता और सत्यमधुरभाषिता को व्यक्त करते हैं। "नदीवाची"[18] नामों में स्त्रोत्या, एनी, धुनि, रुजाना, सरित् हरित्, अग्रु, हिरण्यवर्णा, पयस्वती, सरस्वती, तरस्वती और माता नाम नारी के भी वाचक होते हुए क्रमशः उसकी कुलीन स्रोत से उत्पत्ति, गतिमयता, शत्रु–प्रकम्पकता, विघ्न, भञ्जकता, निरन्तर प्रवहमानता, दोषहरणशीलता, अग्रगामिता, ज्योतिर्मयता, प्रशस्त–दुग्धता, विविध विद्यारसमयता, वेगशालिता तथा मातृत्वमहिमा को सूचित करते हैं। "गाय वाची"[19] नामों में अघ्न्या, उस्रिता मही, अदिति, इड़ा, जगती और शक्वरी शब्द नारी के भी वाचक होते हुए उसकी अहन्तव्यता (अपीडनीयता), ऐश्वर्य–प्रवाहकता, पूज्यता, अपराजेयता, सम्मानार्हता स्तोतव्यता, जङ्गमशीलता और सामर्थ्यशालिता को द्योतित करते हैं।

यहाँ पर स्त्री की स्थिति अत्यन्त यशस्वी और गरिमामयी है। कुछ आलोचकों का कथन है कि वेदों में नारी को हीन दृष्टि से देखा गया है इसकी पुष्टी में वे एक तर्क यह प्रस्तुत करते हैं कि वेदों में सर्वत्र पुत्र ही माँगे गये हैं। पुत्रियों की कामना कहीं दिखाई नहीं देती वस्तुतः यह स्थापना सही नहीं है। हमें इस तथ्य की ओर ध्यान देना आवश्यक है कि वैदिक कोश निघण्टु के अनुसार अपत्यवाची पन्द्रह शब्द इस प्रकार हैं–

"तुक। तोकम्। तनयः। तोक्म। तक्म। शेषः। अप्नम्
गयः। जाः। अपत्यम्। चहुः। सूनुः। नपात्। प्रजा। बीजम्।।
इति पञ्चदश अपत्यनामानि।"[20]

यह व्याकरण की भाषा है। किसी भी साहित्य को समझने के लिए उसकी व्याकरण समझना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु वेद परिशुद्ध संस्कृत में हैं अतः यहाँ पर समझ की आवश्यकता अधिक है। जहाँ शुद्धता शुचिता अधिक हो वहाँ पर समझ की भी अत्यधिक

व्यापकता होना चाहिए। अतः अपत्य का अर्थ सन्तान होता है जिसमें पुत्र और पुत्री दोनों सम्मिलित हैं इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त शब्दों से जहाँ सन्तान–प्राप्ति की प्रार्थना वेदों में मिलती है, वह पुत्र और पुत्री दोनों के लिए है। यह भी द्रष्टव्य है कि सन्तान की सर्वाधिक वैदिक प्रार्थनाएँ 'प्रजा' शब्द से है और प्रजा से पुत्र–पुत्री दोनों का ग्रहण होता है। निघण्टु का प्रमाण हमारे सम्मुख न भी होता तो भी 'प्रजा' से केवल पुत्र का अर्थ कोई गृहीत नहीं करता। वेदों में प्रजा की कई प्रार्थनाएँ हैं।

"सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा"[21] "ज्योग् जीवन्त : प्रजया सचेमहि"[22] "प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः"[23] "आप्यायमाना : प्रजया धनेन"[24] "इह प्रियं प्रजया ते समृध्यताम्"[25] "आ न : प्रजां जनयतु प्रजापतिः"[26] "मा हास्महि प्रजया मा तनूभिः"[27] "समहमायुषा सं वर्चसा सं प्रजया"[28] "सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम्"[29] "प्रजया च बहुं कृधि"[30] "अग्निः प्रजां बहुलां मे करोतु"[31] "प्रजां देवि दिदिड्ढि नः"[32] "मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च"[33] "सूर्यामिव परिधत्तां प्रजया"[34] "इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु"[35] "इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै"[36] "प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्"[37] इसके अतिरिक्त वेदों में कई स्थलों पर स्पष्ट भी कन्या या पुत्री की कामना मिलती है, यथा– "मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हों और पुत्री भी विशेष तेजस्विनी हो"[38] "यज्ञ करने वाले पति–पत्नी पुत्रों और कुमारियों वाले होते हैं।"[39] "प्रति प्रहर हमारी रक्षा करने वाला पूषा परमेश्वर हमें कन्याओं का भागी बनाए अर्थात् कन्याएँ प्रदान करे।"[40] यजुर्वेद की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय प्रार्थना में जहाँ यह इच्छा व्यक्त की गई है कि हमारे राष्ट्र में विजयशील, सभ्य, वीर युवक पैदा हों, वहाँ साथ ही "बुद्धिमती नारियों"[41] के उत्पन्न होने की भी प्रार्थना है।

एक अन्य स्थान पर खड़ाऊँ पहनकर खुटर–खुटर करती हुई दो नन्हीं कन्याओं से उपमा देता हुआ वेद कहता है "ये टप–टप चलती हुई घोड़ियाँ अपनी चालों में ऐसी शोभित हो रही हैं, जैसे लकड़ी की खड़ाऊँ पहनकर घर के आँगन में खुटर–खुटर चलती हुई कन्याएँ शोभित होती हैं।"[42] "जैसा यश कन्या में होता है, वैसा यश मुझे प्राप्त हो।"[43] इस प्रकार के वैदिक वर्णन कन्याओं की स्पृहणीयता को ही सूचित करते हैं। वेद कहता है "हे शचीपति इन्द्र ! मैं पत्नी का इच्छुक हूँ, मुझे पत्नी प्रदान करो"[44] यदि वेद कन्या–जन्म को अवाञ्छित मानता है, तो फिर यह पत्नी माँगने की बात कैसे सङ्गत होगी ? वेदों में इन्द्र, वरुण आदि प्रत्येक देव की अपनी–अपनी पत्नी होना, कई देवों का दुहिता को जन्म देना, विवाह का महत्त्वपूर्ण स्थान होना आदि वर्णनों को देखते हुए भी यह स्थापना करना कि कन्या–जन्म वेदों को अवाञ्छित है, एक दुस्साहस मात्र है।

कन्या जन्म वेद को अवाञ्छित है ? इस पक्ष में अथर्ववेद के दो स्थल प्रायः उद्धत किये जाते हैं पहला है–"स्त्री का जन्म कहीं अन्यत्र हो, इस गर्भ से तो पुरुष सन्तान ही हो।"[45] जिस सूक्ति का यह मंत्र है उसमें कुल तीन मंत्र हैं। प्रकरण यह प्रतीत होता है कि किसी नारी के केवल कन्याएँ ही उत्पन्न होती हैं, उसकी चिकित्सा का इसमें वर्णन है। जिस शमी वृक्ष के ऊपर पीपल उग आया हो, उस पीपल की जड़, छाल, पत्र, फल आदि के समुचित प्रयोग से उस नारी का उक्त दोष दूर हो सकता है, इसका संकेत इस सूक्त में है उक्त प्रयोग से यह नारी पुत्र को प्रसव करे, कन्या–जन्म अन्यत्र वहाँ हो जो कन्या को चाहते हैं– यह उद्धत पंक्ति का तात्पर्य निकलता है। इससे कन्या की अवाञ्छनीयता सिद्ध नहीं होती।

दूसरा है– पिङ्ग रक्ष जायमानं मा पुमांसंस्त्रियं क्रन् सायणादि इसका अर्थ यह करता है कि हे पति! उत्पन्न होने वाले पुत्र की रक्षा करो, उसे स्त्री न बनाओ। वस्तुतः यह मन्त्र गर्भ–रक्षा के प्रकरण का है। 'पिङ्ग' पति के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है, किन्तु ओषधि–विशेष है। सायण के अनुसार यह 'श्वेत सरसों' है। पिङ्ग ओषधि के प्रयोग से गर्भपिण्ड के भक्षक रोग–कृमियों को नष्ट किया जा सकता है, यह मंत्र में वर्णित किया गया है। पूरा मंत्र और उसका अर्थ इस प्रकार है–

"पिङ्ग रक्ष जाय मानं, मा पुमांसं स्त्रियं क्रन्।
आण्डादो गर्भान् मा दभन्, बाधस्वेतः किमीदिनः।।

हे पिङ्ग ओषधि ! तू उत्पन्न होने वाले शिशु की रक्षा कर। गर्भाण्ड को खा जाने वाले रोग–कृमि गर्भ में चाहे पुत्र हो, चाहे कन्या हो, उसे पीड़ित न कर सकें। वे गर्भों को नष्ट न कर पाएँ। यहाँ से गर्भाशय से गर्भ–भक्षक रोग–कृमि–रूप राक्षसों को दूर कर।"[46]

सायण का भी पहला अर्थ यही है इस सही अर्थ को देकर फिर वैकल्पिक रूप में दूसरा अशुद्ध अर्थ देने की न जाने क्यों उसने आवश्यकता समझी। 'मा पुमांसं स्त्रियं क्रन् का गर्भस्थ पुरुष को स्त्री मत बना देना' यह अर्थ संगत भी नहीं है क्योंकि गर्भ में यदि वस्तुतः पुत्र है, तो उसे कन्या भला कौन बना सकता है ? अगले मंत्र में नारी गर्भाशय के दोष बताये गये हैं। 'अप्रजास्त्वं मार्तवत्सम्' अर्थात् गर्भस्थित न होने के कारण सन्तान न होना अथवा मृत सन्तान होना। ये दोष उचित चिकित्सा से पिङ्ग ओषधि द्वारा दूर किए जा सकते हैं– यह तात्पर्य है।

वेदों में नारी की स्थिति हीन सिद्ध करने के लिए अन्य पक्षों की ओर से ऋग्वेद के दो मंत्रों का प्रायः उदाहरण दिया जाता है पहला–

"इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्, स्त्रिया अशास्यं मनः।
उतो अह क्रतुं रघुम।।"[47]

इस मंत्र का उनकी ओर से यह अर्थ किया जाता है कि स्वयं इन्द्र ने कहा है कि स्त्री के मन पर शासन नहीं किया जा सकता और उसकी बुद्धि तुच्छ होती है। सायण को भी यह अर्थ अभिप्रेय प्रतीत होता है। पर खेद है कि मन्त्र का अर्थ सर्वथा विपरीत किया गया है। वास्तविक अर्थ तो यह है कि स्त्री के मन पर शासन या अंकुश नहीं रखा जाना चाहिए, पुरुष के समान उसे भी विचारों की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए। उसके अन्दर भी जो वैचारिक शक्ति है, उसका परिवार, समाज और राष्ट्र को लाभ मिलना चाहिए। दूसरी बात मंत्र में यह कही गई है कि स्त्री का क्रतु 'रघु' होता है। "क्रतु शब्द वैदिक कोश निघण्टु में कर्म और बुद्धि का वाचक है।"[48] रघु शब्द वेदों में कहीं भी तुच्छ के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है। भले ही लौकिक संस्कृत में इसका एक अर्थ छोटा या तुच्छ भी होता है। प्रस्तुत स्थल के अतिरिक्त वेदों में यह शब्द विभिन्न विभक्तियों में तथा समस्त रूप में अनेक बार आया है। वहाँ भी इसका अर्थ फुर्तीला, वेगवान या क्रियाशील ही किया है। जब अन्य किसी स्थल में रघु का अर्थ तुच्छ नहीं है तो फिर नारी के प्रकरण में ही तुच्छ अर्थ किया जाना क्या वेद और नारी दोनों के प्रति अन्याय नहीं है ? उतो अहं क्रतुं रघुम् का सही अर्थ यह होगा कि नारी का क्रतु, अर्थात् उसकी बुद्धि और क्रियाशीलता बहुत तीव्र होती है। इस प्रकार नारी की हीनता के लिए प्रस्तुत किया गया यह मंत्र वस्तुतः नारी की हीनता का द्योतक नहीं, प्रत्युत उसकी गरिमा का ही द्योतक है।

दूसरा स्थल जो नारी को वेद की दृष्टि में हीन सिद्ध करने के लिए प्रतिपक्ष की ओर से प्रस्तुत किया जाता है इस प्रकार है– "न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता"[49] अर्थात् स्त्रियों से मित्रता करना अच्छा नहीं होता, उनकी मित्रताएँ लक्कड़बग्घों के हृदय के समान क्रूर होती हैं। प्रथम दृष्टि में यह वाक्य स्त्री–निन्दा–परक ही प्रतीत होता है। यह मंत्र पुरुरवा–उर्वशी–संवाद का है। पुरुरवा अत्यधिक कामसक्त है। उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए स्वयं उर्वशी की ओर से यह वचन कहा गया है, जिसका अभिप्राय यह है कि स्त्रियों की बहुत अधिक कामासक्तियाँ ठीक नहीं होती, अन्ततः यह कामासक्तियाँ लक्कड़बग्घों के हृदय–जैसी क्रूर और विघातक सिद्ध होती हैं। स्त्री स्वयं अपनी निन्दा भला क्यों करेगी ? वेद की दृष्टि में तो न नारी निन्दनीय है, न पुरुष निन्दनीय है, नारी या पुरुष के अवगुण

ही उन्हें निन्दनीय बनाते हैं। इसलिए वेद कहता है–

"उत त्वा स्त्री शशीयसी, पुंसो भवति वस्यसी।
अदेवत्रादराधसः।।
विया जानाति जसुरिं, वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।
देवत्रा कृणुते मनः।।"[50]

अर्थात् जो देवज्ञ नहीं करता और विद्वानों की रक्षा नहीं करता और जो धनादि का दान नहीं करता या किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त नहीं करता, ऐसे पुरुष से तो एक स्त्री अधिक अच्छी है, जो प्रशंसनीय और उद्यमी होती है जो आपत्तियों से प्रताड़ित को जानती है प्यासे को जानती है, धनादि की अभिलाषा को जानती है (और उसकी सहायता करती है।) तथा जो परमात्मदेव, पतिदेव, सास–श्वसुर आदि देव व अतिथि आदि देवों की सेवा में मन लगाती है।

"उत घा नेमो अस्तुतः, पुमाँ इति ब्रुवे पणिः।
स वैरदेय इत् समः।।"[51]

अर्थात् इसके विपरीत निश्चय ही कोई अप्रशंसित कृपण मनुष्य मैं पुरुष हूँ ऐसा कहता है, अर्थात् अपने पुरुष होने का अभिमान करता है, तो वह शत्रु के ही समान है।

बहुपत्नी प्रथा – कुछ आलोचकों का कथन है कि वैदिक काल में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। वे ऋग्वेद के मंत्र 10/145 तथा अथर्ववेद के मंत्र 3/18 का उदाहरण देते हैं और वैदिक काल में एक पुरुष के कई पत्नियाँ होने की बात करते हैं पत्नियों का सारा समय प्रायः इसी बात में व्यतीत हो जाता था कि वे कैसे अपनी सौतों को नष्ट करके पति की मुख्य कृपापात्र बन सकें। परन्तु यह स्थापना सही नहीं है। वेदों पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने वाले विद्वान् भी यह मानने के लिए बाध्य हुए हैं कि वेद बहुपत्नीत्व के समर्थक नहीं हैं। उदाहरणार्थ जर्मन विद्वान् "त्सिमर"[52] का विचार है कि ऋग्वेद के समय तक बहुपत्नीत्व की प्रथा समाप्त हो चली थी और उसके स्थान पर एक पत्नीत्व की प्रथा आरम्भ हो गई थी।

ऊपर ऋग्वेद और अथर्ववेद के जिन दो सूक्तों का उल्लेख किया गया है, वे दोनों सूक्त शब्दों के तथा मंत्र क्रम के कुछ सामान्य परिवर्तन के साथ दोनों वेदों में एक से ही हैं, यद्यपि ऋषि और देवता में अन्तर है। ऋग्वेद में ऋषि इन्द्राणी है और देवता सपत्नीबाधाव उपनिषत्, किन्तु अथर्ववेद में ऋषि अथर्वा है और देवता वनस्पति। ऋग्वेद में इस सूक्त का उपनिषत् कहना इस बात का ज्ञापक है कि इसमें आध्यात्मिक रहस्य का वर्णन हुआ

है तो भी इस विस्तार में न जाकर सपत्नियों (सौतों) के निवारण पक्ष में ही हम सूक्तों का आशय देखते हैं। दोनों सूक्तों में यह कहीं नहीं कहा कि एक पत्नी की अनेक सौतें हो चुकी हैं और उन पर वर्तमान सब सौतों को नष्ट करके कोई एक पत्नी स्वयं पति की कृपापात्र बनना चाहती है। असल में सौतें विद्यमान नहीं हैं, पत्नी को यह आशंका है कि यदि मुझसे सन्तान न हुई तो कहीं पति दूसरा विवाह करके सौत को न ले आए। इसलिए वह कह रही है कि मैं अमुक औषधि को खोदकर लाती हूँ तथा उसका सेवन करती हूँ, जिससे मैं सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो सकूँ तथा घर में सपत्नी न आ सके।

"इमां खनाम्योषधिं, वीरुधां बलवन्तमासम्।
यया सपत्नीं बाधते, यया संविन्दते पतिम्।।"[53]

अर्थात् मैं इस औषधि को खोदती हूँ जो सन्तानोत्पादन का सामर्थ्य देने वाली औषधियों में सबसे अधिक बलवती है जिसके प्रयोग से कोई नारी सौत को अर्थात् सौत आने को रोक सकती है तथा जिसके प्रभाव से वह पति को जीत लेती है। अब हम इस बात का यह अनुमान लगा सकते हैं कि वैदिक युग में नारी कितनी ऊर्जावान थी कि उसमें वे सभी प्रबन्धन के गुण थे जिससे एक परिवार रुपी उद्योग जो एक शसक्त राष्ट्र का निर्माण करता है उसे किस भाँति सम्हालती है तथा शासन करती है। वह अन्य गुणों के साथ शरीर विज्ञान को भी जानती है हम उसे आज की भाषा में सही मायने में चिकित्सक की संज्ञा दे सकते हैं उसमें वे सारे गुण समाहित थे जो एक कुशल चिकित्सक में पाये जाते हैं यह सब समाज को सुदृढ़ करने के ही तो गुण थे।

वेद में एक पत्नी का ही विधान था केवल सायण आदि ने ऋग्वेद और अथर्ववेद दोनों में ही इन सूक्तों की व्याख्या में आपस्तम्ब–गृह्यसूत्र तथा कौशिक–सूत्र से सौत को मारने के टोटके उद्धृत किये हैं तथा ओषधि का नाम पाठा लिखा है। ये टोटके तथा सायण की तदनुकूल व्याख्या ही भ्रम उत्पन्न करने में कारण बने हैं। ऋग्वेद में एक और सूक्त "उदसौसूर्यो"[54] है जिसके अन्तिम दो मंत्रों को सौतों पर विजय पाने के रूप में व्याख्यात किया जाता है। इसमें शची या इन्द्राणी आत्म परिचय दे रही है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (9/9) में इसे भी विद्यमान सौतों को मारने की क्रिया में विनियुक्त किया है, जिसे सायण ने सूक्त व्याख्या के आरम्भ में उद्धृत भी किया है। शची का अर्थ निघण्टु के अनुसार 'कर्म' है एवं कर्मवती नारी ही शची है। 'इन्द्राणी' शब्द से उसका वीराङ्गना होना सूचित होता है। इन्द्र वीर पुरुष है, उसकी पत्नी इन्द्राणी कहलाती है सारे सूक्त में उस वीराङ्गना के वीरता भरे उद्‌गार हैं।

"असपत्ना सपत्नघ्नी ज्यन्त्यभिभूवरी।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव।।"[55]

इसमें 'सपत्नी' शब्द अवश्य आया है जिसका एक अर्थ सौत भी होता है, परन्तु यहाँ सपत्नी का अर्थ शत्रु सेना से है वीरांगना कह रही है कि मैं शत्रुहीना, शत्रुनाशिनी जयवाली हूँ मैंने इन सब शत्रु सेनाओं को जीत लिया है जिससे मैं अपने वीर पति की तथा जन साधारण की दृष्टि में विशेष तेजस्विनी गिनी जाऊँ। मंत्र का सौत परक अर्थ संगत भी नहीं है क्योंकि इन्द्राणी की कोई सौत भी थी ऐसा वर्णन वेदों में कहीं नहीं आता और फिर सौत हो भी तो उसे मार डालने में वीरता कैसी, वह तो एक जघन्य कार्य है।

कुछ लोग वेदों में बहुपत्नीत्व की पुष्टि के लिए यजुर्वेद 23वें अध्याय के मंत्र 24 से 31 तक की ओर संकेत करते हैं जिनमें महीधर की व्याख्या के अनुसार राजा की चार पत्नियाँ महिषी, वावाता, परिवृक्ता और पालागली क्रमशः ब्रह्मा, उद्गाता, होता और क्षत्ता नामक ऋत्विजों से हास-परिहास करती हैं पर वस्तुतः मन्त्रों में इन पत्नियों का कहीं नाम नहीं है। यह व्याख्याकारों की अपनी कपोल कल्पना है। वास्तविक अर्थों के परिज्ञान के लिए उक्त मंत्रों पर स्वामी दयानन्द का भाष्य देखना चाहिए।

वेद की दृष्टि में एकाधिक पत्नियों का होना कैसा विकट है यह निम्न लिखित उपमा से सूचित होता है।

"उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानो अन्तर्योनेव
चरति द्विजानिः।"[56]

अर्थात् रथ में दोनों धुरों के बीच में जुता हुआ कष्ट से हिन-हिनाता हुआ घोड़ा ऐसे चल रहा है, जैसे घर में दो पत्नियों वाला पुरुष दोनों ओर से खींचा जाता हुआ, कष्ट में बकझक करता हुआ दिन व्यतीत करता है। इस प्रकार कई उदाहरण वेद में मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि वेद में बहु पत्नी प्रथा नहीं थी वहाँ एक पत्नी की विशालता थी। **"सं मा तपन्त्यमितः सपत्नीरिव पर्शवः"**[57]

कूप पतित जित ऋषि कह रहा है कि ये कुएँ में चारों ओर लगी ईटें मुझे ऐसे संतप्त कर रही हैं जैसे सौते पति को संतप्त करती हैं।

"जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे
पुर इन्द्रः सु सर्वाः।"[58]

इन्द्र ने समस्त शत्रु परियों को ऐसे ही मिटा डाला जैसे कई पत्नियों का समान पति उन पत्नियों को बर्बाद कर देता है। वेद इन उपमाओं द्वारा यह सूचित करता है कि एकाधिक पत्नियों से विवाह करने में न पति को सुख मिल पाता है न ही पत्नियों को। इस प्रकार परीक्षा से यह स्पष्ट है कि वेद बहुपत्नीत्व के समर्थक नहीं।

बहुपत्नी प्रथा योजना – कुछ वेद मंत्रों में नारी या पत्नी का वाचक शब्द एक वचनान्त प्रयुक्त हुआ है तथा पुरुष वाचक शब्द बहुवचनान्त है, यथा– "आरेह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणुष्व।"[59] अर्थात् हे सूर्या! तू अमृतमय सोमलोक में जा और विवाह को पतियों के लिए सुखकारी बना। यहाँ वधू अकेली सूर्या है, किन्तु पति शब्द में बहुवचन है। इसी प्रकार "आत्मन्वत्युर्वरा नारी यमागन्तस्यां नरो वपत वीजमस्याम्"[60] अर्थात् यह उर्वरा नारी आई है, हे पुरुषों! इसमें बीजारोपण करो। यहाँ भी नारी एक है तथा बीजा रोपण करने वाले पुरुष अनेक हैं। वस्तुतः प्राकृतिक सोम (चन्द्रमा) और सूर्या (सूर्य प्रभा) के विवाह के प्रतीक को लेकर अथर्ववेद काण्ड 14 के दोनों सूक्तों में विवाह का वर्णन है। प्रथम मंत्रांश का आशय यह होगा कि हे सूर्या! तू अमृत के लोक सोम को प्राप्त हो और अपने विवाह को अन्य पतियों के लिए भी सुखकर बना, अर्थात् तेरे विवाह के अनुरूप अन्य पति भी योग्य वधुओं को प्राप्त करते रहें। द्वितीय से प्रत्येक को अपनी–अपनी नारी (पत्नी) प्राप्त हुई है उसमें बीजारोपण करो। यह भी द्रष्टव्य है कि इन मन्त्रों से पूर्ववर्ती तथा पश्चाद्वर्ती सब मंत्रों में पति के लिए एक वचन ही प्रयुक्त हुआ है। यदि एक नारी अनेक पुरुषों को दी जा रही होती तो प्रारम्भ से अन्त तक 'पति' के लिए सर्वत्र बहुवचन का ही प्रयोग होना चाहिए था। मैकडॉनल ने भी वैदिक इण्डैक्स में 'पति–पत्नी' शब्द के विवरण में अपना यह मत व्यक्त किया है कि बहुभतृत्व की प्रथा वैदिक नहीं है उसने वेबर का यह दृष्टिकोण भी दिया है कि पतियों में बहुवचन का प्रयोग केवल उनकी ऐश्वर्याभिव्यक्ति के लिए है।

विधवा की स्थिति – वेद में विधवा के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण प्रदर्शित किया गया है पति के मृत हो जाने पर उसके पास बैठकर या उसके ऊपर गिरकर उसका विलाप करना स्वाभाविक है ऐसे समय पतिगृह का देवर आदि कोई व्यक्ति उसे सम्बोधन करता हुआ कहता है कि यहाँ से उठो, जीवित जनों के बीच में आओ, धीरज धारण करो और इस पति से तुम्हारी जो सन्तान है, उसे देखकर अपना मन बहलाओ। यदि विधवा की आयु विवाह योग्य है तो उसके पुनर्विवाह की भी स्वीकृति वेद देता है। इस सम्बन्ध में अथर्ववेद, काण्ड 18 के तीन मंत्रों का उदाहरण देना शोधार्थी को उचित है। प्रथम मंत्र में मृत पुरुष के प्रति

कहा गया है कि पूर्वकाल से चले आ रहे नारी धर्म के अनुसार तेरी पत्नी को हम पतिगृह में ही रखेंगे, अतः तू अपनी संतान और सब सम्पत्ति इसे प्रदान कर। यद्यपि जिसका प्राणान्त हो चुका है वह अब अपने हाथ से कुछ भी प्रदान नहीं कर सकता, तो भी यह कहने की एक शैली है। अभिप्राय यह है कि तेरी संतान और सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी यही होगी।

"इयं नारी पतिलोकं वृणाना निपद्यत उप त्वा मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह धेहि।।"[61]

हे मरण धर्मा पुरुष पुरातन धर्म का अनुपालन करती हुई रहने के लिए पतिगृह को ही पसन्द करती हुई यह नारी तेरी पत्नी तुझ मृत के समीप नीचे भूमि पर बैठी है। संतान और सम्पत्ति यहाँ सौंप। इस मंत्र से यह ध्वनि निकलती है कि पति की मृत्यु के पश्चात् यदि पत्नी पतिगृह में ही रहती है अर्थात् उसी घर में देवर के साथ उसका विवाह हो जाता है या बिना विवाह किए उसी घर में जीवन व्यतीत करती है तो पति की सन्तान तथा उसकी सम्पत्ति की वह अधिकारिणी होती है। किन्तु यदि वह अन्यत्र विवाह कर लेती है तो पूर्व पति की संतान और सम्पत्ति का उत्तराधिकार उसे नहीं मिलता।

सायण के समय विधवा के सती होने की प्रथा प्रचलित थी अतः उससे प्रभावित होकर उसने इस मन्त्र का सहमरण परक अर्थ किया है, जो हास्यास्पद प्रतीत होता है। सायण का अर्थ इस प्रकार है– "स्मृति पुराण आदि में प्रसिद्ध सहमरण–रूप धर्म का परिपालन करती हुई यह नारी पतिलोक को अर्थात् जिस लोक में पति गया है उस स्वर्गलोक को सम्भजन करना चाहती हुई तुझ मृत के पास पहुँच रही है। अगले जन्म में तू इसे पुत्र पौत्रादि प्रजा और धन प्रदान करना।"[62] पुराण धर्म के प्रतिपादन के लिए उसने एक स्मृत वचन भी दिया है जिसका भाव है कि– "जो नारी पति के साथ अग्नि में प्रविष्ट हो जाती है वह पति का उद्धार कर देती है।"[63] परन्तु वेदों के बाद लिखे गए स्मृति–पुराणादि का हवाला वेद कैसे दे सकता है ? अतः यहाँ पुराण–धर्म का अभिप्राय है अनादि काल से चला आ रहा शिष्टजनसम्मत धर्म। फिर सायण का यह अर्थ उसी के द्वितीय मंत्र के अर्थ से भी विरुद्ध पड़ता है। जिसमें नारी को मृत पति के पास से उठाकर जीवलोक में आने के लिए कहा गया है। अगले जन्म में पति–पत्नी को सन्तान और धन कैसे देगा, इसका समाधान सायण यह करते हैं कि सहमरण के प्रभाव से जन्म–जन्मान्तर में भी पत्नी को वही पति मिलेगा। यह भी एक क्लिष्ट कल्पना है।

द्वितीय मंत्र में पत्नी को मृत पति के पास से उठने के लिए कहा जा रहा है।

"उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं, गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्ताग्राभस्य दधिषोस्तवेदं, पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।।"[64]

हे नारी तू इस निष्प्राण पति के पास पड़ी हुई है। आ! जीवितों के लोक में आने के लिए उठ। तेरा पाणिग्रहण करने वाले तथा तेरा धारण–पोषण करने वाले पति की यह सन्तान तू पा चुकी है। (इसी के पालन–पोषण में मन लगा)[65]

तृतीय मंत्र उस मृत पति वाली विधवा के विषय में है जो अभी युवती है तथा जिसने सम्बन्धी जनों के आग्रह पर दूसरा विवाह करना स्वीकार कर लिया है।

"अपश्यं युवतिं नीयमानां, जीवां मृर्तेभ्यः परिणीयमानाम्।
अन्धेन यत् तमसा प्रावृतासीत्, प्राक्तो अपाचीमनयं तदेनाम्।।"[66]

मैंने विधवा (युवती) को जीवित, मृतों के बीच से, अर्थात् श्मशान–भूमि से ले जाई जाती हुई तथा पुनर्विवाह की जाती हुई देखा है क्योंकि यह पति विरह जन्य दुःखरूप घोर अन्धकार से प्रावृत्त थी, इस कारण इसे पूर्व पत्नीत्व से हटाकर दूसरा पत्नीत्व मैंने प्राप्त करा दिया है।[67] मन्त्र का पूर्वार्ध पुनर्विवाह के प्रत्यक्षदर्शी की ओर से कहा गया है तथा उत्तरार्ध पुनर्विवाह करवाने वाले की ओर से जिसने पुनर्विवाह की व्यवस्था की है, वह कह रहा है कि इसके पति विरह के दुःख को दूर करने के लिए मैने इसका पुनर्विवाह करा दिया है। यहाँ युवती शब्द द्रष्टव्य है। यदि विधवा नारी युवती है, तो उसका दूसरा विवाह हो जाना ही अच्छा है– यह इससे ध्वनित होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद विधवाओं के सुख–सुविधापूर्ण तथा सम्मानित जीवन–यापन के लिए सतर्क है तथा वे चाहें तो उन्हें पुनर्विवाह की भी अनुमति देता है। सती–प्रथा या सहमरण का समर्थन किसी भी वेद में नहीं है। 'वैदिक इण्डेक्स' में पति–पत्नी शब्द के विवरण में मेकडॉनल लिखते हैं कि अथर्ववेद में सती प्रथा है किन्तु ऋग्वेद में नहीं है, 'प्रत्युत उसका देवर'[68] के साथ विवाह होना वर्णित है। अथर्ववेद में सती–प्रथा का होना उन्होंने केवल ऊपर उद्धृत एक मंत्र (18/3/1) के आधार पर माना है जिसका सायण ने सती–प्रथा परक अर्थ किया है जिसका खण्डन शोधार्थी पहले कर चुका है। मध्यकाल में बंगाल में कुछ पण्डितों ने "आरोहन्तु जनयो योनिम् अग्रे"[69] मंत्र में 'अग्रे' के स्थान पर 'अग्नेः' पढ़कर सती–प्रथा को वैदिक सिद्ध करना चाहा परन्तु यह उनका छल ही था,

क्योंकि वास्तविक पाठ 'अग्रे' ही है। मंत्र का आशय है कि गृह–प्रवेश में पत्नियाँ आगे–आगे चलें। 'अग्नेः' पाठ प्रचारित करके वे यह अर्थ करने लगे कि पत्नियाँ चिता की अग्नि में आरोहण करें।

दासी प्रथा योजना – कुछ आलोचकों का आक्षेप है कि वेदों में दासी प्रथा का भी उल्लेख आता है ऋग्वेद में राजा लोग अपने परिजनों और पुरोहितों को दासियों से भरे अनेक रथ आदि प्रदान कर देते हैं, यथा राजा स्वनय कक्षीवान् को वधुओं से भरे दस रथ देता है। पुरुकुत्स का पुत्र राजा त्रसदस्यु सोभरि ऋषि को 50 वधुओं का दान करता है।

वस्तुस्थिति यह है कि ऋग्वेद में कई राजाओं की दान स्तुतियाँ आती है। कात्यायन ने अपनी सर्वानुक्रमणी में ऐसी बाईस दान स्तुतियों का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक पक्ष वाले इन राजाओं को ऐतिहासिक व्यक्ति–विशेष मानते हैं, परन्तु यौगिक पक्ष के अनुसार ये ऐतिहासिक नाम न होकर गुणवाची नाम हैं। राजा किन गुणों वाले हों तथा वे सत्पात्रों को कैसा–कैसा दान करें, यह शिक्षा इन दान स्तुतियों से प्राप्त होती है। पूर्वोक्त दोनों प्रसंगों पर शोधार्थी द्वारा मंत्र को समझते हुए विचार करना है। **"उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ताः, वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः। षष्टि सहस्रमनु गव्यमागात्, सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम्।।"**[70]

राजा स्वनय से दिये हुए वधूयुक्त दस रंग–बिरंगे रथ मेरे समीप उपस्थित हो गए। एक हजार साठ गौओं का समूह उसके साथ प्राप्त हुआ। ये सब वस्तुएँ कक्षीवान् ने शुभ दिनों के आने पर प्राप्त कीं।

"अदान् मे पौरुकुत्स्यः, पञ्चाशतं त्रसदस्युर् वधूनाम्।
मंहिष्ठो अर्य्यः सत्पतिः।।"[71]

अतिशय दानी, प्रजाओं के स्वामी, श्रेष्ठों के रक्षक पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु राजा ने मुझे पचास वधुएँ प्रदान कीं। प्रथम उदाहरण में राजा 'स्वनय' है। 'स्वनय'[72] का अर्थ है अपनी विशेष दान आदि की नीति से सम्पन्न। दान का ग्रहीता 'कक्षीवान' है जिसका अर्थ है छात्रों की कक्षाओं को पढ़ाने वाला आचार्य। दान में मिले हैं दसरथ, जो वधूमान हैं एक रथ में एक वधू बैठी हो, शेष रथ खाली हों या अन्य सामान से भरे हों तो भी उनको 'वधूमान दसरथ' कहा जायेगा, जैसे एक वधू साथ होने पर बराती वधूमान कहलाते हैं। पर यहाँ मान लेते हैं कि दसों रथों में वधुएँ बैठी हैं एक–एक रथ में कम से कम पाँच और अधिक से अधिक दस भी बैठी हों तो पचास या सौ हो जाती हैं। दूसरी वस्तु दान में मिली

है एक हजार साठ गौ–समूह। एक–एक समूह में तीन–तीन भी गौएँ हों तो कुल गौएँ हो जाती हैं तीन हजार एक सौ अस्सी। ये सब वस्तुएँ कक्षीवान आचार्य को नीतिवित् राजा से दान में मिली हैं। दूसरे उदाहरण में राजा है 'पौरुकुत्स्य त्रसदस्यु' जो बहुत से वज्राहि शस्त्रास्त्रों का वेत्ता है। उसकी संतान पौरुकुत्स्य[73] कहलाती है। 'त्रसदस्यु'[74] वह वीर है जिससे दस्यु जन भयभीत हों। ग्रहीता 'सोभरि'[75] शिष्यों का साधु प्रकार से भरण–पोषण करने वाला आचार्य है। दान में मिली हैं पचास वधुएँ।

अब यह सोचने की बात है कि आचार्य इतनी सारी वधुओं और इतनी अधिक गौओं का क्या करेगा ? असल में राजा ने आचार्य के स्नातक शिष्यों का विवाह किया है और उन वरों के लिए तथा गुरुकुल की गोशाला के लिए गौएँ दी हैं। यह वैसा ही भाषा–प्रयोग है, जैसे कहा जाय कि "जनक ने दशरथ को चार वधुएँ दीं।" क्रिया में भूतकाल का प्रयोग कथानक का रूप देने के लिए किया गया है। अतः इस प्रकार के वर्णनों से यह उद्भावना करना कि दासी के रूप में अनेक वधुएँ दी जाती थीं न्यायसंगत नहीं है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि संस्कृत मे 'वधू'[76] शब्द का अर्थ केवल स्त्री और पत्नी ही नहीं होता, अपितु पुत्रवधू भी होता है।

नारी का यज्ञों, मांगलिक कार्यों में सर्वोच्च स्थान – इस बात को तो आज भी हम मानते व जानते हैं कि किसी भी अच्छे कार्यों में गृहप्रवेश से लेकर यज्ञ, विवाह आदि में स्त्री के बिना पूर्ण होना नहीं माना गया है।

वेद के अनुसार नारी का यज्ञ में अधिकार होना वस्तुतः विवाद का विषय नहीं है। अपितु विद्वत्सम्प्रदाय का यह प्रायः सर्वसम्मत विचार है। तो भी मध्यकाल के कतिपय अवेदज्ञ पण्डितों ने नारी को वेदों के अध्ययन और यज्ञ से वंचित कर दिया तथा अपना यह कार्य वेदानुमोदित ठहराया। याज्ञिकों में कोई–कोई सम्प्रदाय 'नारी का स्थान यज्ञवेदि से बाहर है'[77] ऐसा कहने लगे। जबकि याज्ञवल्क्य ने यह उद्घोषित किया था कि "बिना पत्नी के पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं है।"[78] मनुस्मृति तक में मिलावट कर दी गई और इस आशय का श्लोक प्रक्षिप्त कर दिया गया कि कन्या और युवति अग्निहोत्र की "होता नहीं बन सकती।"[79] मध्यकालीन साहित्य में क्योंकि नारी के यज्ञाधिकार के सम्बन्ध में अधिकतर विरोधी विचार मिलते हैं अतः इस विषय में वेद की स्थिति स्पष्ट कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। नारी यज्ञ के पक्ष में हम प्रथम उन वैदिक प्रमाणों को लेंगे जिनमें सायण, उवट एवं महीधर भी नारी का यज्ञो में अधिकार वर्णित मानते हैं। ऋग्वेद में ऐसी दो धेनुओं का वर्णन है जो दोनों एक ही बछड़े की ओर दौड़ती हैं। "समानं वत्समभि संचरन्ती विष्वग्धेनू विचरतः सुमेके।"[80]

इसकी व्याख्या में सायण लिखते हैं "यजमान और उसकी पत्नी ही दो धेनुएँ हैं और बछड़ा यज्ञाग्नि है।"[81] ऋग्वेद के मंत्र 5/26/1[82] का सायण ने यह अर्थ किया है।

"अग्नि प्रदीप्ति हो गई है, आकाश में तेज फैल रहा है, अग्नि उषा के अभिमुख हो विस्तीर्ण रूप से भासित हो रही है। ऐसे समय स्तोत्रों से इन्द्रादि देवों की स्तुति करती हुई, पुरोडाश आदि हवि से युक्त घृतभरी स्रुवा को साथ लेकर विश्ववारा (समस्त पाप रूप शत्रुओं की वारयित्री इस नाम की नारी) प्राङ्मुख होकर अग्नि में आहुती देने के लिए उसके पास पहुँचती है।"[83] ऋग्वेद 8/31/5[84] में यज्ञ की स्तुती करते हुए कहा गया है कि जो पति–पत्नी समान मन वाले होकर यज्ञ में सोमरस को अभिषुत करते हैं उसे गोदुग्ध के साथ मिलाते हैं हवि के योग अन्नादि को एकत्र करते हैं यज्ञ में स्थित हों देवों को उनका भाग देते हैं उन्हें अन्न, पुत्र, हिरण्य आदि की कमी नहीं रहती। सायण ने भी इन मंत्रों का ऐसा ही अर्थ किया है। ऋग्वेद 10/114/3[85] में चार जूड़ों वाली सुन्दर युवती की चर्चा है जिसके ऊपर वर्षा करने वाले दो सुपर्ण बैठे हुए हैं और जहाँ सब देव अपना–अपना भाग प्राप्त करते हैं। सायण ने इसकी एक व्याख्या यह की है कि "यह सुन्दर युवति अलंकृत यज्ञ वेदी है जिसे चतुष्कोण होने के कारण चार जूड़ों वाली कहा गया है और इस पर बैठे हुए दो सुपर्ण याज्ञिक पति–पत्नी हैं जिनके आहुती देने से सब देवों को उनका भाग प्राप्त होता है।"[86] इसके अतिरिक्त ऋग्वेद के अन्य प्रसंगों में भी यज्ञ में नारी का अधिकार समुन्नत है। "हवि से युक्त और घृत से युक्त युवति अग्नि के समीप आती है।"[87] यजुर्वेद में भी 'यद ग्रामे यदरण्ये' मंत्र पढ़कर पत्नी या पति–पत्नी दोनों करम्भ पात्रों को दक्षिणाग्नि में होम करते हैं। 'अक्रन् कर्म कर्मक्रतः' मंत्र भी पत्नी से पढ़वाया जाता है। 'त्र्यम्वकं यजामहे सुगन्धिं पति वेदनम्' मंत्र कुमारी द्वारा पढ़ा जाता है, जिसमें पति–प्राप्ति की प्रार्थना है। 'तं पत्नी भिरनुगच्छेम देवाः पुत्रैर् भ्रातृभिरुत वा हिरण्यैः' में कहा गया है कि हम पत्नियों, पुत्रों, भाईयों और सुवर्णादि द्रव्यों के साथ अग्नि का अनुसरण करें।

अथर्ववेद में भी नारी या पत्नी को अग्निहोत्र और यज्ञ करने की प्रेरणा की गई है पत्नी को कहा गया है कि तूने उस लोक में पदार्पण किया है, जो अग्निहोत्र करने वालों का लोक है। विशेष रूप से अग्निहोत्र की चर्चा करना इस बात का द्योतक है कि उसे भी इस पतिलोक में आकर अग्निहोत्र करना है। स्पष्ट रूप से परिवार के लोगों को प्रेरणा की गई है कि तुम मिलकर अग्निहोत्र किया करो। विवाह सूक्त में स्पष्ट शब्दों में चार स्थलों पर नव–वधू का अग्निहोत्र रूपी कर्तव्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है कि तू गृहाश्रम में गार्हपत्य अग्नि की पूजा किया करना। मृगचर्म पर चटाई बिछाकर उस पर बैठकर

अग्निहोत्र करना "क्योंकि अग्नि सब रोगादि राक्षसों को मार देता है।"[88] यज्ञ में स्त्री का महत्त्व ही नहीं बल्कि विवाह के बाद यह उसका प्रथम कर्तव्य भी है जो वह यज्ञ कर्म से सारे परिवार को सजग बनाए रखने में अहम भूमिका निभाती है। मृग चर्म के ऊपर चटाई बिछाना यह एक प्रकार की यौगिक चिकित्सा है इससे शरीर के भीतर की ऊष्मा बाहर नहीं आने पाती और यज्ञ की अग्नि कई प्रकार की ओषधि सामग्री से युक्त होने के कारण वह रोग रूपी राक्षस को मार देती है। विश्व में यदि प्रथम सुख है तो वह निरोगी काया का होना है मनुष्य शरीर निरोगी होने के उपरान्त ही सम्पूर्ण सुखों का आनन्द ले सकता है और वह सजग समाज की भूमिका अदा कर सकता है। अतः यज्ञ में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। वैदिक वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष के समाज में नारियों को बहुत गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। प्राचीन समय में स्त्रियों की शिक्षा–दीक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी और वे सामाजिक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। वे अध्ययन–अध्यापन के अतिरिक्त युद्धों तक में जाती थीं और वीरता की अमिट छाप छोड़ती थीं।

ऋग्वेद में 24 और अथर्ववेद में 5 वैदिक ऋषिकाओं का उल्लेख है। इन्होंने वैदिक मन्त्रों का दर्शन किया था। ऋग्वेद में 24 ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मन्त्र 224 हैं और अथर्ववेद में 5 ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मन्त्र 198 हैं। इस प्रकार इन दोनों वेदों में ऋषिकाओं के दृष्ट मन्त्रों की संख्या 422 है।

इसमें कुछ सूक्त में वाक् तत्त्व का शास्त्रीय विवेचन है। यह भाषा–विज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूक्त है। श्रद्धा कामायनी का श्रद्धा सूक्त मनोविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त सारगर्भित है। इसमें श्रद्धा का महत्त्व वर्णित है। सूर्या सावित्री के सूक्तों में विवाह–संस्कार वर्णित हैं। ये सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

इन्द्राणी के सूक्त में स्त्रियों के गौरव का उल्लेख है। रोमशा ब्रह्मवादिनी से ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ अध्यात्म का भी उपदेश करती थीं। एक मंत्र में इन्द्राणी को सेनानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। **इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः।**[89]

इसमें कहा गया है कि इन्द्राणी सेना का नेतृत्व करे। वह सदा विजयिनी रही है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि वैदिक काल में नारियों को भी पुरुषों के तुल्य शिक्षा–दीक्षा का समान अधिकार प्राप्त था।

ब्राह्मण–ग्रन्थों में भी नारी का गौरव वर्णित है। नारी को सावित्री कहा गया है। "स्त्री सावित्री।"[90] नारी अर्धाङ्गिनी हैं। वह आत्मा का आधा अंश है। "अर्धो व एष आत्मनः, यत्

पत्नी।"[91] नारी के बिना यज्ञ अपूर्ण है, अतः सपत्नीक यज्ञ करें। "अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः।"[92] पत्नी के बिना जीवन अधूरा है। "पावत् जयायां न विन्दते, असर्वो हि तावद् भवति।"[93] पत्नी गार्हपत्य अग्नि है। "जाया गार्हपत्यः (अग्निः)!"[94] स्त्रियों का अपमान निन्दनीय है। "न वै स्त्रियं ध्नन्ति।"[95] पत्नी गृहलक्ष्मी है, साक्षात् श्री है। "श्रिया वा एवद् रूपं यत् पत्न्यः।"[96]

पारस्कर गृह्यसूत्र में स्त्रियों की गौरवमयी गाथा का गुणगान वर्णित है। "तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः।"[97] मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का निवास होता है, जहाँ इनका आदर नहीं होता या इनका अपमान होता है, वहाँ सारे धर्म–कर्म निष्फल हो जाते हैं। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः।।"[98] इसलिए मनु का कथन है कि– "जो अपने परिवार का कल्याण चाहते हैं, वे स्त्रियों का सदा सम्मान करें। उन्हें आभूषण, वस्त्र आदि से अलंकृत करें।"[99]

नारी का गौरव : – वेदों में नारी के गौरव का अनेक प्रकार से वर्णन है। नारी को ब्रह्मा कहा गया है इसका अभिप्राय यह है कि वह स्वंय विदुषी होते हुए सन्तान को सुशिक्षित बनाती है। ब्रह्मा ज्ञान का अधिष्ठाता है। वही यज्ञों का संचालन करता है। वह ज्ञान–विज्ञान में श्रेष्ठ होता है। अतः उसे यज्ञ में सर्वोच्च स्थान दिया जाता है। उसी प्रकार नारी को ज्ञान–विज्ञान में निपुण होने के कारण ब्रह्मा बताया गया है। "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।"[100]

ऋग्वेद के एक सूक्त में शची (इन्द्राणी) का गौरव वर्णित है। शची का कथन है कि– "मैं समाज में अग्रगण्य हूँ। मैं उच्चकोटि की वक्ता हूँ। मैं विद्वानों में मूर्धन्य हूँ। पति भी मेरे कहने में हैं।"[101] "मेरे पुत्र शत्रुओं पर विजय पाने वाले हैं। मेरी पुत्री तेजस्विनी है और मैं स्वयं विजयिनी हूँ।"[102] "मैं शत्रुओं की नाशक हूँ। मेरा कोई शत्रु नहीं रह गया है। मैं अन्य तेजस्वियों का तेज समाप्त कर देती हूँ।"[103] मैंने अपनी सपत्नियों पर विजय प्राप्त कर ली है। "मैं सदा विजयिनी रहती हूँ। पति और सामान्य जनों पर मेरा पूर्ण अधिकार है।"[104] इस सूक्त से नारी के उच्च गौरव का ज्ञान होता है।

देवियों या देवपत्नियों के गौरव का वर्णन करते हुए कहा गया है कि– "वे रत्न धारण करती थीं और सबसे पहले उन्हें सोमपान कराया जाता था। वे इन्द्र, वरुण और मरुत् देवों के साथ यज्ञों में जाती थीं।"[105] सबसे पहले उन्हें सोमपान आदि कराना उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक है।

स्त्रियाँ अपने चरित्र पर विशेष ध्यान रखती थीं। कुमारी कन्याओं का वर्णन करते हुए कहा गया है कि– "वे शुद्ध और पवित्र आचरण वाली हैं। यज्ञ करने की अधिकारिणी हैं। ऐसी योग्य कन्याओं का सुयोग्य विद्वान् पतियों के साथ विवाह किया जाता है।"[106] शुद्ध आचार–विचार वाले पति–पत्नी का विवाह ही आदर्श विवाह होता था। नारी का गौरवमय स्थान इससे भी ज्ञात होता है कि नारी को ही घर कहा गया है। घर–घर नहीं है, अपितु गृहिणी ही गृह है। गृहिणी के द्वारा ही गृह का अस्तित्व है। "जायेदस्तम"।[107] यही भाव एक संस्कृत सुभाषित में कहा गया है कि गृहिणी ही घर है। "न गृहं गृह्मित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते।"

एक स्थान पर कहा गया है कि नास्तिक और कृपण पुरुष से आस्तिक और दानी स्त्री समाज में अधिक आदरणीय हैं।[108] इससे ज्ञात होता हैं कि समाज में आस्तिक का स्थान नास्तिक से ऊँचा हैं और कृपण की अपेक्षा दानी व्यक्ति को अधिक सम्मान प्राप्त होता है। ऐसा आस्तिक और दानी चाहे पुरुष हो या स्त्री, गुण के आधार पर उसका सम्मान होता है। इसी प्रकार आगे वर्णन हैं कि– "भूखे–प्यासे, दीन–हीन और याचक की जो सेवा करती है और उनकी आवश्यकता की पूर्ति करती है तथा आस्तिक विचारों की है, वह स्त्री नास्तिक पुरुष से श्रेष्ठ मानी जाती है।"[109]

"स्त्री को सरस्वती का रूप माना गया है और उसे विराट् अर्थात् विशेष तेजोमयी कहा गया है। वह अपने ज्ञान से प्रतिष्ठित हो और विष्णु की तरह आदर प्राप्त करे।"[110] स्त्री की प्रतिष्ठा अपने गुणों और योग्यता के आधार पर है। अतः कहा गया है कि– "वह अपनी योग्यता और दक्षता के आधार पर ज्ञान की स्वामिनी की तरह आदर पाए। उसका ज्ञान देवों के सुख के लिए और संसार की सुखवृद्धि के लिए हो।"[111]

उषा देवी का वर्णन एक युवती के रूप में करते हुए कहा गया है कि– "वह किसी प्रकार का संकोच न करते हुए आगे–आगे चलती है। अंधकार को दूर करती है और प्रकाश फैलाती है।"[112] इससे ज्ञात होता हैं कि निर्भीक और साहसी युवती समाज का नेतृत्व करती है।

इन्द्राणी को एक सेनानी के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके प्रमाण का वर्णन है कि– "उसका पैर शत्रुमर्दन के लिए आगे बढ़ने के लिए अधीर है। वह सेना के आगे–आगे चलती है। वह विजयिनी है, अधृष्य है और कभी पराजित नहीं हुई।"[113]

वह शत्रुसेना को अपने बाणों से काटती हुई चलती है। वह शिव के पिनाक धनुष की तरह धनुष धारण करती है। शत्रुओं की सभी आकांक्षाओं पर पानी फेर देती है।[114]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में वर्णन है कि स्त्री अबला नहीं, सबला है। इन्द्राणी का कथन है कि– "जो दुष्ट मुझे अबला समझकर सताना चाहता है, उसका मैं नाश करूँगी। मैं स्वंय वीर हूँ और वीर पुत्रों की माता हूँ। मरुत् मेरे सहयोगी हैं।"[115]

यजुर्वेद का कथन है कि– "स्त्री में सहस्रों प्रकार का बल है। अतः उसे 'सहस्रवीर्या' कहते हैं। वह विजयिनी है। शत्रुओं से मोर्चा लेती है और शत्रुसेना का संहार करती है।"[116]

"ऋग्वेद में स्वयंवर–विवाह का भी निर्देश है। जिस प्रकार पुरुष को स्त्री चुनने का अधिकार है, उसी प्रकार स्त्री भी अपने गुण और शील के अनुसार अपना पति चुनती है।"[117]

नारी के गुण :– ऋग्वेद में वर्णन है कि नारी में नर को आकृष्ट करने की क्षमता है। नारी में आकर्षण शक्ति है।[118] अथर्ववेद का कथन है कि– "नर के प्रेम का आधार नारी है।"[119] सती साध्वी नारी का एक विशेष गुण यह बताया गया है कि– "उसका पति दीर्घायु होता है और उस स्त्री का सौभाग्य चिरस्थायी होता है। वृद्धावस्था का उसके पति पर प्रभाव नहीं पड़ता है। अतः दीर्घायु रहता है।"[120]

नारी के धार्मिक अधिकार और कर्त्तव्य :– ऋग्वेद और अथर्ववेद में नारी के अधिकार और कर्तव्य के विषय में बताया गया है कि पत्नी पति के साथ बैठकर यज्ञार्थ स्रुवा (चम्मच) लेकर यज्ञ करे। जो यज्ञ करते हैं, उन्हें उत्तम शक्ति मिलती है।[121] अन्य मन्त्र में बताया गया है कि स्त्री प्रतिदिन घी और सामग्री लेकर प्रातः सायं यज्ञ करे।[122] सामूहिक यज्ञों में भी स्त्रियां जाती थीं। इतना ही नहीं वे युद्धों में भी भाग लेती थीं।[123] यज्ञशाला में उन्हें आगे स्थान दिया जाता था और वे पहले यज्ञशाला में प्रवेश करती थीं।[124]

एक मन्त्र में नास्तिक और कृपण पुरुष से धार्मिक एवं दानी स्त्री को अधिक प्रशंसनीय बताया गया है। इसी प्रकार धार्मिक कार्यों तथा दान–पुण्य में रुचि वाली स्त्री को पुरुष से अच्छा बताया गया है।[125] "एक मंत्र में निकृष्ट कर्म नहीं करने की सलाह दी है।"[126]

नारी के सामाजिक अधिकार और कर्त्तव्य :– ऋग्वेद में नारी को गृहलक्ष्मी के रूप में चित्रित करते हुए उसे 'कल्याणी जाया' अर्थात् मंगलकारिणी स्त्री कहा है। साथ ही कहा गया है कि– "उसके घर में संगीत की मधुर ध्वनि होती है। घर में घोड़े रथ आदि होते हैं।"[127] नारी को परिवार की स्वामिनी बताते हुए कहा गया है कि "वह सास, ससुर, देवर और ननद आदि की साम्राज्ञी (स्वामिनी, मालकिन) होती है।"[128] जहाँ एक ओर उसे गृहस्वामिनी

और साम्राज्ञी कहा गया है, वहाँ दूसरी ओर उसके कर्त्तव्य बताए गए हैं कि– "वह पति सास–ससुर और पति के परिवार वालों को सुख देने वाली हो।"[129] इसका अभिप्राय यह है कि पति के पूरे परिवार की देखभाल और पोषण का उत्तरदायित्व स्त्री पर है। वह पूरे परिवार का भरण–पोषण करते हुए गृहस्वामिनी का पद संभाले।

'कुलायिनी और पुरन्धि' शब्दों से परिवार के पालन–पोषण का दायित्व उस पर डाला गया है। वह कुटुम्ब की पालक है।[130]

एक मन्त्र में उसको 'कुलपा' कहा गया है।[131] इसका भी यही अभिप्राय है कि "कुल या परिवार का पालन करने वाली है। 'पत्नी ही घर है' यह कहकर समाज में नारी का महत्त्व बताया गया है।"[132] नारी के शील के विषय में कहा गया है कि– "वह लज्जाशील होनी चाहिए। उसकी दृष्टि नीचे रहनी चाहिए। वह अपने अंगों को ढंक कर रखे।"[133] इसका अभिप्राय यह है कि स्त्री को अपने अंगों का अभद्र प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। उसका सुशील व्यवहार उसके लिए शोभाजनक है।

पत्नी का मधुरभाषी होना, पति के लिए सर्वोत्तम उपहार है। जो पत्नी अपने पति से अति मधुर वचन बोलती है, वह अपने वैवाहिक जीवन को मधुर बनाती है।[134] पत्नी का प्रसन्नचित्त या हँसमुख होना गुण बताया गया है। सुयोग्य पत्नियाँ हंसते या मुस्कराते हुए अपने पति के पास जाती हैं।[135] कन्या का परिश्रमी होना उत्तम गुण माना गया है। परिश्रमी कन्याएँ दूसरों के मांगलिक अवसरों पर सहयोग देती हैं और उनके कार्यों में हाथ बंटाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि "उनके कार्यों में अन्य स्त्रियाँ अपना सहयोग देती हैं।"[136]

नारी के वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में कहा गया है कि– "पति–पत्नी के विवाह का आधार प्रेम होना चाहिए। पति पत्नी को चाहता है और पत्नी पति को। ऐसा विवाह श्रेयस्कर है। साथ ही पति के लिए कहा गया है कि वह सम्पन्न होने पर ही विवाह करे।"[137] इसका अभिप्राय यह है कि जब पति कन्या के पालन–पोषण का पूरा भार उठाने में समर्थ हो, तभी वह विवाह करे। उत्तम विवाह के विषय में कहा गया है कि– "कन्या का आचार–विचार शुद्ध हो और वह विदुषी हो। पति के लिए कहा गया है कि वह ज्ञानी और विद्वान् हो। ऐसे योग्य वर को ही कन्या देनी चाहिए।[138]

आदर्श विवाह के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। जिस प्रकार अश्विनी कुमारों ने सूर्य–पुत्री सूर्या या सावित्री से विवाह किया था, उसी प्रकार योग्य एवं तेजस्वी

पति सुशील एवं विदुषी कन्या से विवाह करे।[139] गुणों के आधार पर होने वाला विवाह आदर्श विवाह है। **जिस प्रकार वर को अधिकार है कि वह योग्य कन्या से विवाह करे, उसी प्रकार कन्या को भी अधिकार दिया गया है कि वह योग्यतम और अपनी रुचि के अनुकूल वर छांटे। इस प्रकार स्वयंवर-विवाह को उचित माना गया है।**[140]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में विवाह की विधि के साथ ही वर-वधू के कर्त्तव्यों आदि का विस्तृत विवेचन है।[141] नव वधू की मातृगृह से विदाई और पतिकुल में स्वागत का विस्तृत वर्णन किया गया है। वधू को स्वर्ण-जटित रथ पर बैठाया जाता था।[142] वधू सुन्दर वस्त्र पहनती थी। वधू हाथों में स्वर्ण-कंकण (कंगन) पहनती थी। नारी को सुवर्ण के आभूषणों आदि से शृंगार करने का भी विधान है।[143]

पति-पत्नी के पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध के विषय में अनेक मंत्रों में चर्चा है। पत्नी के विषय में कहा गया है कि पति से ही उसका सौभाग्य है। उसके सौम्य गुण उसका सौभाग्य बढ़ाने में सहायक होते हैं।

एक मंत्र में कहा गया है कि पति-पत्नी का भाग्य उभयनिष्ठ है। दोनों का पारस्परिक प्रेम उनके भाग्य को विकसित करता है। इसका अभिप्राय यह है कि- "पति-पत्नी को अपना सर्वस्व समझे और पत्नी पति को। दोनों ओर से आत्मसमर्पण के बिना सश्रीकता सम्भव नहीं है।"[144]

एक ओर पत्नी के लिए कहा गया है कि- "वह पतिव्रता हो। ऐसी नारी ही पति को प्रिय होती है। पति से किसी प्रकार का विरोध न करने वाली पत्नी पति को प्रिय होती है और वह सौभाग्यवती होती है।"[145] दूसरी ओर पति के लिए आदेश है कि- "वह एक-पत्नीव्रत का पालन करे। वह अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्री से प्रेम न करे और न किसी अन्य स्त्री का नाम अपनी पत्नी के सामने कहे।"[146] इसी प्रसंग में पति के कुछ अन्य कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है। एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि स्त्री को वश में करने का एक ही उपाय है और वह है हृदय-शुद्धि। जो मन में हो, वह बाहर भी हो और जो व्यवहार बाहर है, वह मन से हो। ऐसे शुद्ध हृदय वाला व्यक्ति ही स्त्रियों को वश में रख सकता है। अन्यथा स्त्रियों का मन नानारूप वाला है और वह विविध बातों को सोचने के लिए विवश हो जाता है। पति का कर्त्तव्य है कि- "वह धन-धान्य आदि से पत्नी को

प्रसन्न रखे। वह पत्नी के मनोरथों को पूर्ण करे।"[147] एक मंत्र में यह भी निर्देष है कि– "यदि पति–पत्नी में कोई मतभेद हो जाए या किसी प्रकार का मनमुटाव हो तो उसे मिलकर सुलझावें और मतभेद दूर करें। उन्हें ही अपना परिवाररूपी संसार सुधारना है।"[148]

विवाह का एक उद्देश्य यह भी है कि पति कुल की वंश–परम्परा अविच्छिन्न रहे। इसलिए अनेक मन्त्रों में नारी के सौभाग्य की कल्पना करते हुए उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया जाता है। एक मंत्र में आशीर्वाद दिया है कि– "वह एक से अधिक पुत्रों को जन्म दे। इस प्रकार वह माता बनती है।"[149] पुत्र–जन्म से ही नारी में मातृत्व का विकास होता है। पति–पत्नी जितने गुणी और योग्य होंगे, उसी प्रकार उनकी संतान विदुषी और सुशील होगी। पुत्र–पौत्रों आदि से परिवार की श्रीवृद्धि होती है। इसलिए "पुत्र–पौत्रादि से खेलते हुए दम्पत्ती का सौभाग्य उत्कृष्ट माना जाता है।"[150]

एक मंत्र में माता को पुत्रों का केन्द्र बिन्दु या नाभि बताया गया है। साथ ही उपदेश है कि– "भोजन के समय सभी बालक एकत्र होकर भोजन करें।"[151]

भाई और बहिन के पवित्र सम्बन्ध का वर्णन किया गया है और भाई–बहिन अपने पवित्र सम्बन्ध का सदा निर्वाह करें। दो बहिनों में कितना घनिष्ट प्रेम होता हो, इसको द्यावापृथिवी के उदाहरण से समझाया गया है। दूर होते हुए भी वे अत्यन्त सम्बद्ध होती हैं। बहिन का एक भाई होना आवश्यक बताया गया है। भ्रातृहीन–कन्या की खिन्नता का वर्णन किया गया है।[152]

कुछ पति अपनी स्त्री का परित्याग कर देते हैं। ऐसी स्त्री को पितृकुल एवं ज्ञातिजन ही आश्रय देते हैं। पुनर्विवाह को आपद्धर्म बताया गया है। यदि ऐसे पति–पत्नी परस्पर सामंजस्य से रहते हैं तो उनका विवाह सुखद होता है और वे विमुक्त नहीं होते।[153]

राष्ट्रीय अधिकार और कर्तव्य :– नारी को सदा जागरुक रहने की शिक्षा दी गई है। जागरुक और अपने कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट नारी ही सुखी जीवन व्यतीत करती है और दीर्घायु प्राप्त होती है।[154] नारी को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने के लिए आवश्यक बताया है कि वह दीन–दुःखियों की सहायता करे और निर्धनों की कामना पूरी करे।[155]

नारी के लिए आवश्यक है कि वह ओजस्विनी हो। उसमें अपने चरित्र की रक्षा की सामर्थ्य हो। वह समाज में अधिकार स्थापित कर सके। उसका सौभाग्य सूर्य के तुल्य प्रतिदिन बढ़े। वह तेजस्वी और वीर पुत्रों को जन्म दे, जो राष्ट्र की सुरक्षा में समर्थ हों तथा शत्रुओं का नाश कर सकें।[156]

नारी को अजेय और शत्रु–विजयिनी बताया गया है। उसके लिए 'सहस्रवीर्या' शब्द प्रयोग हुआ है, इसका अभिप्राय है कि– "वह एक प्रकार की नहीं, अपितु सहस्रों प्रकार की सामर्थ्य रखती है।"[157] एक मंत्र में स्त्री–सेना को युद्ध में भेजने का वर्णन है। "नारी को शत्रु–विजयिनी बताते हुए उसे शत्रुओं का तेज हरने वाली कहा गया है। वह संकोच को छोड़कर अग्रणी बनती है और अज्ञानरूपी अन्धकार दूर करती है।"[158]

इन्द्राणी को सेनानी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह अजेय और सेना के आगे चलती है। उसके पैरों में शक्ति है। वह शिवजी के पिनाक की तरह महान् धनुष लेकर शत्रुओं की सेना को काटती हुई आगे बढ़ती है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि इन्द्राणी सेना की देवता है। वह सेना में प्राण फूँकती है। उसके नेतृत्व में निर्बल सेना भी सबल हो जाती है। **"इन्द्राणी वै सेनायै देवता।**

सेवास्य सेनां सं श्यति।।"[159]

नारी के शील की रक्षा को राष्ट्रीय उत्तरदायित्व बताया गया है। जहाँ नारी के चरित्र की पूर्ण सुरक्षा होती है, वही राष्ट्र सुरक्षित कहा जाता है। स्त्री के अपहरण को राष्ट्र के लिए कलंक बताया गया है। स्त्रीहरण इतना महापाप है कि "वह प्राणी को इस लोक में ही नहीं, अपितु परलोक में भी उसे महाकष्ट देता है।"[160]

एक मंत्र में कन्याओं को नृत्यकला की शिक्षा का भी संकेत है। उषा देवी को एक नर्तकी के तुल्य नृत्य करते हुए प्रस्तुत किया गया है। "नारी के शृंगार का भी उल्लेख है। वह सुन्दर वस्त्र और स्वर्णाभरण धारण करती है।"[161]

अविवाहित पुत्री को पुत्र के बराबर दायभाग का अधिकारी बताया गया है। यदि पुत्र नहीं है तो पुत्री को ही पूरी सम्पत्ति का अधिकारी बताया गया है। यदि पुत्र नहीं है तो पिता उसे अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाता है।[162] स्त्रियों की कुछ न्यूनताओं की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया गया है। कुछ छली और प्रपंची स्त्रियाँ अपने पति को धोखा देती हैं, उन्हें अविश्वसनीय और सालावृक (जंगली कुत्ता) कहा गया है। इसी प्रकार धोखा देने वाले पति को भी भेड़िया कहा गया है। स्त्री–स्वभाव की अस्थिरता बताते हुए कहा गया है कि– "उनका मन चंचल होता है और वे जल्दबाजी करती हैं। पति से द्वेष करने वाली स्त्रियाँ प्रायः दुश्चरित्र हो जाती हैं। दुष्ट और दुःशील पत्नी कुल को नष्ट कर देती है।"[163]

ऋग्वेद के एक सूक्त में द्यूत को राष्ट्र के लिए अहितकारी दुर्व्यसन बताया गया है। जुआरी की पत्नी सदा दुःखित रहती है। उसका सदा अपमान होता है। द्यूत ऐसा दुर्व्यसन है कि– "माता–पिता, पत्नी और सास–ससुर के बार–बार मना करने पर भी जुआरी जुआ खेलना बन्द नहीं करता। परिणामस्वरूप सर्वत्र उसका अपमान और निरादर होता है।"[164] यह आज के युग में भी सत्य ही है। जैसे बाद में महाभारत में युधिष्ठिर के जुआ की आदत ने सम्पूर्ण परिवार को व्यथा में डाल दिया। अन्त में सम्पूर्ण राष्ट्र का विनाश हुआ।

रामायण–काल पूर्णतः वैदिक काल था। राम का यह वाक्य स्त्रियों के प्रति अत्यधिक सम्मान प्रकट करता है यह प्रसिद्ध है कि 'रामोद्विर्नाभिभाषते'– राम दो प्रकार की बातें नहीं कहता–

"अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा।
न हि हातुमियं शक्या कीर्तिरात्मवता यथा।।"

सीता मुझमें ही अनन्य रूप से अनुरागवती है– मुझसे अभिन्न है जैसे प्रभा सूर्य से। मैं भी इन्हें वैसे ही नहीं त्याग सकता जैसे यशस्वी पुरुष अपनी कीर्ति को नहीं त्याग सकता।

अतः सीता परित्याग की बात सर्वथा निराधार है। वैसे भी यह घटना 'उत्तरकाण्ड' की है जो श्लोकों की सत्यता के आधार पर महर्षि वाल्मीकि की कृति नहीं है इसलिए भी सीता परित्याग की बात ठीक नहीं है। उत्तरकाण्ड में श्रीराम के विकल एवं आदर्श चरित्र पर कीचड़ उछाला गया है साथ ही इस काण्ड में अनेक बातें सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं अतः उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है।

रामायण काल में सुधार का भी अवकाश था, एक अपराध अनभिज्ञता से अहल्या से हो गया था। उसने जानते हुए भी इन्द्र नामक व्यक्ति के साथ सहवास किया किन्तु यह उसकी गलती थी जो उसने गौतम के वचनों के आधार पर घोर तप द्वारा उस मनःस्थिति को बदलने का संकल्प लिया।

यह कथा जो आज संसार में विद्यमान है वह मात्र कपोल कल्पित है कि अहल्या एक शिला बन गई और राम के पैर लगाते ही स्त्री बन गई। वाल्मीकि जी ने अहल्या का शिला होना कहीं नहीं लिखा है यह वैसे भी सृष्टि नियम विरुद्ध है। कोई व्यक्ति शिला कैसे

बन सकता है और शिला से कई वर्षों बाद वापस मनुष्य बनना गले नहीं उतरता। यह तो माना जा सकता है कि शिला के समान उसने कई वर्षों तक कठिन तप द्वारा अपने को निश्पाप किया। यहाँ यह है कि उसने जो अपराध किया था उसे वह कई वर्षों तक तप संयम द्वारा पुनः वेदोक्त बनकर अपने विकारों को नष्ट करने के लिए निरन्तर एकांत सेवन से प्रकाशवती हो रही थी। राम और लक्ष्मण जब उसकी कुटिया पर गये तो "वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि अहल्या तप के तेज से देदीप्यमान हो रही थी और सुर तथा असुर कोई भी उससे दृष्टि नहीं मिला सकता था श्रीराम और लक्ष्मण ने प्रसन्न होकर उसके पैर छूए।" अब हम अनुमान लगा सकते हैं कि स्त्रियों के प्रति उस काल में कितना सम्मान था जबकि उसने घृणित कार्य किया था परन्तु उस काल में भूल को सुधारने के अवकाश के बाद यदि मनुष्य वेदोक्त आचरण करने में सक्षम है तो वह पूज्य है और वहीं श्रीराम ने सबसे पहले उसकी कुटिया पर जाकर समाज को यह प्रेरणा दी कि भूलवश अनुचित किसी भी प्राणी से हो सकता है किन्तु वह उस भूल को पुनः न करे तथा निरन्तर उच्च आचरण को प्राप्त करे तो वह नमन योग्य है। अहल्या ऋषि पत्नी थी राम क्षत्रिय राजकुमार थे वे अहल्या के पैर कैसे लगा सकते थे ?

श्रीराम काल में जो भी आंशिक अशुद्धि वैदिक आचरण के प्रति थी वह श्रीराम ने अपने पुरुषार्थ से पुनः स्थापित की इसी कारण यह कहा जाता है कि श्रीराम ने ग्यारह लाख वर्ष तक राज्य किया। किन्तु वे अपने तप एवं संयम से समाज में ऐसी स्थापना कर गये थे कि लाखों वर्षों तक राम के वंशज भी राम राज्य की ही संज्ञा से विदित रहे।

महाभारत युद्ध के एक सहस्र वर्ष पूर्व तक स्त्रियों की जो गौरवान्वित स्थिति रही वह आज तक पुनः प्राप्त न हो सकी।

जहाँ तक उक्त वैदिक आचरण युक्त सरकार, कानून, समाज, पुरुष एवं स्त्री नहीं होंगे वहाँ तक शायद पुनः स्त्री का उस गौरवमयी आसन तक पहुँच पाना असम्भव सा ही प्रतीत होता है।

2.2 मध्य युग में स्त्री विमर्श : स्वरूप एवं अवधारणा

यहाँ मध्यकाल को महाभारत युद्ध के पश्चात् 19वीं शताब्दी तक हम मानते हैं जिसका काल लगभग 5000 वर्ष का है इस काल की सैंकड़ों की संख्या में असंख्य रचनाएँ प्राप्त होती हैं जिसके आधार पर यह प्रमाणित होता है कि महाभारत युद्ध एक ऐसा युद्ध रहा जिसने सम्पूर्ण पृथ्वी की सभी संस्कृति को नष्ट कर दिया। जो स्वस्थ एवं विकसित परम्पराएँ वैदिक काल में थी और निरन्तर मानवीय मूल्यों को उन्नत करती जा रही थीं वे महाभारत काल तक आते–आते चरम पर थीं रामायण काल में जो सम्पन्नता थी उसका विकास होते होते वह महाभारत काल में पूर्ण विकसित हो चुकी थी। वैभव एवं विलास जब उन्नत था तो उसे प्राप्त करने की अधिकाधिक प्रतिस्पर्धा होने लगी और असंतोष बढ़ता गया। असंतोष का बढ़ना तथा धैर्य का न रहना महाभारत युद्ध का परिणाम था। वैज्ञानिक तकनीक इतनी विकसित हो चुकी थी कि प्रत्येक व्यक्ति के सुख का पारावार न था किन्तु दुःख था तो इस बात का कि उस सुख में उस काल के व्यक्तियों को जीना नहीं आ रहा था। इसका मुख्य कारण स्वार्थ का बढ़ना था। लोगों का स्वार्थ इतना बढ़ चुका था कि वे उस सुविधापूर्ण जीवन में स्वयं जीना चाहते परन्तु दूसरे को जीता हुआ देखकर उन्हें उसे मारने की तीव्र इच्छा होती और यह स्वार्थ एवं अशिक्षा का विकास वैदिक आचरण को त्याग देने के कारण ही था।

महाभारत काल में कई–कई स्थलों पर स्त्रियों की स्थिति अच्छी है किन्तु यहीं से उनके सम्मान में कमी आना प्रारंभ हो गई थी वह केवल माता के रूप में ही सम्मानित थी। पत्नी के रूप में उसकी प्रतिष्ठा का हनन होने लग गया था। स्मृतिकाल तक आते–आते वह अपने संपूर्ण अधिकार खो चुकी थी धीरे–धीरे विवाह की आयु घटती गई और अशिक्षा एवं मनघड़न्त संस्कृत ग्रन्थों का प्रमाण लोग देकर अपना उल्लू सीधा करने लगे और स्त्री पर बन्धन नित प्रति जकड़ते गये, लोगों की विलासिता ने उसे यौन सुख की सामग्री बना डाला तथा बाहरी आक्रमणों में तो वस्तु की तरह लूट–लूट कर ले जाने में भी किसी को संकोच न था। धीरे–धीरे वह छुपाकर रखने मात्र की वस्तु बन गई। जिस घर में स्त्री जन्म होता है वह उसे बड़े ही दुःख का कारण समझता है। अब उसका जीवन पशु की भाँति हो गया था।

वैदिक साहित्य में नारी की स्थिति अत्यन्त उन्नत थी किन्तु मध्ययुग के प्रारंभ में मध्यम थी क्योंकि मध्ययुग का प्रारंभ वैदिक–मध्य युग का संधिकाल था। महाभारत के

युद्ध के पश्चात् से मध्ययुग का प्रारंभ हो जाता है। इस युग में स्त्री उच्च पदस्थ तो थी किन्तु वैदिक स्त्री के समान पूर्ण योग्यताधारी न थी इस समय की स्त्री में द्वेष, वैमनस्य व अल्पशिक्षा का भाव नजर आने लगा था।

जहाँ कुन्ती, रुक्मणी, द्रौपदी, यशोदा, देवकी शिक्षित संयमी थी वहीं सत्यवती गंधारी, शिखण्डिनी आदि अल्पशिक्षित एवं दुर्बुद्धि थी इसका प्रत्यक्ष दर्शन महाभारत के युद्ध के पहले से दिखाई देता है राजा भोगवादी हो चुके थे दुष्यन्त का उदाहरण कौन नहीं जानता जहाँ भी सुन्दर स्त्री देखी उस पर मन मोहित होना, संभोग करना, संतान पैदा करना फिर भी शकुन्तला को भूल जाना ये आम बातें हो चुकी थी। चक्रवर्ती सम्राटों के ये लक्षण थे तो आम प्रजा का क्या हाल होगा, इसका अनुमान हम लगा सकते हैं। दूसरा उदाहरण–ऋषि समाज को संघठित करने का कार्य करते थे, वे समाज के लिए त्याग, दया, करुणा, ब्रह्मचर्य तथा साहित्य के रक्षक होते थे, जिनका पतन हो चुका था। ऋषि पराशर मत्स्यगंधा सत्यवती से सेक्स की अपील करते हैं और वह कहती है दोपहर का समय है, आस–पास लोग बैठे हैं, मैं आपके साथ रतिक्रिया कैसे कर सकती हूँ, ऋषि होने से अनेक विद्याओं की जानकारी होना स्वाभाविक था जैसे आज थल सेना युद्ध के दौरान शत्रुओं को दिखाई न दे ऐसा धुआँ कर अपना कार्य करती है वैसे ही उन्होंने दोपहर को अँधेरा करके, सत्यवती जो मछली एवं नाव खेवने का कार्य करती थी के साथ संभोग किया।

सत्यवती अल्प आयु नव प्रस्फुटित युवती थी पूर्णयौवन के कारण उसमें उन्नत बीज ऋषि पराशर का मिलने पर उसने उन्नत ऋषि कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास जैसे ऋषि को जन्म दिया किन्तु वे मात्र गर्भस्थ थे एवं प्रसव समय पश्चात् एक वर्ष तक ही दो द्वीपों के बीच घने जंगल में सत्यवती के साथ रहे जो मछुवारों का अभ्यास होता है। किन्तु बाद में वे सत्यवती के संस्कारों में नहीं पले बढ़े वे ऋषि परम्परा में पराशर के सानिध्य में ही रहने से वेदव्यास हुए।

सत्यवती कौमार्य भ्रष्ट हो चुकी थी क्योंकि विवाह के पहले संभोग करना अमर्यादित होता है किन्तु शिक्षा का अभाव होने से यह हुआ या फिर इस समाज में उस समय इसे दोष न माना जाता हो क्योंकि प्रसव में उसकी परिवार के लोगों ने पूर्ण मदद की एवं फिर बाद में भी वह अपने पिता के गृह ही रही। वह नाव से यात्रियों को पार लगाने का कार्य निरन्तर करती रही। अपने पिता को आर्थिक रूप से सबलता प्रदान करने में उसका मुख्य योगदान रहा वह संयमी तो थी नहीं यदि संयमी होती तो ऋषि पराशर की अपील स्वीकार

न करती। जो स्त्री एक बार यौन सुख का आस्वादन कर चुकी हो वह प्रतिदिन नये–नये व्यक्तियों के सम्पर्क में आने पर भी किसी दिन भी कामोद्दीपित न हुई होगी यह मानना मुश्किल हो जाता है, पराशर के साथ संभोग से वह अनुभव प्राप्त कर चुकी थी कि चरमसुख के समय शुक्राणुओं से बच्चा पैदा होता है तो उसने गर्भ निरोधक का प्रयोग किया तथा कई व्यक्तियों से बार–बार सहवास करने की छूट पिता से प्राप्त थी क्योंकि ऐसा न होता तो शन्तनु के द्वारा विवाह के प्रस्ताव पर मल्लाह पिता यह नहीं कहता कि इससे प्राप्त संतान ही राज्याधिकार प्राप्त करेगी। इस सबका मूल कारण आर्थिक आधार ही था इसी वचन के द्वारा मल्लाहों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनती। बार–बार के संभोग से उसका गर्भाशय विकृत हो चुका था इस कारण उसकी संताने विचित्रवीर्य, चित्रांगद आदि अल्पायु होकर समय से पहले ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। भीष्म को राज्याधिकार न देकर सत्यवती व शान्तनु महाभारत के विनाश के कारण बने। इससे यह स्वतः सिद्ध है कि महाभारत काल के आस–पास नारी पूर्ण स्वतंत्र व स्वच्छंद थी वह अपनी इच्छा से कोई भी कार्य कर सकती थी। ऐसा उदाहरण कुन्ती ने पेश किया जिसमें उसने विवाह पूर्व संभोग करके कर्ण को जन्म दिया किन्तु कुन्ती एवं सत्यवती में इतना अंतर था कि वह शिक्षित थी सत्यवती नहीं। कुन्ती विद्वान् होने के साथ द्वेषरहित थी तो सत्यवती द्वेषपरक। कुन्ती ने विद्वतापूर्ण अलग–अलग योद्धाओं का चयन करके सुसंतान प्राप्त की जबकि सत्यवती ने राज्य ऐश्वर्य के लिये निर्बल संतान दी।

इस प्रकार ऋषि पराशर ने अपनी ऋषि परंपरा का उल्लंघन ही नहीं किया उसे कलंकित भी किया था क्योंकि उस समय सामान्य समाज के आदर्श ऋषि ही होते थे। चलो सत्यवती यौवन के अंधकार में मदमस्त थी किन्तु पराशर तो पूर्ण आयु वाले समझदार व्यक्ति थे। उनका संयम कहाँ गया। चलती नौका में 'इंग्लिश मूवी' की तरह उसने सेक्स किया उन्माद की भी हद होती है इससे यह पता चलता है कि उस काल में ऋषि पूर्ण भ्रष्ट हो चुके थे। ऋषि का अर्थ तो बहुत बड़ा होता है यहाँ हम ऋषि का अर्थ मध्यकाल के अनुसार एक अध्यापक से लेंगे तो ज्यादा उपयुक्त होगा।

इस प्रकार ऋषि पराशर से तत्कालीन समाज ने जो ग्रहण किया होगा वह आलोचना योग्य ही कहा जा सकता है।

जबकि वेद के अनुसार ऋषि ही नहीं सामान्य मानवों के लिए भी दिन में सहवास वर्जित है इस आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्री के प्रति मध्य युग में जो सोच व्यापक हुई वह उसके रूप सौन्दर्य पर अधिक प्रभावित होने लगी और लोग तब संयम को

छोड़ विलासिता की और कदम रख चुके थे इसी का परिणाम महाभारत का युद्ध था। जो अपने–अपने स्वार्थ पूरे करने के लिए एक दूसरे को ही नहीं भाई–भाई तक को मार दिया जिसका गवाह इतिहास है। शन्तनु ने गंगा नाम की अत्यधिक लावण्यवती स्त्री को छोड़कर सत्यवती जो कौमार्य भ्रष्ट एवं अपने पुत्र की वय की थी उसे अपनी रानी बनाया जबकि संस्कृति यह कहती थी कि वह काल राजा शन्तनु का वानप्रस्थ काल था जिस प्रकार काँटे में मछली फँसती है उस प्रकार शन्तनु का मन गंगा के सौन्दर्य में फँस गया था। वह मन कैसा था जो एक बार फँसने के बाद बार–बार निकलना जानता होगा, जो गंगा नामक स्त्री के यौवन सौन्दर्य में फंस गया फिर उसका यौवन समाप्त होने पर नयी यौवना को टटोलना शुरू कर दिया और सत्यवती जो मल्लाह पुत्री थी, के साथ विवाह किया जिसके परिणाम का दंश आज तक यह भारत देश ही नहीं अपितु पूरी मानव सभ्यता भुगत रही है। "राजा शन्तनु को ऐश्वर्य का बड़ा भारी अभिमान उत्पन्न हुआ और देश में व्यभिचार बढ़ गया। राज्य होने के कारण शन्तनु और भी विशेष अभिमान संयुक्त हुआ। ...ये सब बातें महाभारत के राजसूय और अश्वमेध पर्वों में वर्णित है। निदान शन्तनु राजा के समय में पाप बढ़ने लगा और राज्य का प्रबन्ध बिगड़ चला। यह ही पाप अन्त में बढ़ते–बढ़ते कौरवों व पाण्डवों के बड़े भारी संग्राम पर समाप्त हुआ और उसी समय से इस देश की दशा बिगड़नी प्रारंभ हुई।"[1]

महात्मा विदुर महाभारत कालीन विद्वान् और तपस्वी थे। उन्होंने अपनी विदुर नीति में उस समय के समाज का चित्रण इस प्रकार प्रस्तुत किया है।

"षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वापकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्।।
नारीः विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्।।

शिक्षा ग्रहण कर लेनें के पश्चात् शिष्य आचार्य को छोड़ देता है। विवाह होने पर पुत्र माता को छोड़कर पत्नी के साथ रहने लगता है। कामुक पुरूष भोग लेने के बाद स्त्री परित्याग कर देता है। अन्य आश्रय लेता है कामासिद्ध करने वाले मनुष्य उपकार को, समुद्र पार करने वाला नाव को और रोगी चिकित्सक को छोड़ देता है।"[2]

तत्कालीन स्थिति का इससे अच्छा उदाहरण नहीं हो सकता आचार्य, नाव, चिकित्सक का छोड़ना युक्तिपूर्ण है किन्तु इसके बीच विदुर ने स्त्री की तत्कालीन स्थिति का संकेत हमें

दे दिया है। उस समय माता का भी सम्मान न था और न ही अपनी पत्नी का वस्तुतः पुरुष कामी प्रकृति के हो चुके थे। स्त्री का परित्याग करना सामान्य घटना थी।

आज के युग में और उस समय में कोई अन्तर न था स्त्री को मात्र भोग्या ही समझा जाने लगा था बल्कि आज के समय में तो फिर भी प्रजातंत्र का कहीं कहीं सदुपयोग हो जाता है किन्तु उस समय में राजतंत्र के सामने किसी की बोलने की हिम्मत न थी।

"रामायण के समय में आर्यगण सभ्यता के शिखर पर आरुढ़ थे, किन्तु महाभारत के काल में उनका बहुत कुछ अधःपतन हो चुका था इस अधःपात का सूत्रपात महाभारत से 1000 वर्ष पूर्व हुआ था। रामायण में केवल एक पात्र ऐसा अंकित हुआ है जिसमें तामसी गुण का आधिक्य पाया जाता हो और वह पात्र कैकेयी है, परन्तु महाभारत के समय में हम केवल एक–दो ही ऐसे पात्र पाते हैं जिनको आर्य संतान सगर्व स्मरण कर सकती है, विश्रंखला के समय में जो कुछ होना संभव हो सकता है वह सब ही महाभारत काल में संघटित हुआ। अनाधिकार चेष्टा, स्त्रियों का अपमान, द्यूतक्रीड़ा, अधिकारों को दबाना, प्रजा पर अत्याचार, सत्यप्रियता का अभाव, असहिष्णुता, सिद्धान्त का पददलन प्रभृति सब ही प्रकार के अनाचार उस समय में प्रवर्तित हो चुके थे परन्तु प्राचीन आर्यों की उर्वरा मस्तिष्क शक्ति इस काल में भी बिल्कुल निर्वाषित नहीं हो गई थी। इस समय में भी कृष्णद्वैपायन जैसे वेदज्ञ ब्राह्मण वेदान्तसूत्रों का निर्माण कर सकते थे भीष्म पितामह जैसे दृढ़प्रतिज्ञ आदर्श राजनीति कर शिक्षा दे सकते थे कृष्ण जैसे योगीवर गीतोपकथित जैसे उपदेशों का वर्णन कर सकते थे। इन सब बातों के होते हुए भी शोक से कहना पड़ता है कि महाभारत काल के आर्यों में और महाभारत काल के राजाओं में विलासप्रियता का भाव बहुत बढ़ गया था और ऐसे राजा पाए जाते थे जो प्रजा पर अत्याचार करने में संकोच नहीं करते थे।"[3] हालांकि महाभारतकालीन स्त्रियों में शिक्षित माताओं की गौरवान्वित स्थिति थी। माता को सबसे बड़ा 'शिक्षक'[4] एवं 'देवता'[5] माना गया है। महाभारत में ऐसे पुरुषों की निन्दा की गई है जो अपनी पत्नी की रक्षा करने में असमर्थ हो।[6] भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि के द्वारा पत्नी को प्रसन्न रखना भी पुरुष का कर्तव्य था। शिक्षित पत्नी का परित्याग सरल कार्य नहीं था केवल अशिक्षित दुश्चरित, कुलटा आदि सिद्ध होने पर ही त्याग का प्रावधान था। वस्तुतः महाभारतकालीन स्त्रियों के स्वरूप एवं अवधारणा भिन्नतामूलक थीं जहाँ उच्च एवं शिक्षित स्त्रियों की समाज में प्रतिष्ठा थी वहीं अशिक्षित एवं रूपवान स्त्रियाँ भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने में सक्षम थीं इस बात का उदाहरण सत्यवती का पिता जो सामाजिक स्तर पर निम्न था किन्तु उसकी पुत्री सुन्दर थी इसलिए

शन्तनु की महारानी बनाने पर उसने शर्त रख दी कि उसकी संताने ही राजवंश की उत्तराधिकारी होंगी। इस प्रकार महाभारतकाल में अत्यधिक प्रवंचनापूर्ण व्यवहार तथा कपट प्रत्येक व्यक्ति के मन पर सवार था। इससे अधिक धृष्टता की बात क्या हो सकती है जो इतिहास में मध्ययुग की विश्वप्रसिद्ध घटना है कि एक चक्रवर्ती सम्राट जिसका सारी भूमि पर एक छत्र राज्य है वैसा राजा युधिष्ठिर जुआ खेलने की लत का आदी था और वह अपने धन बल के साथ अपने भाई की स्त्री को भी दाव पर लगा देता है। यह एक शोचनीय विषय है। एक कहावत सदियों से चली आ रही है वस्तुतः वैदिक काल के पश्चात् 'यथाराजा तथा प्रजा' इस उक्ति का प्रभाव मध्य युग में इतना अधिक था कि राजा प्रजा का नायक, अभिनेता होता था। राजा को आकारभूत करके प्रजा उसकी अनुपालना करती थी इस आधार पर उस काल में स्त्री को धन के समान एक निर्जीव वस्तु मात्र ही समझा जाता था क्योंकि प्रथम तो दाँव पर लगाया, बाद में उसके नहीं आने पर बाल पकड़कर घसीटते हुए राजसभा में लाना, राजसभा में अपने दादा तुल्य, पिता तुल्य, भ्राता तुल्य व्यक्तियों के सामने नग्न किया जाना, उस पर उन विद्वानों का विरोध नहीं करना वह भी एक राज स्त्री का! आदि सिद्ध करता है कि उस समय में स्त्री मात्र उपभोग एवं रूप सौन्दर्य की वस्तु थी। मध्य युग के परवर्ती साहित्य से आज तक यह विचारधारा कमोबेश आज भी बनी हुई है। सारा बिगड़ाव महाभारत काल से प्रारंभ हुआ।

कुछ हस्तियाँ उस समय वैदिक सिद्धान्तों की परख पर अपना जीवन संरक्षित किये हुए थी जिसमें योगीराज श्रीकृष्ण का नाम है। कोई भी सामाजिक परिवर्तन सम्पूर्ण परिवर्तन नहीं होता उसमें पूर्व काल के गुण अवश्य आंशिक रूप से विद्यमान रहते हैं। जब द्रौपदी की यह आतुरावस्था थी उस समय यदि कृष्ण नहीं आते तो आशंका है कि उसे नग्न करने के बाद बारी–बारी से दुःशासनादि के द्वारा बलात्कार भी किया जा सकता था क्योंकि जब व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है तो यह नामुमकिन नहीं था। गंधारी का आँखों पर पट्टी बाँधना, देवकी को युवती अवस्था में जेल में डाल देना, स्त्रियों का अपने मनोनुकूल विवाह से वर ग्रहण न करने देना, गर्भ में शिशु का मारने का प्रयत्न करना, विवाह पूर्व ही युवतियों को गर्भवती बना देना, नवजात कन्याओं की राजा द्वारा हत्या करना आदि कई वेद विरुद्ध कार्य महाभारत काल से प्रारंभ होने लग गये थे जिससे मध्य युग में नारी के स्वरूप एवं अवधारणा के बारे में अनुमान लगाया जा सकता है कि नारी की निम्न से निम्नतर स्थिति समाज में दिन–प्रतिदिन हो रही थी।

हाँ एक स्थान पर महाभारत में जब पाण्डव वनवास अवस्था में अज्ञात वास में थे तो वहाँ पर कन्या शिक्षा का एक उदाहरण मिलता है जिससे यह संभावित है कि वैदिक युग की प्रतिष्ठा कहीं–कहीं शेष थी। "विराट राजा नगर में रहते हुए अर्जुन ने विराट राजा की कन्या उत्तरा नाम्नी को नृत्य कला की शिक्षा दी थी। इससे प्रकट है कि प्राचीन समय में राजकुमारियाँ भी गान विद्या और नृत्य कला सीखती थीं।"[7] हालांकि उस समय विद्या सीखने एवं स्त्री शिक्षा का लोप बिल्कुल नहीं हुआ था। स्त्रियाँ अपने ज्ञान को बढ़ा सकती थीं। ज्ञान प्राप्ति के लिए पूर्ण अवकाश था किन्तु प्रशिक्षित गुरुकुलों की संख्या में दिनोदिन कमी आना प्रारंभ थी गुरुकुलों के अभाव में राजा विराट ने गृह पर ही शिक्षा देना उचित समझा इससे अनुमान जाता है कि कन्या गुरुकुल लगभग समाप्त थे तथा राजाओं की स्त्रियों की शिक्षा प्रायः घर पर होने लगी थी। जब राज कन्याओं को मात्र विद्यालय न भेजकर घर पर शिक्षा का प्रसार था तो सामान्य स्त्रियाँ तो निरन्तर अशिक्षा की ओर उन्मुख हुई होगी इसी कारण उनमें राग द्वेष तथा सामाजिक नियम न पालने की प्रवृत्ति का विकास हुआ होगा और उसका परिणाम चरित्र का हनन था। वैदिक कालीन नारियों की भाँति महाभारत कालीन नारियों में किसी विशेष योग्यता का कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ स्त्रियाँ थीं जो सामान्य नीति रीति आख्यान किया करती थी जैसे विदुलोपाख्यान की बात सामने आती है।

वैदिक काल अत्यधिक लम्बा समय रहा है जिसमें लोग वेदानुकूल आचरण करते थे तथा नियम एवं कानून बड़े ही सख्त थे जिनसे लोग डरते थे कानून का भय लोगों में था तथा सर्वसाधारण में वेद पठन–पाठन का रिवाज़ होने से कोई गलती नहीं कर पाता था किन्तु महाभारत के पश्चात् लोगों ने वेदों को पढ़ना–लिखना छोड़ दिया था। वैदिककाल में ही वेदपरक नीतिपूर्वक जो स्मृति ग्रन्थ तैयार किए गए थे उनमें अपने मन से गलत एवं अविचारपूर्वक श्लोकों को जोड़ा जाने लगा जिससे सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था और भी बुरी स्थिति से गुजरने लगी क्योंकि लोग वेदों को पूरी तरह भूल चुके थे, समाज को एक सूत्र में बाँधने के लिए जो नियम स्मृति ग्रन्थों में बनाये थे उनमें अनर्गल प्रक्षेपित किया जाने लगा। जिसे सामान्य जन सही एवं सत्य मानकर आचरण करने लगे पहले भी ऐसा ही आचरण होता होगा यह जानने लगे और स्मृतियों को ही जीवन का आधार बना दिया जो धूर्त व्यक्ति संस्कृत जानते थे उन्होंने जहाँ अपना स्वार्थ सिद्ध होता था या समाज में विकृति लानी थी वैसे श्लोक रचकर स्मृतिकार के नाम से ही उसमें जोड़ दिए तथा जनसामान्य को यह बताया कि पुरानी पाण्डुलिपि मिली है जो अमुक स्मृति ग्रन्थ की है यहीं से लोगों को

मूर्ख बनाने की प्रवृत्ति प्रारंभ हुई जो महाभारत 10 हजार श्लोकों का था वह एक लाख श्लोकों का बन गया। मनुस्मृति सर्व सामाजिक नियम आधारित थी उसमें अनेक प्रक्षेप रोपित किये गए। अपने–अपने मत को चलाने के नये–नये श्लोक गढ़ना प्रारंभ किया।

"एक समय था जबकि रामायण के पात्रों से सर्वसाधारण को सच्चरित्रों की शिक्षा दी जाती थी। रामायण के आदर्श को सामने रखकर आर्य जाति उत्तरोत्तर उन्नति करती रही परन्तु महाभारत से शताब्दियों पूर्व आर्यों में रामायण की शिक्षा को भुला दिया था। 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत के अनुसार लोग महाभारत के कुपात्रों की चरितावली को अपने जीवन में नकल करने लगे। युधिष्ठिर ने अपने गुरु द्रोण के साथ झूँठ बोला, भीम ने गदायुद्ध करते समय दुर्योधन को अन्याय से मार डाला; स्वयं दुर्योधन ने पाण्डवों को उनके अधिकार से वंचित करना चाहा, वृद्ध धृतराष्ट्र अपने पुत्रों की मंत्रणा में सम्मिलित हुए, दुःशासन ने भरी सभा में द्रौपदी को नंगा करना चाहा; बूढ़े भीष्म पितामह बैठे हुए अपनी पौत्र वधू का अपनान देखते रहे, युधिष्ठिर पूर्ण धार्मिक होते हुए जुआ खेलने से न रुके, भीष्म द्रोण आदि यह जानकर भी शकुनि ने जुए में पांडव के साथ छल किया है चुप साध गए, वे यह जानते हुए भी दुर्योधन का पक्ष न्यायसंगत नहीं है उसकी ओर से लड़ने को उद्यत हुए–इन सब बातों ने लोगों को क्या शिक्षा दी होगी ? क्या महाभारत के पात्रों के चरित्रों को पढ़कर स्त्रियों का अपमान करना, अन्याय का पक्ष लेना, युद्ध में कूटनीति का प्रयोग करना, व्यवहार में धोखा देना, स्त्रियों का हरण करना, एक–एक मनुष्य के दो–दो पत्नियों का होना, स्वार्थ सिद्धि के लिए झूठ बोलना–इन सब बातों को नहीं सीखा होगा ? यदि शिक्षा की अपेक्षा दृष्टान्त अधिक प्रभावशाली होता है तो मानना पड़ेगा कि महाभारत के पश्चात् लोग बड़ी शीघ्रता के साथ कुपथगामी हो गए। बुरे आचारों का प्रादुर्भाव यद्यपि कुछ समय पूर्व से हो गया था, किन्तु महाभारत के पश्चात् देश में दुराचार बहुत बढ़ गया।. ..क्योंकि महाभारतेतर काल में वेद और शास्त्रों की शिक्षा का जनसाधारण में अभाव हो गया था, अतः लोगों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रायः रामायण और महाभारत की कथाओं से ही काम लेना पड़ता था।"[8]

लोग रामायण की मर्यादा को छोड़ महाभारत के अनुसार आचरण करने लगे महाभारत के दीवाने लोग उसे पंचम वेद तक की संज्ञा देने से नहीं चूके। महाभारत के युद्ध में जितने भी वीर पुरुष थे वे युद्ध में गये और परिणाम हुआ मृत्यु मिलना। कायर तो कभी घर से बाहर ही नहीं निकलता। इस प्रकार उन वीरों की पत्नियाँ लाखों की संख्या में विधवा हो गईं। अब उनमें अधिकांश तरुणियाँ थीं, जिनका संसर्ग उन छुपे हुए कायर पुरुषों

के साथ हुआ और उनसे कायर और धूर्त संतानों की प्राप्ति होना प्रारंभ हो गया। जहाँ संताने नहीं हुई वहाँ व्यभिचार भी तीव्र गति से होने लगा क्योंकि युवा स्त्रियों में आदर्श पांचाली थी इसलिए एक स्त्री कई व्यक्तियों के साथ संभोग करने में कोई संकोच नहीं करती थीं। पाँचाली की पाँच पतियों की कथा कहाँ तक सच है ? जबकि वास्तविकता यह है कि वह मात्र अर्जुन की ही पत्नी थी पाँचल देश की होने से पाँचाली कहलाई थी किन्तु लोगों ने उन बची हुई विधवाओं को अपनी यौनसुख प्राप्ति का साधन बनाने के लिए भी यह दुष्प्रचार फैलाया कि द्रौपदी पाँच व्यक्तियों के साथ रति कर सकती है तो सामान्य महिलाएँ जो भी पूर्ण स्वच्छन्द पूर्णयुवान् उनके तो ग्रहस्वामी भी युद्ध में मर चुके थे एक परिवार में से जितने भी युवा पुरुष थे सबके सब मारे जाने पर केवल स्त्रियाँ ही बचीं जब जवानी की आग जल रही हो तो वृद्ध महिलाओं की किसने सुनी किसी ने नहीं। इस प्रकार महिला पुरुषों में व्यभिचार भारी मात्रा में फैल रहा था।

राजाओं में विलासिता का नंगा नृत्य प्रारंभ हो चुका था धन ऐश्वर्य की कोई कमी नहीं थी। शास्त्रअध्ययन, तप–स्वाध्याय की जगह आलस्य एवं प्रमाद ने स्थान ले लिया था दो हजार वर्षों तक पाण्डवों के चक्रवर्ती सम्राटों का शासन होने से किसी बाहरी आक्रमणकारी का भय भी नहीं रहा था इसलिए भोग–विलास में समय बिताने की उनकी आदत बन गई थी, धीरे–धीरे वाम मार्गी शाखाएँ शुरू होने लगी व जनसाधारण राजा के कृत्यों से शिक्षा गृहण करने लगे अच्छे बुरे की पहचान उनको नहीं रही। ऐश्वर्य के सामने विवेक व बुद्धि धराशाही होकर बोने नज़र आने लगे थे। इस काल में सदाचार का अभाव था वासना की तृप्ति के लिए ही विवाह किये जाते थे एक पत्नी का अभाव हो चुका था।

“जिन राजाओं के लिए एक पत्नीव्रत मनु ने आवश्यक नियम ठहराया था वे अनेक पत्नियाँ रखने लगे। पाण्डु के दो पत्नियाँ थी, विचित्रवीर्य के भी अम्बिका और अम्बालिका दो ही पत्नी थीं। बाल ब्रह्मचारी भीष्म भी राजाओं के लिए एक से अधिक स्त्रियों का रखना अनुचित नहीं समझते थे। काशीराज की पुत्री अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका को विचित्र वीर्य के लिए भीष्म ही ने हरण किया था। द्रौपदी और सुभद्रा अर्जुन के भी दो ही स्त्रियाँ थीं। इस प्रकार महाभारत के पात्रों में हम एक पत्नी व्रत का अभाव पाते हैं आजकल भारतीय नरेशगण के यहाँ पत्नियों और उपपत्नियों की जो सेना रहती है उसका रिवाज़ भी महाभारतकाल में ही पड़ गया था।”[9]

इस युग में चारों ओर सामाजिक पतन का वातावरण मौजूद था हांलाकि राज्य स्थिर थे किन्तु राज्य में रहने वाली जनता के कोई सामाजिक नियम अथवा निश्चित मर्यादित अनुबन्ध न थे जिससे एक विचारवान समृद्धशाली राष्ट्र की सुदृढ़ता सम्पन्न की जा सके, अपितु जो राज नियम व मर्यादित जीवन पूर्व में था उसका सम्पूर्ण ह्रास होकर कतिपय नवीन मनगढ़न्त नियमों पर समाज डावाँडोल स्थिति में बस यूँही चल रहा था। वर्ण व्यवस्था की अनुपालना गुण कर्मों से न होकर जन्म से मानने लगे। कठिन साध्य आश्रम व्यवस्था की पालना कोई नहीं करता था। गृहस्थ धर्म के बिगड़ने से सम्पूर्ण नाश हो गया। स्वार्थी लोगों ने धन की लालसा से वेद ज्ञान से रिक्त होने से सत्य–असत्य को न जानकर वेदों के नाम से ऐसा साहित्य बना दिया जो उनके अनुकूल हो। लेकिन वेद मुख्यधारा से अलग नहीं हुए थे। वेदों की नीति रीति जनमानस की आत्मा में थी इसलिए ही वामाचार्यों ने वेदों के अर्थ उलटे कर दिए और कहा ये वेद के वाक्य हैं– "महाभारत के कुछ काल पश्चात् से लगभग ढाई सहस्र वर्ष पर्यंत भारत में इस कलंकित मत का आधिपत्य रहा। विचित्रता यह है कि वे जो बातें वेद की शिक्षा के नितांत प्रतिकूल है वे ही–वेद के नाम पर प्रचारित की गईं।"[10]

यहीं से मूर्खता युक्त साहित्य का प्रचलन होने लगा जिसे लोगों ने अपना आश्रय मान लिया और संसार में भाँति–भाँति के भ्रमयुक्त कार्य प्रारंभ हो गए। राजा परीक्षित विशेष विवेकवान न था। "वह कुछ विक्षिप्त सा था, उसके समझ में आर्ष ग्रन्थ नहीं आते थे। इसी कारण उसके समय में कुछ–कुछ पुराणों का प्रचार हो चला था, उसका पुत्र जनमेजय हुआ और उसके पीछे वज्रनाथ ने राज्य किया। इतने समय में सम्पूर्ण वैभव का नाश हो गया। राज–सभा, धर्मसभा और विद्यासभा तीनों डूब गईं केवल एक राजा की इच्छानुसार सब राज कार्य होने लगा। विद्वान् और सच्चरित्रों को, जो विधि–निषेध की मीमांसा और व्यवस्था करने का अधिकार था, वह दूर हो गया। व्यास, जैमिनि और वैशम्पायन आदि महर्षि न रहे। चक्रवर्ती राज्य नष्ट होकर यत्र–तत्र माण्डलिक राज्य स्थापित हो गए। ब्राह्मण लोगों में विद्या की कमी होती गई और अभिमान बढ़ता गया।

ब्रह्मवाक्यं प्रमाणम्। ब्राह्मणास्तु भूदेवाः।

इस प्रकार की उलटी समझ लोगों में फैल गई, जिससे मनुष्य अन्ध परम्परा के दास बन गए और भी देखिए ब्राह्मणों की लीला–

पृथिव्या यानि तीर्थानि तानि तीर्थानि सागरे।
सागरे यानि तीर्थानि पदे विप्रस्य दक्षिणे।।

पृथिवी में जितने तीर्थ हैं, वे सब समुद्र में आ जाते हैं और समुद्र में जितने तीर्थ हैं वे सब ब्राह्मण के दाहिने पैर में हैं। ऐसे लोगों के जाल में भोले–भाले लोग फँस गए। जब देखा कि हमारा मन्त्र चल गया और सब लोग हमारी आज्ञा को मानते हैं तब इन्होंने अनेक प्रकार के व्रत, उपवास, उद्यापन, श्राद्ध और मूर्तिपूजा आदि वेद–विरुद्ध कर्मों में लोगों को चलाना प्रारंभ कर दिया, जिससे अनायास अपनी आजीविका चल सके। सर्वसाधारण ब्राह्मणों से विमुख न हो जावें, इसलिए ऐसे–ऐसे श्लोक गढ़े गए।....ब्राह्मणों को सब प्रकार के दण्ड और शासन से मुक्त कर देने के कारण सारी बुराईयाँ इन्हीं में घर कर गई। सदाचार विलुप्त हो गया, धूर्तता और अत्याचार बढ़ गया, मूर्खता ने देश में अपना डेरा डण्डा जमा दिया।[11]

इस प्रकार राजा जनमेजय के बाद पाण्डववशीय राज्यों में लगभग दो हजार वर्षों तक ब्राह्मणों ने ऐसे अनौचित्यपूर्ण साहित्य की रचना की जो लज्जा का विषय है बौद्ध, जैन काल तक इन्होंने वेदों के जो अर्थ किए उससे ही आक्रांत होकर विभिन्न संप्रदाय प्रारंभ होने लग गए। जो जनमानस पर अपना आधिपत्य रखते थे ईश्वर के प्रति भय के द्वारा जनता को भयातीत किए हुए थे।

वेदों के प्रति जो नफ़रत लोगों में हुई उसका प्रमुख कारण वेदों के भाष्य ही जिम्मेदार थे, जो आर्ष परम्परानुसार न होकर लौकिक संस्कृत के एक शब्द के कई अर्थ होने से ऐसे अर्थ किए, जो घृणास्पद थे, मांस खाने वालों ने पशु बलि को वेदों से उत्पन्न बताया, जबकि गो का अर्थ इन्द्रियों से था उनका वाचक अर्थ गाय पशु से अर्थ करके उनकी बलि यज्ञों में देने का प्रावधान प्रारंभ कर दिया। जिनको काम वासना सिद्ध करनी थी उन्होंने लिंग–योनि जो पहचान के रूप में जाने जाते थे जैसे पुल्लिंग–स्त्रीलिंग मनुष्य योनि–पशु योनि को पुरुष के लिंग एवं स्त्री की योनि से जोड़ दिया। खतरनाक अर्थ वाले पुराणों की रचना की गई जिसमें कृष्ण जैसे योगी को कई स्त्रियों के साथ संभोग करने वाला बताया। इस प्रकार श्रीराम एवं श्री कृष्ण जो युग पुरुष थे उनको ईश्वर का अवतार घोषित कर उनके प्रति घिनौने साहित्य का प्रयोग होने से आमजन मानस में ईश्वर के प्रति आस्था कम हो गई, परिणाम स्वरूप लोग उसी रूप को ईश्वर के कृत्य मानकर अलौकिक चमत्कार मानने लगे और ईश्वर सब कर सकते हैं, यह समझने लगे और स्वयं भी उसी प्रकार आचरण करने लगे। मांस भक्षण एवं स्त्रियों के साथ संभोग को ईश्वर आधारित मानकर पाप से बाहर निकाल दिया गया। वेदों के विपरीत अर्थ से बौद्ध धर्म अस्तीत्व में आया जिसने वेदों का विरोध किया वेदों तथा कई वैदिक ग्रंथों को जला दिया गया तत्पश्चात् जैन

धर्म अस्तीत्व में आया। काफी लम्बे समय तक बौद्ध और जैन धर्म के रहने से अधिक साहित्य निर्माण हुआ। इन्हीं को देखकर फिर कई पुराण आदि की रचना हुई। "सुधन्वा राजा के साथ जो बौद्ध मत का अनुयायी था, शंकराचार्य का शास्त्रार्थ हुआ। इसमें प्रतिज्ञा यह हुई थी कि यदि शंकराचार्य पराजित हुए तो उन्हें बौद्ध मत स्वीकार करना होगा बौद्ध पंडित वेदों की निन्दा करते हुए कहते थे कि वेदों के बनाने वाले भाण्ड, धूर्त और राक्षस हैं। यदि महीधर की तरह वेदों का अर्थ किया जावे, तो बौद्धों के आक्षेपों को अवकाश मिलता है। 'गभ', 'भग' में बदलकर महीधर ने अर्थ का अनर्थ कर दिया है शतपथ ब्राह्मण में इसके अर्थ प्रजा, राष्ट्र या श्री के किए हैं। शोक है कि आजकल के शास्त्री लोग भी महीधर के अर्थों को मानते हैं अश्व शब्द के अर्थ शतपथ के प्रमाण से यदि 'अग्नि' के किए जावें जिसको कि महीधर ने गंदेपन में घसीटा है, तो बौद्धों के आक्षेप वेदों पर से दूर हो जाते हैं और यदि हठ से महीधर जैसे अनार्य टीकाकार का पक्ष किया जाये तो बौद्ध लोगों के आक्षेप कैसे दूर हो सकते हैं...सुघन्वा राजा शास्त्रार्थ में हार गया और उसने वेदमत स्वीकार कर लिया।.. .बुद्ध और जैन मतों के फैलने से क्षात्रधर्म को बहुत हानि पहुँची।

अतः पश्चात् विक्रम, भर्तृहरि, शालिवाहन और भोज आदि बहुत से राजा हुए। इसी समय कालिदास पण्डित हुआ। जिस समय जैन मत उन्नति पर था उस समय केवल ब्रह्मवैवर्त और वायु पुराण आदि दो तीन पुराण मालूम थे। आजकल कहने को तो केवल 18 ही पुराण हैं किन्तु यह निश्चय करना कठिन है कि वास्तव में कितने पुराण हैं और इनमें क्या–क्या धर घसीटा है।[12]

शिव पुराण में महादेव ने लिंग का रूप धारण किया वह पृथ्वी पर गिरता तो पृथ्वी नष्ट हो जाती इसलिये पार्वती ने योनि का रूप धारण किया और वह लिंग उस योनि में समा जाने से पृथ्वी बच पाई है तथा तब से ही शिवलिंग की पूजा का महत्त्व है मन गढ़न्त गपोड़े पुराणों में दिए इन से प्रेरणा लेकर कवियों ने भी अपने साहित्य में इस स्त्री रस की कमी न छोड़ी–

"पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यम्।
दन्त कटाकटेति किं कर्त्तव्यम्।
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा सर्वं पापं विनश्यति।।

1. पढ़कर भी जब मर जाना है तो दाँत कटाकट करने की क्या आवश्यकता है।

2. यदि प्रातःकाल उठकर शिवलिंग का दर्शन करे तो सारे पाप नष्ट हो जाते हैं।

वाह! क्या पुरुषार्थ है। ज्ञान के बिना भोग, पुरुषार्थ और आनन्द नहीं है, परन्तु जहाँ ऊपर कही हुई भाँति पुरुषार्थ की समझ है तो वहाँ भागवत जैसे पुराणों का जोर क्यों न होगा।"[13]

वाममार्गियों ने वेद में 'मंत्र' शब्द बोला जाता था उसके स्थान पर मन गढ़न्त ग्रन्थों में 'तन्त्र' शब्द कहने लगे। विषयासक्त हुए तो छुप–छुप कर मांस भक्षण करने लगे। पार्वती उवाच, शिव उवाच, भैरव उवाच, विष्णु उवाच आदि तकनीक अपनाकर वेदों के विरुद्ध कार्य को वेद सम्मत बतलाकर पाँच मकार मद्य, माँस, मीन, मुद्रा, मैथुन को मोक्ष का द्वार बताया। "चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो 'अहम् भैरवः' इत्यादि ऊटपटांग वचन को पढ़कर समागम करने में वे वाम मार्गी दोष नहीं मानते अर्थात् जिन स्त्रियों को छूना तक नहीं उनको अति पवित्र उन्होंने माना है।"[14]

जैसे रजस्वला स्त्री, कन्या, बहिन, माता और पुत्र वधु के साथ भी मैथुन कर लेना। इनकी विशेषता थी क्योंकि उस समय का साहित्य यह सब करने की अनुमति प्रदान करता था। सर्व समाज ऐसी विषम रूढ़िता से जकड़ गया था जो पूर्णतः वेद विरुद्ध एवं शोचनीय विषय हैं। उस समय के तंत्र ग्रन्थों में विवरण आता है कि– "मद्य पीना, मांस, मच्छी खाना, मुद्रा अर्थात् सबके साथ इकट्ठे बैठके रोटी बड़े आदि उड़ाना, कन्या बहिन माता और पुत्रवधु आदि के साथ भी मैथुन कर लेना। इन पाँच मकारों के सेवन से सबकी मुक्ति होना।

किसी मकान के चारों आलयों में मद्य के पात्र धरके, एक कोने से खड़े–खड़े मद्य पीने का आरंभ करके दूसरे में जाना, दूसरे से पीते हुए तीसरे में और तीसरे से चौथे में जाकर पीना, यहाँ तक कि जब पर्यन्त पीते–पीते बेहोश होकर लकड़ी के समान भूमि में न गिर पड़े, तब तक बराबर पीते ही चले जाना। इस प्रकार बारम्बार पीके अनेक बार उठ–उठ कर भूमि में गिर जाने से मनुष्य जन्म मरणादि दुःखों से छूटकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

जब कभी वाममार्गी लोग रात्रि के समय किसी स्थान में इकट्ठे होते हैं, तब उनमें ब्राह्मण से लेके चाण्डाल पर्यन्त सब स्त्री–पुरुष आते हैं फिर वे लोग एक स्त्री को नंगी करके वहाँ उसकी योनि की पूजा करते हैं। सो केवल इतना ही नहीं किन्तु कभी–कभी पुरुष को भी नंगा करके स्त्री लोग भी उसके लिंग की पूजा करती हैं। तदन्तर मद्य के पात्र में से एक पात्र अर्थात् प्याला भरके उस स्त्री और पुरुष दोनों को पिलाते हैं, फिर उसी पात्र से सब वाम मार्गी लोग क्रम से मद्य पीते और अन्नमांसादिक खाते चले जाते हैं। यहाँ तक कि

जब तक उन्मत्त न हो जाए तब तक खाना पीना बंद नहीं करते हैं। फिर एक स्त्री के साथ एक पुरुष अथवा एक के साथ अनेक भी मैथुन कर लेते हैं।...उनके किसी–किसी श्लोक में तो ऐसा लिखा है कि माता को छोड़के सब स्त्रियों से मैथुन कर लो, इनमें कुछ दोष नहीं और (मातरमपि न त्यजेत्) किसी–किसी का यह भी मत है कि माता को भी न छोड़ना। तथा किसी में लिखा है कि योनि में लिंग प्रवेश करके आलस्य छोड़कर मन्त्र को जपे तो वह शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।"[15]

इस प्रकार समाज में इन तंत्र ग्रन्थों का बोलबाला था स्त्रियों के प्रति इनकी जो कामासक्ति थी वह इतनी आगे बढ़ चुकी थी जिससे इनकी योग्यता का पता लगाना मुश्किल नहीं है। जो विद्वान् पुरुष स्त्री थे वे लगभग इनके बहकावे में नहीं आए किन्तु कुछ भ्रमित तो हुए ही लेकिन आम जनता जो अशिक्षित थी उनमें ये वाममार्गी साधना का अवश्य ही समावेश हो चुका था जिसे वे निःसंकोच अपनाने लगे थे। इस सबका मूल कारण यह रहा है कि लोग वेद विमुख हो गये उसके समान आचरण करना तो दूर उसके अर्थों को समझने की भी शक्ति लोगों में न थीं।

इसी युग में जो भावना वेदों के प्रति जनमानस में थी, वह वेदों के अनुसार कुछ नहीं करते थे, न ही उन्होंने वेद देखे समझे व जाने थे किन्तु इतना अवश्य जानते थे कि वेद ईश्वर कृत हैं और उनमें ईश्वरीय ज्ञान है, यह श्रद्धा लोगों की वेदों के प्रति थी। इस कारण "जो रावण, उवट, सायण, महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं, वे सब मूलमंत्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं।"[16]

महीधर ने जो वेदों के भाष्य किये उनके उदाहरण यहाँ देना अत्यन्त आवश्यक है जिससे यह जानने में कठिनाई न होगी कि मध्य युग में स्त्री को पशुओं से भी नीचा समझा और स्त्री के प्रति कामुकता की हद पार कर दी। आर्यों की भावनाओं के साथ खेलते हुए उसने वेदों के यह भाष्य किए जिन्हें आज भी लोग मानते हैं, या तो यह कोई षड़यंत्र के तहत हुआ था या स्वेच्छा से। कुछ भी हो यह एक ख़तरनाक परम्परा की शुरुआत थी जिसने भारतवर्ष के विनाश में कोई कसर नहीं छोड़ी तथा स्त्रियों को भोग की वस्तु बनाकर रख दिया जिसे मध्यकाल में विभिन्न साहित्य में परवर्ती काल में अपनाया गया। चाहे हिन्दी साहित्य हो चाहे संस्कृत साहित्य या बौद्ध साहित्य वा जैन साहित्य सब ने इनसे कुमार्ग दर्शन लिया और स्त्रियों के प्रति अपनी कामाग्नि को उन्नत किया।

"इसी प्रकार महीधर ने भी यजुर्वेद पर मूल से अत्यन्त विरुद्ध व्याख्यान किया है। **गणानां त्वा गणपति ꣳहवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ꣳहवामहे निधीनां त्वा निधिपति ꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।**

यजुर्वेद अ. 23 ।। मं. 19 ।।

इस मंत्र में महीधर ने कहा है कि गणपति शब्द से घोड़े का ग्रहण है। सो देखो महीधर का उलटा अर्थ कि 'सब ऋत्विजों के सामने यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे', और सोती हुई घोड़े से कहे कि, हे अश्व! जिससे गर्भधारण होता है, ऐसा जो तेरा वीर्य है उसको मैं खैंच के अपनी योनि में डालूँ तथा तू उस वीर्य को मुझमें स्थापन करने वाला है।"[17] इस प्रकार कई मन्त्रों का उसने अर्थ किया है जो मध्यकाल में स्त्री विमर्श के स्वरूप को आगे बढ़ाता है तथा स्त्रियों के प्रति कुत्सित अवधारणा को पुष्ट करता है।

"यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को पकड़कर आप ही अपनी योनि में डाल देवे।"[18] "यज्ञ शाला में अध्वर्यु आदि ऋत्विज लोग कुमारी और स्त्रियों के साथ उपहासपूर्वक संवाद करते हैं। इस प्रकार से कि अंगुली से योनि को दिखला के हँसते हैं, जब स्त्री लोग जल्दी–जल्दी चलती हैं, तब उनकी योनि में हल–हला शब्द और जब भगलिङ्ग का संयोग होता है तब भी हलहला शब्द होता, और योनि और लिंग में वीर्य झरता है।"[19]

"अब ब्रह्मा हास करता हुआ यजमान की स्त्री से कहता है कि जब तेरी माता और पिता पलंग के ऊपर चढ़ के तेरे पिता ने मुष्टितुल्य लिङ्ग को तेरी माता के भग में डाला, तब तेरी उत्पत्ति हुई। उसने ब्रह्मा से कहा कि तेरी भी उत्पत्ति ऐसे ही हुई है, इससे दोनों की उत्पत्ति तुल्य है।"[20] "पुरुष लोग स्त्री की योनि को दोनों हाथ से खेंच के बढ़ा लेवें। परिवृक्ता अर्थात् जिस स्त्री का वीर्य निकल जाता है, जब छोटा वा बड़ा लिङ्ग उसकी योनि में डाला जाता है, तब योनि के ऊपर दोनों अण्डकोश नाचा करते हैं, क्योंकि योनि छोटी और लिंङ्ग बड़ा होता है। इसमें महीधर दृष्टांत देता है कि जैसे गाय के खुर के बने हुए गढ़े के जल में दो मच्छी नाचें, तथा जैसे खेती करने वाला मनुष्य अन्न और भुस अलग–अलग करने के लिए चलते वायु में एक पात्र में भरके ऊपर को उठाके कँपाया करता है, वैसे ही योनि के ऊपर अंडकोश नाचा करते हैं।"[21]

"जब तक यज्ञशाला में ऋत्विज लोग ऐसा हँसते और अंडकोश नाचा करते हैं, तब तक घोड़े का लिंग महिषी की योनि में काम करता है, और उन ऋत्विजों के भी लिंग स्त्रियों की योनि में प्रवेश करते है, जब स्त्री–पुरुष का समागम होता है तब पुरुष ऊपर और स्त्री पुरुष के नीचे होने से थक जाती है।"[22]

"क्षत्ता सेवक पुरुष शूद्र दासी से कहता है कि– जब शूद्र की स्त्री के साथ वैश्य व्यभिचार कर लेता है, तब वह इस बात को नहीं विचारता कि मेरी स्त्री वैश्य के साथ व्यभिचार करने से पुष्ट हो गई, किन्तु वह इस बात को विचार के दुःख मानता है कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई। अब वह दासी क्षत्ता को उत्तर देती है कि– जब शूद्र वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार कर लेता है तब वैश्य भी इस बात का अनुमान नहीं करता कि मेरी स्त्री पुष्ट हो गई, किन्तु नीच ने समागम कर लिया, इस बात को विचार के क्लेश मानता है।"[23]

इस मंत्र पर महीधर ने टीका की है कि– "यजमान घोड़े से कहता है हे वीर्य के सेवन करने वाले अश्व! तू मेरी स्त्री के जंघा ऊपर को करके उसकी गुदा के ऊपर वीर्य डाल दे, अर्थात् उसकी योनि में लिङ्ग चला दे वह लिङ्ग किस प्रकार का है कि जिस समय योनि में जाता है, उस समय उसी लिङ्ग से स्त्रियों का जीवन होता है और उसी से वे भोग को प्राप्त होती हैं। इससे तू उस लिंग को मेरी स्त्री की योनि में डाल दे।"[24]

यह है मध्य युग का स्त्री विमर्श! इससे ऐसा नहीं लगता कि महीधर वेद का भाष्य कर रहा है इसने तो अपने ज्ञान की धज्जियाँ उड़ा डाली। लगता है पोर्न फिल्म की पट कथा लिख रहा है यदि आज के युग में जीवित होता तो इसे ऑस्कर एवार्ड जरुर मिल जाता। लेकिन इस तरह का भाष्य तो कोई मानसिक अवसाद ग्रसित अथवा रुग्ण व्यक्ति की ही पहचान है किन्तु हो सकता है मध्य युग में एक प्रथा चल पड़ी थी जो विद्वान् राजा को प्रसन्न करने के लिए साहित्य का निर्माण करेगा उसे पारितोषिक दिया जाता था जैसे 'बिहारी' के साथ हुआ। उस समय का ऑस्कर एवार्ड उसे अवश्य मिला होगा क्योंकि जैसा महीधर वैसा ही राजा भी होगा इसमें संदेह नहीं।

इससे स्वतः ज्ञात होता है कि मध्य युग में सम्पूर्ण साहित्य धराशाही हो चुका था जिसका परिणाम महीधर के भाष्य की उत्पत्ति है। बिना राजशाही आज्ञा के अथवा शिक्षित शासनाध्यक्ष की उपस्थिति में ऐसा कृत्य होना असंभव था। उक्त उदाहरण यहाँ मध्ययुग में स्त्रियों के प्रति अवधारणा को सिद्ध करने के लिए दिए हैं।

इन मन्त्रों के अर्थ महर्षि दयानन्द स्वामी के यजुर्वेद भाष्य में सत्य अर्थों में देखे जा सकते हैं तथा सुधी पाठक को अवश्यमेव ही देखना चाहिए। इनकी प्रख्यात पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में भी इनके सत्य अर्थ महर्षि ने दिये हैं ताकि समाज में कुप्रचार न फैल सके। प्रकारान्तर से प्रायः इस प्रकार का अर्थ ग्रहण कर सम्पूर्ण साहित्य की वृद्धि उस समय जाने माने साहित्यकारों ने की इसी वजह से संस्कृत साहित्य में भी कालीदास से

लेकर आज के लेखकों तक इस अश्लीलत्व को कुछ अंशों में तो अपनाया ही जा रहा है। खुजराहों की नग्नता भित्तियों पर इसी विचारधारा की ओर संकेत करती है जहाँ के राजा एवं कलाकारों में भी वही महीधर के अर्थ के समान जोश दिखाई देता है जिसे वे आक्रोश रूप में उन मंदिरों पर कलाकृतियों का रूप देते नज़र आये।

इसके पश्चात् वेदों के ऐसे अर्थों को देखकर, अर्थ करने वाले भी मूर्ख एवं उन्हें मानने समझने वाले महामूर्ख जो उन्होंने व्याकरण का सहारा न लेकर प्रकरण, क्रिया, विशेषण, विशेष्य को ठीक–ठीक नहीं समझने से ऐसा व्यवहार हुआ, जो सामाजिक वैशम्य का कारण बना जिससे स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय से दयनीय होती गई, जब स्त्रियों की दुर्दशा हुई तो सामाजिक स्थिति का बिगड़ना स्वाभाविक था क्योंकि स्त्री से परिवार व परिवार से समाज दूषित होता है।

ऐसी दुर्दशा को देखकर बौद्ध धर्म अस्तित्व में आया और उसने इस सामाजिक वैषम्य का सुधार करना चाहा। प्रारंभ में तो बौद्ध की शिक्षाएँ बड़ी ही जीवनोपयोगी बनाई गई जो संस्कृत से विकृत होकर पाली भाषा में साहित्य निर्माण की अहम् भूमिका निभाने लगी। त्रिपिटक के माध्यम से बुद्ध के कल्याणकारी उपदेशों का संग्रह किया गया। जातक कथाओं के माध्यम से मनोरंजक ढंग से शिक्षाओं का प्रसार किया। इसी प्रकार बुद्ध के जीवित रहते हुए भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ दोनों सामाजिक कल्याण की भावना रखते थे पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी समाज की स्थिति सुधारने में सहयोग करने लगी।

"थेरी गाथा भी भिक्षुणियों द्वारा भाषित जीवन की अनुपम विजय को व्यक्त करने वाली गाथाओं का संग्रह है जिस प्रकार अर्हत्व–प्राप्त भिक्षुओं ने अपने जीवन की सफलता के प्रति संतोष प्रकट करते हुए गाथाएँ कही उसी प्रकार थेरियाँ (=स्थवरियाँ) भी अपने जीवन साफल्य के प्रति संतोष प्रकट करती हैं वे–

तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता,
कतं बुद्धस्स सासनं।

(अर्थ–तीनों विद्याएँ प्राप्त हो गयीं भगवान बुद्ध का शासन मेरे द्वारा (पूर्ण) कर लिया गया)।"[25]

स्त्रियाँ अपने आशावादी जीवन के प्रति संतोष प्रकट करती हैं इस प्रकार बौद्धकालीन साहित्य में भिक्षुणियाँ सामाजिक जनजीवन को आदर्श युक्त बनाने का कार्य करने लगी।

"थेरी गाथा को पढ़कर स्त्रियों के पुरुषार्थ का ज्ञान होता है और हम जानते हैं कि जिस प्रकार पुरुष सारे मानवीय दुःखों ही नहीं, अपितु सांसारिक बंधनों से भी छुटकारा पा सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी संसार सागर से उत्तीर्ण हो सकती हैं। स्त्रियों में भी वह शक्ति है जिससे वे अपने को संभालकर संसार के लिए आदर्श बन सकती हैं। एक विशिष्ट साध्वी पतिव्रता से लेकर एक निकृष्ट दुष्टा गणिका तक अपने जीवन को सुधार सकती है। थेरी गाथा में विमला, अम्बपाली जैसी थेरियों की गाथाएँ भी हैं जो पहले गणिका थीं और नित्य पाप कर्म में संलग्न रहती थीं किन्तु तथागत के विमल धर्म पर चलती हुई जीवन मुक्त होकर वे कहती हैं–

खेपेत्वा आसवे सब्बे
सीतिभूतम्हि निब्बुता।

सभी चित्तमलों को नाश करके निर्वाण पाकर शान्त हो गई हूँ।"[26]

कई स्थानों पर इन स्त्रियों के द्वारा उस समय में फैली वासना का भी मर्दन किया गया है जिसे कई स्त्रियों ने अपने जीवन में अपनाया तथा आदर्श चरित्र की स्थापना करने की कोशिश की गई जिसमें विदुषी धर्मदिन्ना, गणिका, अर्द्धकाशी, भद्राकापिलानी, पटाचारा, महाप्रजापति, गोतमी, कृशा, क्षेमा, उत्पलवर्णा, अम्बपाली, ऋषिदासी और सुमेधा की गाथाएँ आदर्श प्रस्तुत करने वाली रही हैं। शेलाथेरी काम राग की तुच्छता इस प्रकार प्रकट करती है।

"काम भोग बर्छी और भाले की तरह है केवल स्कन्धों का घर्षण मात्र ही है, जो तुम काम रति की बात कह रहे हो उसके प्रति अब मुझे उदासी है। राग सब प्रकार से नष्ट हो गया है, अन्धकार पुंज खत्म हो गया है हे अन्तक! पापी!! ऐसा समझ ले कि तू पराजित हो चुके हो।" ऐसे ही सोमा थेरी ने ज्ञान प्राप्ति की अवस्था में स्त्री–पुरुष के भेद के न होने को स्पष्ट करते हुए सिंह गर्जना की है– "जब चित्त एकाग्र हो गया है, ज्ञान वर्तमान है और धर्म को भली प्रकार देख रही हूँ तब भला मेरा स्त्री भाव (स्त्री होना) क्या करेगा।"[27]

इस प्रकार तत्कालीन सामाजिक वैषम्य में बुद्ध के अवतरण से जनसामान्य को कुछ तो शान्ति मिली लेकिन यह मात्र बुद्ध के जीवित रहने तक ही आदर्श टिक सका तत्पश्चात् क्रमशः यह विकृत होता चला गया। जो हीन समझे जाने वाली स्त्रियाँ थीं उन्हें बौद्ध धर्म ने एक बार सुधरने का मौका अवश्य दिया तथा जो समाज में व्यभिचारी थे उन्हें भी सुधरने का मौका दिया वस्तुतः इसमें समाज की सब श्रेणी की औरतें शामिल थीं। "इन

थेरियों में रानियाँ, राजकुमारियाँ, कुल पुत्रियाँ, बहेलिया, चाण्डाली, क्षत्राणी, ब्राह्मणी, वैश्या, शूद्रा, धनी, दरिद्र, परमदुःखिनी सुकुमारी, तरुणी, किशोरी, वृद्धा, माताएँ, बहिनें, बहुएँ, बेटियाँ, दासियाँ, धाइयाँ, विदूषी, अनपढ़ी, गणिकाएँ, वार–वनिताएँ, नर्तकियाँ, संगीतज्ञा, कवयित्रियाँ, विधवा, अनाथा, परित्यक्ता, पगली, निराश्रिता आदि।"[28]

इस प्रकार की लम्बी फौज होने के कारण उनमें कोई सामाजिक नियम की व्यवस्था न थी केवल मात्र बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार करना लक्ष्य था, बौद्ध धर्म को आगे बढ़ाने के लिए इन्होंने समाज के हर तबके को अपने में शामिल कर लिया, बौद्ध की मृत्यु के पश्चात सुसंचालन व सुप्रबन्ध न होने से तथा किसी प्रकार के विशिष्ट नियम जो जीवन को महान् बनाते हों न होने से इनमें आपस में ही व्यभिचार की मात्रा की प्रचुरता पाई जाने लगी जिसमें महायान हीनयान से होते हुए स्त्रियाँ मांस, शराब तथा आपसी संसर्ग भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों में होने लगे जिन पर किसी की लगाम न थी। धम्मपद की जरावग्गो की विशाखा की सहायिकाओं की कथा से अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय स्थिति कैसे बेकाबू होने लगी थी।

"भगवान के जेतवन में विहार करते समय एक दिन विशाखा उपासिका की कुछ सहायिकाएँ सुरा पीकर धर्मोपदेश सुनने के लिए भगवान के पास गई और धर्म सभा में बैठकर उपदेश सुनने लगी। उपदेश को सुनते हुए उनमें से कुछ सुरा के मद में मस्त होकर नाचना गाना और ताली बजाकर हँसना प्रारम्भ की। भगवान ने इस दशा को देख अपनी भौं से रश्मि छोड़कर अन्धकार कर दिया। जब–जब वे अंधकार में पड़ी हुई भयभीत हो गई, तब सिनेरू पर्वत शिखर पर जाकर अपने उष्ण लोम से रश्मि छोड़ा और उन स्त्रियों को आमंत्रित करके–तुम लोगों को मेरे पास आते समय प्रमत्त होकर नहीं आना चाहिए प्रत्युत राग आदि अग्नि को शान्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। कहकर इस गाथा को कहा–

146–कोनु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।
अन्धकारेन ओन्द्धा पदीपं न गवेस्सथ।।

जब नित्य जल रहा है, तो हँसी कैसी ? आनन्द कैसा ? अंधकार के घिरे प्रदीप की खोज क्यों नहीं करती ?।"[29]

उपरोक्त कथा से बौद्धकाल की स्त्रियों की स्थिति का अंदाजा लगाया जा सकता है। बौद्ध धर्म में जो सभी स्त्रियों की भीड़ इकट्ठी कर रखी थी उनमें कोई सामाजिक नियम उपनियम न थे। भगवान उपदेश दे रहे थे और उनकी भिक्षुणियाँ शराब पीकर मदमस्त थीं

और धर्म सभा में नृत्य कर रही थीं वह धर्म सभा थी या नृत्य सभा ? पुरुष ऐसा व्यवहार करने पर उच्छृंखलता में आते हैं ये स्त्रियाँ किस श्रेणी में गिनी जाए और ये जो स्वयं अपने होश में नहीं थी वे समाज को क्या होश में लाना सिखायेगी। फिर भगवान ने उनको अंधकार में डलवा दिया ताकि लोगों को इस करतूत का पता न लगे कि बुद्ध की भिक्षुणियाँ भी शराब पीकर उत्पात मचाती हैं फिर जब प्रकाश हुआ जब उनका नशा उतर गया अर्थात् दूसरे दिन क्योंकि अंधकार का अर्थ है यह कार्य शाम का था इसलिए अब रात्रि के बाद प्रकाश तो सुबह ही होगा भगवान ने इतना ही कहा तुम लोगों को मेरे पास प्रमत्त होकर नहीं आना चाहिए ? इसकी व्याख्या यह होगी भले और जगह मेरे सामने के अलावा तुम कुछ भी करो या भगवान को उनके इन कार्यों के प्रति पता पहले से था कि मेरे अनुचर समाज में कैसे–कैसे कार्य कर रहे हैं।

ऐसी ही एक और मल्लिका देवी की कथा है जिस में भी तत्कालीन महिलाओं की स्थिति का वर्णन जानने में कठिनाई नहीं होगी।

"कोसल नरेश की भार्या मल्लिका देवी एक दिन स्नानागार में जा झुककर पैर धौ रही थी उसके साथ एक पालतू प्यारा कुत्ता भी था वह मल्लिका को झुका हुआ देखकर उसके साथ मैथुन करना प्रारंभ किया। मल्लिका भी उसके स्पर्श का अनुभव करते हुए झुकी रही। राजा ने ऊपर महल की खिड़की से उसके इस कर्म को देखा और आने पर धिक्कारा, किन्तु मल्लिका ने कहा–महाराज! वह कोठरी ही ऐसी है कि जो वहाँ जाता है वह दो होकर दिखाई देता है। राजा के नहीं विश्वास करने पर उसने कहा–महाराज! आप स्नानागार में जाइये मैं देखूँगी। राजा ने उसकी बात मान ली और स्नानागार की उस कोठरी में गया। मल्लिका ने–छि छि महाराज यह क्या आप बकरी के साथ मैथुन कर रहे थे राजा मल्लिका की बात सुनकर बड़े आश्चर्य में पड़ा और उसके समझाने पर विश्वास कर लिया कि उस कोठरी का दोष है।

पीछे मल्लिका देवी को बड़ा पश्चाताप हुआ, वह अपने उस बुरे कर्म को सोच कर बहुत पछताती थी उसके मन में बार बार होता था कि मेरे इस कर्म को अस्सी महास्थविर और भगवान देखकर क्या कहते होंगें।"[30]

इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय विदेशियों की भाँती पालतू जानवारों के साथ संभोग करने की प्रवृत्तियाँ रानियों व धनाढ्यों में बन चुकी थी जिसे आज विदेशी एनिमल सेक्स कहकर प्रचारित करते हैं। राजा भी मूर्ख ही शासन करते थे जो आँखों से देखने पर

भी उसे सच नहीं मान, रानी के समझाने पर समझ गये अर्थात् उस विधा पर पर्दा डाल दिया। यदि वह उस कुत्ते के साथ संभोग नहीं कर रही होती तो बाद में पश्चाताप क्यों करती। वह यह भी जानती है कि यह बुरा कर्म हैं इस कार्य को वह प्रतिदिन करती होगी तथा वह स्नानागार ऐसी जगह पर था जहाँ से वह दिखाई देता था परन्तु रानी उनको नहीं देख पाती थी जब ही तो वह अस्सी महास्थविर और भगवान के देखने की कहकर स्वंय प्रश्न करती है कि वे क्या कहते होंगें इससे पक्का पता चलता है कि रानी प्रतिदिन इस प्रकार का कार्य करती थी। धर्म का प्रचार करने वाले भी उस कार्य को प्रतिदिन देखते थे क्यों देखते थे ? ऐसा कार्य धर्मात्मा के लिए शोभा नहीं देता वे वहाँ से अन्यत्र चले क्यों नहीं गये ? नहीं गये इसका अर्थ है उन्हें यह सब देखकर आनन्द आता होगा। जो कुछ भी हो इससे यह साफ प्रमाणित होता है कि मध्यकाल का साहित्य व समाज इन बुरी आदतों का शिकार था जो सामाजिक नहीं थी यह पूर्णतः अंधकार का युग था राग, द्वेश, कलह, ईर्ष्या, व्यभिचार, चोरी, अन्याय जैसा सामाजिक अस्थिरता पूर्ण साहित्य बौद्ध युग में प्राप्त होता है। जिसमें स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं कही जा सकती। हाँ अपवाद रूप से संघमित्रा जैसी कुछ महिलाएँ भी थीं जो समाज एवं धर्म की मर्यादा बनाए हुए थी जो मानव जीवन को सुधारने का निरन्तर प्रयास कर रही थीं। हांलाकि महात्मा बुद्ध ने समाज सुधार के लिए अत्यन्त अच्छी शिक्षाएँ देने का प्रयत्न किया तथा उनके जीवित रहते किसी प्रकार का दुराचार उनके अनुयायियों द्वारा समाज में न फैल सका किन्तु कालांतर में बौद्धमत की भारत में ऐसी दुर्दशा हुई जिसका विवरण करना यहाँ सम्भव नहीं है। "किसी किसी भिक्षु के शब्दों में नारी के प्रति विरक्त भाव भी है। इसी प्रकार किसी किसी भिक्षुणी ने पुरुष के द्वारा उस पर किए गए अत्याचार का भी दुःख पूर्वक स्मरण किया है।"[31]

इसका अर्थ है कि वे स्वेच्छा से भिक्षु धर्म में निष्ठ नहीं हुए थे या फिर हुए भी थे तो वे किसी न किसी प्रकार समाज से प्रताड़ित थे, समाज से प्रताड़ित या पति अत्याचार के कारण स्त्रियाँ बौद्ध भिक्षुणियाँ बनने लगी थीं। नारी के प्रति विरक्त भाव भी योगिक विरक्ति न होकर सामाजिक दुःख ही था। इसी कारण भिक्षु–भिक्षुणियाँ जब आपस में मिलते तो अपने–अपने दुख का निवारण करते थे। क्या नारी को शृंगार कर सुन्दर दिखने का अधिकार नहीं था। यदि वे सुन्दर रहेंगी तो दूसरे की दृष्टि उन पर कामिनी के रूप में ही पड़ेगी या फिर उस समय वेश्याओं (गणिकाओं) की संख्या में भी भारी बढ़ोतरी हो गई थी जो जहाँ चाहे वहाँ भिक्षुओं को आकर्षित करती रहती थी। "भिक्षुओं ने स्त्री के कामिनी रूप पर विजय प्राप्त की है। उसके प्रलोभनों में वे नहीं आ सकते, ऐसा उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक

कहा है एक अलंकृता, सुवसना, माला धारी चन्दन लेप किये हुए नर्तकी को महापथ के बीच में नृत्य–गान करते हुए भिक्षु (नागसमाल) ने देखा है। उसी समय उसने वासना के दुष्परिणाम पर चिन्तन किया है, अशुभ भावना की है और इस प्रकार अपने चित्त को विमुक्त किया है। स्त्री के रूपादि की आसक्ति को भिक्षुओं ने सब दुःख का कारण माना है।"[32] ऐसी कौन मूर्ख स्त्री होगी जो चन्दन का लेप करके गहनों को धारण कर महापथ अर्थात् (बड़ा मार्ग) पर नृत्य करेगी, नृत्य तो उस समय वैश्याओं के गृहों में होते थे, तो क्या भिक्षु वैश्यालय गया था ? यदि वह महापथ पर नृत्य कर रही थी तो हो सकता है उस समय किसी विवाह का कार्यक्रम हो बारात निकल रही हो फिर भिक्षु ने उसे कामिनी रूप में ही क्यों देखा ? उसे माता बहिन या पुत्री के रूप में भी तो देख सकता था इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय सच्चे धर्मार्थ समाज के कल्याण के लिए भिक्षु न थे। उनकी वासना अपूर्ण रहती थी इस कारण स्त्री उन्हें कामिनी ही दिखाई देती है। चलो यह सब हमारा विचार करना त्रुटिपूर्ण हो सकता है। परन्तु उसने वासना को मुक्ति में बाधा माना है तो स्वामी दयानन्द यहाँ लिखते हैं कि "जो वासनाच्छेद ही मुक्ति है तो सुषुप्ति में भी मुक्ति माननी चाहिए। ऐसा मानना विद्या के विरूद्ध होने के कारण तिरस्करणीय है।"[33]

इस प्रकार बौद्ध कालीन जातक–साहित्य भी तत्कालीन जन–जीवन को सम्पूर्ण रूप से प्रस्तुत करता है। समाज का चित्र उससे अत्यन्त स्पष्ट है। उस समाज को तत्कालीन बुद्ध उपदेश पूर्ण कथाओं के अनावरण में हम छिपा हुआ देखते है। जातक की गाथाओं में जो बीज निहित है उसका विकसित रूप हमें बाद की सामाजिक स्थिति में भी मिलता है। जातक कालीन समाज में विवाह आदि के वर्णन मिलते हैं जिसके आधार पर स्पष्टतया ज्ञात होता है कि विवाह सम्बन्ध स्वजातियों में ही श्रेष्ठ समझे जाते रहे हैं। पिता का आदेश यही रहता था कि 'सम जातिक कुल कुमारिक गण्ह अर्थात् समान कुल की कन्या का ग्रहण करो'। क्योंकि इस समय ऐसा माना जाता था कि असमान जाति या कुल में 'विवाह करने से अयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इसका उदाहरण 'बिनीलक जातक' में मिलता है। हंसराज व कौवी के सहवास से अयोग्य कुदर्शन संतान पैदा होती है। कन्या की अवस्था 20 या 30 वर्ष होने पर विवाह सम्पन्न करना अच्छा समझा जाता था तथा योग्यवर वरण में स्वंतत्रता भी थी। 'पालि–जातकावली' में 'न–च जातक' में भी इसका उदाहरण मिलता है। 'अम्ब जातक' में भी इस भाँति का वर्णन उपलब्ध है। 'उदय जातक' 'सकिच्च जातक' से कन्या को विक्रय कर देने की प्रथा का भी वर्णन मिलता है। भार्या के लिए 'धनक्कीता' शब्द का प्रयोग इसकी पुष्टि करता है। कन्या व वर दोनों 'प्रेम विवाह'

भी कर लेते थे उस समय राजा को विवाह की स्वतंत्रता रहती थी किसी भी जाति की लड़की से वह विवाह कर सकता था। राजा को एक नहीं अनेक विवाह की स्वंतत्रता थी। कट्ठहरि जातक के ब्रह्मदत्त राजा ने पुष्पावचायिका कन्या से उत्पन्न पुत्र को युवराज बनाया। सुजात जातक के अनुसार राजा माली की लड़की से परिणय कर लेता है। राजा किसी भी पत्नी का परित्याग करने में भी स्वतंत्र थे जबकि सामान्य जनता सदोष स्त्री का परित्याग कर सकती थी। रुहक जातक में इसका उदाहरण मिलता है इस काल के पुरुषों में अत्यन्त सहनशक्ति मिलती है यदि पत्नी को सन्तान नहीं होती थी तो उसे सामान्य रूप से सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाकर जीवन यापन करने और पुत्र रत्न करने का अधिकार था। यह प्रथा वस्तुतः नियोग ही थी किन्तु कालान्तर में इसमें गुण समाप्त हो गये जबकि वैदिक काल में नियोग योग्य व्यक्ति से होता था इस काल में वह सर्वसाधारण को सुलभ करा दी जाती थी।

वैदिक युग में राजा एक पत्नीत्वधारी होता था इसमें व्यभिचारी बहुपत्नीधारी तथा विलासी। इस प्रकार बौद्धकाल में स्त्रियों की दशा दयनीय हो चुकी थी तत्कालीन गृहस्थ जीवन में कठोर नियम नहीं होते थे यद्यपि विवाह–प्रथा थी, किन्तु फिर भी स्त्री व पुरुष व्यभिचार में दोनों ही स्वतंत्र थे उस काल में व्यभिचार भी खुले रूप में किया जाता था–त्तिम्पि दिवापि आगच्छन्तानं च प्रमाणं नत्थि। (राध–जातकं)। उत्संग जातक में पति का स्थान अत्यन्त ही अमहत्त्वपूर्ण बताया है कि– 'पथि धावन्त्या पति' अर्थात् राह चलते–चलते पति मिलना यह सब समाज के संयमहीन आचरण को प्रकट करते हैं इस प्रकार स्त्री व पुरुष दोनों में ही विवाह प्रथा होने के बाद भी असंयम विद्यमान था उस काल की स्त्रियाँ निर्भय दुराचार करती थीं राध जातक में ब्राह्मण की पत्नी अबाध रूप से दुराचार करती है उसके घर पर आने वाले पुरुषों की गिनती नहीं है। इसी प्रकार उत्संग जातक में कृषक की पत्नी राजा से बहुत ही स्पष्ट शब्दों में पथि धावन्त्या पति कहकर स्त्री मात्र के उस समाज में असंयमित आचरण की घोषणा कर देती है। भिक्षुणियाँ तो व्यापारियों के साथ अनाचार ही करती है। कुछ परिव्राजकों का चरित्र अवश्य उज्ज्वल होता था किन्तु जन सामान्य का चरित्र उज्ज्वल नहीं था वैश्याओं की संख्या में बढ़त भी इसी काल की उपज है।

इसी प्रकार जैनियों ने जितना पाखण्ड एवं कपोल कल्पित साहित्य द्वारा जितना भारत वर्ष का विनाश किया है शायद ही अन्य किसी ने किया हो। मूर्ति पूजा का सर्वाधिक प्रकोप जैन काल में हुआ इनकी देखा देखी सब जगह मूर्तियों की पूजा होने लगी विकृत पुराण साहित्य का निर्माण होने लगा। नग्न मूर्तियों द्वारा तथा नग्न तीर्थंकरों द्वारा ये लोग स्त्रियों का आत्मिक शोषण करने लगे इसी आधार पर पौराणिकों ने भी शिवलिंगों की

स्थापना कर पाखण्ड फैलाना प्रारंभ कर दिया। जब शंकराचार्य ने इस पाखण्ड का विरोध किया तो जैनियों ने वैदिक साहित्य की होली जलाना प्रारंभ कर दिया। सबसे अधिक वैदिक साहित्य की यदि क्षति हुई तो वह जैनियों के जला देने के कारण। शंकराचार्य के प्रभाव से लोगों में वेदों के प्रति आस्था तथा सच्चाई का ज्ञान होने से जैन मूर्तियों को तोड़ने का प्रसार प्रारंभ हुआ तब जैनियों ने उन्हें गाड़ना छुपाना आरंभ किया जो आज भी कई स्थानों पर खुदाई में निकली हैं।

इस पाखण्ड की परिणति यह हुई कि वेदों के प्रचार एवं उनकी सच्चाई बताने वाले शंकराचार्य को विष देकर अल्पायु में ही मार डाला गया।

जैन साहित्य में भी ऐसी अविश्वसनीय कथाएँ हैं जो सृष्टिविरुद्ध सिद्ध हैं। "(विवेक सार पृष्ठ 228) एक जैन मत का साधु कोशा वैश्या से भोग करने के पश्चात् त्यागी होकर स्वर्गलोक को गया। (विवेकसार पृष्ठ–10) अर्ण मुनि चरित्र से चूककर कई वर्ष पर्यन्त दत्त सेठ के घर में विषय भोग करके पश्चात् देवलोक को गया। (विवेकसार पृ.–156) जैनमत का साधु लिङ्गधारी अर्थात् वेशधारी मात्र हो तो भी उसका सत्कार श्रावक लोग करें चाहे साधु शुद्ध चरित्र हों चाहे अशुद्धचरित्र सब पूजनीय हैं। (विवेक सार पृ.–168) जैन मत का साधु चरित्रहीन हो तो भी अन्य मत के साधुओं से श्रेष्ठ है। (विवेक सार पृ.–171) श्रावक लोग जैन मत के साधुओं को चरित्रहीन भ्रष्टाचारी देखें तो भी उनकी सेवा करनी चाहिए।"[34]

"विवेकसार भा. पृ.–227 – एक कोशा वेश्या ने थाली में सरसों की ढेरी लगा उसके ऊपर फूलों से ढकी हुई सुई खड़ी कर उस पर अच्छे प्रकार नाच किया, परन्तु सुई पग में गडने न पाई और सरसों की ढेरी बिखरी नहीं!!! तत्त्वविवेक पृ.–228–इसी कोशा वेश्या के साथ एक स्थूल मुनि ने 12 वर्ष तक भोग किया और पश्चात् दीक्षा लेकर सद्गति को गया और कोशा वेश्या भी जैन धर्म को पालती हुई सद्गति को गई।"[35]

इससे प्रतीत होता है उस समय वैश्यायें बहुत थी या इनका वैश्याओं के यहाँ जाना आना रहता होगा। "थोड़ा सा विचार कर देखो तो यही निश्चय होता है कि जैनियों के आचार्य और शिष्यों ने भूगोल खगोल और गणित विद्या कुछ भी नहीं पढ़ी थी जो पढ़े होते तो महा असम्भव गपोड़ा क्यों मारते।"[36] इस प्रकार जैन साहित्य में भी नारी के प्रति किसी प्रकार की उच्च व्यवस्था न थी।

जैन साहित्य में स्त्रियों में स्त्रियों का तिरस्कार हुआ है। महावीर स्वामी केवल्य प्राप्त संत थे उनको आत्मसाक्षात्कार हो चुका था उनके पहले ऋषभदेव भी केवल्य प्राप्त

थे। उस समय जंगल की प्रधानता थी यदि नग्न भी रह लिए तो कोई फ़र्क नहीं लेकिन आम जनता के बीच में नग्न घूमना यह कहाँ की बुद्धि मानी है एक छोटी बालिका उस नग्न व्यक्ति को देखती है जो इसका अर्थ भी नहीं समझती उसकी चित्तवृत्ति पर क्या प्रभाव पड़ता होगा कभी कल्पना करना ? क्या यह स्त्रियों के ऊपर अप्रत्यक्ष रूप से बलात्कार नहीं है। न चाहते हुए भी उन्हें वह सब देखना पड़ रहा है जो उन्हें उस वक्त देखना उचित नहीं है। पुरुष नंगे घूमते हैं ताकि स्त्रियाँ उन्हें देखें।

"बिकनी पर प्रतिबंध की मांग करने वाले गोवा के पी. डब्ल्यूडी मंत्री सुदीन धवलीकर ने अब बिना कपड़ों के सार्वजनिक रूप से घूमने के लिए नागा साधुओं की आलोचना की है।" गौरतलब है कि धवलीकर ने पिछले वर्ष गोवा में बिकनी पर रोक लगाने की मांग की थी। उन्होंने बिकनी पहनने को भारतीय सभ्यता के खिलाफ बताया था। धवलीकर ने कहा कि इस तरह बिना कपड़ों के घूमना बेहद बुरा काम था। यह आज के दौर से मेल नहीं खाता यह बयान तब आया है। जब कुछ ही दिन पहले पूर्व मुख्यमंत्री दिगंबर कामत की दिगंबर जैन साधु के साथ तस्वीर फेसबुक पर वायरल हो गई थी।

धवलीकर ने कहा, 'यह बहुत बुरा है। यह नहीं होना चाहिए। पुराना समय अलग था अब हम 2021 के करीब हैं। धवलीकर प्रदेश केबिनेट मंत्री दीपक धवलीकर के भाई हैं याद रहे कि दीपक की पत्नी ने दुष्कर्म की घटनाओं के लिए पश्चिमी सभ्यता को दोषी बताया था। दीपक ने उनके इस बयान का समर्थन किया था।

वास्तव में बिकनी के लिए रोक कोई दकियानूसी विचारधारा नहीं है यह ऐसा वस्त्र है जो जंघाओं के ऊपर तक रहता है इसमें लड़कियों की जंघाएँ प्रत्यक्ष दिखाई देती है कई बार तो कुछ असावधानी से या आदतन गुप्त अंग वा वस्त्र भी दिखाई दे देते हैं इससे युवा लड़कियों की मनोवृति और अधिक दिखाने की पड़ जाती है यह मनोवृत्ति कामवासना को भड़काने वाली है वास्तव में बलात्कार के लिए यह भी एक कारण हो सकता है क्योंकि आज की संस्कृति में जब इंटरनेट पर अश्लील चित्र उपलब्ध है तो यह आवश्यक नहीं कि हर युवा इस पर नियंत्रण कर पाने में सक्षम हो। स्विटजरलैण्ड में स्कूलों में बिकनी पर प्रतिबन्ध लगा दिया था क्योंकि वहाँ 80 प्रतिशत लड़के–लड़कियाँ जब यौन संबंध बनाते है तो वहाँ के स्कूल स्टाफ को इसकी जानकारी भी नहीं रहती। इस कारण यह सभ्यता का हनन है इसी प्रकार इन जैन आदि धर्माचार्यों का नग्न होकर समाज में घूमते रहना उचित नहीं कहा जा सकता है।

इसी का परिणाम है कि कामवृति दिनों दिन समाज में बलवान होती जा रही है समाचार पत्रों में हमें पढ़ने को मिलता है कि अमुक जैन साधु ने बलात्कार किया। किन्तु यह अधिक आमजन को जानकारी प्राप्त नहीं होती क्योंकि इसे भीतर ही भीतर दबा दिया जाता है। जैन साधु ही आजकल बलात्कार नहीं कर रहे आज तो साधु का नाम ही बलात्कारी हो चुका है। इनकी दृष्टि स्त्रियों पर गिद्धों के समान होती है फिर भी ना जाने क्यों लोग इन पाखण्डों में फँसते हैं आज के समाचार पत्र ऐसी खबरों से भरे पड़े होते हैं कि अमुक साधु को इतनी महिलाओं के साथ गिरफ्तार किया गया। उसने स्नानागार आदि में भी कैमरे लगाये हुए थे जो उसे यह चुनने में आसानी रहे कि उसके लिए कौन सी शिष्या उपयुक्त रहेगी। यहाँ पर इसका संदर्भ देने की आवश्यकता नहीं है समाचार सब पढ़ते सुनते हैं।

पुराणों ने सारा नारी विमर्श श्री कृष्ण के ऊपर ही उतार दिया विश्व इतिहास में जैसी स्थिति महापुरुष कृष्ण की इन लोगों ने की ऐसी किसी महापुरुष की नहीं हुई होगी। महाभारत के युद्ध में कृष्ण का कैसा चरित्र था। जिसके पास ऐसा अस्त्र था जो शत्रु को मारकर वापस आकर अपनी जगह ले लेता था और इसी वैज्ञानिक तकनीक के लिए सब कृष्ण से सहायता माँगते, अपनी विपत्ति पर उन्हें याद करते किन्तु पुराणों की कथाओं एवं श्रीमद्भागवत पुराण एवं ब्रह्मवैवर्त पुराण में जैसा कृष्ण का चारित्र निर्मित किया वह धूर्त एवं दुराचारियों की बड़ी भारी धृष्टता है। क्या कृष्ण ने कभी स्वयं को अवतार होने का दावा किया है ? कृष्ण ने स्वयं कभी अवतार होने का दावा नहीं किया है। महाभारत के सभा पर्व के द्वितीय अध्याय में वर्णित कृष्ण के मानवीय गुणों का वर्णन वेद व्यास जी ने इतनी सुन्दरता और चित्ताकर्षक ढंग से किया है। जिससे स्पष्ट है कि कृष्ण भी ईश्वर के अधीन थे।

"अहं हि तत् करिष्यामि परं पुरुषकारतः।
दैवं तु न मया शक्यं कर्म कर्तुं कथंचन।।

मैं यथा साध्य पुरुषार्थ का प्रकाश कर सकता हूँ, पर दैव के कर्मों में मेरा कुछ वश नहीं है।"[37] अतः सिद्ध है कि कृष्ण नर श्रेष्ठ थे। पौराणिक ग्रन्थों ने श्री कृष्ण के चरित्र को घोर कलंकित किया है। कवियों के अति प्रेम के आवेश, मानसिक विचारों की चंचलता पाण्डित्य प्रदर्शन और विश्वास की निर्बलता ने जो अपमान और अन्याय श्रीकृष्ण के साथ किया है उसका उदाहरण किसी दूसरी भाषा में दृष्टिगोचर नहीं होता, यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास ने भक्ति की पराकाष्ठा और प्रेम की तरंग में श्रीराम पर भी वार किए हैं परन्तु

तो भी भक्ति का सारा जोर और उनकी विलक्षण कविता का अद्‌भुत भाव रामचन्द्र को उस निम्न श्रेणी तक नहीं पहुँचा सका, जहाँ तक पौराणिक साहित्य ने श्री कृष्ण को पहुँचाया है श्रीमद्‌भागवत के रासपंचाध्यायी दशम स्कन्द के 19–33 अध्याय तक में श्री कृष्ण के गोपियों के साथ रास क्रीड़ा के समय उनके साथ व्यभिचार का स्पष्ट उल्लेख है। इसी प्रकार दशम स्कन्द के अध्याय के श्लोक क्रम 1–10 तक कुब्जा के साथ किये व्यभिचार का वर्णन है। सब श्लोकों को विस्तार भय से न देकर केवल चार श्लोकों का वर्णन देखिए–

"श्री शुक उवाच
अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः।।
सैरन्ध्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन गृहं ययौ।।
तथोद्धवः साधु तयाऽभिपूजितो न्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम्।।
कृष्णोऽपि तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्युनुव्रतः।।
सामज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः।।
प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोस्मितविभ्रमेक्षितैः।।
आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया विशङ्कितां कंटणभूषिते करे।।
प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया।।

अर्थात् श्री शुकदेव जी बोले– हे राजन! तदन्तर सर्वात्मा सर्वदर्शी भगवान काम से संतप्त हुई कुब्जा का प्रिय करने की इच्छा से उसके घर गये। हरि भक्त उद्धव जी आसन छोड़कर पृथ्वी पर बैठ गये। कृष्ण जी लोक रीति का अनुसरण करते हुये शीघ्र ही महामूल्य शय्या पर पधारे। कुब्जा भी मज्जन, आलेपन, रेशमी वस्त्र, आभूषण, फूल माला, पान, सुगन्धित पदार्थ और अमृत के सदृश आसव पदार्थों से शरीर को सजाय लज्जा युक्त लीला से हँसती, कटाक्ष निक्षेप करती श्री कृष्ण के निकट आई। श्रीकृष्ण नवीन लज्जा के कारण कुछ एक डरती हुई सुन्दरी को बुलाय उसके कंकण से भूषित दोनों हाथ पकड़ शय्या पर लिटाकर क्रीड़ा करने लगे।"[38]

इस घृणित घटना को लेकर भले घर की स्त्रियाँ 'घर की नारी छोड़ कृष्ण तोहि कुब्जा मन भायी' गाती हैं इसका हमारी घर की स्त्रियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसका विचार हम स्वयं कर सकते हैं। इस प्रकार इसी स्कन्द में अध्याय 90 श्लोक 29 तथा 31 में श्रीकृष्ण की 16108 पत्नियाँ और प्रत्येक के 10–10 पुत्र उत्पन्न हुए बताकर इस महान् चरित्र कृष्ण को कलंकित किया गया है।

"आस्थितस्य परं धर्मं कृष्णस्य गृहभेधिनाम्
आसन् षोडशसाहस्रं महिष्योऽष्टशताऽधिकम्।।29।।
एकै कस्यां दश दश कृष्णोऽजीजनदात्मजान्
यावत्य आत्मनो भार्या अमोघरतिरीश्वरः।।31।।

अर्थात्–भगवान गृहस्थाश्रम के धर्म का भली–भाँति पालन करते थे। श्रीकृष्ण के सोलह हजार एक सौ आठ स्त्रियाँ थी। अमोघ रति ईश्वर कृष्ण के जितनी पत्नियाँ थी उन सब में उन्होंने प्रत्येक के दस–दस पुत्र किए।

पाठक अनुमान लगायें कि जहाँ एक ओर कृष्ण पर इतनी पत्नियाँ होने का लांछन लगाया है वह एक लाख इकसठ हजार अस्सी पुत्र बताकर इस पुराणकार ने बड़ी गप्प ठौकी है। गोपाल सहस्रनाम पुस्तक में जो पौराणिकों के यहाँ आपको घर–घर मिलेगी, श्री कृष्ण को गोपाल कामिनी चोर, जार शिखा मणि, परस्त्रीगामी और व्यभिचारियों में शिरोमणि है लिखा है। पहले भी आपको बता चुके हैं कि यह उस युग की माँग थी लोग वेद रहित होकर आचरण भी वेदानुकूल न होकर वेद विपरीत हो गया था जितनी भी टेक्नोलोजी थी वह महाभारत युद्ध में नष्ट हो गई लोग इस तरह की कपोल कल्पित कथाएँ जो कृष्ण के नाम से उसे भी ईश्वर का आदेश बताकर लिखने लगे और अपनी काम लिप्सा को शान्त करते हुए समाज में व्यभिचार फैलाने लगे। क्योंकि इस लीला से उनको चढ़ावा अधिक हो जाता जिसे खाकर लीला में आई हुई स्त्रियों को यह बताना मुख्य लक्ष्य था कि कृष्ण के इतनी रानियाँ थीं, हम भी इस लीला में कृष्ण बने हैं और चाहो तो आप एक बार उस ईश्वर कृष्ण की रानी बन सकते हैं। इस प्रकार रासलीलाओं द्वारा कई प्रकार का व्यभिचार ज्ञान रहित व्यक्तियों में होने लगा। इसका मुख्य उद्देश्य यहाँ यही जान पड़ता है कि अज्ञानी भोले लोगों को मूर्ख बनाकर अपना उल्लू सीधा करना इन कथाकारों का लक्ष्य रहा है और आज भी रासलीला के माध्यम से यही हो रहा है तथा कई लम्पट जेल की सलाखों के पीछे सजा भुगत रहे हैं।

इन लोगों ने कई प्रकार के विष तत्कालीन समाज में घोले कृष्ण के जीवन में एक ही स्त्री थी वह थी रुकमणी। जो राधा की कल्पना इन पुराण रचनाकारों ने की है वह नितांत मिथ्या है और इनकी काम की भूख को मिटाने के लिए अन्य विरोध न करें इसलिए इन्होंने कृष्ण को ईश्वर व राधा को उनकी प्रेयसी बताकर साहित्यिक अंधकार फैलाने की चेष्टा की है ब्रह्मवैवर्त में इनकी लीला देखिए– "हे प्रिये चारपाई पर आजा मुझे बगल में ले ले। कृष्ण

ने चबाया हुआ पान राधा को दिया। राधा से चबाया पान कृष्ण ने माँगा। कृष्ण ने हाथ से पकड़कर राधा को बगल में ले लिया, उसके कपड़े ढीले कर दिये और चुतुर्विध चुम्बन किया।"[39]

क्या इससे भी बढ़कर अश्लील वर्णन और वह भी श्री वेदव्यास ऋषि के नाम से रचे इन वैष्णव पुराणों के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं मिल सकता है। यह अश्लीलता केवल इनके ग्रन्थों तक ही नहीं पहले भी लिख दी है इनके तीर्थ स्थलों मंदिरों की भित्तियों पर जैसे जगन्नाथपुरी, खजुराहो, श्री रंगम आदि के अलावा दूर भारत देश में मत जाओ यहाँ राजस्थान के कोटा संभाग के बाराँ जिले एवं झालावाड़ जिले के क्रमशः रामगढ़ के भण्डदेवरा व सूर्यमंदिर में अश्लीलता की हद पार कर दी स्त्रियों के साथ पुरुषों की ही भद्दी मूर्तियाँ नहीं है बल्कि मैथुन क्रीड़ा की कई प्रकार के काल्पनिक पशुओं के साथ स्त्रियों की मैथुन मूर्तियाँ है जो असंख्य लिंग योनि के संयोग से अत्यन्त बारीकि से बनाई गई है जिनको बनाने में सैंकड़ों वर्ष लगे होंगे।

राधा का भागवत, विष्णु तथा हरिवंश पुराणों में कोई उल्लेख नहीं है, उसका वर्णन विशेषतः ब्रह्मवैवर्त पुराण में मिलता है, वैष्णवों के भागवत तथा माधव सम्प्रदाय राधा को नहीं मानते। असम में भी वैष्णवों के बीच राधा का चलन नहीं है। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन धर्म साधना' में इस पर कुछ प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं कि 'प्रेम विलास' और 'भक्ति रत्नाकर' के अनुसार 'नित्यानन्द प्रभु' (बंगाल के चैतन्य के सहकारी) की छोटी पत्नी जाह्नीवी देवी जब वृन्दावन गई तो उन्हें यह देखकर बड़ा दुःख हुआ कि श्री कृष्ण के साथ राधा नाम की मूर्ति की कहीं पूजा नहीं होती थी। घर लौटकर उन्होंने नारायन भास्कर नामक कलाकार से राधा की मूर्ति बनवाई और उन्हें वृन्दावन भिजवाया। जीव गोस्वामी की आज्ञा से मूर्तियाँ श्री कृष्ण के पार्श्व में रखी गई और तब से श्री कृष्ण के साथ राधा की पूजा होने लगी। इससे सिद्ध होता है कि ब्रज में भी जो कृष्ण जन्म भूमि है, राधा की कृष्ण के साथ पूजा लगभग 400 वर्ष पूर्व जो चैतन्य के जीवन काल का समय है प्रचलित नहीं थी और उसकी कल्पना ब्रह्मवैवर्त पुराणकार के कामुक मस्तिष्क की उपज है। जो उसमें 400 वर्ष पूर्व के लगभग प्रक्षिप्त कर दी गई।

क्योंकि जिस राधा का पता कृष्ण की जन्म भूमि ब्रज के निवासियों को न हो, जिसका वर्णन भागवत, विष्णु और हरिवंश पुराणों में न हो, जहाँ श्री कृष्ण के जीवन का

विस्तृत वृतांत उल्लिखित बताते हैं, वहाँ ब्रह्मवैवर्त पुराणकार को कहाँ से ज्ञात हुआ ? यदि पौराणिक मतानुसार सब ही पुराणों के कर्ता श्री व्यास जी हैं तब यह अन्तर क्यों ? नित्यानंद जी की पत्नी बंगाल की निवासी थी। उन्हें राधा का परिचय हो और ब्रजवासियों को न हो, यह एक ऐसी विचित्र घटना है जो इन पुराणों के मिथ्यात्व पर भली प्रकार प्रकाश डालती है। पत्नी रुक्मणी का कहीं नाम नहीं, कल्पित राधा का ऐसा वर्णन यह धर्म की आड़ में खुले व्यभिचार को प्रोत्साहन देता है। जिसका ईश्वर, अवतार और उपास्य देव ही पर स्त्री गामी हो, वह उपासक क्या कभी स्त्री गमन को पाप समझेगा इसका प्रमाण यहाँ वराह पुराण से देना उपयुक्त समझता हूँ।

"पर दारता ये च ये नरा अजितेन्द्रियाः।
मथुरा वासिनः सर्वे ते देवा न विग्रहाः।।

मथुरा के निवासी दूसरों की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करने वाले व कामी लोग सभी देवता हैं– यह निर्विवाद है।"[40]

मध्य युग का स्त्री विमर्श कितना कल्पनीय था। कल्पनीय, अश्लील एवं झूँठ होने के बाद भी बहुताधिक लोगों ने उसे अपनाया इसका मुख्य कारण यह समझ में आता है कि इसे बड़ी ही चालाकी व धूर्ततापूर्ण तरीके से धर्म से जोड़ दिया गया। वेदोक्त जीवन नष्ट होने के बाद यह उस प्रकार हुआ जैसे यह कथा बनी है– एक बार एक जंगल में भेड़ों की संख्या अधिक थी वहाँ यत्र–तत्र कई उल्लू भी थे उल्लू स्वभावतः चालाक एवं धूर्त होता है। उल्लू को रात में भी दिखाई देने से भेड़ें उससे प्रभावित हो उसे राजा नियुक्त कर दिया वह रात में उसके पीछे चलती और अपना चारा पानी अच्छी प्रकार कर तंदुरुस्त हो गईं। दिन में भी वह उल्लू राजा के पीछे चलती, चलते–चलते रेल की पटरी आई कुछेक बुद्धिमान भेड़ों ने कहा रेल की पटरी है कट जायेंगे लेकिन अन्यों ने विरोधकर उन्हें समूह से बाहर निकाल दिया राजा बोला मैं राजा हूँ मेरा अनुसरण करो! रेल आई सारी भेड़े कट गई क्योंकि उल्लू को तो दिन में दिखाई नहीं देता था।

इस कथा की भाँति एक सहस्र वर्ष की यवनो एवं अंग्रेजों की गुलामी का कारण भी यही वेदहीन जीवन तथा पौराणिक अनुसरण ही रहा है लाखों की संख्या में लोग काटे गये गोलियों से भून दिये गये फिर भी समझ नहीं आता कि हमारा मूल क्या था। सत्य को पहचानने की क्षमता महाभारत युद्ध के कारण कायर व वर्णसंकर संतान होने से बहुसंख्यक में समझ नहीं आती। आज भी वेदों को जानने के लिए सैंकड़ों में ही गिने जा सकते हैं किन्तु

भागवत कथा में फूहड़ वचनों को सुनने के लिए लोग अपना घर व जीवन सब दाव पर लगाये हुए लाखों की संख्या में उस उल्लू द्वारा रेल की पटरी पर कटने के लिये तैयार हैं। पहले कह गये फिर भी समझ नहीं आ रही कि हमारे पूर्वज कट गये, फिर कटने के लिए तैयार हैं, माताएँ बहिनें अप्रत्यक्ष रूप से यौनशोषण की शिकार होकर कट ही रही हैं, जिसका जीता जागता उदाहरण आसाराम जैसे संत जिनके पीछे लाखों नहीं करोड़ों उस जंगल के उल्लू के पीछे तो लाखों भेड़ें कटी होगी लेकिन यहाँ करोड़ों हैं, कटने के लिए तैयार हैं, आसाराम का एक उदाहरण मात्र है किन्तु रोज नये आसाराम सामने आ रहे हैं तथा निरन्तर जेलों में जा रहे हैं।

स्वामी दयानन्द का यह वाक्य बड़ी ही ईमानदारी, तत्परता एवं दृढ़ विवेक के साथ हमें भारतवासियों को समझना चाहिए जिनके हृदय में भारतवासियों को सन्मार्ग पर लाने की कितनी पीड़ा भरी होगी ?

"वाह रे वाह! भागवत के बनाने वाले लालभुजक्कड़ ? क्या कहना! तुमको ऐसी–ऐसी मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लाज और शरम न आई, निपट अन्धा ही बन गया!..शोक है इन लोगों की रची हुई इस महा असंभव लीला पर जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है। भला, इन महा झूठ बातों को वे अन्धे पोप और बाहर–भीतर की फूटी आँखों वाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई!!! इन भागवतादि पुराणों के बनाने हारे जन्मते ही क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट हो गए ? वा जन्मते समय मर क्यों न गये ? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त देश दुःखों से बच जाता।"[41]

आगे स्त्री विमर्श देखें! भागवत स्कन्द 10 अध्याय 12 में कृष्ण के वेणु गीतगान द्वारा गोपियों के कामोद्दीपन का वर्णन है। अध्याय 22 में इन गोपियों का वेणु गीत से कामातुर होकर कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायनी देवी की पूजा का उल्लेख है एक दिन ये गोपियाँ पूजा से पूर्व अपने वस्त्र उतारकर यमुना में स्नान कर रही थीं। श्री कृष्ण उनके वस्त्र लेकर कदम्ब के पेड़ पर चढ़ गये। जब इन स्त्रियों ने उनसे वस्त्र मांगे तो उन्होंने इन्हें जल से, नग्नावस्था में ही बाहर निकलकर वस्त्र लेने का आग्रह किया। ये नितान्त नग्न थीं। उनके शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। विवश होकर ये अपने हाथों से अपने गुप्त अंगों को छिपाकर बाहर आईं। कृष्ण इतने से संतुष्ट नहीं हुए उन्होंने अपने दोनों हाथों को उठाकर सूर्य को प्रणाम करने के पश्चात् ही वस्त्र लौटाए। यह है भगवान

श्री कृष्ण द्वारा चीर–हरण लीला का संक्षिप्त विवरण। इस अवसर पर कृष्ण ने उनके साथ आगामी शरद पूर्णिमा को रास विहार करने का वचन दिया।

शरद पूर्णिमा की रात्रि को कृष्ण ने स्त्रियों के मन को हरने वाले वेणु गीत गाने आरम्भ किए। इन गीतों को सुनकर ब्रज गोपिकाएँ पहले से भी अधिक कामातुर हो गईं। वे अपने माता, पिता, भाई और पतियों के रोकने पर भी न रुककर कृष्ण के पास वन में चली गईं श्री कृष्ण ने उनसे पूछा कि तुम यहाँ रात्रि में क्यों आई हो, अपने घरों को चली जाओ, तुम्हारे घर वाले तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। पर पुरुष के साथ गमन करना महापाप है। यह सुन गोपियाँ दुःखी होकर अपनी कामुकता प्रकट करती हुई उनसे अनुनय करने लगीं। अन्त में कृष्ण उनके प्रेम को देखकर हँसते हुए दयावश उनसे क्रीड़ा करने लगे।

"बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनालभन नर्मनखागतपातैः।।
क्ष्वेल्याऽवलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपति रमयांचकार।।46।।

अर्थात् भगवान श्री कृष्ण ने अपने मन्द हास्य द्वारा उन ब्रज बालाओं का मुखावलोकन कर बाहुओं को फैलाकर अंग में ले उनका आलिंगन किया और उनके केश, कर, उदर, नीवी (नाड़ा) और स्तनों पर नखों को चुभोकर कामोद्दीपन किया और उन सबके साथ रमण किया। इस पर जब इन गोपियों को कृष्ण को प्राप्त करने का अभिमान हो गया तो वे उनके बीच से अन्तर्धान हो गये।"[42]

आगे अं. 30–31 में बड़े विस्तार के साथ गोपियों के विरह की कथा का उल्लेख है कृष्ण के चले जाने पर यह कामातुर गोपियाँ उन्मत्त की भाँति उन्हें वन में खोजने लगी एक स्थान पर उन्होंने दो व्यक्तियों के भूमि पर पग चिह्न देखे इससे उन्होंने अनुमान लगाया कि कृष्ण के साथ एक गोपी है जिसे लेकर वह एकान्त में काम क्रीड़ा करने गये हैं आगे उन्हें दो पैरों के ही चिह्न दिखाई दिए जिससे उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यहाँ उस गोपी के थक जाने पर श्रीकृष्ण ने उसे अपने कन्धे पर बिठा लिया प्रतीत होता है। अन्त में श्री कृष्ण उनकी विरह व्यथा को देखकर पुनः प्रकट हो गये। उनको अपने बीच पाकर गोपियाँ आनन्द विभोर हो गई। किसी ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिए, किसी ने उनके हाथ को अपने कन्धे पर रखा और किसी ने उनके पैरों को अपने कुचों पर रख लिया। इस प्रकार कृष्ण के साथ रास विहार करती हुई ये यमुना की रेती में नाच गान करने लगी। पूरी भागवत पुराण में इससे भी ज्यादा कलंकित करने वाले श्लोकों का वर्णन है, लगता है यह

मानसिक रोगी ही था जिसने कृष्ण का चरित्र पददलित करने में जरा भी संकोच नहीं किया। "यह भागवत बोब देव का बनाया है जिसके भाई जयदेव ने 'गीतगोविन्द' बनाया है।"[43] यह भागवत वर्णित श्री कृष्ण को कलंकित करने वाली रासलीला की कथा, जिसके पाप युक्त व्यभिचार पर पौराणिक, पर्दा डालने के लिए कहते हैं कि कृष्ण उस समय बालक थे किन्तु बालक तो ऐसा नहीं कर सकता। "वीर्य को रोक उनके साथ संभोग किया।"[44] ऐसा लिखने पर स्पष्ट है कि वह युवा था। राजा परीक्षित के यह पूछने पर कि– "उन्होंने (कृष्ण ने) धर्म सेतु के वक्ता और रक्षक होकर पर स्त्रियों से संभोग रूप अधर्म का यह कार्य क्यों किया ?"[45] शुकदेव जी ने उत्तर दिया "हे राजन! ईश्वरों को धर्म का उल्लंघन और साहस करते हुए देखा गया है।...अग्नि जैसे सब पदार्थों का भक्षण करती रहती है वैसे ही ईश्वर को कोई दोष नहीं लगता।"[46] शुकदेव ने यह भी कहा कि ईश्वर के उपदेश मानना चाहिए–आचरणों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। किन्तु गीता में जिसे भागवत रचनाकार व्यास कृत कहा जाता है श्री कृष्ण कहते हैं–

"यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसके अनुसार वर्तते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है, लोग भी उसके अनुसार ही आचरण करते हैं।"[47]

आगे श्री कृष्ण कहते हैं कि यद्यपि मुझे तीनों लोकों में कुछ भी कर्तव्य कर्म नहीं है तब भी मैं कर्म करता हूँ क्योंकि–

"यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः।

यदि मैं सावधान हुआ कदाचित कर्म में न वर्तूं तो हे अर्जुन! सब मनुष्य मेरे आचरण के अनुसार वर्तें।"[48] विचार करने का विषय है कि जब दोनों ग्रन्थों का रचयिता एक ही हो तब उसका यहाँ कौन सा वचन ठीक समझा जाए हम कृष्ण की बात जैसा कि गीताकार ने लिखा है माने अथवा बोब देव का बनाया हुआ शुकदेव जी की ?

"श्री कृष्ण जी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मन माने दोष लगाए हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जा दासी से

समागम, पर स्त्रियों से रास मण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्री कृष्ण जी में लगाए हैं इसको पढ़–पढ़ा सुन–सुना के अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों कर होती ?"[49] इन प्रमाणों को यहाँ प्रस्तुत करने का लक्ष्य बस एक ही है कि जो पुराणों की घटनाएँ है वे निरा झूठ तथा कपोल कल्पना मात्र है। वेदों से हीन दुष्ट आत्माओं ने मनुष्य जाति को कलंकित करने का जो दुस्साहस किया वह शर्मनाक रहा। बौद्ध, जैन एवं पुराणकालीन जो दुरावस्था समाज की हुई शायद ही इतिहास में इसके अन्यत्र कहीं ओर हुई होगी किन्तु एक और महात्मा जो शंकराचार्य के नाम से विख्यात हुआ उसने इन सब के मतों को सतर्क काटा एवं एक बार पुनः स्वतः प्रमाण वेदों की पुनर्स्थापना करने का कृत संकल्प किया जिसमें बौद्ध धर्म पूर्णत भारत से विलुप्त हो गया। वह और अधिक कार्य करना चाहते थे किन्तु इन धृष्ट पापियों ने उन्हें विष देकर समाप्त कर दिया। फिर भी आमजन मानस का ध्यान पुनः वेदों की ओर गया और कुछ लोग सत्यता की खोज में लग गये। जिससे इस महाअंधाकर युग में कुछ तो प्रकाश हुआ।

किन्तु फिर भी अश्लीलता की यह धारा कम नहीं हुई क्योंकि वैदिक मान्यता के लोगों की संख्या ऊँट के मुँह में जीरे के बराबर ही है।

पुराणों को हिन्दू धर्म ग्रन्थ मानते हैं। जब धर्म ग्रन्थ कही जाने वाली पुस्तकों का यह हाल है। तो अन्य ग्रन्थों की तो कथा ही क्या, निरंकुश समझे जाने वाले कवियों ने तो मर्यादा के बंधनों को पूर्णतः तोड़ दिया और वे कृष्ण चरित्र के साथ खुलकर खेले। कृष्ण का यह रसिक रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि बाल की खाल निकालने के लिए प्रसिद्ध, जाने जाने वाले कवियों ने तो मर्यादा के बंधनों को पूर्णतः तोड़ दिया और वे कृष्ण चरित्र के साथ खुलकर खेले। कृष्ण का यह रसिक रूप इतना लोकप्रिय हुआ कि बाल की खाल निकालने के लिए प्रसिद्ध नैयायिकों के ग्रन्थों का मंगलाचरण भी इस प्रकार होने लगा–

नूतन जलधर रूचये गोपवधूटी दुकूल चौराय।
तस्मै कृष्णाय नमः महीरूहस्य वीजाय।।

मैथिल कोकिल विद्यापति और बंगाली कवि चण्डीदास ने राधाकृष्ण के नाम पर उद्दाम श्रृंगार की जो धारा बहाई, उससे सारा पूर्वी भारत आप्लावित हो गया। मध्यकाल में 'रसिक कवि सूरदास' ने बल्लभ सम्प्रदायानुयायी होते हुए भी, जिसमें कृष्ण के केवल बाल स्वरूप की उपासना का विधान है। राधाकृष्ण के प्रेम की योजना की, यद्यपि वे

विद्यापति आदि कवियों से अधिक सुरुचिपूर्ण कविता लिख सके, परन्तु हिन्दी के आगे आने वाले कवियों को तो पूरी स्वच्छन्दता प्रदर्शित करने का अवसर मिल ही गया। **सूरदास का शृंगार वर्णन भी कई स्थलों पर मर्यादा का अतिक्रमण कर गया है 'जबहिं सरोज धरयों श्रीफल पर' आदि अत्यधिक घिनौने और कुरुचिपूर्ण वर्णन परवर्ती कवियों को खुलकर कबड्डी खेलने का आधार बन गये।** तभी तो रीतिकालीन कवियों के लिए कृष्ण एक सामान्य रसिक नायक भाव भूमि पर उतर आये और विलास लीलाओं के चित्रण में कुशल शृंगारी कवियों के लिए उनके चरित्र से खिलवाड़ करना अत्यन्त सरल हो गया। इस काल की कविता में कृष्ण चरित्र की दुर्गति अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गई। रीतिकाल में ऐसी एक भी रचना नहीं है जिसमें कृष्ण के वास्तविक स्वरूप का चित्रण हुआ है। आचार्य कहे जाने वाले कवि भिखारीदास के शब्दों में 'आगे के लेवि समुझि हैं तो कविताई न तु राधिका–कन्हाई सुमिरन को बहानो है' इस प्रकार भक्ति की झीनी आड़ में राधा–कृष्ण की विलास लीला का नग्न चित्रण करना कवियों का नित्य प्रति का कर्तव्य हो गया है। यह कृष्ण चरित्र में समाविष्ट होने वाली दूसरी मलिनधारा है, जिसने इस पवित्र मंदाकिनी को अपनी कलुषता से अपवित्र किया है। इससे हिन्दू धर्म द्वेषी विद्यार्थियों को हिन्दू देवी–देवताओं और महापुरुषों को बदनाम करने का कैसा सुलभ साधन मिला है और सामान्य अशिक्षित वर्ग में कृष्ण के प्रति कैसे गर्हित धारणाएँ बद्धमूल हुई हैं अतः यहाँ स्पष्ट है कि चीर हरण आदि लीलाएँ पुराण लेखकों के कामी मस्तिष्क अथवा जिनको गृहस्थ सुख न मिल सका हो उन्होंने अपने मन के गुबार इन कल्पनाओं से पूरे किये हैं। इनसे कृष्ण चरित्र की पावनता तो नष्ट हुई ही है किन्तु विद्यार्थियों को भी कटाक्ष करने का अवसर मिला है व्यभिचारियों को अपने मनोनुकूल दुष्कर्मों के लिए ईश्वरीय प्रेरणा युक्त सामग्री प्राप्त हुई है। **"इसलिए भागवत नाम के इस कुग्रन्थ का कर्ता मूर्ख ही है।** इस कारण सुख चाहने वालों को कभी इस प्रमत्तप्रगीत भागवत की कथा और श्रवण नहीं करना चाहिए, यही सिद्धांत है। जो लोग लोभ से सुनाते हैं और मूर्ख होने से सुनते हैं, वे निश्चय ही नरक में पड़ेंगे। जो प्रमत्तगीत इस भागवत को सुनाते और सुनते हैं वे सब पाखंडी हैं, इसलिए वे महापातकी हैं। जिस बोपदेव ने इस भागवत को कहा (=रचा) वह भी पाखण्डी और महापातकी है। इसलिए प्रमत्तगीत इस भागवत का अध्ययन, कथन, श्रवण करना नरक–गमन का कारण है।"[50] कुछ भी हो इस बिगड़ाव का प्रभाव मध्यकालीन सम्पूर्ण साहित्य पर पड़ा। संस्कृत साहित्यकारों ने अपना कथानक वेदोक्त लिया हो चाहे रामायण के पात्रों का चाहे महाभारत के पात्रों का लेकिन उनकी काव्य रचनाओं पर भी आदर्श प्रस्तुति के साथ कहीं न कहीं जो

स्त्री विमर्श जाग्रत हुआ है उसमें उपरोक्त साहित्य का प्रभाव अवश्य पड़ा है। नारी के प्रति सौन्दर्य भाव तथा उसका नख शिख वर्णन करना ये आम बात थी सबसे पहले कालीदास की रचनाओं में पूर्ण शालीनता होते हुए भी जहाँ स्त्री सौन्दर्य की बात आती वहाँ कालीदास भी नहीं चूके ईसापूर्व प्रथम शतक से लेकर ईसा की सातवीं शताब्दी तक संस्कृत की अनेक रचनाएँ हुई उनमें कई कवियों ने अच्छे–अच्छे महाकाव्यों नाटकों आदि का लेखन किया। कालीदास का शाकुन्तलम हो, मेघदूत इनमें कालीदास ने भरपूर स्त्री सौन्दर्य का वर्णन किया है। ऋतुसंहार में तो कालीदास ने जो वर्णन किया है वह पूरा ही श्रृंगारिक है कालिदास काल में स्त्रियों को शंकित दृष्टि से देखा जाता था– "परिवार में पुरुषों का स्त्रियों के प्रति शिष्ट एवं सभ्य व्यवहार था। ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष अवसरों पर पर्दा प्रथा का भी प्रचलन था...समाज में स्त्री जाति का सम्मान तो था पर उनपर विश्वास कम था। चरित्र की दृष्टि से सर्वथा सभी स्त्रियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता था।"[51] इसी प्रकार महाकवि माघ की शिशुपाल वध प्रसिद्ध रचनाएँ जिसमें भी ऋतुओं का वर्णन श्रृंगार रस का चित्रण छटे सर्ग में दिखाया है। सातवें सर्ग में यादवों का सुन्दर रमणियों के साथ वन विहार व आठवें सर्ग में जलक्रीड़ा का वर्णन है। नवें सर्ग में स्त्रियों के कामोन्मत्त और काम क्रीड़ा में मस्त होने का चित्रण है तथा दसवें सर्ग में रमणियों के प्रियतम उनके साथ मद्यपान और सुरत क्रीड़ा में रत हो जाते हैं। तेरवें सर्ग में कवि ने कालिदास और अश्वघोष के समान श्रीकृष्ण को देखने के लिए एकत्र हुई नारियों की भावनाओं को चित्रित किया है।

इसी प्रकार श्री हर्ष की प्रसिद्धि का मुख्य ग्रन्थ नैषधीय चरित्र है। इस पर भी पौराणिक कथा का प्रभाव लक्षित होता है इसमें राजा नल दमयंती की कथा है। दमयंती के सौन्दर्य के वर्णन में– "इसी प्रकार दमयंती के स्तनों का वर्णन है कवि ने अपने महाकाव्य की कथा में विस्तार अधिक किया है और मुख्य विषय की ओर ध्यान न देकर आनुषंगिक विषयों का ही चित्रण अधिक किया है जिससे सारे काव्य में कृत्रिमता अधिक आ गई है।

द्वितीय सर्ग में कवि हंस के मुख से दमयंती का वर्णन करा चुका है, परन्तु फिर भी उसे संतोष नहीं और सातवें सर्ग में पुनः दामयंती के नख शिख का वर्णन करता है महाभारत में नल दमयंती के प्रेम का वर्णन अत्यंत पवित्र एवं सात्विक रूप में मिलता है परन्तु श्री हर्ष ने अपने नैषधीय चरित्र में आकर उसे अत्यधिक विलास वासना से रंग दिया है।...नैषध की विलास वाटिका में जीवन के जटिल वट वृक्षों को कोई स्थान ही नहीं था... कहीं–कहीं पर अश्लीलता भी आ गई है।"[52] इस प्रकार सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य पर भी पुराणों के नख–शिख वर्णन का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है भर्तृहरि का श्रृंगार शतक तथा

अमरूक का अमरूक शतक भी इसी तरह की कृतियाँ हैं। कुल मिलाकर मध्य युग में जो भी साहित्य लेखन हुआ उसमें कमोबेश स्त्री के प्रति कमनीय भाव ही अधिक थे स्त्रियाँ पुरुषों पर निर्भर थीं और उनका आँकलन केवल और केवल सौन्दर्य की प्रतिमा या पुष्प कली के रूप में ही होता था जो किसी के भी द्वारा मसला व रौंदा जा सकता था। लोगों की भावना मात्र साहित्य में एक ही ओर कवि आकृष्ट कर सकता था और वह था नारी का रूप सौन्दर्य तथा उसके अंग–प्रत्यंगों का नाप तौल।

मध्य युग में प्रत्येक साहित्यकार साहित्य रूपी दर्पण गढ़ने में लगे हुए थे जिनमें समाज की विभिन्न विद्रूपताओं की पॉलिश की जा रही थी, सब अपने–अपने मन रूपी अश्व को चंचलता का चारा डाल रहे थे जिससे वह साहित्याकाश में उड़ता और कहीं स्त्री के केश कहीं उसके वक्ष स्थल कहीं नितम्बों का नाप लेता हुआ दिखाई पड़ रहा था। स्त्री साक्षात रति दिखाई पड़ रही थी और स्वयं इन रचनाकारों का मन कामदेव। इसी बीच यवनों का आगमन भारतवर्ष की सीमा पर प्रारंभ हो गया यूनानियों, शक जाति और हूण लोगों के आक्रमणों ने भारत वर्ष के सीमा प्रान्तों से आगे कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं किया था और आर्यगण अनन्तकाल तक के लिए शान्ति और सुख के साथ अपने देश में बसते रहते, यदि उन्हें नये शत्रु ने आकर आक्रान्त न किया होता। यह देश की सबसे बुरी स्थिति का काल था सारे देश में खलबली मची हुई थी अधिक लिखना उचित नहीं है क्योंकि इससे इतिहास भरा पड़ा है। कि इस दौरान भारत की सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति कैसे चरमरा उठी थी लूटमार तथा तलवार के बल पर शासन करना इनका लक्ष्य था, लगातार आक्रमणों के कारण यहाँ के अनेक राजा पराजित होते गये और ये सत्तारुढ़ होने में सक्षम हो गये। वस्तुतः यह अरब देश में कबीलाई सभ्यता वाले लोग थे जो लड़ते और लूटमार करना इनका मुख्य कार्य था इनकी सभ्यता साड़े चौदह सौ वर्ष पुरानी है। "जो आपस में लड़ा–भिड़ा करते और लूटमार करके अपना पेट पालते थे। कभी किसी बाहरी जाति ने भी उन पर आक्रमण करने का विचार नहीं किया क्योंकि उस देश में न धन था, न सम्पत्ति थी, न सभ्यता थी, न कोई साहित्य था, कोई वस्तु भी तो ऐसी न थी जो किसी शत्रु के लालच को अपनी ओर आकर्षित करती। उस समय कुरेश नामक जत्थे के सरदार के घर में मुहम्मद का जन्म हुआ। मुहम्मद आरम्भ में धनवान नहीं था, किन्तु एक अमीर घराने की विधवा के साथ विवाह करके उसकी दशा सुधर गई...मुहम्मद अपने आप को परमात्मा का आदेश वाहक (रसूल) बतलाता था वह कहता था कि परमात्मा की आज्ञाएँ मुझ द्वारा संसार में नाजिल होती है।"[53] मुहम्मद ने ऐसे मत की स्थापना के जो मानवीय मूल्यों से कोई

सम्बन्ध नहीं रखते न ही उनमें कहीं ईश्वर की आज्ञा है मुहम्मद के अनुयायियों में मात्र लूटमार का और अपने मत को फैलाने के लिये दूसरों की जान लेना इनका मुख्य उद्देश्य था। इसका उदाहरण भारत पर हुए आक्रमण तथा सोमनाथ जैसे मंदिरों की लूट एवं असंख्य निरीह लोगों की हत्या के साथ महिलाओं की लूट भी शामिल है। जब मुस्लिम भारत आये तो भारत में कोई एक चक्रवर्ती राजा नहीं था और पूरे भारत में कई छोटे–छोटे राजा राज्य कर रहे थे जिनका राज्य किसी प्रकार धार्मिक न था राजा पूर्ण ऐश्वर्य में राज्याधीन थे विलासिता ही उनका जीवन का परम लक्ष्य बन चुका था मुस्लिमों के भारत पर आरूढ़ होने तथा समय–समय पर लूट, युद्धों के कारण सामाजिक जनजीवन अस्त व्यस्त होने लगा ध्यान देने की बात यह है कि स्त्रियों की स्थिति बद से बदतर होती गई क्योंकि हीरे जवाहरात व धन के साथ स्त्रियाँ भी लूटी जाने लगी। जहाँ उनको खूब उपभोग के काम में लिया जाने लगा, यवनकाल में स्त्रियों की स्थिति कुछ संतोषजनक नहीं रही।

पौराणिक युग में स्त्रियों का स्वरूप और उनके प्रति अवधारणा क्या थी यह हम जान चुके हैं। छटी सातवीं शताब्दी से निरन्तर मुस्लिमों के आक्रमण एवं आने से 16वीं शताब्दी तक यहाँ स्त्रियाँ दो अत्याचारी संस्कृति में फंस गई एक तो पौराणिक सभ्यता और दूसरी मुस्लिम सभ्यता दोनों ने जमकर स्त्रियों का शोषण किया। स्त्री शूद्रोनाधीयाताम् की कल्पित श्रुति ने उनके लिये शिक्षा का द्वार बिल्कुल बन्द कर दिया। कहा जा सकता है कि पौराणिक सभ्यता ने स्त्रियों को घायल कर दिया था और मुस्लिम सभ्यता ने घायल स्त्रियों को मार ही डाला तथा 19वीं शताब्दी तक तो अंग्रेज शासन में वह सड़ा दी गई थी।

"जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था उस समय उन देशों में जङ्गली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसलिए ऐसे विद्या विरुद्ध मत चल गये।"[54] जिसे मुसलमान अपना धर्म ग्रन्थ मानते हैं उसमें स्त्रियों के प्रति किसी प्रकार की संवेदना न थी वह एक प्रकार की वासना पूरी करने मात्र की वस्तु थी। "रोजे की रात तुम्हारे लिए हलाल की गई मदनोत्सव करना अपनी बीवियों से वे तुम्हारे वास्ते पर्दा है, तुम उनके लिए पर्दा हो। अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार। बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुमको बस उनसे मिलो और ढूँढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए लिख दिया है, अर्थात् सन्तान, खाओ–पीयो यहाँ तक कि प्रकट हो तुम्हारे लिए काले तागे से सुपेद तागा वा रात से जब दिन निकले।। – मं.1। सि. 2। सू. 2। आ. 178 ॥

समीक्षक – यहाँ यह निश्चित होता है। कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहिले किसी ने किसी पौराणिक को पूछा होगा कि चन्द्रायणव्रत जो एक महीने भर का होता है उसकी विधि क्या है ? वह शास्त्रविधि जो कि मध्याह्न में–चन्द्र की कला–घटने बढ़ने के अनुसार ग्रासों को घटाना बढ़ाना और मध्याह्न दिन में खाना लिखा है उसको न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन करके खाना उसको इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया, परन्तु व्रत में स्त्री–समागम का त्याग है, वह एक बात खुदा ने बढ़कर कह दी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो।"[55] इस प्रकार मुसलमानों में किसी व्रत का निश्चय नहीं है कि अमुक समय में स्त्रियों को छोड़ दो, बस केवल जब उनके एक महीने में मासिक धर्म आने पर कोई भी सेक्स नहीं कर सकेगा तो उस समय तो रुकना ही पड़ेगा। स्त्रियों के प्रति शायद ही किसी विश्व धर्म ग्रन्थ में ऐसा उदाहरण होगा जो इनके कुरान में लिखा है– "प्रश्न करते हैं तुझसे रजस्वला को कह वो अपवित्र हैं पृथक् रहो ऋतु समय में उनके समीप मत जाओ जब तक वे पवित्र न हों। जब नहा लेवें उनके पास उस स्थान से जाओ खुदा ने आज्ञा दी।। तुम्हारी बीबियाँ तुम्हारे लिए खेतियाँ हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में।। तुमको अल्लाह लग़ब (बेकार, व्यर्थ) शपथ में नहीं पकड़ता।"[56]

मासिक धर्म में समीप न जाना तो मजबूरी है क्योंकि यदि जायेंगे तो खून में सनेंगे। लेकिन खुदा का आदेश यह है कि बीवियों को खेती बताया है खेती में तो हल चलाया जाता है हल के तो एक ही फावड़ा होता है आज कल तो ट्रेक्टर से अनेक फावड़ों से खेती को उपजाऊ और पैदावार के लिए जोता जाता है तो क्या उन स्त्रियों से जो आपके घर की बीवियाँ हैं हल की भाँति का व्यवहार करेंगे क्या संभोग में जो अंग काम आता है संतान प्राप्ति के लिए वह हल के समान है ? खेती में तो ढेर सारा हल चलाना पड़ता है जब ढेर सारा अनाज उत्पन्न होता है तो अल्लाह की आज्ञा से एक नहीं अनेक बीवियों पर हल के समान उनको हाँकोगे जब ढेर सारी फसल तैयार होगी। यह कितने आश्चर्य की बात है कि पत्नियों को जहाँ खेत की संज्ञा दी गई है, बुरी तरह रौंदा जाता है जब फसल होती है तो क्या स्त्रियों का कुरान में एक खेत के बराबर स्थान है जहाँ वेद कहता है कि स्त्रियों के बिना घर–घर नहीं है अर्थात् पत्नी ही घर है वहाँ कुरान में घर के स्थान पर पत्नी को खेत बना दिया। यही अचम्भा इस युग में चलता रहा और स्त्री दिन प्रतिदिन अपने होने को भी न होने के बराबर सोचने लगी और अपनी पशु समान दुगर्ति पर आँसू बहाती रही। "कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारों को खबर दूँ कि अल्लाह की ओर से बहिस्तें हैं जिनमें नहरें चलती हैं, उन्हीं में सदैव रहने वाली शुद्ध बीवियाँ हैं अल्लाह की प्रस्न्नता से। अल्लाह उनको देखने वाला है साथ बन्दों के।। – मं.1। सि. 3। सू. 3। आ. 12।।

समीक्षक – भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यावन ? इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण ? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर का किया पुस्तक मान सकता है ?

और शिक्षा दी हमने उस औरत को और रक्षा की उसने अपने गुह्य अंगों की। बस फूँक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को।। – मं.4। सि. 17। सू. 21। आ. 88।।

समीक्षक–ऐसी अश्लील बातें खुदा की पुस्तक में खुदा की क्या और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होतीं। और अटकी रहो बीच घरों के आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूल की, सिवाय इसके कोई नहीं।। बस जब अदा कर ली ज़ैद ने हाजित उससे, ब्याह दिया हमने तुझसे उसको तौकि न होवे ऊपर ईमान वालों के तङ्गी बीच बीवियों से लेपालकों उनके के, जब अदा कर लें उनसे हाजित और है आज्ञा खुदा की की गई।। नहीं है ऊपर नबी के कुछ तङ्गी बीच उस वस्तु के।। नहीं है मुहम्मद बाप किसी मुर्दे का।। और हलाल की स्त्री ईमानवाली, जो देवे बिना महर के जान अपनी वास्ते नबी के।। ढील देवे तू जिसको चाहे उनमें से और जगह देवे तर्फ अपनी जिसको चाहे, नहीं पाप ऊपर तेरे।। ऐ लोगों! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैग़म्बर के।।

– मं.5। सि. 22। सू. 33। आ.व. 33/34/37/38/40/47/48/50।।

समीक्षक–यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में कैद के समान रहे और पुरुष खुल्ले रहें। क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा ? इस अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेषकर सयलानी और विषयी होते हैं। अल्लाह और रसूल की एक अविरुद्ध आज्ञा है। वा भिन्न–भिन्न विरुद्ध ? यदि एक है तो दोनों की आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न–भिन्न विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी झूठी ? एक खुदा दूसरा शैतान हो जायेगा ? और शरीक भी होगा ? वाह कुरान का खुदा और पैग़म्बर तथा कुरान को! जिसको दूसरे का मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे। यदि न होते तो (लेपालक) बेटे की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी; अपनी स्त्री क्यों कर लेते ? और फिर ऐसी बातें करने वाले का खुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। मनुष्यों में जो जंगली भी होगा। वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना! यदि नबी किसी का बाप न था तो जैद (लेपालक) बेटा किसका था ? और क्यों लिखा ? यह उसी मतलब की बात है कि जिस बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैग़म्बर साहेब न बचे, अन्य से क्यों कर बचे होंगे ? ऐसी

चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होना कभी नहीं छूट सकता। क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर विवाह करना चाहे तो भी हलाल है ? और यह महा अधर्म की बात है कि नबी जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्री लोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड़ सकें। जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार दृष्टि से प्रवेश न करें तो वैसे पैग़म्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें। क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निश्शङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें ? भला! कौन ऐसा हृदय का अंधा है कि जो इस कुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब को पैग़म्बर और कुरानोक्त ईश्वर को परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्ति शून्य धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अरब देश निवासी आदि मनुष्यों ने मान लिया।"[57]

इस प्रकार कुरान में अनेक स्थानों पर स्त्रियों की दुर्दशा भरे वाक्य मौजूद हैं जिनसे साफ पता चलता है कि मुस्लिम समुदाय में औरत का क्या स्वरूप है और वह इस समाज में किस दर्जे की है।

पौराणिकों ने मुस्लिमों ने इस मध्यकाल को ऐसा दबोचा कि कोढ़ में खाज़ हो गई या कहो पुरुषों के लिए तो मणि कांचन योग हो गया। स्त्री रूपी मणी को कांचन की जगह काँच बनाकर ऐसा फैंका कि उसके इतने टुकड़े हो गये जो आज तक भी जोड़े-जोड़े जुड़ने में नहीं आ रहे हैं जो मध्यकाल में कवियों ने हिन्दी साहित्य में रचना की है वे सब पौराणिक एवं मुस्लिम प्रभाव से मुक्त न हो सकी। जो साहित्य प्रेमी राजा बादशाह हुए उसमें स्त्रियों का नख-शिख वर्णन बड़े ही चाव से सुना जाता और साहित्यकारों को पुरस्कृत कर उन्हें उच्च पदासीन किया जाता।

इस युग में साहित्यिक रचनाएँ कई धाराओं में बह रही थी जैसे प्रथम संस्कृत साहित्य की थी। प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी साहित्य सृजन का कार्य सुचारू था। हिंदी भाषा का साहित्यिक भी कुछ अंशों में प्रारंभ हो चुका था।

वस्तुतः हमने यहाँ मध्य युग को महाभारत के युद्ध से उन्नीसवीं शताब्दी तक माना है इस कारण महाभारत से लेकर मुगलों के भारत आगमन एवं शासन तक की चर्चा आवश्यक थी। हिन्दी साहित्य का मध्य युग आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार सं. 1875 से 1900 तक माना जाता रहा है और यह भी चर्चा आवश्यक थी कि इनके धार्मिक ग्रन्थों में जो था उसी की प्रतिकृति इनके साहित्य में थी। धर्म ग्रन्थों का प्रभाव साहित्य में प्रचुर मात्रा में है क्योंकि व्यक्ति या साहित्यकार का जो आचरण होता है वह स्वयं के धर्म के

अनुसार होता है और उसी से सम्बन्धित व्यवहार उसके साहित्य में अवश्य आता है देशकाल वातावरण तथा धर्म का प्रभाव साहित्यिकार के साहित्य में प्रदर्शित होना स्वाभाविक है। इस दौरान संस्कृत साहित्य में अनेक आचार्य कवि, नाटककार तथा गद्यलेखक उत्पन्न हुए। आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, कुन्तक, क्षेमेन्द्र, भोज देव, मम्मट, राजशेखर, विश्वनाथ, भवभूति श्रीहर्ष, जयदेव आदि हुए। इसी प्रकार अपभ्रंश में बौद्ध और जैन साहित्य की प्रचुर मात्रा में रचना हुई किन्तु हिन्दी सामान्यजन भावना को प्रदर्शित कर रही थी। यह भाषा सामान्य लोगों की पारिभाषिक शब्दावली का प्रतिनिधित्व करने वाली धीरे–धीरे बनने के लिये निरन्तर अग्रसर हो रही थी। संस्कृत के कवि व लेखक अपनी दुनिया में मस्त थे तत्कालीन परिस्थितियाँ उन्हें कुछ कम प्रभावित कर रही थी। वे अपने पण्डित्य प्रदर्शन एवं आनन्द में ही अपनी प्रतिभा को खोज रहे थे। प्राकृत एवं अपभ्रंश के कवि धर्म प्रचार का बिगुल बजा रहे थे। साहित्य लिखना उनके लिए तब था जब वे धर्म प्रचार से कुछ फुरसत महसूस करते। केवल मात्र हिन्दी ही इस काल की एक ऐसी सहज भाषा थी जिसकी जन सामान्य में पेठ मौजूद होने लगी थी और वह उनके क्रिया कलापों को अपने में समेटने लगी थी अर्थात् यह कहना अनुचित न होगा कि दर्पण रूपी समाज के प्रतिबिंब को अपने भीतर समेटने की भाषा हिन्दी बन गई थी। इसलिए अन्य भाषा के बजाय प्रारंभिक हिन्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के स्त्री विमर्श की चर्चा हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त और कहाँ मिलेगी।

इस युग में भारत देश की राजनीतिक व धार्मिक स्थिति बड़ी ही विचित्र दशा से गुजरने के कारण चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था देश की सामाजिक व्यवस्था युद्धों एवं आक्रमणों के कारण बुरी तरह चरमराने लगी थी धर्म की अनेक परिभाषाएँ अलग–अलग मत पंथ वाले अपने अनुसार कर रहे थे जिससे जनता निर्णय नहीं ले पा रही थी कि वास्तविकता क्या है। जाति–पाँति के बन्ध कड़े से कड़े होते जा रहे थे। निर्धन लोगों पर अत्याचार बढ़ते जा रहे थे। उच्च वर्गों के लोग भोग में लिप्त रहते थे। नारी को केवल भोग्या के रूप में ही देखा जाता था वह क्रय विक्रय की वस्तु के समान थी उसका अपहरण एक आम बात थी ऐसी दशा में नारी शिक्षा का तो दूर–दूर तक अभाव था। पर्दे की प्रथा का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया था मुस्लिम अत्याचारियों के कारण भारत में भी परदे प्रथा की व्यवस्था चलने लगी आक्रान्ता बलपूर्व जिस भी सुन्दर स्त्री को देखते थे उसे लूटकर ले जाने में कोई संकोच नहीं करते थे। "यवनों के आने से पहले भारतीय समाज में पर्दे का रिवाज बिल्कुल नहीं था...यवन अत्याचारी गण आर्य देवियों को बलपूर्वक छीन लेते थे और

यवनों में शासित होने के कारण आर्यगण ऐसा अत्याचारियों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहते थे। ऐसी अवस्था में उन्होंने स्त्रियों को परदे के भीतर बन्द रखना ही उचित समझा।"[58]

इस प्रकार भारतीयों में धीरे–धीरे लड़कियों को छोटी उम्र में ही विवाहित करने लग गये यह सोचकर कि जहाँ विवाहित हुई है उसकी रक्षा की जिम्मेदारी उनकी होगी इस प्रकार देश में बाल विवाह प्रचलित हो गया। बनारस के प्रसिद्ध पण्डे काशीनाथ ने शीघ्रबोध पुस्तक बनाकर उसे धर्म का जामा पहना इस बाल विवाह को उचित ठहरा दिया धर्म भीरु जनता को पण्डे इस शास्त्र का प्रमाण के रूप में देने लगे क्योंकि धर्म के प्रति लोगों में श्रद्धा थी और जो धर्म के पीछे पाखण्ड फैला रखा था उससे भी जनता डरती भी थी, काशीनाथ का श्लोक देखने योग्य है–

"अष्ट वर्षा भवेद् गौरी, नव वर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेद् कन्या, तत ऊर्ध्वं रजस्वला।।
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्टवा कन्यां रजस्वलाम्।।

अर्थात् आठ वर्ष की बालिका की गौरी संज्ञा नौ वर्ष की बालिका की रोहिणी की संज्ञा और दश वर्ष की बालिका की कन्या संज्ञा होती है, उसके पश्चात् रजस्वला होने लगती है। रजस्वला कन्या को देखकर माता–पिता और बड़ा भाई तीनों नरक को जाते हैं, तात्पर्य यह है कि रजस्वला होने से पूर्व ही बालिका का विवाह कर देना चाहिए।"[59]

इस युग में स्त्रियों का विधवा–विवाह का भी प्रचलन नहीं था या तो वे पति के मरने पर उस पति की चिता के साथ ही अपने आपको भस्म कर देती थी क्योंकि उस समय उन स्त्रियों के पुरुषों के मरने के पश्चात् स्त्री की रक्षा, सुरक्षा तथा उनका शील कोई बचाने वाला नहीं था इसलिए उनके पास अपनी इज्ज्त बचाने का एक ही उपाय उनको दिखाई देता था वस्तुतः मुगलकाल में कई राजाओं की रानियों के भी ऐसे सैंकड़ों उदाहरण हैं कि पति के मरने पर उन्होंने स्वयं भी आत्मदाह किया, इस प्रकार वही चरित्र को बचाने का प्रारंभिक उपाय अन्त तक एक रूढ़ि में परिवर्तित होने लगा। और जो भी विधवा होती है उसके लिए यह एक सामाजिक मजबूरी बन गई थी। पति का अस्तित्व ही उसका जीना व मरना निश्चित करता था यह इस युग की कितनी भारी पीड़ा नारी ने सही है। इस डर के मारे कि लड़की युवा होने पर मुसलमान बादशाह की नज़र पड़ते ही तलवार के बलपूर्वक

ले जायेंगे। राजपूत लोग उन्हें पैदा होते ही मारने लगे। कन्या हत्या का कलंक भी इस युग में कम न था। यह युग सर्वदूषण युग था इसमें वे सभी दोष थे जो हिन्दुओं के पण्डों के पाखण्ड, मुस्लिमों की स्त्रियों के प्रति गिद्ध दृष्टि तथा तलवार के दम पर अपने मजहब को थोपने की प्रवृत्ति, बौद्ध और जैन के पतन से सिद्धनाथों के कुकर्मों की खिचड़ी से रात दिन सुलग रहे थे।

बीसलदेव रासो की ये पंक्तियाँ भले ही प्रेम का संदेश दे रही हो लेकिन इससे कवि की तत्कालीन स्थिति में स्त्री की दशा तो कमजोर पड़ती नजर आ ही रही है।

अस्त्रीय जनम काई दीधउ महेश।
अवर जनम थारई घणा रे नटेस।

जबकि रासो काव्य वीरता के परिचायक माने गये हैं किन्तु इनमें भी भरपूर स्त्री सौन्दर्य तथा उसके यौवन की तड़प को उजागर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, इसी प्रकार वीर गाथाकाल की कृति वसन्त विलास में स्त्रियों के विलासपूर्ण जीवन का चित्रण किया है–

इणि परि कोइलि कूजइ, पूजइं युवाते मणोर।
विधुर वियोगिनि धूजइं, कूजइ मयण किसोर।।

इसमें कवि ने रीतिकाल को भी पीछे छोड़ते हुए कोयल की कुहु–कुहु से पति की पत्नियों का जो विलासपूर्ण वर्णन है उसे देखकर विधुर व्यक्ति, वियोगिनी स्त्रियाँ उन्मत्त कामदेव का विचार मन में अनुभव करने लगती हैं अर्थात् कहने का अर्थ है कि बसन्त के मौसम में विधुर एवं वियोगिनी स्त्री पति–पत्नी का काम विलास देखकर कामातुर हो उठते हैं।

विद्यापति की पदावली में वही भागवत पुराण का अनुसरण मिलता है और श्री कृष्ण और राधा को बहाना बनाकर इन्होंने स्त्री के सम्पूर्ण काम वैभव को भाँति–भाँति से रचना में प्रस्तुत किया है जिसमें वय संधि, नख शिख, सद्यः स्नाता प्रेम प्रसंग, दूती, नोंक–झोंक, सखी संवाद, मिलन–अभिसार तथा कई प्रकार के विलास का वर्णन किया है। विद्यापति ने गीतगोविन्दकार जयदेव व उसके भाई बोबदेव भागवतकार का अनुसरण अपने काव्य में किया है। कवि की कल्पना कभी–कभी तो वासना में परिवर्तित नजर आती है।

पीन पयौधर दूबरि गाता, मेरु उपजल कनकलता।
एकान्हु एकान्हु तोरि दोहाई, अति अवरूप देखल राई।

उसके दुर्बल शरीर पर उरोज ऐसे हैं मानो कनक लता पर सुमेरु पर्वत उग आया हो। नायिका के उरोजों का रंग अत्यन्त गौर वर्ण है यह कवि कल्पना है या लालसा। 'रंग

पयौधर अति भेल गौर। माजि धरल जनि कनय कठोर' नायिका के उरोजों का स्पर्श मात्र करने से वे लाल हो गये हैं ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो कनक लता पर लाल कमल की कलियाँ खिली हों।

गौर शरीर पयौधर कोरी पर से अरुन भेल।
कनक कलरि जनि रलौपले मुकुले उदय देल।।

नायिका के उरोजों का आकार ऐसा है मानों सोने का श्रीफल बनाकर उसे दो भागों में कर वक्षस्थल पर लगा दिया हो। 'हाटक घटन सिरीफल सुन्दर कुच जुग कुटि करू आधे।' गौरवर्ण के पेट पर रोमावलि नाभि से रेंगती हुई उरोजों तक पहुँचती है एवं कुचों में जाकर छिप जाती है विद्यापति की इस कल्पना में वासना की बू आ रही है यह तो काव्य नहीं सेक्स काव्य की संज्ञा से जाना, जाना चाहिए इसे पढ़कर लोगों की कामवासना का ही विकास होगा और तो किसी अन्य विकास की कामना नहीं की जा सकती।

नभिविवर सयं लोम लतावलि भुजगि विश्वास पिपासा।
नासा खग पति चचु भरम भये कुचगिरि व सन्धि निवासा।

बड़े–बड़े तितम्ब और पतली कमर नारी में और भी रमणीयता विद्यापति बढ़ा रहे हैं नायिका की कमर अत्यन्त क्षीण है विद्यापति को उसकी कटि टूट जाने की शंका हो गई है अतः उसे कामदेव ने त्रिवली लता से बाँधकर बचा लिया है। नितम्ब अत्यन्त बोझिल हैं कटि क्षीण होने से वह चल नहीं पा रही है।

गुरु नितम्ब चलए न पारए माझ खीनिभ भिभाई।
भागि जाइति मनसिज धरि राखलि त्रिवलीलता अरुझाई।।

यहाँ पर सम्पूर्ण काव्य में विद्यापति ने नायक/नायिका के रूप में कृष्ण और राधा को चुना है।

कृष्ण के रूप को देखकर राधा का यौवन उसकी कंचुकी फाड़कर बाहर निकल आता है ऐसा भी कभी होता है क्या ? **चून चुनि भए कांचुल फाटल बाहुबलआ भागु**

इस प्रकार विद्यापति ने कृष्ण का परकीया संभोग, विपरीत रति आदि का वर्णन पदावली में बहुतायत किया है। विद्यापति के काव्य में मात्र काम को उत्तेजित अवस्था तक पहुँचाकर लोगों का मनोरंजन करना रहा है। नारी पूर्णतः वासना की प्रतिमूर्ति ही दिखाई दी है। "नारी के सहज शृंगार से लेकर उसके मानसिक सौन्दर्य तक पहुँचने की प्रवृत्ति भी

आदिकाल में पूर्ण वेग से उभरी। नखशिख–वर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास सन्देश–प्रेषण, स्वकीया और परकीया के प्रेम की सीमाएँ–ये सब आदिकालीन साहित्य के कथ्य में अन्तर्निहित है।"[60] आदिकालीन हिंदी लेखन में जैन साहित्य, सिद्ध साहित्य प्राकृत एवं अपभ्रंश सभी में स्त्री को कई स्थानों पर कामुक एवं भोग की वस्तु के साथ उसकी परदे की पीछे की स्थिति ही उजागर हुई है। इसी बीच कवियों ने भक्ति काव्य की रचना करना प्रारंभ कर दी जिसमें सगुण भक्ति, निर्गुण भक्ति, सूफी प्रेमाख्यान आदि काव्यधाराएँ प्रमुख रही। जहाँ भक्त कबीर, रैदास, दादू , नानक देव आदि कई संत वासना को दूर भगाने की बात करते थे वहीं कई कवि बीच–बीच में भक्ति के साथ वही स्त्री का कामुक रूप भी प्रदर्शित करने में न चूकते थे इस समय भारत पर मुगल शासन का प्रभुत्व रहा है सामाजिक स्तर पर स्त्रियाँ एक बंदी के रूप में ही रही हैं जैसे बेड़ियों में उन्हें कैद कर दिया हो। बाहर निकलने पर "हिन्दू कन्याओं को सम्पन्न मुसलमान अधिकाधिक संख्या में क्रय करके अपने घरों में रख लिया करते थे कुलीन नारियों का अपहरण कराके अमीर लोग अपना मनोरंजन किया करते थे। मुहम्मद बिन तुगलक ने चीन–सम्राट के पास भारतीय काफिरों में से एक–एक सौ स्त्री–पुरुषों को सौगात के रूप में भेजा था। इसके साथ ही ऐसे हिन्दू राजाओं का भी अभाव न था जो मुस्लिम महिलाओं, विशेषतः सैयद स्त्रियों को दासी–रूप में अपने यहाँ लाकर नृत्यगीत की शिक्षा दिलवाया करते थे। तत्कालीन स्मृतियों के अनुसार दासों की चार कोटियाँ थी–जन्मजात, क्रीत, अपहृत या कहीं से प्राप्त, अपने यहाँ उत्पन्न। समाज में बहु विवाह या पुनर्विवाह की प्रथाएँ प्रचलित थीं। विदेशी पर्यटकों ने तत्कालीन सती–प्रथा का भी विवरण दिया है। ओडरिक (1321–1322) नामक पादरी ने दक्षिण भारत में प्रचलित सती–प्रथा का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार पुत्रवती विधवा को 'सती' बनने का अधिकार नहीं था। इब्नबबूता ने लिखा है कि सती होने के लिए सुल्तान की पूर्व–स्वीकृति अनिवार्य थी। स्त्रियों को पुरुषों जैसा स्तर तथा सम्मान प्राप्त न था। परदा प्रथा उन दिनों की आवश्यकता बन गई थी।"[61]

इस मध्य काल में ही हिन्दी साहित्य का मध्यकाल भी समाहित है जिसके दो भाग है पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। इस काल में प्रारंभ में लोगों पर भक्ति का नशा चढ़ा जब भक्ति से थके तो वे रीति में घुस गये। क्योंकि यह काल पूर्णरूप से मुगल आधिपत्य का काल था लोग धर्म की अलग–अलग परिभाषाओं में निमग्न थे। प्रायः वैदिक नियमों को भूल चुके काल्पनिक देवी–देवताओं की कल्पना करके अपनी–अपनी कल्पना के

आधार पर अपने अलग–अलग मतों की ओर जनता का ध्यान खींचने लगे। वस्तुतः लोग इस काल की सामाजिक, राजनैतिक एवं धार्मिक व्यवस्था से खिन्न हो चुके थे उनके मन में अशान्ति का निवास था चारों ओर हाहाकार था। समाज का शोषण आम बात थी। सामन्तवादी परम्परा ने सामान्यजन की दुर्दशा कर दी थी। "मुसलमानों ने व्यावहारिक सम्बन्धों के भेद को प्रकट करने के लिए यहाँ के निवासियों को 'हिन्दू' कहा। इस शब्द का प्रथम उल्लेख विजयनगर के राजाओं के पन्द्रवीं शताब्दी वाले शिलालेख में उपलब्ध है। इसके पूर्व कदाचित इस शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है...हिन्दू समाज में भी वर्णाश्रम धर्म का उचित पालन नहीं हो पाता था, फलस्वरूप जातियों उप–जातियों की संख्या–वृद्धि हो गई थी और उनके पारस्परिक व्यवहार में आत्मीयता नहीं रह गई थी। वर्ण–व्यवस्था में आस्था न रखने वालों में भी किसी न किसी प्रकार का आपसी भेद–भाव बना हुआ था। इब्नबबूता के अनुसार इन दिनों दास प्रथा भी प्रचलित थी।...मुस्लिम महिलाओं की स्थिति हिन्दू स्त्रियों से अधिक भिन्न न थी। बहुविवाह प्रथा के कारण हरमों में इनकी दुर्गति हुआ करती थी मुस्लिम समाज अपने मूल रूप में न रह गया था।"[62] इस युग में हिन्दू स्त्रियों की दशा विचारणीय थी उन्हें मुस्लिम आक्रान्ताओं द्वारा तलवार के दम पर लूटकर ले जाया जाता था और यदि कोई अपने सतीत्व की रक्षा करना चाहे तो या तो वह जलकर मरने में शील रक्षाकर पाती थी या शील की रक्षा के लिए अपने आप को मारने का अवकाश न मिल पाता या साहस नहीं कर पाती तो उन्हें बलात्कारपूर्वक लूट लिया जाता था मार डाला जाता था क्रूरता यहीं समाप्त नहीं होती थी जब कोई स्त्री बच निकलने के प्रयास में विफल रहती या शील की रक्षा के लिए अधिक उत्साह दिखाती तो उनकी योनी में भाले रोपकर उन्हें उल्टा कर मौत के घाट उतार दिया जाता था यह थी क्रूरता की हद। इतिहास गवाह है कि गुरु गोविन्द सिंह के धर्म परिवर्तन न करने पर उन्हें और उनके चार पुत्रों को किस तरह मार डाला तथा उनके शिष्य बन्दा बैरागी के बच निकलने पर उसको पाँच सौ सैनिकों के साथ जिसमें स्त्री पुरुष बच्चे थे, उन महिलाओं के साथ उपरोक्त बर्ताब किया गया। मुसलमानों से शील की रक्षा के लिए तो राजपूताने में सैंकड़ों उदाहरण जौहर के इतिहास में मिलते हैं।

इस काल में हिन्दू स्त्रियों को तो भाले डालकर उल्टा लटकाकर यातनापूर्ण तरीके से मार डाल दिया जाता था किन्तु मुस्लिम महिलाओं की भी स्थिति बड़ी बुरी थी उन्हें केवल पर्दे के पीछे छुपाकर पुरुषों ने वस्तु के समान अधिक से अधिक दोहन करने की व्यवस्था बना रखी थी स्त्रियों की दशा यह थी जैसे उनमें जीव न हो उन्हें मात्र भोग एवं वासना का साधन मात्र समझा जाता था उनके लिए कुरआन में सख्त आदेश था कि– "तुम रहो सिर्फ

घर में, बाहर न निकलो घर से।"[63] स्त्रियों के लिए तो इस्लाम में केवल घर में रहने का आदेश है जैसे उनको बाहर स्वच्छ हवा में घूमने का सारा अधिकार छीनकर पुरुषों ने ले लिया हो और स्वयं पुरुष एक नहीं चार तक स्त्रियों से अपनी काम पिपासा शान्त करता रहे तो भी कोई बंदिश नहीं। "तुम्हारे लिए जायज है, दो–दो, तीन–तीन और चार–चार तक विवाह कर लें।"[64] इस प्रकार से कुरआन मुस्लिम पुरुष को स्वेच्छाचारी बनाती है। "कुरआन के अरबीकाल में मुस्लिम शासकों व आन्दोलनकारियों ने युद्ध में पकड़ी गई युवतियों को रखैल (लौंडी) बनाकर अपनी वासना का शिकार बनाया और सब कुरआन के आदेशानुसार।"[65]

कुरआन अननिसा 24 में लिखा है निकाह वाली को छोड़ दूसरी को कब्जे में करो। लौंडी व निकाह स्त्री को छोड़ना व दूसरी को कब्जे में करना यह स्त्रियों पर अत्याचार नहीं तो क्या है ? अत्याचार के साथ ही संयमहीनता का इससे बड़ा उदाहरण कोई नहीं हो सकता। "जो स्त्री किसी के निकाह में है वह तो अवैध है, सुन्दर आदेश है किन्तु प्रश्न यह उठता है कि जो स्त्रियाँ कुमारी हैं या अविवाहिता हैं, उन्हें अल्लाह ने मालद्वारा प्राप्त करने की बात क्यों कही ? इसका अर्थ तो यह है कि आपकी पत्नी, लौंडी के बाद जो भी स्त्रियाँ है (वह चाहे माता, बहिन या पुत्रियाँ हों) उन्हें धन द्वारा प्राप्त करना पाप नहीं अर्थात् वैश्यावृत्ति को पनपाने का आदेश भी कुरआन में है।"[66] वैसे भी यह निश्चित है कि वैश्यावृत्ति बौद्धकाल से प्रारंभ होकर मुस्लिम काल में अधिक चरम पर पहुँच गई थी।

इन दिनों शोषण चरम पर था बादशाहों ने अपने विलास के लिए स्त्रियों के शोषण में कोई कमी न छोड़ी थी, स्त्रियाँ ही नहीं इस काल में प्रत्येक जीवन पीड़ित था। "गोस्वामी तुलसीदास कृत कवितावली की निम्नलिखित पंक्तियों से तत्कालीन स्थिति का स्पष्ट परिचय मिलता है–

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भली,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सो कहाँ जाई का करी।।"[67]

अब इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय किस प्रकार भारतीय सभ्यता पूरी तरह ध्वस्त हो चुकी थी ऐसी स्थिति में व्यक्ति किंकर्त्तव्यमूढ़ होकर जीवन की यात्रा को बड़ी मुश्किल से ढो रहे थे। ऐसे वातावरण में किसी में तो जीवन के प्रति विरक्ति सच में जगी किन्तु अधिकाधिक देखा देखी एवं कुछ नहीं करने से अच्छा साधु बनने में

अपना भला सोचने लगे। इस काल में जो पाखण्ड साधु समाज ने फैलाया उसे हम आज दिन तक भी भुगत रहे हैं क्योंकि इसमें कोई वैदिक गुरुकुलों से पढ़कर स्वविरक्ति से तो साधु नहीं बने थे। वे सबके सब अनपढ़ एवं गँवार थे। मन में कविता का भाव किसी के भी आ सकता है किन्तु ज्ञानी व्यक्ति कविता तर्कपूर्ण करेगा तथा अज्ञानी पाखण्ड पूर्ण। जो जिसने देखा वही वह कविता में लाने लगा और यही भक्तिकाल बन गया। भक्तिकाल में जो भी साधु संतों की रचनाएँ हैं उन सबमें भी नारी के प्रति कहीं भी सम्मान की भावना दृष्टिगोचर नहीं होती। पूरे भक्तिकाल में गपोड़वाद चला। कहीं–कहीं नीतिगत बातें भी हैं किन्तु अधिकतर वे ही निरर्थक बातें हैं जो वेद विरुद्ध पुराणों से ली गई हैं।

कबीर दास जी कई जगह अपने आपको अज्ञानी एवं अनपढ़ बताते हैं किन्तु इनकी भक्ति भावना दृढ़ इच्छा शक्ति पर कायम थी निरक्षर होते हुए भी कबीर ने शुद्ध समाज सुधार का कार्य किया है विषय वासना से दूर रहना संतों को अनिवार्य बताया है– "विषयासूं न्यारा रहै, संतनि का अंग एह।"[68]

कबीर ने हिन्दू एवं मुसलिम के भेद को भी मिटाने का भरसक प्रयास किया इसमें इनके गुरु रामानन्द का भी पूरा सहयोग रहा है।

कबीर गृहस्थ थे लेकिन कबीर ने नारी की भरपूर निन्दा की है इसके तीन कारण हो सकते हैं **पहला** कबीर को पत्नी अच्छी नहीं मिली हो वे अपने गृहस्थ जीवन से दुःखी हों पत्नी ने कबीर के साथ विश्वासघात किया हो इसलिए नारी के प्रति उनके मन में घृणा की भावना पैदा हो गई हो। **दूसरा** तत्कालीन सामाजिक स्थिति में नारी के प्रति पुरुषों का सदा वासना रूपी लंपट भाव रहा है। इसलिए लोगों को समझाने की दृष्टि से उन्होंने नारी को नरक द्वार कहा। लेकिन नारी को नरक का द्वार कहने से पहले पुरुषों की मनः स्थिति बदलने की आवश्यकता भी सामाजिक परिवर्तन की आवश्यकता थी। **तीसरा** कारण यह भी हो सकता है कि स्त्रियों ने ही जैन और बौद्ध सम्प्रदाय में घूमते–घूमते अपने को स्वेच्छाचारिणी बना लिया हो और जगह–जगह व्यभिचार करती फिरती हों। "वास्तव में सामन्तवादी युग में नारी एक 'वस्तु' 'भोग की वस्तु' मान ली गई थी। इसका प्रतिरोध कबीर ने 'व्यभिचारिणी', 'कामिनी' नारी के माध्यम से किया है। माता, पतिव्रता–सती का वे बड़ा मान करते रहे हैं। वैसे भी कबीर के समय में नारी की दशा बहुत दयनीय थी। चारों ओर बाल विवाह, पर्दाप्रथा, अशिक्षा का माहौल था। ऐसे माहौल में भारतीय नारी का आदर्शवादी स्वरूप धुंधला हो गया था। कामुक वृत्तियों का बोलबाला होने के कारण, समाज की मानसिकता में सड़ांध युक्त खुजली जैसी दुर्गति देखने को मिली होगी कबीर को। नारी

की दयनीय स्थिति एवं 'मूर' जाति द्वारा चलाई जा रही 'दास प्रथा' जन्य 'दास' की करुण अवस्था देखकर रो पड़े होंगे कबीर। उनकी इन पंक्तियों में उस दशा की साक्षी मानसिकता का कुछ आभास मिल सकता है–

कोई लरिका बेचई, लरिकी बेचै कोई।
साझा करै कबीर सिउ, हरि संग बनिज करेई।।
मूरों कौं का रोइए, जो अपणे घर जाइ।
रोइए बंदीवान को, जो हाटैं हाट बिकाइ।।"[69]

इससे यह तो पता लग ही गया कि उस काल में लड़कियों की खरीद फ़रोक्त आम बात थी। वास्तव में तो उस समय पुरुष एवं स्त्रियाँ दोनों ही लम्पट थे। स्त्री–पुरुषों के संयम में कमी बौद्ध और जैन काल में ही आ गई थी क्योंकि जब बौद्ध और जैनकाल चरम पर थे तब तो इनमें संयम था लेकिन स्त्रियों को भी संघ में शामिल कर लेने से धीरे–धीरे इनमें स्वेच्छाचारिता आते–आते इन्होंने खुले आम व्यक्तियों भिक्षुओं–श्रमणों के साथ सहवास करना शुरु कर दिया था। कबीर साखी में नारी विमर्श के कुछ अंश देखने से पता लग जायेगा कि उस समय नारी की क्या स्थिति समाज में थी। कबीर ने पुरुष एवं स्त्रियों की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए नारी को काली नागिन की संज्ञा दी।

"काँमणि काली नागणीं, तीन्यू लोक मँझारि।
राँमसनेही ऊबरे, विषई खाये झारि।"[70]

क्योंकि काली नागिन इतनी चालाक होती है जो अपना कार्य डसने का करके तुरन्त गायब हो जाती है पकड़ में नहीं आती।

"कामणि मींनीं षाणि की, जे छेड़ौं तौं खाइ।
जे हरि चरणां राचियाँ, तिनके निकट न जाइ।"[71]

यहाँ स्त्री को बिना कारण के किसी का बुरा नहीं करने वाली बताया है अर्थात् स्त्री को छेड़ने पर वह शहद की मक्खी के समान है जो मनुष्य इसे छेड़ता है उसे तुरन्त काट लेती है।

"पर नारी पर सुन्दरी, बिरला बंचै कोइ।
खाताँ मीठी खांड सी, अंति काल विष होइ।।"[72]

यहाँ पर कबीर दास ने उन लंपट लोगों की ओर संकेत किया है जो स्त्रियों को मात्र भोग्या वस्तु ही समझकर उनके प्रति व्यवहार करते हैं दूसरे की स्त्री और सुन्दर नारी की

ओर दृष्टि रखना जनहित में नहीं है पर नारी के प्रति वासना भाव अत्यन्त भयानक परिणाम देने वाला है।

नर-नारी सब नरक हैं, जब तक देह सकाम।
कहै कबीर ते राम के, जै सुमिरै निहकाम।।

नारी सेती नेह, बुधि विवेक सबहीं हरै।
काँह गमावैं देह, कारिज कोइ नाँ सरै।।

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग।
बेगि छाँड़ि पछिताएगा, ह्वै है मूरति भंग।।

नारि नसावैं तीन सुख, जा नर पासैं होइ।
भगति, मुकति, निज ग्यान में, पैसि न सकई कोई।।

एक कनक अरु काँमिनी, विष फल कीएउ पाइ।
देखे ही थै विष चढ़ै, खाये सूँ मरि जाइ।।

एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगिनि झाल।
देखे ही तन प्रजलैं, परस्यां ह्वै पामाल।।

कबीर भग की प्रीतड़ी, केते गए गडंत।
केते अजहूँ जायसी, नरनि हसंत-हसंत।।

जोरु जूठणि जगत की, भले बुरे का बीच।
उत्यम ते अलगै रहैं, निकट रहैं तैं नीच।।

नारी कुण्ड नरक का, दिरला थंभै बाग।
कोई साधू जन ऊबरे, सब जग मूवा लाग।।

सुन्दरि थैं सूली भली, बिरबा बंचै कोई।
लोह निहाला अगनि में, जलि बलि कोइला होइ।।

अन्धा नर चेतै नहीं, कटै न सँसै सूल।
और गुनहि हरि बकससी, काँमी डाल न मूल।।
नारि पराई आपणी, भुगत्या नरकहि जाइ।
आगि-आगि सबरौ कहैं, तामैं हाथ न बाहि।।"[73]

यह कहा जा सकता है कि कबीर की नारी निन्दा उचित नहीं है मनुष्य अपनी दुर्बलताओं के कारण ही नारी की ओर आकर्षित होता है। इसमें स्त्री का कोई दोष नहीं है किन्तु ध्यान से देखने पर यह भी पता चलता है कि तत्कालीन पुरुष कामी थे।

स्त्रियों ने भी अपने शील को वैसा नहीं बना रखा था जैसा वैदिक युग में था इसलिए इसमें उस समय के पुरुष, शासनाध्यक्ष एवं स्त्री तीनों जिम्मेदार थे। कहीं–कहीं तो कबीर ने नारी को ऐसे ऐसे उपमान दिये जो एक संत के लिए उचित नहीं। नारकीय कीड़े, बुद्धिज्ञान हरने वाली, विषफल, अग्नि, संसार की झूठन, नरक का कुण्ड, अपवित्र जिसके देखने मात्र से शरीर नष्ट हो जाता है। वैसे कबीरदास जी ने नारी की निन्दा समाज को समझाने की दृष्टि से की हो किन्तु इतने कटु शब्दों का प्रयोग नारी को अवश्य पीड़ा देने वाला है यहाँ पर कबीर की अशिक्षा सिद्ध होती है नारी यदि भोग्या बनी तो वह स्वयं तो जिम्मेदार है ही किन्तु समाज भी उससे अधिक जिम्मेदार रहा, जो उन मूल्यवान नियमों के विरुद्ध गया और स्त्री को जाने दिया। मुख्यतः वैदिक ज्ञान को त्याग देना ही इस स्थिति का मूल कारण रहा इसलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कबीर के लिए लिखा है कि– "कई पण्डितों के पास फिरा, परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊटपटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था, भजन बनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फँस गये। जब मर गया तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया। जो–जो उसने जीते जी बनाया था उसको उसके चेले पढ़ते रहे।"[74] इस प्रकार कबीर की स्त्री निन्दा से उनका अशिक्षित होना पाया जाता है तत्कालीन समाज में जो स्त्री के प्रति आदर या निन्दा उन्होंने घूम–घूमकर महसूस की उसे ही अपनी रचना में बिना सोचे विचारे जोड़ दिया। जिसका परिणाम यह हुआ कि जनसामान्य स्त्रियों को निरन्तर हीन दृष्टि से देखने लग गये। समाज में पाखड फैलता गया और स्त्री को मुक्ति में बाधक माना जाने लगा। किसी धार्मिक कार्य में स्त्री और शूद्र के दर्शन अपशकुन माने जाने लगे। यहाँ तक कि लोगों द्वारा स्त्रियों से वेद पढ़ने के अधिकार तक छीन लिए गये। उसे नितांत अपवित्र समझा जाने लगा। वह मात्र वासना पूर्ति का साधन थी जिससे पुरुष उसे अपवित्र मानने लगे। इस प्रकार इनके समकक्ष एवं बाद में आने वाले लगभग सभी भक्त कवियों ने स्त्री को भक्ति में बाधा माना। इस समय केवल मात्र सुन्दरदास ही शिक्षित भक्त कवि थे इनकी साहित्य रचना ऊटपटांग न होकर सधी हुयी थी।

"निर्गुण पंथियों में यही एक ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्हें समुचित शिक्षा मिली थी।"[75] इन्होंने तत्कालीन स्त्रियों की जो असंयमित व्यवस्था थी उसके बारे में अपना स्त्री विमर्श

इस प्रकार व्यक्त किया।

"पति ही सूँ प्रेम होय, पति ही सूँ नेम होय,
पति ही सूँ छेम होय, पति ही सूँ रत है।
पति ही जज्ञ जोग, पति ही है रस भोग,
पति ही सूँ मिटै सोग, पति ही को जत है।।
पति ही है ज्ञान ध्यान, पति ही है पुन्य दान,
पति ही है तीर्थ, न्हान, पति ही को मत है।
पति बिनु पति नाहिं, पति बिनु गति नाहिं,
सुंदर सकल विधि एक पतिव्रत है।।"[76]

यहाँ इस रचना में शिक्षा का प्रभाव साफ दिखाई दे रहा है स्त्रियों की बिगड़ती हुई स्थिति एवं पाखण्ड में फँस कर स्त्री अपने गृह को महत्त्व न देती हुई अन्य बाहरी क्रिया कलापों द्वारा पाखण्ड को ही अपने घर परिवार एवं स्वयं के जीवन मूल्यों से अधिक समझ रही है इस कारण सुन्दरदास जी ने वेदोक्त रीति को बड़े ही मनोहारी भावों में व्यक्त किया है।

जो भक्त कवि अभ्यान्तर विरक्ति से युक्त था उसने तो तत्कालीन समाज सुधार का भरसक प्रयास किया किन्तु जो बिना विरक्ति के अपनी प्रतिष्ठा बनाने या बादशाहत को खुश करने के लिए भक्ति मार्ग में आये उनके मन में तो नारी के प्रति गहरी इच्छा दिखाई देती है जिसको बाद में रहस्यवाद की गहराई में व्याख्यायित कर दिया गया।

प्रेमाख्यान काव्य में भी केवल मात्र स्त्री को प्राप्त करने का लक्ष्य साधा है जिसमें पौराणिक कथा कहानियों को लेकर तत्कालीन समाज का मनोरंजन किया है। प्रेमाख्यान सूफी शाखा के प्रतिनिधि कवि जायसी को ही माना जा सकता है। जायसी के काव्य में स्त्री–विमर्श उजागर हो रहा है काव्य को देखने से पता चल जाता है कि ये संत थे या सुधारक या फिर स्त्री की न मिलने की भूख को साहित्य में उतार कर तृप्ति प्राप्त करने वाले कवि।

जायसी ने जिस प्रकार काव्य रचना में वासना को भरा है उससे यह जाहिर होता है कि वे स्वयं काम पीड़ा के शिकार थे। नेत्रों को खंजन पक्षी का जोड़ा काम क्रीड़ा करता हुआ बताया है और स्तनों को नांरगी के ऊपर भौंरा बैठाकर उसका रसपान कराने में तत्पर रहे–

"नैन खंजन दुइ केलि करेही।
कुच–नारंग मधुकर रस लेहीं।।"[77]

एक संत कवि से यह अपेक्षा समाज को शायद न होगी कि वह स्त्री को इतनी पैनी दृष्टि देखे कि उसके अंग प्रत्यंग बिना देखे ही व्यक्ति में उत्तेजना भर जाये और वह स्त्री को हमेशा वासना रूप में ही देखे जबकि वैदिक काल में नारी माता रूप में थी किन्तु मध्यकाल में वह भोग्या बनाकर रख दी गई। जायसी का एक उदाहरण और देखने पर स्पष्ट हो जायेगा कि उस समय स्त्री को कितनी भूखी दृष्टि से देखा जाता था–

"हिया थार, कुच कंचन लारु। कनक कचोर उठे जनु चारु।।
कुंदन वेल साजि जनु कूँदे। अमृत रतन मोन दुइ मूँदे।।
बेघे भौंर कंट केतकी। चाहहिं वेध कीन्ह कंचुकी।।
जोबन बान लेहिं बागा। चाहहिं हुलसि हिये हठ लागा।।
अग्नि–बान दुइ जानौं साधे। जग बेधहिं जौं होहिं न बाँधे।।
उतँग जँभीर होइ रखवारी। छुइ सकै राजा कै बारी।।
दारिऊँ दाख भरे अनचाखे। अस नारंग दहुँ का कहँ राखे।।
राजा बहुत मुए तपि, लाइ लाइ भुइँ माथ।
काहू छवै न पाए, गए मरोरत हाथ।।"[78]

यह है प्रेमाख्यान सूफी शाखा का स्त्री–विमर्श! जायसी इस रचना में कितने कामुक दिखाई दे रहे हैं जैसे कोई नग्न चलचित्र चल रहा हो। कंचुकी को फाड़कर स्तनों को बाहर निकाल जायसी क्या करना चाहते हैं ? इससे ईश्वर प्राप्त हो जायेगा ? यह थी उस समय की संतों की अश्लीलता या फिर सूफी प्रेममार्गी धारा जो स्तनों से ही बहती–बहती समाज को भी बहाकर कर ले गई। मध्यकाल के जितने भी साहित्यकार थे ये मानसिक विकृति को अपने भीतर भरे हुए थे इन्होंने स्त्री को एक ओर तो नरक का द्वार बताया और एक ओर इनकी दबी हुई भावना इनके काव्य में कहीं न कहीं तो नजर आ ही जाती है। बाहर से भक्त थे किन्तु भीतर से लम्पट और कामी थे। अशिक्षा तथा गरीबी के कारण संत बन गये, परन्तु स्त्री सुख प्राप्त न कर सके। इस कारण न चाहते हुए भी मध्यकाल का स्त्री विमर्श इन्होंने उगल ही दिया। इसी प्रकार सगुण भक्ति साहित्य भी नारी के नख–शिख आन्दोलन से दूर होते हुए भी गलती से भक्त कवियों के मुख से नारी के प्रति हृदय के उद्‌गार प्रकट हो ही गए।

तुलसीदास को हिन्दी साहित्य के मध्यकाल का लोकनायक माना जाता है किन्तु उनकी विरक्ति की भी सुन्दर कथा है पत्नी के प्रति आसक्ति तुलसी की इतनी बढ़ गई थी

कि उसे न पाने पर घर छोड़ दिया फिर स्त्री को ताड़ने का अधिकार दे दिया। जब लोकनायक रामचरितमानस जैसे महाकाव्य का रचयिता स्त्रियों के प्रति ऐसी मनोदशा रखता हो तो अनुमान कठिन नहीं है, कि उस युग में स्त्री की क्या पीड़ा होगी वह इतने कठिन समय में थी जिसका प्रमाण रामचरितमानस में मिल जाता है तुलसी ने कल्पना के आधार पर कई जगह स्त्री चरित्र को उदात्त बनाया है किन्तु कहीं न कहीं काव्य की धुन में उनकी पीड़ा मुखर हो उठी और लिख डाला 'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' इसका अर्थ कितना बड़ा है प्रत्येक हिन्दी साहित्य पढ़ने वाले पाठक को ये पंक्तियाँ कंठस्थ हो चुकी हैं।

जिस प्रकार ढोल के लट्ठ पड़ता है तो वह ढम्ब की आवाज करता है और पशु बिना लट्ठ खाए भागता नहीं उसी प्रकार स्त्री जहाँ वेदों में गृह है, लक्ष्मी है, उषा है, साम्राज्ञी है, गृहस्वामिनी है, जितनी भी पदवियाँ है वह है, तो मध्यकाल में आते–आते वह लट्ठ की भाषा से समझने लगी। वह घर में रह रही हो या बाहर उसे लट्ठ की भाषा ही पहचान में आती है, क्यों तुलसीदास के कहने पर भी उनकी पत्नी मायके चली गई उसको उनकी बात माननी चाहिए थी क्योंकि उनका कामवेग थमा नहीं था और वह मायके चली गई। चली भी गई तो उसे कम से कम तुलसी की बात तो माननी चाहिए थी, नहीं भी मानी, साँप को रस्सी समझकर घर में चढ़ गये तब तो उनका आवेश समझना चाहिए। संयम फटा जा रहा था परन्तु दीनबन्धु पाठक की पुत्री रत्नावली बेचारी उस फटने को न समझ सकी और उसे पता भी न चला कि पुरुष के काम के वेग को थामना नहीं जानने की यह सजा होगी कि उसका पूरा गृहस्थ फट जायेगा और वह विवाहित होते हुए भी विधवा का जीवन बिताएगी। उस समय तुलसी में हिम्मत होती तो वे अवश्य उसे लट्ठ की भाषा समझाते पर या तो जोर नहीं चला या लट्ठ नहीं था। पर यह तो सोच ही लिया था कि एक दिन रामचरित मानस महाकाव्य की रचना करुँगा और मानस में आयेगा वैसा राम के चरित्र की धज्जियाँ उड़ा दूँगा और उसके साथ–साथ इस रत्नावली को भी लट्ठ की भाषा समझा ही दूँगा तब जाकर उन्होंने यह लिखा ढोल गँवार शूद्र पशु नारी सब ताड़न के अधिकारी कहाँ का बदला कहाँ लिया है तुलसी ने। पत्नी से बदला लेने के लिए सभी स्त्रियों के चरित्र को मटियामेट क्यों किया यह समझ नहीं आता ?

इसमें कोई संदेह नहीं कि उस युग के तुलसी महान् कवि थे किन्तु एक पक्ष उनका

भी कमजोर था जैसी उस समय के सब संतों की स्त्री के प्रति भावना थी वैसी ही तुलसी की थी क्योंकि वे आगे भी लिखते हैं कि–

कत विधि रची नारि जग माहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।।

वास्तव में स्त्री का यह समय गुलामी का था वह दासों एवं पशुओं की भाँति हर क्षेत्र में पराधीन थी।

"तुलसी के समय भारत का शासन मुगलों के हाथों में था। मुगल शासकों में जहाँ एक ओर राज्य विस्तार की गहरी इच्छा थी वहाँ दूसरी ओर अन्तःपुरों में सुरा और सुन्दरी का साम्राज्य था। वैभव और विलास में डूबे हुए इन मुगल शासकों को प्रजा के हित–अहित की कोई चिन्ता नहीं होती थी कवि ने तत्कालीन मुगल शासकों के विलासमय जीवन के प्रभाव को इस प्रकार व्यक्त किया है।

लरिकाई बीती अचेत चित,
चंचलता चौगुने चाय।
जोबन जुर जुवती कुपथ्य करि,
भयो त्रिदोस भरि मदन बाय।
मध्य बयस धन हेतु गंवाई,
कृषी बनिज नाना उपाय।"[79]

यौवन कुछ अच्छा कार्य करने के लिए होता है किन्तु उसमें केवल भोग विलास ही करके उसे व्यर्थ गँवाया जाता था तत्कालीन समाज की स्थिति कुपथ्य भोग लिप्सा में ही व्यस्त थी।

एक लोकोक्ति है कि श्रावण मास में चरे हुए गधे को प्रत्येक मास में हरा ही हरा दिखाई देता है और उसी कल्पना के बल पर यदि उसे कभी चारा नहीं मिले तब भी वह जी लेता है उसी प्रकार मध्यकाल में उत्पन्न कुछ तो वास्तविक भक्त कवि थे जिनमें मर्यादा का अंश था किन्तु सामान्यजन में से ऐसे गधे भी थे जो श्रावण मास में हरियाली को देखकर ज्येष्ठ जैसे सूखे मास में भी हरियाली की कल्पना कर बैठे और इन महापुरुषों की आड़ में अपनी भड़ास को अन्जाम देने लगे। इसमें कई गुमनाम और कई–कई तो ऐसे गधे हुए जिन्होंने किसी दूसरे का नाम लिखकर उसमें अपनी अश्लीलता को अमली जामा पहनाया। उदात्त चरित्र वाले एवं मर्यादा का पालन करने वाले श्रीराम का चरित्र कितना कलंकित

किया है जो मध्य युग के स्त्री विमर्श की नीच चरित्रिक विशेषता को उजागर करता है–श्रीराम अवतार भजन तरंगिणी नामक पुस्तक का भजन देखिए–

"हमारे पिय ठाढ़े सरजू तीर।
छोड़ि लाज मैं जाय मिली जहँ खड़े लखन के बीर।।
मृदु मुसकाय पकरि कर मेरो खैचि लियो तब चीर।।
झाऊ वृक्ष की झाड़ी भीतर करन लगे रति धीर।।"[80]

अब ज़रा अनुमान लगाइये कि ये रचनाएँ तत्कालीन विकृत मानसिकता से ग्रस्त है या नहीं। जो चक्रवर्ती सम्राट होगा तो उसे झाऊ के पेड़ के नीचे रति की क्या आवश्यकता होगी और कैसे ? जिस प्रकार अभी प्रधानमंत्री के जेड सुरक्षा होती है उसी प्रकार उस समय क्या श्रीराम के जेड सुरक्षा नहीं होगी और उसको भेदना एक स्त्री के लिए किस प्रकार सफल रहा होगा। स्वतः स्पष्ट है कि मध्ययुग की जनता चरित्र नाम के शब्द को बेच चुकी थी।

इसी प्रकार सूरदास हिन्दी साहित्य के बड़े ही सधे हुए भक्त कवि रहे हैं इन्होंने भक्ति को ही अपना सर्वस्व माना इनके भ्रमरगीत में निराकार उपासना का बड़ा ही मनोहारी चित्रण हुआ जिसमें इनकी विद्वत्ता देखते ही बनती है। इनके बारे में यह उक्ति प्रसिद्ध हुई कि–

सूर सूर तुलसी शशि, उड़गन केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जहँ तहँ करे प्रकाश।।

हिन्दी साहित्याकाश में सूरदास को सूर्य के समान प्रतिभाशाली माना है वास्तव में सूर में उच्चस्तर का कवि हृदय था किन्तु "सूरदास की शिक्षा आदि के विषय में किसी ग्रन्थ में कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता।...सूरकाव्य का मुख्य विषय कृष्ण भक्ति है। भागवत पुराण को उपजीव्य मानकर उन्होंने राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन 'सूरसागर' में किया है।"[81] भागवत पुराण के बारे में पहले बताया जा चुका है और राधा नाम कल्पित है जो भागवत पुराण सूर के मन में विराजमान था उसी आधार पर उन्होंने साहित्य की रचना की, भागवत पुराण वस्तुतः मूर्खों की रचना मूर्खों के लिए है। इसमें सृष्टि विरुद्ध बातें एवं कृष्ण के उदात्त वैदिक चरित्र को कलंकित करने मात्र की सामग्री है क्योंकि सूर ने कवि हृदय तो पाया था किन्तु वे अशिक्षित थे इस कारण सुने हुए भागवत पुराण को सच मानकर कल्पित राधा की स्तुति में जीवन बेकार कर दिया। सूर के लिए कहना होगा कि इनका स्त्री–विमर्श इतना तगड़ा था कि इन्होंने कहीं रूपवान स्त्री को काम भाव से देखकर अपनी

दोनों आँखों को फोड़कर अपने आपको अंधा बना लिया था और फिर भक्ति काव्य की रचना करने लगे किन्तु वह सुन्दर स्त्री फिर मन के भावों में, कल्पना में, आने लगी जिसका इन्होंने राधा नाम दिया। आँखों ने क्या बिगाड़ा था जो उन्हें फोड़ा! ईश्वर ने आँखें दी है अच्छा, बुरा देखने के लिए इसलिए नहीं कि गंधारी की तरह पट्टी बाँध बुरा होने दिया जाये। क्या आँखें फोड़ने से काम भीतर से चला जायेगा। हो सकता है इन्होंने कबीर की बात मानी हो जा तन की 'झाँई पड़े अंधा होत भुजंग', स्त्री के तन की झाँई साँप पर पड़ी साँप अंधा हुआ या नहीं पर सूरदास जी तो अन्धे हो गये। अब यह किसे पता कि स्त्री की झाँई सूरदास पर पड़ी या सूरदास की झाँई स्त्री पर पड़ी, यह तो परमात्मा ही जानता होगा किन्तु जो भी हो कबीरदास जी पहले ही कह गये थे कि जब साँप ही अंधा हो जाता है तो बेचारे सूर तो मनुष्य थे। वे अंधे हुए नहीं थे किन्तु उन्हें याद आ गया होगा कि जब अंधा होना ही है तो आँखे फोड़ लो क्योंकि कबीर पहले कह गये इसलिए उन्होंने डर के मारे आँखें फोड़ ली थी, स्त्री की झाँई जो पड़ी थी। वैसे भी आँखे रहती और किसी को पुनः काम दृष्टि से देख लेते और उसके साथ परिजन होते तो सूरदास का काम तमाम हो सकता था इस कारण उन्हें आँखे फोड़ना युक्ति संगत लगा। भले मन में स्त्री के प्रति काम जगे तो कोई बात नहीं वह तो काव्य बन जायेगा। किन्तु आँखों से देखने के बाद रहा नहीं जायेगा!

मध्यकाल में भक्त कहलाने वाले भी स्त्री के नख–शिख को बारीकी से देख रहे थे– "रूप चित्रण के लिए नख–शिख वर्णन को सूर ने अनेक बार स्वीकार किया है।"[82] स्पष्ट है स्वाभाविक विरक्ति न होकर परिस्थिति जन्य विरक्ति थी सूर का अश्लील चित्रण मध्यकाल के स्त्री विमर्श को बल प्रदान कर रहा है।

"आलिंगन दै अधर दशन खंडि कर गहिं चिबुकी उठावत।
नासा सों नासा लै जोरत नैन नैन परसावत।।

सूर ने राधा कृष्ण के अभिसार, दूतिका–प्रसंग, मान, ईर्ष्या आदि के अनेक चित्र प्रस्तुत किये हैं। यह प्रेम साहचर्यजनित अनुराग है। सूर की रागानुगा भक्ति संयोग श्रृंगार के वर्णन में मुखरित हो उठी है–

नीवी ललित गही जदुराई।
जबहि सरोज धरयौ श्रीफल पर, जसुमति गई आइ।
चुम्बत अंग परस्पर जनु जुग चन्द कर हित चार।
दसननि वसन चापि सु चतुर अति करत रंग विस्तार।
गुन सागर अस रस सागर मिलि, मानत सुख व्यवहार।।

डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने लिखा है कि– रात्रि के समय राधा की शोभा का वर्णन करने में कवि सूर ने उपमाओं का अन्त कर दिया है। अति सूक्ष्मकाटि, विषद नितम्ब, भारी पयोधर वाली सुकुमारी जब कन्दुक क्रीड़ा करती है, तो उसका चंचल अंचल हट जाता है और फटी कंचुकी और सटे कुच दिखाई देने लगते हैं। दोनों के मिलाप से ऐसा जान पड़ता है मानो नील जलद ने बिधु को बन्धु बना लिया है और नभ में अनियारी कला का उदय हो गया है।"[83] **दयानन्द ने कई स्थान पर लिखा है कि जहाँ का राजा बिगड़ जाता है वहाँ राष्ट्र की अवनति होना आवश्यक है चाहे वह चक्रवर्ती राज्य ही क्यों न हो जब राजा ही ऐसे भक्त संतों के भक्त थे तो वे क्यों नहीं ऐसी रचना करेंगे। पुष्टि मार्ग की कड़े शब्दों में निन्दा करते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि– "ये गोसाईं लोग अपने सम्प्रदाय को 'पुष्टि' मार्ग कहते हैं, अर्थात् खाने–पीने, पुष्ट होने और सब स्त्रियों के संग यथेष्ट भोग–विलास करने को पुष्टि मार्ग कहते हैं, परन्तु इनसे पूछना चाहिए कि जब बड़े दुःखदायी भगन्दरादि रोगग्रस्त होकर ऐसे झींक–झींक मरते हैं कि जिसको ये ही जानते होंगे। सच पूछो तो पुष्टिमार्ग नहीं, किन्तु कुष्टि मार्ग है।"**[84]

स्वामी दयानन्द ने जोरदार तरीके से पुष्टिमार्गियों का पाखण्ड उजागर किया है। समाज में स्त्रियों को जितना इन्होंने भोगा है जितना किसी ने नहीं। इसलिए पहले भी कहा है कि मध्ययुग का स्त्री विमर्श धार्मिक पाखण्ड में ही समाहित है। इस काल में जितना सत्यानाश इन धार्मिक भक्त नाम उपाधि वालों ने किया शायद ही किसी दूसरे ने किया होगा। क्योंकि आम जनता धर्म को इस पाखण्ड में देख रही थी वह जब पाखण्ड की परिभाषा नहीं जानती थी उसे ही धर्म का रूप समझती थी स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि– "जितने वल्लभ सम्प्रदायी गोसाईं लोग हैं वे अब लौं तैलंगी जाति में नहीं हैं और जो कोई इनको भूले भटके लड़की देता है वह भी जाति बाह्य होकर भ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि ये जाति से पतित किये गये और विद्याहीन रात–दिन प्रमाद में रहते हैं।

और देखिए जब कोई गोसाईं जी की पधरावनी करता है तब उसके घर पर जाकर चुपचाप काठ की पुतली के समान बैठा रहता है, न कुछ बोलता न चालता। बिचारा बोले तो तब जो मूर्ख न होवे 'मूर्खाणां बलं मौनम्', क्योंकि मूर्खों का बल मौन है जो बोले तो उसकी पोल निकल जाए, परन्तु स्त्रियों की ओर खूब ध्यान लगा के ताकता रहता है और जिसकी ओर गोसाईं जी देखें तो जानो बड़े ही भाग्य की बात है और उनका पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। वहाँ सब स्त्रियाँ गोसाईं जी के पग छूती हैं। जिस पर गोसाईं जी का मन लगे वा कृपा हो उसकी अंगुली पैर से दबा देते हैं। वह स्त्री और

उसके पति आदि अपना धन्य भाग्य समझते हैं और उस स्त्री से उसके पति आदि सब कहते हैं कि तू गोसाईं जी की चरण सेवा में जा और जहाँ कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते वहाँ दूती और कुटनियों से काम सिद्ध करा लेते हैं। सच पूछो तो ऐसे काम करने वाले उनके मंदिरों में और उनके समीप बहुत से रहा करते हैं।"[85]

एक टी.वी. चैनल है लाइफ ऑके उस पर भारत में विभिन्न प्रकार की हत्यायें, ठगी, पाखण्ड तथा स्त्रियाँ के साथ हुये दुर्व्यवहार तथा बलात्कार करके हत्या करने या हत्या करते समय किसी प्रकार बच निकली स्त्री की आप बीती घटनाओं को अक्षर सह दिखाते हैं ताकि स्त्रियाँ आगामी होने वाले जुल्मों के बारे में पहले से ही सतर्क रहे। आज के युग में प्रत्येक युवक–युवती को वह देखना चाहिए जिससे सावधान रहे।

यही बात जो आज दूरदर्शन पर दिखाकर जागृति लाना चाह रहे हैं महर्षि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में 150 वर्ष पूर्व लिए ही लिख दी थी कि किस प्रकार आज के युग में लोग पाखण्ड के द्वारा स्त्रियों को ठगते ही नहीं बल्कि उनकी आबरु को भी कितनी आसानी से छीन लेते हैं और उन स्त्रियों को पता भी नहीं चलता कि यह सब एक षडयंत्र के तहत हो रहा है। उसी पुष्टि मार्ग की स्वामी दयानन्द आगे पोल खोलते हैं जिसके हिन्दी साहित्य के सूर्य सूर भक्त थे– "कोई–कोई चेला विवाह में गोसाईं जी को बुलाकर उन्हीं से लड़के–लड़की का पाणिग्रहण कराते हैं और कोई–कोई सेवक जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाईं जी के शरीर पर स्त्री लोग केसर का उबटन करके फिर एक बड़े पात्र में पट्टा रख के गोसाईं जी को स्त्री–पुरुष मिलके स्नान कराते हैं, परन्तु विशेष स्त्रीजन स्नान कराती हैं। पुनः जब गोसाईं जी पीताम्बर पहिर और खड़ाऊँ पर चढ़ बाहर निकल आते हैं धोती उसी में पटक देते हैं, फिर उस जल का आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धरके पान–बीड़ी गोसाईं जी को देते हैं। वह चबाकर कुछ निगल जाते हैं, शेष एक चाँदी के कटोरे में जिसको उनका सेवक मुख के आगे कर देता है उसमें पीक उगल देते हैं। उसकी भी प्रसादी बँटती है जिसको 'खास' प्रसादी कहते हैं। अब विचारिये कि ये लोग किस प्रकार के मनुष्य हैं।"[86] जिनकी शिष्य परम्परा में सूरदास महाकवि और भक्त कहलाए और इनका स्त्री–विमर्श यदि सेक्स पर केन्द्रित हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

मध्यकाल में स्त्री का पति यदि मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो उस स्त्री को या पति के साथ सती बनाकर जीवित ही जला दिया जाता है क्योंकि बचे हुए परिवारजन के लिए वह बड़ी विपत्ति समझी जाती थी। वीरता रही नहीं! आचरण भ्रष्ट सब हो चुके थे, वैदिक

सामाजिक प्रणाली प्रायः नष्ट हो चुकी थी इसलिए सामान्यजन ही नहीं राजा लोग भी भोग विलास में अपनी वीरता खो चुके थे सब कायर एवं कायरों की संताने थीं इसलिए पति की मृत्यु के बाद उसकी रक्षा न कर पाने से मुक्ति हेतु उसे जीवित ही पति के साथ अग्नि में धकेल कर सब दायित्वों से मुक्त हो जाते थे। इसको प्रारंभ करने वाले सर्वप्रथम राजपूत राजा ही रहे– "राजा धृतराष्ट्र स्वभाव से ही कपटी था और पाण्डु धर्मात्मा था। पाण्डु की एक रानी माद्री सती हो गई थी। सती होने के लिए वेद की आज्ञा नहीं है, किन्तु सती होने की कुरीति पहले–पहल पाण्डु राजा के समय से चली।"[87] माद्री का पाण्डु के मरने के बाद आत्महत्या करने का कोई भी कारण रहा हो किन्तु मध्यकाल तक आते–आते तो यह कुप्रथा एक धार्मिक कृत्य बना दी गई और निर्दोष स्त्रियों को जबरदस्ती बाँध–बाँधकर मृत पति के साथ जलाने लगे। भारत वर्ष के कई हिस्सों में अभी भी ऐसा होता है।

इस बीच मीरा का विधवा होना कितना कष्ट दायक रहा होगा मीरा को मारने के लिये क्या–क्या नहीं किया गया यह हिन्दी साहित्य के पाठक भली प्रकार जानते हैं। वह नहीं मरी तो केवल मात्र उसकी दृढ़ इच्छा शक्ति से। मीरा स्वयं स्त्री थी और वह भी सामान्य परिवार की नहीं एक राज परिवार की फिर भी वह उस युग में हर जगह राजमहल से लेकर, मायके तथा मथुरा–वृन्दावन की गलियों तक मध्यकालीन स्त्री विमर्श की जीती जागती मूर्ति रही है यह सब मीरा के काव्य से प्राप्त होता है कि स्त्री होना कितना बड़ा अभिशाप था इस पीड़ा को मीरा का साहित्य बोलता है। मीरा के केश काले से सफेद हो गये किन्तु उसकी पीड़ाओं में किसी प्रकार की कमी नहीं आई। मीरा विद्वान् स्त्री थी इसलिए मीरा का यह निर्णय सराहनीय है कि उस समय वह सती नहीं हुई। मीरा ने उस समय में एक महान् कार्य किया कि उस सती प्रथा को तोड़ा जो राजपूताने में जड़ जमा चुकी थी। आज सरकार ने सतीप्रथा पर प्रतिबंध अवश्य लगा दिया हो परन्तु जब यह प्रथा उन्नत स्थिति में थी और राज अनुमति भी इस अन्धता को प्राप्त थी बल्कि कहीं–कहीं तो राजा के सैनिकों की भी, राजपूताने में, सती करने के लिए सहायता दी जाती थी यह एक बड़ा धार्मिक आडम्बर बन चुका था। सती प्रथा राजपूताने में अपनी जड़े पूरी तरह जमा चुकी थी, ऐसी स्थिति में राज्य को चुनौती देना कितने साहस का कार्य रहा होगा। मीरा ने वह अप्रत्याशित कार्य किया जो कमजोर इच्छा शक्ति वाले प्राणी के लिए असंभव था।

लेकिन उस समय समाज में एक स्त्री की रक्षा करने वाला कोई नहीं था–

"दरद दीवानी भई बावरी, डोली सब ही देस।
मीराँ दासी भई पंडर, पलट्या काला केस।।"[88]

मीरा ने दुःख की चरम सीमा को अपनी आँखों से देखा है मीरा के साहित्य में कहीं भी अश्लीलता का परिचय नहीं मिलता। मध्य युग की नारी की पीड़ा को मीराँ ने स्वयं भुगता है इससे बढ़कर मध्ययुग का स्त्री–विमर्श कुछ हो ही नहीं सकता जिसमें यातना भोगने वाला स्वयं लिख रहा है। वस्तुतः मीरा सीधी–सादी स्त्री थी, वैधव्य के पश्चात् वह यातना से पीड़ित रही पर हार नहीं मानी अशिक्षित होने से उसने भी जो भक्ति आराधना की वह सब पुराणों की घटनाओं के आधार पर की किन्तु फिर भी तत्कालीन समाज द्वारा जो पीड़ाएँ एक स्त्री को दी जाती थीं वे सब मीरा के काव्य में मुखर हुई हैं।

"हे री मैं तो दरद दीवानी, मेरो दरद न जाणैं कोय।
घायल की गति घायल जाणै, की जिण लाई होय।।"[89]

यहाँ पर उस समय की स्त्रियों की ओर भी संकेत साफ दिखाई दे रहा है कि जो वैधव्य जीवन भोग रही स्त्रियाँ हैं वे आपस में एक दूसरे का दर्द, पीड़ा समझ सकती हैं अन्य और नहीं। **दरद की मारी बन–बन डोलूं, बैद मिल्या नहिं कोय।**

मध्यकाल में स्त्रियों की पीड़ा इतनी भयानक थी जिनका बखान मीरा ने किया है कि उस पीड़ा का समाधान कहीं नहीं था न घर में न बाहर।

भक्तिकाल के भक्त कवियों में थोड़ी बहुत लज्जा शेष थी वह रीतिकाल में खुल्लम खुल्ला व्यभिचार के रूप में सामने आने लगी। भक्तिकाल के कवि इतने अमर्यादित न थे यदि उनमें काम वासना का निवास था या प्रकट होती थी तो उसे दबाने का वे हर वक्त प्रयास करते थे फिर भी यदा–कदा काव्य में भावों के आने को कोई कवि नहीं छुपा सकता। किन्तु रीतिकाल की स्वच्छन्दता ने तो सारे बन्धन तोड़कर केवल मात्र नारी विलासिता को ही काव्य का मुख्य केन्द्र बिन्दु बना लिया था राधा सुमिरन तो केवल उनकी वासना को छुपाने की आड़ मात्र थी। रीतिकालीन कवियों की यह अश्लीलता अठारह सौ सत्तावन की क्रान्ति तक चली। रीतिकालीन कवियों की चर्चा अधिक करना ग्रन्थ के कलेवर को बढ़ाना मात्र होगा परन्तु फिर भी कुछ सामान्य स्त्री–विमर्श पर विचार किया जायेगा वैसे तो रीतिकालीन कवियों का कार्य सेक्स को काव्य में बेचकर अपनी आजीविका तत्कालीन राज्य से प्राप्त करना मुख्य लक्ष्य था।

सामाजिक मर्यादा तथा समाज से उन्हें कोई लेना देना न था जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण बिहारी के इस दोहे से लगाया जा सकता है कि काम भावना में रीतिकालीन कवि कितना उन्नत हो चुका था जिसे एक दोहे पर एक स्वर्ण मुद्रा मिलती हो उसे समाज का

कहाँ ध्यान रहेगा। तत्कालीन समाज में राजा इतने निकम्मे हो चुके थे कि छोटी बालिका, जिसे दुर्गा रूपिणी कहा है उस पर भी उनकी नज़र रहती थी तो समाज कैसा होगा। उसमें नारी के प्रति क्या भाव होंगे–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यहि काल।
अली कली ही सों बँध्यों, आगे कौन हवाल।।

यह उक्ति बिहारी की राजा के प्रति कही हुई बताई जाती है किन्तु क्या पता उस समय सारे समाज की ही यही स्थिति हो। क्या पता नहीं, मुस्लिम साम्राज्य के प्रभाव में निश्चित रूप से यही स्थिति थी। भारत के मूलराजा भी विषय वासनाओं में लिप्त रहते थे उन्हें इस वासना रूपी दुर्गन्ध ने इतना सड़ा दिया था कि अपने आपको स्वच्छ करने के लिए तत्कालीन आश्रित कवियों द्वारा प्रदत्त स्त्री का नाभिकुण्ड ही उपयुक्त स्थान दिखाई देता था।

मध्य युग की दृष्टि इतनी आक्रामक हो चुकी थी जहाँ बालिका, युवती, वृद्धा तक भी सुरक्षित न रही थी उनकी हालत यह थी कि वे परिवार से बाहर भी नहीं निकल सकती थीं यह वजह है कि पर्दा प्रथा प्रतिदिन मजबूत होती गई और स्त्रियों की स्वतंत्रता पर बेड़ियाँ बँधती गईं। औरत पराधीन कर ली गई उसका जीवन उसकी आकांक्षा सब उससे छीन लिए गये और वह एक कैदी की भाँति जीवन जीने के लिए मजबूर थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज में नारी के प्रति मुख्यतः दो भावनाएँ विद्यमान हो चुकी थी। एक ओर अध्यात्मिकता को प्रधानता देने वाले विरागी वर्ग उसको मानवोन्नति का अवरोध मानकर उससे दूर रहने का निर्देश देते थे, दूसरी ओर विलासी और भोगवादी वर्ग उसे जीवन की अत्यावश्यक सामग्री मात्र मानकर उसके सानिध्य को सुखकर मानता था इस रूढ़ि ग्रस्त वातावरण में नारी व्यक्तित्वहीन अशक्त एवं लाचार थी। उच्चवर्ग की नारियों में जो राजमहलों में निवास करती थी वहाँ नैतिकता कोई महत्त्व नहीं रखती थी मदिरा पान नग्नता तथा एक दूसरे से सुन्दर दिखने की प्रतियोगिता में रूचि दिखाने लगी थी। जहाँ एक दूसरी स्त्री से अपने को ऊँचा दिखाने की होड़ होगी वहाँ ईष्या, द्वेष, वैमनस्य कपट और यहाँ तक एक दूसरे को जान से मरवाने की योजनाएँ भी प्रत्यक्ष थी। परिणाम स्वरूप नारी की गरिमा विनष्ट हो चुकी थी इस प्रकार सामन्ती युग में नारी, नर की अधीन थी वह भोग विलास की एक उपकरण मात्र बनकर रह गई थी भारतीय इतिहास में यह काल उच्च वर्ग में सम्पन्नता युक्त था। यह ऐश्वर्य और सम्पन्नता जनता के केवल

अधिक सीमित वर्ग तक ही थी। जन साधारण की स्थिति बिल्कुल भी अच्छी नहीं थी जहाँ तक प्रश्न है नारी का, राजकीय और सामान्य–दोनों ही वर्गों में उसकी स्थिति दयनीय थी। उसका बाल्यकाल पिता के संरक्षण में, युवावस्था पति–सेवा में और वृद्धावस्था पुत्र–पौत्र अथवा किसी संबंधी की अधीनता में व्यतीत होती थी। पुत्री का जन्म परिवार में अशुभ और भावी विपत्ति का सूचक माना जाता था। राजकीय वर्ग में तो युग की भोग प्रधानवृति के कारण नारी वैभव–विलास की अनिवार्य सामग्री मात्र मानी जाती थी। सामाजिक रूप से पर्दाप्रथा, बाल–विवाह, बहु–विवाह तथा प्रमुख वैश्यावृत्ति आदि का प्रचलन था बादशाह और उनके सामन्त आदि के यहाँ बड़े–बड़े अन्तःपुर रहते थे जहाँ सैंकड़ों की संख्या में स्त्रियाँ रहती थीं। व्यक्ति विशेष अथवा अधिकारी विशेष का ऐश्वर्य अन्तःपुर या हरम में रहने वाली स्त्रियों की संख्या से भी नापा जाता था। जिस प्रकार प्राचीन काल में धनाढ्य व्यक्ति का ऐश्वर्य उसके पास पशुओं की अधिक संख्या के आधार पर नापा जाता था जिसका कारण यह था कि जितने अधिक पशु होंगे उतना ही अधिक दूध, घृत तथा आवागमन के संसाधन उस व्यक्ति के पास होते थे किन्तु अब वह पशुओं का स्थान स्त्रियों को दे दिया गया था हालांकि स्त्रियाँ पशुओं जैसे संसाधन सम्पन करने वाली न थी लेकिन वे विषय भोग की दुकान अवश्य थी जिसे बिना दाम के काम में लिया जा सकता था बदले में उन्हें भोजन, वस्त्र एवं शृंगार की वस्तुएँ मिल जाती थीं। बस निर्भर करता है कि कौन कितना अधिक अपने मालिक को अपने आपको रोंदने के लिए आकर्षित कर सकती हैं। स्त्री शिक्षा के नाम पर फारसी की कुछ प्रेम कथाओं और संगीत शिक्षा थी वह भी केवल राजकीय सामन्त वर्ग में। साधारण जनता में किसी प्रकार की शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। कुछ राजपूत एवं मराठा परिवारों में अवश्य नारियाँ युद्ध कला तथा शिक्षा में पारंगत होती थी किन्तु प्राचीन वैदिककाल की भाँति नहीं।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि नारी के सामाजिक संबंध अनेक हैं और साहित्य में वर्णन का विषय भी बने हैं किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रीतिकाल का वातावरण सर्वथा एक भिन्न रूप धारण कर चुका था और इसलिए उसमें नारी का केवल एक रूप कामिनी रूप ही–अधिक मुखर हुआ है। उसके शेष अन्य सभी रूप–प्रेयसी, पत्नी, सुता, भगिनी, माता, भाभी, सास तथा ननद आदि या तो सामने नहीं आ पाये हैं और यदि आए हैं तो कामिनी–रूप के अधीन होकर। बिहारी सतसई के इस दोहे में कामिनी रूप को आवृत्त कर लिया है।

इसके पीछे कोई कारण नहीं है सिर्फ इतना प्रतीत होता है कि मध्य युग की विलासप्रियता सब साहित्यकारों के मस्तिष्क का अतिक्रमण कर चुकी थी।

कहत न देवर की कुबत्त कुल तिय कलह डराति।
पंजरगत मंजार ढिग सुन ज्यौं सूखत जाति।।
और सबैं हरषी हंसति गावति भरी उछांह।
तुही, बहू, बिलखी फिरै, क्यों देवर के ब्याह।।?

रीति काव्य के विलास जर्जर वातावरण में पनपे हुए काव्य में नारी का केवल प्रेयसी और कामिनी रूप ही शेष रह जाता है। नायिका भेदों के विवरण में कवि नारी के जननी आदि विभन्न रूपों को भूल चुका है। उसे सब प्रकार नारी केवल एक ही तरह दिखाई देती है वह है भोग्या। रीतिकालीन भाभी का उदाहरण यह प्रमाणित करता है कि कवियों ने जो चित्रण किया है उसे एक ही चश्में से देखा है इसी प्रकार सास–ननद आदि का चित्रण भी अभिसारिका के लिए बाधा और पैशुन्य के प्रतीक के रूप में ही किया गया है।

रीतिकालीन काव्य का मूल श्रोत श्रृंगार है और इसलिए उसमें नारी के केवल प्रेयसी रूप की ही प्रधानता मिलना स्वाभाविक है किन्तु देखने की बात यह है कि वहाँ प्रेयसी प्रायः परकीया ही होती है क्या दूसरों की स्त्रियाँ प्रेम करने के लिए होती हैं और अपनी स्त्री दुश्मनी साधने के लिए ? और प्रेम केवल एक वासना का ही तो पर्यायवाची नहीं है इसमें उच्छृंखलता, मर्यादाहीनता एवं अश्लीलता के अलावा कुछ नहीं है–

सकुचि सरकि पिय निकट तें मुलकि कछुक तन मोरि।
कर आँचर की ओटि करि जमुहानि मुख मोरि।।
कहत नटत रीझत खिजत मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात।। (बिहारी सतसई)

इसमें कोई संदेह नहीं है कि उस आवेग युक्त एवं अप्रतिहत प्रेम में रस मग्न कर देने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान है किन्तु सामाजिक जीवन में शून्य आवेग एवं आतुरता को स्वीकार किस प्रकार किया जाये ? सच तो यह है कि जीवन के सामाजिक पक्ष से शून्य मनोभाव क्षण भर के लिए भले ही कितना ही उत्तेजक प्रतीत हो किन्तु अंतप्रेरणा बनकर कभी भी वह हृदय का अंग नहीं बन पाता है। यही कारण है कि चित्त इस प्रकार की उक्तियों में अधिक देर तक नहीं रम पाता है, कुछ देर बाद उससे एक विचित्र प्रकार की विरति हो जाती है।

इतना अवश्य ही है कि यह रूप वर्णन अधिक देर उसे सर्वग्रासिनी वासनातुरता से नहीं बच पाया है जो रीतिकालीन वातावरण में पूरी तरह से समा चुकी थी प्रायः उनका अंग संचालन, वस्त्र–सज्जा, वचन–चातुर्य तथा क्रिया–वैदग्ध्य शिष्टता तक की सीमाओं का उल्लंघन कर गया है। इस प्रकार के स्थलों पर विलास की उत्कट तीक्ष्ण गंध, अतृप्त प्यास और मांस की पुकार छिपाये नहीं छिप सकी है।

एक ओर रीतिकाल के अधिकांश कवि जहाँ नारी का वर्णन विलास–साधन के रूप में कर रहे थे या फिर परम्परा पालनार्थ उसे विषबेल, माया अथवा वासना की मूर्ति बता रहे थे। आनन्द की बात तो यह है कि नारी के अंग–प्रत्यंग आतुरतापूर्वक वर्णन करने वाले कवि भी इस कार्य में पूरा–पूरा योग दे रहे थे। प्रमाण की आवश्यकता नहीं है लेकिन इन उदाहरणों से उक्त बात की पुष्टि हो जायेगी–

हों सखि लाजिन जात मरि, मतिराम सुभाव कह कहौं पी के।
लोग मिलैं, घर घैरू करैं, अबहि ते चेरे भए दुलही के।। –मतिराम

ह्वै के रस बस दीवै कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आंखिन सौं,
कही प्रानपति यह अनुचित है। –सेनापति

सील भरी बोतल सुसील बानी सबहीं सौं
देव गुरु जननि के लाज सो लची रहै।
कोमल कपोल पर दीसै हरदी सी दुति,
चूनी सी सकुचि मुसुकानि में मथी रहै।
लालन की लाली अखियन में दिखाई देत,
अन्तर निरन्तर प्रेम सों पची रहै। –देव

या भव पारावार की उलंघि पार को जाइ।
तिय–छवि छाया–ग्राहिनी ग्रहै बीच ही आइ।। –बिहारी

उरग तुरंग नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहीमन इन्हें समारिये पलटत लगै न बार।। –रहीम

रहिमन ब्याह व्याधि है, सकहु तो जाहु बचाइ।
पायन बेड़ी पड़त है, ढोल बजाइ–बजाइ।। –रहीम

यह कहना अनुचित न होगा कि रीतिकालीन नारी तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक जर्जर अवस्था की प्रतिकृति थी एक विशिष्ट प्रकार की सामाजिक, राजनैतिक स्थिति में नारी संबंधी जिस प्रकार की मान्यताओं को जन्म दिया तत्कालीन काव्य में वे मुखर हो उठी। सामाजिक चारित्रिक पतन की यहाँ पराकाष्ठा थी, रीतिकालीन कवि जिस विषाक्तता से घिरा हुआ था वह साहित्य में उतरना स्वाभाविक था, उच्च वर्ग की महिलाएँ मदोन्मत्त थी उन्हें किसी से लेना देना न था केवल अपनी विलासिता के। वहीं निम्न वर्ग में खुले आम वामाचार था वेश्याओं की अधिकता थी, यहाँ मध्यम वर्ग एवं कुछ संस्कारित स्त्रियाँ बीच भंवर में फंसी हुई थी। सच तो यह है कि संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश से विकसित होने वाली हिन्दी तक नारी का स्वरूप चकनाचूर होकर वासना में पिघलने लग गया था और धारणाएँ दिन प्रतिदिन विकृत होती जा रही थी।

अन्ततः गाँधी और दलित भारत–जागरण के लेखक श्री भगवान सिंह के शब्दों में यह कहना अनुचित न होगा कि– "स्त्री–अस्मिता एवं स्वतंत्रता के अपहरण का चरमोत्कर्ष तो हमें मध्यकाल में दिखाई देता है जब अपवाद स्वरूप मीराबाई को छोड़कर कोई तेजस्वी स्त्री–चरित्र नहीं दिखाई देता। स्त्रियों को गर्हित, घृणित, त्याज्य सिद्ध करने वाली इन मान्यताओं का मध्यकाल में कितना गहरा प्रभाव था, उसका अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि सामाजिक विद्रोह के लिए विख्यात कबीर जैसे सन्त कवि भी इनका अतिक्रमण नहीं कर सके और 'नारी को नरक का द्वार' तक कह बैठे। सूर, तुलसी जैसे भक्त कवियों ने मिथकीय कथाओं एवं चरित्रों के माध्यम से जरुर स्त्री–उन्मुक्तता या मर्यादित व्यक्तित्व को सामने रखा, लेकिन उनके समकालीन सामन्ती समाज में स्त्री मुख्य रुप में भोगने की, पुरुषों को इन्द्रिय–सुख प्रदान करने की ही सामग्री समझी जाती रही। यही नहीं, जहाँ 'साठे पर पाठा' की मिसाल गढ़कर वर्चस्ववादी पुरुष वर्ग ने बुढ़ापे तक षोडसी बालाओं से विवाह करने के अधिकार हस्तगत कर रखे थे, वहीं कुलीन घराने की कुलवधुएँ जवानी में भी विधवा हो जाने पर बुढ़ापे तक वैधव्य का अभिशाप झेलने को विवश थीं। सामन्ती समाज में स्त्रियाँ किस तरह पुरुषों के लिए केवल यौन सुख, मन–बहलाव, विलास आदि का साधन–मात्र रह गयी थीं, यह हिन्दी के रीतिकालीन काव्य से अच्छी तरह प्रकट हो जाता है।"[90]

2.3 आधुनिक युग में स्त्री विमर्श : स्वरूप एवं अवधारणा

मध्य युग के प्रारंभ में वैदिक संस्कृत के स्थान पर लौकिक संस्कृत को साहित्य में अपनाया जाने लगा था जिसमें कवियों ने अनर्गल प्रलाप पण्डित्य प्रदर्शन करते हुए पुराणों की रचनाओं में ऐसे–ऐसे उद्धरण दिये जो केवल मात्र नारी के प्रति कामुकता बढ़ाने का कार्य करते थे। यहाँ लेखक का निजी तौर पर मानना है कि उस समय मनोरंजन के लिए दूरदर्शन, रेडियो आदि साधन न थे इसलिए भद्दे साहित्य का सृजन उस पर भी राजाओं द्वारा पुरस्कार देना आम बात हो गई थी। कुछ संस्कृत साहित्य भक्ति, नीति परक भी थे जिनमें जो सूक्तियाँ समाजोपयोगी थी वे सब वेद–वेदांगों आर्ष ग्रंथों द्वारा ली गई थी। कुछ अच्छे कवियों ने सुन्दर साहित्यिक रचनाऐं भी की। किन्तु उनमें नीति परक साहित्य के साथ जो स्त्री चित्रण किया जाता था वह देवताओं को माध्यम करते हुए भी स्त्री बनावट पर तो टिक ही जाता था जिनसे जनमानस को उत्तेजना का आभास हो। संस्कृत साहित्य, पाली साहित्य, प्राकृत व अपभ्रंश से हिन्दी साहित्य में भी मध्य युग की भाँति ही स्त्री यातनापूर्ण जीवन जीने को मजबूर थी किन्तु कुछ स्त्री सचेतना भी साहित्य में प्रारंभ होने को आई थी। स्त्रियों ने महाभारत के युद्ध के बाद से घोर यातनाएँ सही पशुओं की भाँति काटी तक गईं, बेची गई, मुगल काल में भाले में पिरो कर ऊँची कर दी गई तथा कत्लेआम किया गया।

आधुनिक युग का प्रारंभ 1857 के सशस्त्र विद्रोह से माना जा सकता है यह केवल भारत को स्वतंत्र कराने के लिए ही विद्रोह नहीं किया गया था यह विद्रोह सामाजिक दलन से छुटकारे के लिए भी था। यह समाज के प्रत्येक क्षेत्र में बुराइयों की चरम सीमा तथा अकथ्य अत्याचार के प्रति विद्रोह था। यह स्त्रियों की सदियों से बँधी हुई जंजीरें तोड़ने का विद्रोह था। अंग्रेजों को भारत से भगाने का विद्रोह था। आर्थिक दासता से मुक्ति के लिए विद्रोह था। यह विद्रोह एक क्षेत्र में न होकर छटपटाती हुई जनता का हर क्षेत्र में जहाँ वह बेचैनी महसूस कर रही थी उस क्षेत्र में विद्रोह था। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, शारीरिक, बौद्धिक परतंत्रता के प्रति एक साथ विद्रोह था। 1857 की क्रान्ति के बाद देश की बेटियों को परिवारों में रानी झाँसी की संज्ञा दी जाने लगी थी। वास्तव में हम इस क्रांति से अंग्रेजों को भगाने में सफल नहीं हुए किन्तु इस युग में समाज के काफी क्षेत्रों में जो बदलाव हुए वे स्वतंत्रता नहीं तो स्वतंत्रता के लिए नींव का तो काम कर ही गये।

ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने वह कार्य करके दिखाए जो विश्वविख्यात हैं। जिसमें सबसे अधिक प्रभाव महर्षि दयानन्द एवं उनके आर्य समाज का रहा है।

1857 के मुक्ति संघर्ष में कई महिलाओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया क्योंकि अब स्त्रियों को पुरुष इसलिये न दबा सके क्योंकि दीर्घकाल की दासता एवं गुलामी से पुरुष भी जिन्दगी की जंग हार चुके थे। इस युद्ध में महाराजा से लेकर फकीर तक सभी हर प्रकार के दमन को खत्म करना चाहते थे। झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई, बेगम हजरत महल, रानी तपस्विनी, रानी तुलसीपुर, रानी रामगढ़, रानी जिंदा, नृत्यांगना अजीजन, जीनत महल, नाना की दत्तक पुत्री मैना जिसे फिरंगियों ने पकड़कर जीवित ही जला दिया था, फिरोजशाह की पत्नी जमानी बेगम आदि अज्ञात कितनी ही स्त्रियाँ झाँसी रानी से प्रेरणा लेकर शत्रु से मुकाबले के लिए खड़ी हुई।

ये कुछ उदाहरण हैं जिनमें महिलाओं ने पुरुष से मुकाबले की पहल की किन्तु सामान्य जन जीवन में सुधार आने में समय लगा।

स्त्री सुधार में महात्मा गाँधी की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। वस्तुतः 1857 की क्रान्ति का काल सभी क्षेत्रों के बंधनों को तोड़ने वाला काल रहा है इस काम में जो साहित्य रचा गया उसमें प्रत्येक दासता से छूटने की प्रवृति का कहीं न कहीं भाव उजागर हुआ है।

आधुनिक युग में स्त्री विमर्श का स्वरूप एवं अवधारणा को भली प्रकार समझने के लिए इसे दो भागों स्वतंत्रता पूर्व और पश्चात् में बाँटेगें। स्वतंत्रता के पहले लगभग 1850 से लेकर 1947 तक में जो साहित्य हिन्दी में रचा गया उसमें स्त्री विमर्श की चर्चा होगी तथा 1947 से आज तक जो स्त्री विमर्श हुआ वह स्वतंत्र्योत्तर काल में गिना जाना चाहिए। स्वतंत्रता के पश्चात् देश की दशा, गरीबी के साथ विकसित होने वाली महानगरीय सभ्यता की ओर अग्रसर होना तथा इसमें नारी के मानदंडों में असाधारण परिवर्तन हुआ है। साठ के दशक एवं सत्तर के दशक में जिस साहित्य का निर्माण हुआ उसमें स्वयं स्त्री साहित्यकारों ने भी नारी के मनोविश्लेषण को अपनी बुद्धि की आँखों से देखा है। जिसमें स्त्री का स्वरूप ही नहीं बदला बल्कि उसके प्रति सामान्य समाज की सोच एवं धारणाओं में भी आमूलचूल परिवर्तन आया है। वह अपने अधिकारों एवं अपनी जिम्मेदारी के प्रति अधिक सजग हुई है। यह उसकी बुद्धि शक्ति का ही कमाल है। स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में नारी कई झंझावातों में से उलझती हुई सुलझकर अपने लिए विकास की नई राह तय करने में सक्षम एवं अग्रसर है।

2.3.1 स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श : स्वरूप एवं अवधारणा

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में हम 1947 से दस बीस वर्ष पूर्व का साहित्य विमर्श नहीं लेंगे इस सबसे महत्त्वपूर्ण है 1857 से 1947 का काल खण्ड। हम भारतीय

स्वतंत्रता से लगभग 90 वर्ष पूर्व का स्त्री विमर्श जानना चाहेंगे। इस समय भारत देश पर अंग्रेजों का शासन था। अंग्रेजों ने सब प्राणियों का जीवन अत्यन्त नारकीय कर दिया था। पशुओं के लिए बूचड़खाने तथा मनुष्यों के लिए गोली की व्यवस्था अंग्रेजों ने कर दी थी किन्तु 1857 की क्रांति के बाद अंग्रेज हर तरह से चौकन्ने होकर सोचने लगे थे। भारतेन्दु के शब्दों में भारत की दुर्दशा देखी न जाती थी।

रोवहु सब मिली, आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत-दुर्दशा न देखी जाई।।

भारतीयों का शोषण चरम पर था। अंग्रेजी हुकूमत ने पुरुषों को दास बनाकर छोड़ दिया था। स्त्रियाँ तो पहले से ही दास का जीवन व्यतीत कर रही थी 1857 के पहले जो रचनाएँ हो रही थी उसमें स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त अस्थिर तथा छुपाकर रखने वाली वस्तु के रूप में दृष्टिगत होती है। स्त्री अशिक्षित, भोग्या, परदे की वस्तु, वासना पूर्ति का साधन, देवदासी आदि कई नामकरणों से गुजरी।

इसी बीच 1857 की क्राति से महर्षि दयानन्द का कार्य क्षेत्र प्रारम्भ हो जाता है इस अवधि में सम्पूर्ण साहित्यकार कोई भक्ति धारा से कोई श्रृंगार रचना से भक्ति एवं श्रृंगारी साहित्य से ध्यान हटाकर युग जन चेतना एवं पुनर्जागरण की ओर आकृष्ट हुए। यह संग्राम वस्तुतः गुलामी से स्वाधीनता का ही संग्राम न था यह भाषा जागरण, राष्ट्रीय एकता जागरण, स्त्री जागरण, अस्पृश्यता निवारण जागरण पौराणिक स्रोतों को छोड़ सामाजिक जागरण, पाण्डित्य प्रदर्शन को छोड़ राष्ट्र भक्ति की ओर अग्रसर था। इस परिवेश में स्त्री के प्रति मानसिकता बदलने लगी थी धीरे-धीरे स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया जा रहा था वह स्वयं भी कई स्थानों पर अपनी उपस्थिति तथा जागरण की भावना को प्रस्तुत कर चुकी थी। 1857 की क्रांति में रानी झांसी लक्ष्मीबाई स्त्री विमर्श का बिगुल बजा चुकी थी। झाँसी की रानी की वीरता से तत्कालीन समाज की औरतें अत्यन्त प्रभावित थी और कई स्त्रियाँ इस आजादी की जंग में कूद पड़ी जो गुमनाम रही। चाहे वह जंग स्वाधीनता की हो या अपने आपको मनुष्य जाति की दासता से मुक्त कराने की। अपने प्रति अपने शारीरिक सौन्दर्य के प्रति गिद्ध दृष्टि को पछाड़ने की जंग थी वह। आज तक भी भारतीय लोक गीतों में उसे गाया जाता है क्या यह स्त्रियों के प्रति सम्मान की बात नहीं है।

बुन्देलों हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

ऐसी कई असाहित्यिक रचनाएँ लोक गीतों के माध्यम से स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में स्थान पायी गई जो अन्त में लेखनी बद्ध हुई। साहित्य के साथ–साथ बुंदेलखंड की लोक कथाओं में झलकारी आज भी जीवित है जिसने रानी लक्ष्मी बाई को अंग्रेजों से बचाकर भगाने में मदद की। इस प्रकार ऐसे कई पहलू हैं जो बाद में हिन्दी साहित्य के पृष्ठ बने।

मध्य काल में नारी के प्रति जो समाज की दृष्टि थी उसमें परिवर्तन आ गया था। समाज में नारी के शोषण के विरुद्ध आवाजें उठने लगी थी। देश प्रेम एवं राष्ट्रीय भावना के साथ भारतेन्दु युग में नारी जागरण के विभिन्न दृष्टिकोणों पर हिन्दी साहित्य में लेखकों की कलम चलने लगी थी। "शृंगार युगीन कविता में स्त्री विलास की वस्तु समझी गई। भारतेन्दु युग में आकर कवियों की स्त्री के प्रति और उसकी गिरी हुई दशा के प्रति सहानुभूति व्यक्त हुई। उनका ध्यान बाल–विवाह की कुरीतियों और विधवा जीवन विडम्बनाओं की ओर गया।"[1] भारतेन्दु मण्डल के कवियों में बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र, ठाकुर जगमोहन सिंह, अम्बिका दत्त व्यास भारतेन्दु के फुफेरे भाई राधाकृष्ण दास आदि ने अपने साहित्य में नारी की पीड़ा को बड़ी तत्परता से समझा है और उस ओर लेखनी भी चलाई है। 'मन की लहर' में प्रताप नारायण मिश्र की दृष्टि बाल–विधवाओं की करूण दशा की ओर गई है, **'कौन करेजो नहि कसकत सुनि बिपति बाल विधवन की।'**

स्त्रियों के प्रति उनके मन में अत्यन्त कुंठा है वे उनकी समुचित शिक्षा की व्यवस्था की पैरवी करते हैं बाल–विवाह एवं विधवा के प्रति प्रताप नारायण मिश्र का दुःख अत्यन्त तीव्र है जो स्पष्ट दिखाई पड़ रहा है।

"निज धर्म भली विधि जानैं, निज गोरव पहिचानैं,
स्त्रीगण को विद्या देवैं, करि पतिव्रता यश लेवैं।
झूठी यह गुलाब की लाली धोवत ही मिटि जाय,
बाल–ब्याह की रीति मिटाओ रहे लाली मुँह छाय।
विधवा विलपैं नित धेनु कटें कोउ लागत हाय गोहार नहीं।।"[2]

इस प्रकार भारतेन्दु युग में जो राष्ट्रीय जागरण था। स्त्री जागरण भी उसी का एक हिस्सा था क्योंकि इस काल के कवियों में 1857 की क्रान्ति का जोश था तथा राष्ट्र के जागरण के लिए ये स्त्रियों को भी जाग्रत करना चाहते थे। इसी का परिणाम हुआ आगे आने वाली आजादी की लड़ाई में स्त्रियों ने भी पुरूषों के कंधे से कंधा मिलाकर भाग लिया। "भारतीय नारी का यह मुक्ति संघर्ष 19वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही शुरू हो गया था, जबकि

बंगाल में 'ब्रह्मसमाज' बंबई में 'प्रार्थना समाज' व उत्तर भारत और पंजाब में 'आर्य समाज' की स्थापना हुई। ये तीनों संस्थाऐं समाज–सुधारों को लेकर चलीं और इन्होंने अपने कार्यक्रमों में नारी–उत्थान को प्रमुख स्थान दिया। जब कोई समाज अपने गौरव शाली अतीत से कटकर अज्ञान, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, अकर्मण्यता, के गर्त में डूब जाता है तो उस समाज की स्त्रियों को ही सर्वाधिक कष्ट झेलने पड़ते हैं। इसलिए मध्यकालीन पतनोन्मुख भारतीय समाज में पंडितों ने स्त्रियों के लिए निर्धारित आचार–संहिताओं में बाल–विवाह, सती–प्रथा, बहुपत्नी–प्रथा को अच्छी व्यवस्थाऐं माना और पर्दे को देहिक पवित्रता या कौमार्य की रक्षा के लिए उचित मानकर स्त्री शिक्षा को पाप की संज्ञा दी तो कोई आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि तत्कालीन व्यवस्थाओं में स्त्री का कोई हाथ नहीं था। राजाराम मोहनराय, स्वामी दयानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, महर्षि कर्वे जैसे सुधारक नेताओं ने इस स्थिति को लक्ष्य किया और अपने सुधार–आन्दोलनों में नारी–उत्थान को प्रमुख स्थान दिया। 1829 ई. में सती–प्रथा को कानूनन खत्म कराया गया। 1856 में विधवा–विवाह को कानूनी मान्यता दिलाई गई। ये दोनों कानून स्त्रियों को सामाजिक अन्याय से मुक्ति दिलाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम थे।"[3] अचानक स्त्रियों के प्रति आये इस बदलाव से या क्रान्ति से उन लोगों में भी भय व्याप्त हो गया जो स्त्रियों पर जुल्म ढाने में कोई कसर न छोड़ते थे। जिन्होंने स्त्रियों को बंदी एवं दासी बनाकर रखा हुआ था वे भी इस बदलाव के कारण अधिक भयभीत तो थे ही साथ ही स्त्रियाँ भी अपनी इस पशुतुल्य व्यवहार से जकड़ी हुई पुरुष मानसिकता से बाहर निकलने का हर सम्भव प्रयास करने लगी। हालांकि समग्र समाज में स्त्री तुरन्त मुक्त न हो सकी परन्तु जहाँ स्त्रियाँ अपने आप में सचेत थी वहाँ वे स्वतंत्र भी होने लगी।

भारतेन्दु युग में स्त्रियों की दशा पर साहित्यकारों ने कलम चलाई तो द्विवेदी युग एवं छायावाद तक स्त्रियों की स्थिति और अधिक सुदृढ़ होने लगी। हिन्दी साहित्य में पुरुष साहित्यकारों के अतिरिक्त स्त्रियाँ भी अपने मन की भावनाओं को साहित्य रूप में प्रकट करने लगी। तत्कालीन स्थिति में जो महिलाओं की स्थिति थी तथा जो–जो व्यवहार उनके साथ हो रहा था या जो–जो व्यवहार स्त्रियों द्वारा किया जा रहा था वह सब अब स्वयं स्त्री साहित्यकार, साहित्य के माध्यम से समाज में उन स्त्रियों तक प्रसारित करने में सक्षम होने लगी जो इसके पहले तक नहीं था।

"हिन्दी में आधुनिक काल के प्रारंभ में लगभग पुरानी लीक पर चलने वाली कवयित्री हैं; गिरिराज कुँवरि, जुगल प्रिया, रघुवंश कुमारी, रामप्रिया, रत्न कुँवरि बाई

आदि। परंपरा और प्रयोग दोनों को अपनाने वाली मुख्य कवयित्रियाँ हैं : चन्द्रकला बाई, सरस्वती देवी, हेमन्त कुमारी चौधरानी, राजरानी देवी, बुंदेल बाला आदि। रमादेवी समस्या पूर्तियों के लिए प्रसिद्ध थीं। राष्ट्रीय जागरण और राष्ट्र प्रेम की नई धारा के प्रसिद्ध नाम हैं : सुभद्रा कुमारी चौहान, जिनकी 'खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी' कविता उन्हें अमर बना गई। तोरन देवी शुक्ल 'लली', विद्यावती कोकिल, रामेश्वरी देवी गोयल, रामेश्वरी चकोरी इन सभी की रचनाओं में देश–प्रेम, राष्ट्र के लिए बलिदान, कर्म–प्रेरणा और ओज–भरे आह्वान के साथ भावुक कोमलता भी गुम्फित है।

पर सबसे बड़ी विभूति हमें दी छायावाद ने महादेवी के रूप में जिनका नाम आज भी अग्रणी रूप में आदर के साथ लिया जाता है। रूमानी गीति–काव्य में सुमित्रा कुमारी सिन्हा और चंद्रमुखी ओझा 'सुधा' के नाम प्रसिद्ध हुए। इनके अलावा तारा पाण्डे, होमवती देवी, हीरा देवी चतुर्वेदी के व इनके बाद शांति मेहरोत्रा, कुसुम कुमारी सिन्हा, पदुमा सुधि, पुष्पा राही, स्नेहलता 'स्नेह' रेखा दोषी के गीत भी काफी सराहे गए। गद्य काव्य के क्षेत्र में दिनेश नंदिनी का नाम उभरा। नई चेतना की आधुनिक कवियित्रियों में शंकुत माथुर, रमासिंह, कीर्ति चौधरी, स्नेहमयी चौधरी, इंदु जैन, मधु भारतीय, ज्ञानवती सक्सेना, अमृता भारती, प्रेमलता वर्मा, कुमारी राधा, कांता पित्ती, सावित्री परमार, सुनीता जैन, नीलम सिंह, अनामिका, पद्म सचदेव पद्मांशा, माया गोविन्द आदि नाम लिए जा सकते हैं। छोटी–छोटी व्यंग्य कविताओं (क्षणिकाओं) में सरोजिनी पीतम का नाम भी उभरा।"[4] इस प्रकार स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श के स्वरूप एवं अवधारणा को प्रस्तुत करने में उक्त लेखिकाओं के अतिरिक्त भी अन्य स्त्री रचनाकारों का योगदान रहा है। तत्कालीन भावनाओं, कुण्ठाओं, अधिकारों के प्रति अपना हिस्सा, सामाजिक कुरीतियों से स्त्री को मुक्त कराने जैसी सम्बन्धी स्थितियों का प्रभाव स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में यत्र–तत्र साहित्यकारों ने अपने परिवेश और अपनी संवेदना के अनुसार नारी के विविध रूपों का चित्रण भी किया है।

महादेवी वर्मा ने लिखा है, "उसे (पुरुष ने) कहीं इस स्त्री को देवता और दासी बनाकर पवित्रता का स्वाँग भरा, कहीं मंदिर में नृत्य कराकर कला की दुहाई दी और कहीं केवल अपने मनोविनोद के लिए वस्तु मात्र बनाकर अपने विचार में गुण–ग्राहकता ही दिखाई।"[5]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– "पुरुष निःसंग है, स्त्री आसक्त, पुरुष निर्द्वन्द्व है, स्त्री द्वन्द्वोन्मुखी। पुरुष मुक्त है, स्त्रीबद्ध।"[6]

स्त्री पुरुष की ये विशेषताएँ न केवल उन्हें अलग पहचान देती हैं, बल्कि उनकी सामाजिक स्थितियों का भी परिचय कराती हैं। बीसवीं शताब्दी में इतिहास ने करवट बदली और स्त्रियों की शृंखलाओं और रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न आरंभ हुआ। किन्तु अभी तक उन्हें आदर्श, त्याग, सेवा और नैतिकता का ही पाठ पढ़ाया जाता रहा था। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में मध्यमवर्गीय और ग्रामीण स्त्रियों को उनके परिवेश और सक्षम चरित्र का जीवन्त स्वरूप प्रदान किया, बल्कि विवश परिस्थितियों के बीच भी उनकी आत्मशक्ति को नया रूप दिया। अनमेल–विवाह, दहेज–प्रथा, विधवा–विवाह, अशिक्षा आदि समस्याओं और उनसे उत्पन्न जटिलताओं को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द का समकालीन परिवेश समाज सुधार आन्दोलनों और राष्ट्रीय आन्दोलनों की विविध धाराओं से ओत–प्रोत था। राष्ट्रीय आन्दोलनों में नारी की सहभागिता ने अपनी शक्ति को पहचाना था। वह स्वयं को पुरुष की सहयोगिनी के रूप में स्थापित कर रही थी प्रतिद्वन्द्वी के रूप में नहीं। कमला देवी चट्टोपाध्याय ने इस स्थिति का सटीक चित्रण करते हुए कहा था 'यह एक नई स्थिति या नई प्रथा की स्थापना का नहीं, बल्कि किसी कदर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को ही पुनः प्राप्त करने और समझ में लाने का प्रयत्न है।... न तो प्रतिस्पर्धा के भाव से यह उठा है, न इसमें हिंसा का ही प्रयोग हुआ है। गाँधीजी ने स्त्री को पहचान कर उस पर लादी गई आरोपित कुरीतियों को दूर करने का आह्वान किया। हरिजन पत्र में अपने विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि "मेरे विचार में स्त्रियों की गार्हस्थिक दासता हमारी असभ्यता का अवशेष है। यही समय है कि हमारी स्त्री समाज इस बन्धन से मुक्त हो जाए, स्त्री का सारा समय घरेलू कामों में नहीं लगना चाहिए।"[7]

स्त्री शिक्षा की प्रगति और पश्चिमी सभ्यता के विकास का प्रभाव भारतीय समाज पर बड़ी तेजी से पड़ रहा था इसका कारण भारतीयों की गुलाम स्थिति भी थी। भारतीय अपनी रूढ़ियों और स्त्रियों के बारे में सोचने लगे थे, जहाँ उच्च वर्ग में स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार बढ़ रहा था वहाँ मध्यवर्ग और निम्न वर्ग में बेहद संकीर्णता थी। फिर भी नारी शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की जा रही थी। कुछ स्त्रियाँ भारतीय आदर्श नीति परम्पराओं का पूर्णतया पालन कर रही थीं और कुछ उच्च शिक्षिता होकर स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने लगी थी जो अंग्रेजी मानसिकता एवं चाल–चलन की शिकार थी। समाज ऐसी स्त्रियों के प्रति उदार नहीं था। साहित्य में भी नीति और आदर्श का अलग–अलग स्थान था। प्रेम चन्द के प्रायः सम्पूर्ण साहित्य में नारी पात्रों में स्वाभिमान एवं कर्तव्य परायणता एवं त्याग की भावना भरपूर है। वे अपनी स्वत्व एवं स्वतंत्र पहचान के प्रति जागरुक हैं। वे पूर्णतया

भारतीय जीवन के प्रतिनिधि हैं। "प्रेमचंद के नारी पात्रों का एक क्रमिक विकास है जो बृजरानी से प्रारंभ होकर नोहरी ओर धनिया के रूप में आगे बढ़ता है। इस क्रम में कई प्रकार के पात्र हमारे सामने आते हैं जो कि भिन्न–भिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ मध्यवित्त, कुछ किसान, कुछ महाजन और कुछ जमींदार वर्ग की सदस्याएँ हैं और वे अपने ही वर्ग की धारणा, चरित्र और नैतिकता को व्यक्त करती हैं।"[8] प्रेमचन्द्र के नारी पात्र विषम चरित्र लिए आमने–सामने आ खड़े होते हैं और अपनी हटधर्मिता से ही अपनी विशिष्ट पहचान बना लेते हैं। सेवा सदन की सुमन यदि आर्थिक अभावों से संतुष्ट है तो उसकी छोटी बहिन शान्ता अपने धैर्य और साहस के कारण रुढ़िग्रस्त समाज से लोहा लेने के लिए तैयार है। निर्मला उपन्यास की सुधा अपने कर्तव्य के प्रति सजग है वह यथार्थ की कटुता का सामना करते हुए कहती है "ऐसे सौभाग्य से में वैधव्य को बुरा नहीं समझती। दरिद्र प्राणी उस धनी से कहीं अधिक सुखी है, जिसे उसका धन साँप बनके काटने दौड़े। उपवास करना आसान है विषैला भोजन करना उससे कहीं मुश्किल।"[9] गबन की जालपा आभूषण प्रेम के संकीर्ण आकर्षण से निकल कर देश प्रेम और मानव प्रेम की व्यापक सीमाओं का स्पर्श करती है वह मजदूरी करना पसन्द करती है।

"भूखों मर जाना अच्छा समझती है किन्तु रोटियों के लिए दूसरों का गला काटना उसे पसंद नहीं।"[10] अपने स्वाभिमान के कारण वह समस्त बाधाओं के बीच अडिग खड़ी रहने में समर्थ हो पाती है। गबन की ही रतन भी अपने स्वाभिमान के कारण सब दुख झेल लेती है। किन्तु सामाजिक कुरीतियों व शोषण के विरुद्ध विद्रोह करके भी परिस्थितियों की विषमता इनके पाँव रोकती रहती है। प्रेमचन्द के साहित्य में स्वतंत्रता के पूर्व नारी का जो स्वरुप था वह यहाँ गोदान की धनिया में देखने को मिलता है वह अपने आत्मबल से दासता एवं स्त्रियों को दबाने की प्रवृत्ति से बाहर निकलकर सोचती है। "धनिया गोदान की प्रमुख नारी पात्र है जिसके जीवन का कोना–कोना विद्रोह की ज्वाला से प्रज्वलित होता रहता है वह सोचती है कि हमने जमीदार के खेत जोते हैं तो वह अपना लगान ही तो लेगा। उसकी खुशामद क्यों करें ? इसके तलवे क्यों सहलाऐं ? धनिया की यह आवाज केवल धनिया की ही नहीं समस्त शोषित वर्ग का विद्रोह है।"[11] गर्भवती विधवा झुनिया को घर में रखने पर गाँव वाले पंच उस पर डांड लगा देते हैं। उनको जवाब में वह कहती है "पंचों गरीब को सता कर सुख न पाओगे। इतना समझ लेना, हम तो मिट जाएँगे, कौन जाने इस गाँव में रहें या न रहें। लेकिन मेरा सराप तुमको भी जरूर ले लेगा। मुझसे इतना बड़ा जरीवाना इसलिए लिखा जा रहा है कि मैंने अपनी बहू को घर में क्यों रखा ? क्यों उसे घर

से निकालकर सड़क की भिखारिन नहीं बना दिया ? यही न्याय है ऐं ?"[12] धनिया होरी के दब्बूपन को ललकारती है। मर्यादा के नाम पर अन्याय को सहने का विरोध करती है। वह सर्वत्र होरी के चरित्र की पूरक है। शोषित वर्ग का यह बाह्य आचरण जो परिस्थितियों के सामने विवशतापूर्वक हमेशा समझौता करते चला जाता है, वह होरी के रूप में चित्रित हुआ है और धनिया उस निःशेष असहयोगी भावना की प्रतीक है, जो होरीपन की ओट में प्रत्येक आघात के साथ अपने को प्रबलतर बनाती रहती है। "इस धनिया को नष्ट कर देने की क्षमता बिरादरी में नही है।"[13] धनिया होरी की मृत्यु पर दिनभर की कमाई सूतली बेचकर बीस आने गाँव के पंडित के हाथ पर रखकर कह देती है। यही इनका गोदान है। प्रेमचन्द ने धनिया के चरित्र से तत्कालीन समाज में स्त्री के मुकाबला करने तथा अपने प्रति अन्याय होने पर आवाज उठाने वाली बताया है। वह परिश्रमी है, अन्याय का विरोध करने वाली है, सबसे टक्कर लेने वाली है साथ ही स्नेह प्रबल सेवाभावी भी है "धनिया का चरित्र उससे (होरी से) काफी भिन्न है वह मर्दों के बराबर काम करती है। इसके सिवा घर का काम देखती है। उसे दूसरों का लिहाज नहीं है, जो होरी को है। वह अन्याय के विरुद्ध पाठक और लेखक की भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम है।" ऊपर से कठोर है मगर भीतर से बहुत ही कोमल है। प्रेमचन्द के नारी पात्रों में यह अन्यतम है। उसके बराबर न तो कोई परिश्रम करने वाली है और न किसी पर सरस्वती की ऐसा कृपा है। वह दातादीन को ऐसा डपटकर जवाब देती है, जैसे कोई मजदूर स्त्री ही दे सकती थी– "भीख माँगों तुम जो भिखमंगे की जात हो। हम तो मजदूर ठहरे, जहाँ काम करेंगे, वहीं चार पैसे पाएँगे।"[14] जो पर्दे में कैद औरत है वह किस प्रकार प्रेमचन्द के साहित्य में अपनी पुरानी धारणाओं को बदलती हुई नज़र आती है। वह असहाय है, गरीब है परन्तु उसमें अन्याय के विरुद्ध मुकाबला करने का आत्मबल अब आ चुका है। अधिकांश लेखकों ने शिक्षित और पश्चिमी संस्कृति से प्रभावित स्त्रियों को सहानुभूति नहीं दी है। उन्हें अहंवादी और तितली के समान एवं पथ भ्रष्ट माना है प्रताप नारायन श्रीवास्तव की रचना विकास की मालती का विद्रोह अहंकार की स्थिति तक पहुँचा हुआ है। "मैं थोड़े दिनों में एसेम्बली सदस्य होऊँगी और स्त्री जाति के हित के लिए कई बिल पेश करूँगी। थोड़े दिनो ंमे मैं संसार में उथल–पुथल मचा दूँगी। स्त्री जाति पर लोग अत्याचार करना भूल जाएँगे। स्त्री जाति में मेरा नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित होगा।"[15] भगवती प्रसाद वाजपेयी का दृष्टिकोण है कि सार्वजनिक क्षेत्र में निन्दा एवं व्यंग्यों के बीच नारी की अवस्था बड़ी असह्य हो जाती है। प्रेमचन्द्र की सहानुभूति भी ग्रामीण नारी पात्रों के प्रति अधिक है। गोदान की विदेश में

डॉक्टरी पास करके लौटी मालती के प्रति नहीं है। उस समय पश्चिमी संस्कृति की विलासिता ने नारी को थोड़ा स्वच्छन्द अवश्य बनाया किन्तु भारतीय परिवेश में शनै–शनै नारी शिक्षा ने उसे अपनी रुढ़ियों के प्रति विद्रोहिणी भी बनाया और उसे पुरुष सत्तात्मक समाज व्यवस्था के प्रति स्वत्व की पहचान मिली। "नारी शिक्षा ने घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों को प्रभावित किया। घर के सीमित वातावरण में रहते हुए नारी के समक्ष राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं से संबंधित प्रश्न तो नहीं थे किन्तु नारी अपने अधिकारों के प्रति कुछ–कुछ जागरुक अवश्य हो गई थी। घर में रहकर नारी ने पुरुष को बड़ा मानकर चलने की परम्परा पर सबसे पहले आघात किया। पुरुष का घर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों पर एकाधिकार था। पढ़ी–लिखी और साधारण पढ़ी लिखी दोनों ही प्रकार की नारियों ने इस पारिवारिक रूढ़ि का विरोध किया।"[16] नारी का विद्रोह सामाजिक विषमताओं के प्रति बढ़ने लगा था– उसे यह अनुभव हो गया था आर्थिक पराधीनता के कारण ही वह पराधीन है। संयुक्त परिवार प्रथा ने नारी को ज्यादा जंजीरों में जकड़ा है, अतः नारी ने शिक्षा के द्वारा आर्थिक पराधीनता दूर करने का प्रयत्न तो किया ही, साथ ही संयुक्त परिवार प्रथा पर भी आघात किया। शहरों में बढ़ते औद्योगिकरण के कारण एकल परिवारों में वृद्धि हुई। जयशंकर प्रसाद के उपन्यास कंकाल में समाज द्वारा प्रताड़ित होने पर स्त्रियाँ विद्रोह करती हैं। उपन्यास की नारी पात्र घण्टी, लतिका और यमुना भारत संघ में सम्मिलित हो जाती हैं। लतिका अपनी सम्पत्ति संघ को दानकर स्त्रियों की स्वयंसेविका पाठशाला आरम्भ करना चाहती है। घण्टी भी सेवा कार्य करने को तत्पर लतिका से कहती है– "बहिन! स्त्रियों का स्वयं घर–घर जाकर अपनी दुखिया बहिनों की सेवा करनी चाहिए। पुरुष उन्हें उतनी ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते हैं, जितना उनके स्वार्थ में बाधक न हो। घर के भीतर अंधकार है। धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियों की। बहिनें अत्याचार के पर्दे में छिपाई गई हैं, मैं उनकी सेवा करूँगी। धात्री, उपदेशिका, धर्म प्रचारिका, सहचारिणी बनकर उनकी सेवा करुंगी।"[17] प्रसाद ने तितली में भी नायिका को स्वाभिमानी नारी के रुप में प्रस्तुत किया है वह कहती है "दूसरों के महत्व प्रदर्शन के सामने अपनी लघुता न दिखानी चाहिए। मैं भाग्य के विधान से पिसी जा रही हूँ। फिर उसमें तुमको तुम्हारे सुख से घसीट कर क्यों अपने दुःख का दृश्य देखने के लिए बाध्य करूँ। मुझे अपनी शक्तियों पर अवलम्बन करके भयानक संसार से लड़ना अच्छा लगा। जितनी सुविधा उसने दी है, उसी की सीमा में मैं लडूँगी। अपने अस्तित्व के लिए।"[18] स्त्री का अपने अस्तित्व के प्रति सजग होना और उसके लिए संघर्ष करना ही सबसे महत्त्वपूर्ण

तथ्य है। पुरुष उसको कितनी ही महान् या गरिमामयी कहता रहे, वस्तुस्थिति उसकी अपनी सच्चाई और अपने आत्मविश्वास में है। प्रसाद जी के नारी पात्र प्रायः भारतीय आदर्शों के पोषक हैं। वे नारी हृदय की उदात्त भावनाओं को समेटे हुए कर्तव्य पथ पर आरुढ़ हैं। किन्तु प्रसाद जी के नाटकों और कहानियों में नारी पात्र स्वाभिमान से युक्त हैं। उन्होंने सामाजिक यथार्थ को अधिकाधिक महत्व दिया है समग्रतः वे स्त्रियों की समस्याओं के सुधार में ही समाज की भलाई मानते रहे हैं। जैनेन्द्र के नारी पात्र आत्मपीड़न को सर्वाधिाक महत्व देते हैं त्यागपत्र की मृणाल समाज को तोड़ने की बजाय खुद मिटा डालना बेहतर समझती है किन्तु कल्याणी की कहानी शिक्षा संस्कृति और भारतीय आदर्शों की विषमता के द्वन्द में सब कुछ सहते हुए भी यथास्थिति प्रकट करती है। "आप मुझसे डरिऐ नहीं और मुझे निर्दोष भी न मानिएगा। स्त्री निर्दोष हो सकती है ? पहला दोष तो यही है कि वह स्त्री है ?"[19] नारी की यह पीड़ा ही आगे चलकर विद्रोह का रूप धारण करती है। त्यागपत्र की मृणाल धनिया से एकदम विपरीत आत्मोन्मुखी है। समाज के विधि निषेधों और रूढ़ मान्यताओं से परे वह जीवन को एक आवरणहीन, सच्चे दृष्टिकोण से देखती है। उसका चरित्र निर्माता बन बनाए उपकरणों से नहीं हुआ वह सभ्यता, संस्कृति के पारम्परिक मानदण्डों से भिन्न मानवता के मौलिक आधार को अपने चिन्तन का संबल मानती है। अज्ञेय ने शेखर एक जीवनी में प्रमुख नारी पात्र शशि के मुख से आन्तरिक विद्रोह को प्रदर्शित किया है। "आदर्शों का अभिमान आसान है। विवाह का हिन्दू आदर्श, गृहस्थ धर्म, सतीत्व का हिन्दू आदर्श, किन्तु अभिमान की काही के नीचे आदर्श का पानी क्या अभी बहता है कि बँधकर सड़ गया है ? गृहस्थ धर्म उभयमुखी होता है, किन्तु आज के जीवन में पुरुष की ओर से देय कुछ भी नहीं है, सत्य तो दूर, करुणा भी देय नहीं रही और नारी केवल पुरुष के उपभोग का साधन रह गई है, निरी सामग्री जिसे जब चाहे, जैसे चाहे, जहाँ अपनी तुष्टि की आग में होम कर दे और इसकी कहीं अपील नहीं है, क्योंकि स्त्री कभी दुहाई दे तो उत्तर स्पष्ट है कि और शादी किसलिए की जाती है ? यह आदर्श नहीं, आदर्शों की समाधि है, देह नहीं, सदियों की सूखी त्वचा में निर्जीव हड्डियों का ढाँचा है।"[20] लेकिन मूलतः अज्ञेय के नारी पात्र अपनी भाव तरंगों और प्रेमिल समर्पण में ही तृप्ति पाते हैं सामाजिक संदर्भ वहाँ शून्य हैं। इलाचन्द्र जोशी के साहित्य में भी मनोविज्ञान की प्रधानता है किंतु वे काल्पनिक पात्रों की अपेक्षा यथार्थ जीवन की घटनाओं को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके नारी पात्रों के संदर्भ में लिखा है "अपनी पात्रियों के चुनाव में जोशी जी ने एक विशेष दृष्टि से काम लिया है। ऐसी ही नारियाँ उन्होंने चुनी हैं, जिन्हें जीवन की घनघोर

संघर्षमयी परिस्थितियों से होकर गुजरना पड़ा है और जिनकी अवचेतना में निहित विद्रोह के बीज रुपी अणुओं में उन संकटाकुल परिस्थितियों के पारस्परिक संघर्ष के लिए रासायनिक प्रतिक्रियास्वरुप भयंकर विस्फोट में परिणित होने की संभावना रही है। उनके नारी पात्रों में त्याग और तपस्या की तनिक भी कमी न होने पर भी उन्होंने कभी आत्मकामी अहंवादी और अत्याचार परायण पुरुषों के साथ समझौता नहीं किया है।"[21] धर्मवीर भारती ने भी गुनाहों का देवता में पम्मी द्वारा कहलाया है "कपूर ! मैं सोच रही हूँ, अगर यह विवाह संस्था हट जाए तो कितना अच्छा हो। पुरुष और नारी में मित्रता हो– बौद्धिक मित्रता और दिल की हमदर्दी।... मैं तो देखती हूँ कि प्रणय विवाह भी होते हैं तो असफल हो जाते हैं, क्योंकि विवाह से पहले आदमी औरत को ऊँची निगाह से देखते हैं हमदर्दी और घर की चीज समझता है और विवाह के बाद वासना की।"[22] किन्तु अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है "प्यार स्थाई नहीं होता, पत्नीत्व स्थाई होता।"[23] गुनाहों का देवता की सुधा, विनती गेसू, पम्मी सभी नारियाँ आत्मा और शरीर के संतुलन में अपने मन और व्यक्तित्व के आग्रह और अस्तित्व को नकार देती है। स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में स्त्री पुरुष के प्रेम की समस्या, स्त्री के त्याग और नीति के रूप में वर्णन हुआ है वे अपनी स्थिति से दुखी अवश्य हैं किन्तु समाज से अपने न्याय के प्रति वह जूझने लगी है सफल कहाँ तक हुई यह नहीं कहा जा सकता। मध्यकालीन स्वरूप एवं अवधारणा से हटकर यहाँ कुछ बदलाव की झलक अवश्य देखने को मिली है फिर भी वह अभी अधिक आजाद न होकर छली गई है। नारी को शरीर मानकर पुरुष की सामंती दृष्टि अभी भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। अभी भी स्त्री धोखा खा रही है कभी प्रेम के नाम पर कभी धर्म और कर्तव्य के नाम पर। समाज में उसके बढ़ते चरित्र की छाप भी अवश्य पड़ी है। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में प्रधान पात्र नारियाँ ही हैं। मृगनयनी, झाँसी की रानी, अहिल्या बाई बहुत ही सशक्त और तेजस्वी पात्र हैं। वर्मा जी ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के चरित्र को गरिमावान बनाया है जो स्वराज्य की रक्षा के लिए न केवल योजनाएँ बनाती है, बल्कि बहादुरी से लड़ती भी है। महारानी अहिल्या बाई का चरित्र भी स्त्रियों को उच्च स्थान प्राप्त करवाता है। मृगनयनी की एक ही काल्पनिक नारी पात्र लाखी का चरित्र बहुत अप्रतिम है वहाँ प्रेम का उदात्त रूप तो है ही साथ ही वह समाज की रूढ़ियों को भी दृढ़तापूर्वक ठुकरा देती है। उसकी निर्भीकता और स्वाभिमान उसे पाठकों का प्रिय पात्र बना देता है वह अपने प्रेमी अटल से कहती है "कोई मुझको यदि किसी की चेरी कहे, चाहे वह मेरी ननद ही क्यों न हो, तो मैं न सह सकूँगी और न सह सकूँगी कि तुमको राजा का दास या रोटियारा कहे। हम लोगों को भगवान ने

भुजाओं में बल दिया है और काम करने की लगन कुछ काम करके ही ग्वालियर चलेंगे।"[24] डॉ. शिवकुमार मिश्र ने लाखी के चरित्र की महत्ता पर लिखा है "लाखी का चरित्र एक अटल चट्टान की भाँति दृढ़ है, वह टूट तो सकता है, पर झुकने की सामर्थ्य उसमें नहीं है। लाखी गौरवमयी है, समर्थ है, दृढ़ है, सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों को पैर से ठुकरा देने वाली स्त्री है। वह संघर्षों से खेलती है, पल–पल उसे सजग रहना पड़ता है।"[25] भगवती चरण वर्मा की चित्रलेखा अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखती है, रूप, बुद्धि, कला और स्वतंत्र निर्णय क्षमता उसमें कूट–कूट कर भरे हैं उसका यह प्रतिभाशाली व्यक्तित्व विकास वैधव्य के बाद आरम्भ होता है, वह दर्शन को भी उतना ही समझती है जितना प्रेम की प्रगाढ़ता को। कुमार गिरी के द्वारा नारी को माया, मोह, अंधकार कहने पर वह निर्भीकता पूर्वक उत्तर देती है। प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अंधकार का प्रणाम। चित्रलेखा का व्यक्तित्व पूरे उपन्यास में एक प्रभा पुंज के समान है, इसलिए वह सम्राट चन्द्रगुप्त, प्रखर राजनीतिज्ञ महामंत्री चाणक्य द्वारा तो सम्मान पाती ही है, साथ ही सामन्त बीजगुप्त का अटूट प्रेम और योगी कुमारगिरि की लालसा भी। हजारी प्रसाद द्विवेदी की बाणभट्ट की आत्मकथा निपुणिका का चरित्र भी बड़ा ही सशक्त है निपुणिका त्यागनिष्ठ, उत्सर्गपूर्ण समर्पित नारी के रूप में प्रकाशित है। उसके चरित्र की उदात्तता उसके सेवा भाव में समाहित है। निपुणिका ने बाण को मुक्त रखा, उसे बाँधा नहीं, स्नेह की डोर थी, किन्तु उसमें बाँधकर नहीं रखा। बाण के मन में उसके गुणों के प्रति अतिशय सम्मान है। यशपाल ने नारी की छुईमुई छवि को दूर कर एक मानवी का रूप दिया है "यदि पुरुष के जीवन विकास में स्त्री का आकर्षण विनाशकारी होता तो प्रकृति यह आकर्षण पैदा ही क्यों करती ? जिन वस्तुओं से मनुष्य के जीवन को भय है, उनसे वह डरता है, दूर भागता है, परन्तु पुरुष स्त्री की ओर दौड़ता है, मानो उसके जीवन में कोई कमी है, जिसे वह पूर्ण करना चाहता है।"[26] देश–द्रोही की चन्दा कहती है "उनका जो बस चलता है कर लें... जैसे मेरा बस चलेगा, मैं कर लूँगी। जब मुझ पर विश्वास था, मेरी जिम्मेदारी थी। मेरा विश्वास ही नहीं तो मेरी जिम्मेदारी क्या ?"[27] लेकिन इन नारी चरित्रों का व्यक्तित्व बहुत कुंठित है। आलोचकों ने यशपाल के नारी पात्रों में यौन ग्रन्थियों की अतिशयता की बहुत अलोचना की है, क्योंकि इस अतिशयता के कारण उनके क्रान्तिकारी विचार भी पंगु बन जाते हैं। "यशपाल अपने कथा साहित्य में रुढ़िवाद से लड़ने वाली नारी का चरित्र नहीं दे पाते, कारण कि उसके प्रति उनका दृष्टिकोण सामन्ती पूँजीवादी भोगवादियों का है। इस भोगवाद को उन्होंने विज्ञान का रूप देने की कोशिश की है।"[28] रांगेय राघव ने अपने नारी पात्रों में जीवन को घृणित और विलास का रूप माना है। घरौंदे में वे कहते

हैं "नारी का विद्रोह यौवन के पहले पहरों में समष्टि के विरुद्ध जागता है और अन्त में स्पर्धा करते–करते वह व्यक्ति मात्र में निबद्ध होकर दासत्व स्वीकार कर लेता है। यही वह ठौर है, जहाँ नारी पुरूष की दासी बन जाती है।"[29] इस युग के लेखकों ने अपनी प्रगतिवादी विचार धारा को अधिक आरोपित किया है। यथार्थ और स्वस्थ रूप भी इस आरोपण में दब गया है। विशेष रूप से नारी के स्वतंत्र विकास की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती, नारी मात्र भोग की वस्तु बनकर रह गई है। भैरव प्रसाद गुप्त ने शोल में लिखा है "जिन परिस्थितियों ने जकड़ कर शोभी का रक्त, माँस चूस लिया, उसके नारीत्व, मातृत्व का गला घोट दिया, उसके जीवन की सार्थकता को खत्म कर दिया, उसे शून्य बना दिया, उसकी जिम्मेदारी उस सामाजिक व्यवस्था पर है, जो ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करती है, जो नारी पर पुरुष के पशुत्व का एकछत्र अधिकार देती है, सास को पतोहू के साथ एक खरीदी हुई दासी की तरह व्यवहार करने की क्षमता देती है और नारी को चुपचाप मिट जाने के लिए विवश कर पाती है। जब तक यह व्यवस्था नहीं बदलती, शोभी की तरह शून्य नारियाँ घर–घर सड़ती ही रहेंगी, इनका उद्धार नहीं हो सकता।"[30] समाज की विषमताओं और पुरुष की पारम्परिक सोच का मार्मिक चित्रण अमृतलाल नागर के महाकाल में हुआ है। भीषण अकाल में समाज नारी को अपनी वस्तु समझकर, उसे बेचकर अपनी भूख मिटाना चाहता है "औरतों की अस्मत जाए तो जाए–खाने को मिले। बहु–बेटियों को वेश्या बनने दो। आबरू जाती है तो जाने दो।"[31] अमृतराय का दृष्किोण स्त्री–पुरुष को विवाह की परिणति में ही स्वस्थ मानता है। किन्तु वे बदलाव को आवश्यक मानते हुए कहते हैं "स्त्री को घर के तहखाने में बंदी न किया जाए, उसकी प्रतिभाओं को मुक्त किया जाए, उसे काम करके पैसा कमाने का मौका भी दिया जाए ताकि उसकी भी चेतना इसकी दीप्ती से आलोकित हो सके की उसका भी जीवन समाज के लिए उपयोगी जीवन है और उसका भी स्वतंत्र अस्तित्व है और वह किसी की आश्रिता नहीं है।"[32] इस काल के अधिकांश साहित्यकारों, कथाकारों ने राजनीति और बाहरी हलचल को अपना कर भी नारी चरित्रों को अत्यन्त बौना, लघु और खिलौना बना दिया है वे अब देवी भी नहीं रही बस अब प्रेम व वासना का आधार बनकर रह गई है। वस्तुतः स्त्री के मन में शिक्षा और स्वतंत्रता का अंकुर फूटने के आसार मात्र से ही मानो समाज व्यवस्था का संतुलन बिगड़ने लगा था जिसे समाज का कर्ता–धर्ता पुरुष मानस स्वीकार नहीं कर पा रहा था। नारी भी अन्य समस्याओं की तरह उगने लगी थी इस समाज ने ही उसके लिए वेश्या, कुलटा आदि शब्द और वर्ग बना लिए थे। पुरुषों की अपनी काम दृष्टि ने उसे मात्र देह के रूप में देखा। कहीं कहीं उसने अपने

शोषण के प्रति विरोध भी दर्ज कराया है लेकिन सच तो यह है कि सारा साहित्य समाज की मानसिकता का आईना है। स्त्री भी स्वयं को पुरुष की आँख से ही देखती समझती आई है। जब–जब उसने स्वयं को स्वयं की आँख से देखने की कोशिश की है, समाज और परम्परा की आचार संहिताओं द्वारा उसकी स्वतंत्र चेतना से भारी कीमत वसूल की गई है एक स्वस्थ समाज के निर्माण में इन सड़ी–गली मान्यताओं का बहिष्कार करने का साहस साहित्य ने भी उदार होकर नहीं किया। नारी के प्रति ऐसा होना चाहिए का स्वर थोड़ा मुखरित भी हुआ मगर ऐसा नारी चरित्र प्रखर वेग से सामने नहीं आ सका जो सचमुच अपनी दुर्बलताओं से जूझकर समाज में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर सके, जो स्वयं एवं दूसरों को राह दिखा सके अथवा जिसका आचरण स्त्री पुरुष के भेद को मिटाकर समाज के लिए एक आदर्श बन सके। नारी क्षमता का जड़ संस्कारों पर प्रखर करने वाले नारी व्यक्तित्व का, पुरुषों के सामन्ती दृष्टिकोण को चुनौती देने वाले व्यक्तित्व का आविर्भाव कलम द्वारा नहीं हो सका। नारी केवल त्याग, बलिदान और करूणा की मूर्ति बनकर ही मंगलकारी हो सकती है क्या स्वतंत्र निर्णय की अधिकारी बनते ही मंगलकामनाएँ छिन्न–भिन्न हो जाती हैं ? नारी की अस्मिता उसके वर्चस्व में है। नारी पुरुष बनकर नहीं अपितु नारीत्व को शक्ति, संकल्प और साहस के द्वारा नैसर्गिक रूप में जहाँ वहन करती है, वहाँ उसकी सामर्थ्य और गुणवक्ता अधिक ग्राह्य, उदार, कार्यक्षमता युक्त होती है किन्तु जहाँ तक वह स्वतंत्र सोम से युक्त न हो तब तक वह स्वतंत्र नहीं है। हिन्दी कथाकारों ने स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में जो नारी का स्वरूप तथा उसके प्रति सामाजिक अवधारणाएँ दी हैं वे एक दमित शोषित स्त्री की ही हैं, हाँ कुछ स्थलों पर वह अत्यधिक उच्च शिक्षा युक्त नई चमक–दमक में नज़र आई है वहाँ उसे समाज ने अस्वीकार किया है क्योंकि उसमें पाश्चात्य संस्कारों की अधिकता है जो भारतीय वातावरण से मेल नहीं खाती यहाँ की सामान्य वर्ग की नारियों से उसका तादात्म्य नहीं बैठता है। फिर भी कुछ भी हो स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श अत्यन्त कारगर सिद्ध हुआ है राष्ट्रीय नव जागरण से राष्ट्र में जो स्त्रियों के प्रति सुधार एवं जागरण इस काल में हुआ वह अन्यत्र पहले कभी नहीं हुआ। स्त्रियों के प्रति नई सोच साहित्य का अंग बनी उसके अधिकारों की ओर सबका ध्यान गया वह रीतिकाल की वासना के पंक से बाहर निकल चुकी थी तथा अपने पथ का स्वयं निर्माण करने को उद्यत थी। अपने अधिकार, न्याय, शिक्षा, जीवन, शोषण, अत्याचार एवं दबाव के प्रति सजग हो गई थी। इस काल में स्त्रियों के आत्मबल में असाधारण वृद्धि हुई। पुरुष समाज में मध्यकाल की भाँति अब उसे उसकी इच्छा के बिना दबाने व कैद

करने से पहले एक भय की आशंका ग्रस्त थी। चारों ओर स्त्री जागरण से हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के स्वरूप एवं अवधारणा में परिवर्तन उसकी मुक्ति की ओर अधिक ले जा रहे थे। उसकी बेड़ियाँ अब ढीली पड़ने लगी थीं। भारतीय स्वतंत्रता के साथ वह भी अब स्वतंत्र होने के लिए अपने पंखों को फड़फड़ाने के लिए सुदृढ़ करती सी नज़र आ रही थी।

2.3.2 स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श : स्वरूप एवं अवधारणा

स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज के लोकतांत्रिक ढाँचे और पूँजीवादी प्रतिमानों के साथ–साथ विकसित होने वाली महानगरीय सभ्यता का परिवेश अस्तित्व के घोर संकट, अकेलेपन और गहरे पीड़ा बोध से भर उठा, क्योंकि संयुक्त परिवार प्रथा के विघटन, पीढ़ी भेद, युवा आक्रोश और नारी की करवट बदलती हुई स्थितियों ने मन की आचार संहिता में ढले हुए समाज की जड़ों को हिला डाला था। पश्चिमी सभ्यता के प्रसार के साथ–साथ अस्मिता को स्थापित करने की भूख और भारत विभाजन की त्रासदी से उत्पन्न मूल्यहीनता ने धीमी गति से रेंगने वाले भारत को अचानक यांत्रिक बना दिया। फलतः समाजवादी नारे बड़ी द्रुत गति से वैयक्तिक सत्ता में विलीन होते चले गए। सर्वाधिक वैयक्तिकता और परिवर्तनशीलता दिखाई दी नारी की मुक्ति चेतना में। यह बिल्कुल सच है कि आजादी के बाद नारी चेतना में जिस तेजी से परिवर्तन हुआ है, उसकी संघर्षशीलता में जुझारू क्षमताओं में और चुनोतियों को स्वीकारने में, पुरुष समाज उस अनुपात में अपने आपको नहीं बदल सका। निःसंदेह परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार के अवसरों और समानता के अधिकारों में काफी वृद्धि हुई है किन्तु फिर भी प्रतिगामी नैतिकताओं, मान्यताओं, मूल्यों और सामाजिक मानसिकता के कारण अनेक विसंगतियों ने नारी जीवन पर दोहरे मानदण्डों को लागू किया हुआ है। एक भयंकर सामाजिक रोग की भाँति कानून और अंधविश्वासों के दोहरे शिकंजों ने नारी मन को आहत भी किया है और विद्रोही भी बनाया है। समानता, न्याय, सद्भाव, कोमलता और सांस्कृतिक जड़ता को व्यष्टिवादी भूमिका पर साहित्य में भी भरपूर अभिव्यक्ति मिली है। समाज के बदलते परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति की अपनी स्वतंत्र विचारधारा तथा विचारों और कार्यों की प्राचीन परम्परा से अलग रहने की प्रवृत्ति वैयक्तिक चेतना को प्रश्रय देती है, इसे विरोधवाद का व्यापक विस्तार भी कहा जा सकता है, अतः व्यक्ति एवं सामाजिक दृष्टिकोण को प्रजातांत्रिक आधारभूमि पर स्थापित करने की प्रवृत्ति व्यक्तिवादी भावाभिव्यक्ति की विशेषताएँ कही जा सकती हैं। रामेश्वर शुक्ल के 'चढ़ती धूप' की नायिका ममता इसी आत्मिक चेतना का उद्घोष करती हुई कहती है "जो समाज व्यवस्था मेरी इच्छा के प्रतिकूल मुझे एक खास

पुरुष के साथ रहने के लिए और जीवन बिताने के लिए विवश करती है, उस व्यवस्था का, उस नैतिकता का मेरे निकट क्या मूल्य है ? यह मेरे व्यक्तित्व का दमन है, मेरी सत्ता का संहार है, मेरी आत्मा की अस्वीकृति है। मैं ऐसी व्यवस्था को नष्ट करने में अपना सारा बल लगाऊँगी।" इस काल में विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव इतना ज्यादा रहा कि करवट बदलती वैयक्तिक चेतना भी सामाजिक बंधनों का दबाव अनुभव करती रही, फलतः विरोध के साथ–साथ त्याग, बलिदान का स्वर भी गुँथा रहा। व्यक्ति और समाज के इसी दबाव से अन्तर्विरोध सामने आए। "उसका अन्तर्मन सोचेगा कुछ बाह्य व्यवहार करेगा कुछ परिणामतः उसके व्यवहार, कहने में पर्याप्त भिन्नता दिखाई पड़ेगी, जो द्वन्द्वात्मक स्थिति का परिचायक है।"[1] मूल्य विघटन की चरम सीमा, कुंठाओं में पिसती नारी, नैतिकता और झूठे आदर्शों के प्रति विद्रोह करती नारी भीतर से बहुत टूटी है और उस टूटने में से उसने सपने सजाए हैं। शोषण के घात–प्रतिघातों में उसके भीतर एक नवीन चेतना जागृत होती है "क्या औरत की जिन्दगी में इसके सिवाय कुछ और नहीं है ? यदि नहीं है तो दुनिया में औरत होना सबसे बड़ा पाप है। या तो आदमी को जनम के साथ ही उसका गला घोंट देना चाहिए जो वह नहीं कर सकता या औरत को खुद जहर खाकर मर जाना चाहिए, इसके सिवा उनके पास चारा नहीं है। जब आदमी उसे जीने नहीं देना चाहता तो उसे धुएँ में घुटने और तड़पने देने का भी अधिकार नहीं है... क्या औरत आदमी की धरोहर है ? जब तक चाहे उपयोग करें और जब चाहे किसी कबाड़ी को बेचकर चल दे।"[2] यह वह समय था जब अतीत उसे आश्वस्त नहीं कर रहा था, वर्तमान उसे खुद बनाना था और भविष्य स्पष्ट था। औरत को समाज में एक मनुष्य के रूप में स्वीकृति प्राप्त हो अथवा एक स्वतंत्र इकाई माना जाए, यह बहुत जरुरी है। अतः बहुत समय से चले आ रहे असमानता के भाव को नकारे जाने का साहस पैदा होने लगता है और यह साहस अनेक अन्तर्द्वन्द्वों तथा आक्रामक मुद्राओं को भी धारण कर लेता है। बीसवीं सदी के छटे दशक में ही भारतीय समाज में नई–पुरानी मान्यताओं का संघर्ष सभ्यता और संस्कृति के बदलते हुए रूप समाज पर अपना प्रभाव डाल रहे थे। नारी अपने अस्तित्व के प्रति सचेत तो होने लगी थी किन्तु उसका विरोध पुरानी रूढ़ियों और बंधनों की जकड़न के प्रति था। बदलते संदर्भों को स्वीकार करने की इच्छा के साथ–साथ पुराने संस्कारों को तोड़ना भी सहज नहीं प्रतीत होता था। इस दोहरी स्थिति ने नारी मन में अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को उत्पन्न किया। लेकिन इस अन्तर्द्वन्द्व और विद्राह का सबसे प्रबल स्वर मध्यवर्ग में ही प्रकट हुआ। तत्कालीन स्थितियों में बदलती परिस्थितियाँ तथा आर्थिक तंत्र की बढ़ती प्रतिस्पर्धा ने मध्यवर्ग की कुंठाओं और

महत्त्वाकांक्षाओं को अनेक रूप से प्रभावित किया। औद्योगिकरण की बढ़ती माँग ने जाँच की पगडण्डी को शहर की पक्की सड़क से जोड़ दिया था और अपने ही खेत में बंधुआ बने किसान भी शहर की ओर भागने लगे थे नगरीय सभ्यता के बढ़ते प्रसार ने भी संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन करना शुरु कर दिया था किन्तु इस विघटन की शुरुआत में दो पीढ़ियों के टकराव की भूमिका थी, पुराने जड़ संस्कारों में नई मान्यताओं को कुचलने का रोष भी था और नई पीढ़ी में एक खुले और स्वस्थ वातावरण की ललक जाग रही थी। सामाजिक और आर्थिक संघर्ष से ग्रस्त मध्यवर्ग की त्रस्तता और क्षुब्धता के सम्बन्ध में चण्डी प्रसाद जोशी कहते हैं– नैतिक मूल्यों एवं जीवनजगत आदर्शों के प्रति सबसे अधिक आस्थाहीन यही वर्ग था। बाह्य संघर्ष में अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अवसरवादिता उसका व्यावहारिक आदर्श बन गया था तथा परिस्थितियाँ ही विश्व की संचालक शक्ति हैं, इसे उसने दर्शन मान लिया।

संयुक्त परिवार प्रथा संगठन, समझौते और सहयोग की भावनाएँ बदलने लगी थीं, अधिकार और स्वातंत्र्य चेतना बलवती होने लगी थी। राजेन्द्र यादव ने 'सारा आकाश' में इस परिवर्तन को स्पष्ट करते हुए कहलाया है– वे (शिरीष) साथ रहने के बहुत ही खिलाफ हैं। कहते हैं, इससे व्यक्तित्व का विकास नहीं होता। आदमी अपनी प्रतिभा और शक्तियों का प्रसार नहीं कर पाता। यही नहीं, आपसी लड़ाई–झगड़े और बदले की भावना से वह अपना फर्ज भी भूल बैठता है। अलग रहकर अपने को बनाने के साथ–साथ वह फर्ज को नहीं निभा सकता ? विकासात्मक प्रक्रिया में पुरातन का त्याग और नए का ग्रहण एक अवश्यम्भावी प्रक्रिया है। पुराने संस्कार मन में जड़ जमाते रहते हैं, नूतन विचार को अपनाने में वे संस्कार काफी हद तक बाधक बनते हैं, किन्तु अनुभव, इच्छा और तर्क द्वारा इनमें परिवर्तन के संकते मिलने लगते हैं। पुरातन मूल्यों, जर्जर रूढ़ियों आधुनिक सभ्यता के तथाकथित अधिकारों के मध्य बदलते संदर्भों में नारी की स्थिति सर्वाधिक विवादास्पद है। 'सारा आकाश' में नायिका प्रभा ससुराल के संयुक्त परिवार में लगातार प्रताड़ित की जाती है। पति द्वारा उपेक्षिता होकर वह सबके लिए एक दासी मात्र रह जाती है। उसकी शिक्षा, उसका पढ़ने का शौक, मिट्टी के गणेश जी को सादा मिट्टी का ढेला समझ लेना, छत पर बाल सुखाना, घूंघट न निकालना आदि व्यवहार उसके सबसे बड़े अवगुण हैं। प्रभा के रूप में नारी चेतना का संकेत प्राप्त होता है किन्तु मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार का पारस्परिक रूप उसे पूरी तरह कुचल देना चाहता है। अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र' में संयुक्त परिवार में विधवा बहू के प्रति शोषण के विरुद्ध नायिका द्वारा अभियान चलाया

गया है, दूसरी ओर बड़ी (मोहिनी) के द्वारा दो बच्चों की माँ होकर भी एक कपटी कवि के प्रेम पाश में फँसने पर पति द्वारा प्रताड़ित कर घर से निकालवा दिया गया। संयुक्त परिवार में बहुओं की स्थिति सबसे ज्यादा दयनीय थी–सास, देवर, ननद आदि सभी उसे सही समझकर सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार नहीं कर पाते–परिणाम मृत्यु या भटकाव होता है। 'अमृत और विष' में नायक रमेश विधवा रानी के साथ परिवार का विरोध सहन करके भी विवाह करता है। नागर जी का चिन्तन न केवल समाज के बाह्य रूप से जूझता रहा है, अपितु जनमानस में उठते प्रश्नों, संदर्भों व समस्या–संसार के प्रति भी सतर्क रहा है। भारतीय स्वतंत्रता के साथ–साथ वैज्ञानिक चेतना, समाज की अंध परम्पराओं, उसके कृत्रिम मूल्यों और निरर्थक मानमर्यादा पर प्रहार करने लगा था। सुधारवाद और आदर्शवाद से संपुटित होते हुए भी नागर जी ने समाज की यथार्थवादी समस्याओं की रुग्णावस्था को प्रकट किया है। "व्यक्ति सामाजिक प्राणी अवश्य है किन्तु उसकी यह सामाजिकता उसे व्यक्ति बने रहने से हटा नहीं सकती। व्यक्ति अपनी निजी आकांक्षाओं जीवनानुभूतियों, स्मृतियों, कल्पनाओं, दैहिक अपेक्षाओं से भी नियंत्रित रहता है। अपने व्यक्तित्व के निर्माण की अदम्य चाहना उसे प्रतिपल कचोटती रहती है। दाम्पत्य की परिधि में आकर स्त्री–पुरुष का वैयक्तिक पक्ष कभी पूर्णतः दब जाता है। कभी अत्यधिक मात्रा में उभरकर सामने आता है।"[3] सदियों से चली आती परम्पराओं के कारण पीड़ित नारी की कराहटों ने सामाजिक चेतना को दंशित किया है। एक ओर 'महाकाल' की नारी है, जो पुरुष की क्षुधा शांत करने के लिए मुट्ठी भर चावलों के बदले बिक जाती है, दूसरी ओर 'बूंद और समुद्र' की परित्यक्ता ताई है, जो मन के अभावों से घिरकर दानवी और दैवी गुणों का विरोधाभास बन गई है।

वनकन्या वर्तमान युग की स्वाभिमानी स्वतंत्र अस्तित्वशाली नारी है जो एक पुरुष के समान ही सामाजिक उत्थान के कार्यों में भाग लेती है। वह नारी की विवशता का चरम रूप अपनी भाभी के अत्याचार पीड़ित जीवन में देखती है– 'भाभी का अपराध यही है कि वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं हैं। कल्याणी और महिपाल का सम्बन्ध विरोधी स्थितियों में चित्रित हुआ है– माता–पिता द्वारा तय हो गई शादियाँ हमारे अस्सी फीसदी घरों में जीवन भर के कर्ज की तरह निभाई जाती है।' 'सुहाग के नूपुर' की नारी पुरुष के एकाधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह कर उठी है– 'पुरुष जाति के स्वार्थ और दंभ भरी मूर्खता से ही सारे पापों का उदय होता है। उसके स्वार्थ के कारण ही उसका अर्धांग नारी जाति पीड़ित है। एकांगी दृष्टिकोण से सोचने के कारण ही पुरुष न तो स्त्री को सती बनाकर ही सुखी कर सका और न वेश्या बनाकर ही। इसी कारण वह स्वयं ही झकोले खाता है और खाता रहेगा। नारी के

रूप में न्याय रो रहा है। उसके आंसुओं में अग्नि प्रलय भी समाई है और जल प्रलय भी।' नर–नारी के सम्बन्धों के समन्वयात्मक, वैज्ञानिक रूप की व्याख्या नागर जी ने 'मानस का हंस' में स्पष्ट की है– 'नर–नारी एक–दूसरे के पूरक और भाग्य विधाता हैं। वे परस्पर की रीझ और खीझ में अपने–अपने अभावों और उनकी पूर्ति के लिए ही पूर्व कर्मानुसार मिले हैं।'

संयुक्त परिवार प्रथा में बहू की स्थिति ही उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास में बाधा नहीं बनती, अन्य भी अनेक कारण होते हैं। संयुक्त परिवार में नारी माँ और सास अथवा बुजुर्ग महिला भी होती है– बेटी, बहिन भी होती है। शिक्षा और सामाजिक मूल्यों के परिवर्तन के साथ इन भूमिकाओं का पूर्व रूप भी बदला है। व्यस्त माँ के रूप में नारी की भूमिका सबसे ज्यादा कठिन होती है– यदि वह कामकाजी है, तब और भी ज्यादा, क्योंकि परिवार के अन्य सदस्यों के अतिरिक्त उसे अपनी संतान के पालन–पोषण की चिन्ता सबसे अधिक होती है। आर्थिक कारण हों अथवा अपनी महत्त्वाकांक्षा–किन्तु संतान की उपेक्षा सदा उसे तनावग्रस्त बनाए रखती है। माँ के भरपूर संरक्षण से अलग रहकर वे या तो विद्रोही हो जाते हैं अथवा आत्मकेन्द्रित। नौकरी के समय को तो वे फिर भी सह लेते हैं किन्तु उसके बाद का सारा समय उन्हें एकाधिकार के रूप में चाहिए। माता–पिता का सम्मिलित सौहार्द एक–दूसरे के अभाव को अनुभव नहीं करने देता किन्तु असहज सम्बन्ध उन्हें कुंठित कर देते हैं। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'नावें' में मालती असहज सम्बन्धों के कारण अपनी पुत्री नीलिमा का विश्वास नहीं जीत पाती।

प्रायः असहज दाम्पत्य सम्बन्धों में पत्नी आत्मनिर्भर होती है और उसकी स्वतंत्र जीवनचर्या को संतान मानसिक स्वीकृति नहीं दे पाती। मन्नू भंडारी के उपन्यास 'आपका बंटी' की शकुन अपने पति अजय से तलाक लेकर अपने बेटे बंटी को भरपूर समय और संरक्षण देती है किन्तु शकुन के द्वारा अपने पुनर्विवाह का निर्णय लेते ही बंटी आक्रामक हो उठता है, "माँ अथवा पिता, किसी के भी प्रति उसके मन में कोई दुर्भावना नहीं है लेकिन दोनों के संयुक्त स्नेह से वंचित हो जाने के कारण एक अभाव उसमें घर कर गया है।"[4] नारी का मातृत्व उसकी समस्त आकांक्षाओं और सामाजिक दायित्वों से गुरुतर स्थान लिए है जो उसकी व्यक्तिगत चिन्ताओं और सत्ता के संकट से भी आगे है, अतः संतान की अपेक्षा उसके अस्तित्व को झकझोर देती है। रोहिणी अग्रवाल इसका विश्लेषण करती हुई कहती हैं– "कारण है कि माँ के प्रति संतान का अत्यधिक लगाव एवं अपेक्षाएँ। सामाजिक व्यवस्था, मूल्यों एवं वर्जनाओं के औचित्य को न जानते हुए भी बच्चा परिवार व समाज में

रहने के कारण उन्हें देखता रहता है। उससे अनजाने ही महिला, विशेषकर माँ की भूमिका के प्रति एक धारणा उसके मन में बन जाती है। परिणामस्वरूप माँ से वह पूर्ण समर्पण की अपेक्षा करने लगता है। स्थिति को गहराई से समझने और विश्लेषित करने की क्षमता उसमें नहीं होती। अतः अपने प्रति माँ की अपेक्षा को लक्षित कर वह इसे तत्काल उसकी कर्त्तव्यहीनता से जोड़ देता है और इस प्रकार माँ के प्रति असहानुभूतिपूर्ण हो जाता है।"[5] इसके विपरीत कामकाजी अथवा दायित्व बोध से कर्मठ महिला का व्यक्तित्व उसके बच्चों और परिवार के अन्य सदस्यों के लिए भी गर्व का विषय होता है। संतान के भविष्य की चिंता और वर्तमान को उचित दिशा निर्देश देने वाली माता के प्रति एक सहृदयता और सम्मान भाव अवश्य होगा–सूर्य बाला के उपन्यास 'मेरे संधिपत्र' की शिवा सौतेली माँ होकर भी अपने परिवार के प्रति पूर्ण समर्पित है, साथ ही एक गरिमामय योग्य गंभीर व्यक्तित्व भी है। 'मेरी तेरी उसकी बात' की उषा अपने बेटे के सुख के लिए पुनर्विवाह का विचार त्याग देती है किन्तु देश की क्रांतिकारी गतिविधियों में भरपूर भाग लेती है। नारी विमर्श का एक और आयाम है। प्राचीन संस्कारों के कारण पहले पुत्री न तो माता–पिता का पालन करती थी और न ही उसकी अर्जित कमाई पर माता–पिता अधिकार रखते थे किन्तु शिक्षा और अर्थोपार्जन की स्थितियों के साथ ही पुराने मूल्यों में भी परिवर्तन हुआ है। कामकाजी पुत्री परिवार के भरण–पोषण का दायित्व लेकर समस्त निर्णयों की अधिकारिणी भी बन जाती है। ऐसी परिवार समर्पिता नारी–व्यक्तित्वों में 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की सुषमा और 'छाया मत छूना मन' की वसुधा हैं। किन्तु ऐसी नारियाँ बाहरी क्षेत्रों में व्यक्तित्व सम्पन्न और सफल होते हुए भी आत्मपीड़न की शिकार हैं क्योंकि इनकी इच्छाएँ कर्त्तव्य की वेदी पर दमित हो गई हैं। वस्तुतः ऐसे चरित्र पाठकों की सहानुभूति ज्यादा अर्जित करते हैं, उनका गौरव दीप्त रूप दब सा जाता है। कई बार स्वतंत्रता की चाह ऐसी स्त्रियों को दिग्भ्रमित भी कर देती है। आत्मनिर्भर पुत्री जब परिवार के प्रति जिम्मेदारी निभाती है तो अनावश्यक शोषण के प्रति विद्रोहिणी भी हो उठती है– निरुमा सेवती के 'पतझड़ की आवाजें' में अनुभा अपने भविष्य की खातिर विकृत परिवेश का त्याग करती है तथा शोषण के विरुद्ध विद्रोह भी अभिव्यक्त करती है। "परिवार की उदासीनता को देख वह भड़क उठती है। उसे लगता है कि वे उसे साधन से अधिक ओर कुछ नहीं मानते। परिणामस्वरूप उनके उपेक्षापूर्ण व्यवहार से क्षुब्ध होकर उसे उनसे नाता तोड़ना तथा स्वतंत्र रूप से अलग रहना कहीं भी अनुचित नहीं जान पड़ता। अतः अनुभा के निर्णय में आत्म सुख की लालसा कम, शोषण का प्रतिकार करने का भाव अधिक है।"[6] आत्मनिर्भर पुत्री

जहाँ स्वतंत्र निर्णय की अधिकारिणी हो जाती है वहीं अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न होने लगी हैं। उसे अपने अनुकूल वर का चुनाव करने में भी कठिनाई होने लगती है और कई बार उसे अविवाहित रह जाना पड़ता है, दूसरी ओर उच्च शिक्षिता होकर भी उसके माता–पिता को दहेज सम्बन्धी समस्त औपचारिकताएँ पूरी करनी पड़ती हैं। अथवा उसके द्वारा नौकरी करने या न करने का निर्णय भी पति या ससुराल पक्ष ही करता है। स्थितियाँ बहुत सी हैं– कहीं विद्रोह का स्वर प्रमुख है तो कहीं आत्मकेन्द्रित स्थिति का तो कहीं गहन दायित्व बोध का। नए मूल्यों की प्रक्रिया में लड़कियाँ अपने परिवार और माता–पिता के प्रति अधिक जिम्मेदार हुई हैं अपेक्षाकृत पुत्रों के। समस्त पैतृक विरासत और पक्षपात के बावजूद पिता–पुत्र में अंतर भी बढ़े हैं और पुत्र की दायित्व भावना में भी कमी आई है। मध्यवर्ग में भौतिकता के प्रसार के कारण विशेष रूप से पारम्परिक सनेह बंधन ढीले हुए हैं और मूल्यों का तेजी से विघटन हुआ है।

"उषा प्रियम्वदा का उपन्यास 'रुकोगी नहीं राधिका' आधुनिक बोध से आक्रांत संस्कारों को लिए हुए है। यह उपन्यास एक ऐसे परिवार की कहानी है जिसका प्रत्येक सदस्य एक–दूसरे से पृथक होकर जी रहा है।"[7] "एक औपचारिकता नैतिक व्यावहारिकता या नीरस कर्त्तव्य और निस्वाद उत्तरदायित्व के द्वारा सब एक दूसरे से से बिखरे हुए और विश्रृंखल हैं।"[8] राधिका विमाता के कारण पिता को भी स्वीकार नहीं कर पाती। विमाता विद्या राधिका के प्रति बहुत सहृदय तथा शालीन संयमी है। वह राधिका से कहती है "क्या हम दोनों अच्छे मित्र की तरह नहीं रह सकते ?"[9] किन्तु राधिका के प्रति दायित्व का भाव रखकर भी वह घुटती रहती है और अन्त में आत्महत्या कर लेती है। नारी जीवन के संघर्ष के अनेक आयाम हैं। परिवार उसकी अनिवार्यता और स्वाभिमान उसकी आवश्यकता है। किन्तु पारिवारिक संदर्भों में उसकी स्थिति अनेक रिश्तों में बँटकर उस पर अनेक प्रकार के मानसिक दबाव डालती है। अविवाहित प्रौढ़ा नारी जहाँ परिवार के लिए सब कुछ त्याग करती रहती हैं, परिवार की अपेक्षाएँ उससे निरन्तर बढ़ती रहती हैं– अपने ढंग से जीवन जीना उसके लिए दुष्कर होता है। किन्तु विवाहित स्त्री का पति से अलगाव होने पर मायके में रहना और भी दूभर हो जाता है, चाहे वह आत्मनिर्भर ही क्यों न हो। 'परछाइयों के पीछे' में शशि प्रभा शास्त्री ने सुमित्रा की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है– "इस घर को टेका लगाए हुए हैं और वह उनके सबके एहसान के तले दबे हुए।"[10] 'सारा आकाश' की मुन्नी पति द्वारा पीड़ित होकर मायके में रहती है किन्तु आत्मनिर्भर न होने के कारण तथा रूढ़िवादी परिवार के कारण उसे पति के पास लौटना पड़ता है और अन्ततः वह मर जाती है। विधवा

स्त्री भी मायके में ही छत तलाश करती है, किन्तु सबकी सेवा करते हुए भी उसकी स्थिति दयनीय रहती है। 'बूंद और समुद्र' की वनकन्या की भाभी पीड़ित होकर भी घुटती रहती है। पाँचवे–छठे दशक में भारतीय समाज में परिवर्तन की लहर आने पर भी स्त्रियाँ घुटती रहती हैं, आत्मपीड़ा में जीवन बिता देती है, वहाँ आर्थिक स्वतंत्र होकर भी उन्हें टूटना पड़ता है और घरेलू होकर भी वे जीवन को ठेलती हैं– बाद के दशकों में इन स्थितियों के प्रति विद्रोह और अकेलेपन को झेलने का साहस दिखाई देता है किन्तु उसका प्रतिशत अभी भी बहुत कम है। नारी की पारिवारिक स्थिति का एक अत्यन्त संवेदनशील पहलू है– सास बहू के रिश्ते का। नारी ने स्वयं जहाँ सत्ता और अधिकार संभाल कर दूसरी नारी की अस्मिता पर प्रहार करके इस रिश्ते को निर्ममता में बदल दिया है। पुत्र पर माँ के एकाधिकार का छिनना और स्वंय भोगे हुए अनुभवों को रूढ़ि मानकर अधिकार जमाना–परिवार की सुख–शांति और बहू के अस्तित्व को विद्रूपता में बदल देता है। संयुक्त परिवार प्रथा के विघटन के साथ इन स्थितियों का रूप भी बदला है। पहले बहू सिर झुका कर सब कुछ स्वीकार कर लेती थी– मगर धीरे–धीरे शिक्षित बहुएँ विद्रोही होती चली गईं और स्थितियाँ विपरीत भी होती जा रही हैं। स्वतंत्र जीवन बिताने की इच्छा वाली बहुएँ अपने पतियों को लेकर अलग हो जाती हैं और वृद्ध माता–पिता को कोई अवलम्ब भी नहीं मिलता। 'सारा आकाश' में राजेन्द्र यादव ने निम्न मध्यवर्गीय परिवार में सास की शासन सत्ता के विभिन्न चित्र प्रस्तुत किए हैं। 'अपने पराये' में माँ और पत्नी के अपने–अपने तेवर और दावपेंच हैं, लेकिन इन दावपेंचों में नारी की पहचान का स्वाभिमानी और शालीन रूप दबा जाता है। यह लड़ाई सीधे–सीधे अपने अधिकारों की बन जाती है। प्रायः पुत्र की माँ को ही बहू के मायके से कीमती उपहार और भारी दहेज की कामना रहती है तथा वांछित नौकरी पेशा बहू का जीवन और स्वत्व दोहरे कामों और पारिवारिक असहयोग से अधिक दूभर हो गया हैं। 'अपने–पराये' की वंदिता की स्थिति तनावग्रस्त है–"अति व्यस्तता तथा तनावग्रस्त माहौल के कारण ससुराल में उसे अपना अस्तित्व कारखानों में लगे एक पुर्जे से अधिक नहीं लगता। फलतः अरुचि तथा थकान, उसे अपनी यही दो पहचान सार्थक लगने लगी हैं।"[11] "वह सास से इतना भय खाती है कि उसने अपने आपको सबसे समेट लिया है। घर पर वह अपना अधिकार नहीं मान पाती। ससुराल में अपनी हैसियत मात्र आश्रिता की लगती है।"[12] परम्परागत रूप से चले आते इन सम्बन्धों में सहज स्निग्ध तरलता नहीं दिखाई देती। सास–बहू के मधुर सम्बन्ध अपवाद ही हो सकते हैं। वैचारिक भिन्नता के साथ सहिष्णुता का अभाव भी प्रायः रहता है किन्तु परिवर्तित स्थितियों में इस रिश्ते को मधुर बनाने में

सास–बहू और दोनों के बीच की कड़ी पुत्र–पति की भी विशिष्ट भूमिका हो सकती है ताकि स्वत्व और सम्मान बना रहे। दाम्पत्य सम्बन्धों से अलग नारी की स्थिति में अनेक परिवर्तन आए हैं। उसने परिवार में अपने अधिकारों के प्रति पक्षपात देखा था, स्वंय को उपेक्षित महसूस किया था। जन्म से ही स्वयं को अभिशप्त माना था। समाज में उसकी मान्यता के मानदण्ड उसके पिता की आर्थिक स्थिति और उसका सौन्दर्य थे– उसकी अपनी प्रतिभा, महत्त्वाकांक्षा और निर्णायक बुद्धि का महत्त्व न था। शिक्षा भी उसको एक बहुमूल्य वस्तु बनाने का उपकरण बन गई थी। उसके पिता, भाई, पति और पुत्र ही उसके प्रत्येक क्रियाकलाप का निर्णय करने वाले थे। उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त पत्नी की नौकरी करने न करने का निर्णय भी पति और पारिवारिक पुरुषों पर था। इन सबके बावजूद उसकी बौद्धिक क्षमताओं की सहज स्वीकृति भी नहीं। कार्य क्षेत्र में भी सहकर्मियों का सहयोग नहीं। अभिप्रायः यह कि नारी के प्रति समाज की सामन्ती दृष्टि में कुछ विशेष अन्तर नहीं आया। वह पहले नारी है, एक देह मात्र है, एक दासी और अनुगामिनी है, बाद में कुछ और। इन अनेक चुनौतियों के काँटों से गुजरकर भी पारिवारिक बंदिशों के जाल तोड़कर ही नारी ने निरन्तर अपनी पहचान बनाने की कोशिश की है– क्योंकि उसकी यात्रा का प्रस्थान बिन्दु परिवार ही है।

दाम्पत्य सम्बन्ध मुख्य रूप से पति–पत्नी की सूझबूझ, संतुष्टि तथा पारिवारिक स्थितियों पर निर्भर करते हैं। किन्तु बदलते संदर्भों में 'पति–पत्नी दो विभिन्न इकाईयाँ बनकर अपने–अपने हित में खोकर, अपनी व्यक्तिगत खुशियों को पूरा करने की कोशिश में एक–दूसरे को कुंठित करते हैं। इससे सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न होता है।' प्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रमिला कपूर ने भी 1960 में किए गए सर्वेक्षण के द्वारा स्पष्ट किया है– अब महिलाएँ विवाह द्वारा अपनी भावात्मक, शारीरिक, सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं की संतुष्टि चाहती हैं। नारी अपनी स्वतंत्र पहचान और महत्ता चाहती है। शिक्षा और आत्मनिर्भरता ने उसे आत्मविश्वास दिया है, अतः वह पति को परमेश्वर नहीं मानना चाहती, उसकी मनमानियों को नजरअंदाज नहीं कर सकती और न ही उसके अत्याचारों को सहने के लिए तैयार है। रमेश बक्शी के उपन्यास 'बैसाखियों वाली इमारत' की नायिका पति के अन्य स्त्रियों से सम्बन्ध को सहन नहीं कर पाती। वह कहती है, 'शराब तो पीते हो, रोज रात किसी वेश्या के कोठे पर चले जाएँ। आप घर को धर्मशाला समझ सकते हैं, बीवी को वेश्या नहीं समझ सकते।' उसकी स्वतंत्र चेतना स्वयं को छलावे में रखकर समाज के लिए परम्पराएँ निभाना नहीं चाहती। शांति जोशी की राजुल सोचती है कि 'वह सीता,

अहिल्या की भाँति पति की छाया बनकर नहीं रह सकती। वह पढ़ी–लिखी लड़की है जो अपनी स्वतंत्रता का अपहरण नहीं होने देगी।' मोहन राकेश के उपन्यास 'अंधेरे बंद कमरे' की नीलिमा पति परायण नारी की छवि को तोड़ती हुई कहती है, 'मैं अब उसकी भूख का सामान बनकर नहीं रहना चाहती उसने आज तक यह नहीं समझा कि मैं एक चीज नहीं, इंसान हूँ और मेरी अपनी भी जरूरतें हैं।' नारी पुरुष की वासना तृप्ति का उपकरण न बनकर स्वतंत्र जीवन जीना चाहती है। वह स्वयं को बंधन मुक्त मानती है। 'झूठा सच' में शीला अपने पति को छोड़कर डॉक्टर प्राण से विवाह कर लेती है। कनक, पुरी की स्वार्थपरता से परेशान होकर गिल से विवाह कर लेती है। वास्तविक प्रेम, तुष्टि और विश्वास में नारी सम्बन्ध निर्वाह के लिए तत्पर नहीं। वस्तुतः वह आत्मसम्मान से जीवन जीना चाहती है। "जब व्यक्ति परिवेश में अपने अनुरूप जीना चाहता है और वह जी नहीं पाता, तब वह अपने परिवेश में अपने अस्तित्व की तलाश करता है। समाज में मनुष्य का अधिकांश व्यक्तित्व दूसरों द्वारा निर्धारित होता है किन्तु मनुष्य की यह इच्छा रहती है कि वह अपना व्यक्तित्व स्वयं निर्धारित करे। उसकी इच्छा के साथ–साथ यह प्रश्न भी मन में उठता है कि हम दूसरों के अनुरूप क्यों जीयें ?"[13] आगे एक स्थान पर लेखक ने लिखा है– "जीवन और साहित्य दोनों धरातलों पर नारी अपनी परम्परागत मान्यताओं के प्रति विद्रोह व्यक्त करती हुई मिलती है और साथ ही उसे नवीन मनःस्थितियों से सीधे साक्षात्कार भी करना पड़ा है। पत्नी रूप के चित्रण का आधार बदलने के कारण स्थितियाँ और संदर्भ बदले हुए हैं। इसके साथ ही नारी पत्नी रूप में अधिक सजग और आक्रामक हुई है। उसके परम्परागत संस्कार, स्वभाव और मानिकसता में बदलाव आया है। यह परिवर्तन व्यावहारिक न होकर वैचारिक ही अधिक आया है। अतः यह कहा जा सकता है कि नारी पत्नी रूप में अपनी अस्मिता की तलाश करती हुई विभिन्न मनः स्थितियों के माध्यम से उभर कर आई है।"[14] स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय समाज परम्परा और आधुनिक मूल्यों के द्वंद्व के संक्रमण से गुजर रहा था। पुरानी मान्यताओं को नकारा जाना भी कठिन था और ज्यों का त्यों स्वीकारा जाना भी, उसी प्रकार नवीन मूल्यों का प्रभाव भी बढ़ता जा रहा था। इस द्वंद्व का सर्वाधिक प्रभाव विवाह संस्था पर पड़ा, अतः जन्म–जन्मान्तर का अटूट सम्बन्ध समझा जाने वाला विवाह संस्कार एक समझौते के रूप में परिणत होने लगा। साथ ही पति–पत्नी को मित्र के रूप में स्वीकारने की प्रवृत्ति का भी विकास हुआ। यह मान्यता परस्पर पूरकता की सूचक हो सकती है। किन्तु अहंकार और अधिकार का सीमा क्षेत्र भी बढ़ता गया है, अतः "जहाँ पुरुष विरासत में मिले श्रेष्ठता भाव से तना रहता है, वहीं पत्नी स्वावलम्बी एवं

स्वतंत्र होने के कारण उत्पन्न अहं से दीप्त रहती है। यही दोनों के सम्बन्धों में टकराव का मूल कारण है जिसकी अभिव्यक्ति अन्य बिन्दुओं में भी की जा सकती है, यथा पति द्वारा पत्नी का शोषण, पत्नी को न सहयोग देना, पत्नी द्वारा पति की उपेक्षा, पति का हीन भाव तथा पत्नी का श्रेष्ठता भाव से ग्रस्त होना आदि।"[15]

स्वतंत्रता के बाद नारी परम्परा और प्रगति के अंधेरे–उजाले में न्याय तलाशती रही है। समाज, धर्म और परम्पराओं से परे वह शुद्ध मानवीय स्तर पर एक व्यक्तित्व बनने के लिए बेचैन रही है। उसमें क्रांति और विद्रोह की आग भी है तो सृजनशील नारी की ममता और करुणा भी है। सामान्य नारी 'पति' और 'विवाह' नामक संस्थाओं के इर्द–गिर्द अपनी सारी ऊर्जा खर्च करती है। किन्तु विद्रोह की तड़प भी सबसे पहले परिवार और उसकी रूढ़ियों के प्रति उत्पन्न होती है और फिर यह चेतना पति या पुरुष की अधिकार सत्ता के प्रति विद्रोह में बदल जाती है। परिवेश का सघन समूचा दबाव अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व के लिए जूझती नारी की पीड़ा, उसके सकल्प, उसकी इच्छाओं और समाज के प्रति संघर्ष में पूरी तरह प्रतिबिंबित होता है। यशपाल ने भी अपने उपन्यासों में नारी की द्वंद्वात्मक मनःस्थिति को अभिव्यक्ति दी है। डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने यशपाल के उपन्यास 'झूठा सच' के संदर्भ में कहा है– "यशपाल विवाह को एक सामाजिक बंधन के रूप में स्वीकार नहीं करते, वे उसे एक वैयक्तिक सम्बन्ध के रूप में मान्यता देते हैं।... नारी को पूरा अधिकार है कि वह अपना नया सम्बन्ध स्थापित कर सके। इस तरह वह नारी को शोषित मानकर उसकी वकालत करते हैं। इसमें ही सामाजिक न्याय है और यही सच है, यशपाल की दृष्टि में शेष झूठ है।"[16] 'मेरी तेरी उसकी बात' में यशपाल ने नायिका उषा का संघर्षशील चरित्र प्रस्तुत किया है। डॉ. विवेकीराय ने यशपाल की सोच का विश्लेषण करते हुए लिखा है– "जाति, धर्म, परिवार, पति, समाज और सरकार के प्रति विद्रोहिणी उषा को क्या यशपाल ने आदर्श देवी के रूप में चित्रांकित किया है ? कथाकार में आदर्शवादी आस्था नहीं है। नारी का आदर्श देवी रूप उसे मान्य नहीं। नारी का शुद्ध नारी रूप, उसके नारीत्व का पूर्ण निखरा रूप, उसकी दुर्बलताओं और सहज अनिवार्य विवशताओं के साथ चित्रांकित करना यशपाल का उद्देश्य है। यशपाल की दृष्टि में शारीरिक आवश्यताओं की दृष्टि से नर और नारी में कोई अन्तर नहीं है और न ही यह आवश्यक है कि समूची नैतिकताओं का सड़ा बोझ, परम्परा और पवित्रतावाद का कूड़ा नारी के ही सिर जाए। प्रेमिका का काल्पनिक रूप नहीं, सृजनशील माता का उसका यथार्थ रूप उसे महत्ता प्रदान करता है। जिसे भारतीय नारी का आदर्श कहा जाता है, उस एकनिष्ठ पतिव्रत अथवा सतीत्व पर कथाकार प्रहार कर

आधुनिक बुद्धिवादी नारी के नए रूप को प्रतिष्ठित करता है। यहाँ प्रेम दिव्य वस्तु नहीं, वह मात्र शारीरिक आकर्षण है।"[17] किन्तु यशपाल नारी के इस स्वतंत्र निर्णय और विवाह संस्था को नवीन संदर्भों में देखते हुए भी नारी मन और चरित्र को एक ऊँचा धरातल दे देते हैं। नारी का मातृत्व सब सम्बन्धों से बलवान और श्रेष्ठ है। उपन्यास की नायिका कहती है "यह निरर्थक मान्यताओं की स्वीकृति नहीं है। समाज को एक झटके से नहीं बदल सकते। क्रांति तोड़ना नहीं मोड़ना है। बेटे के मन से कुंठा का संस्कार मिटाना है। स्वार्थ में बेटे को हीनता का अनुभव न हो। मैं बेटे की भावना को अपने संतोष के लिए बलि नहीं होने दूंगी। बलि होगी तो मेरी।"[18] डॉ. विवेकीराय की इस प्रसंग पर टिप्पणी है "समस्त प्रकार के त्याग से ऊँचा यह आत्मत्याग है। वैयक्तिकता के आग्रह और विसर्जन दोनों ही के आयाम–चित्र अत्यन्त स्पष्टता से उभरकर उपन्यास की मुख्य नायिका के नारी व्यक्तित्व की पूर्णता को प्रतिष्ठित करते हैं।"[19] बदलती स्थितियों में नारी ने 'माँ' बनकर पत्नीत्व का त्याग भी किया है तो अपने 'निजत्व' की प्रतिष्ठा के लिए इस मोह से तटस्थ भी हुई है। मन्नू भंडारी ने 'आपका बंटी' में नारी की अस्मिता को मातृत्व के कोण से चुनौती दी है और यदि एक पिता पति के रूप में दूसरा विवाह कर सकता है तो माता भी दूसरा पुरुष स्वीकार कर सकती है किन्तु यहाँ संतान की उपेक्षा और भविष्य एक नए संकट के रूप में मोजूद है और नारी का स्वत्व 'अस्मिता' के आदर्श के बजाय निजत्व चेतना में परिणत हो जाता है। फिर भी परिवार, विवाह और धर्म की संस्थाओं पर प्रहार हुए हैं। आज की नारी पुरुष की मात्र भोग्या या दासी बनकर जीवन व्यतीत करने को तैयार नहीं। 'बूंद और समुद्र' की कम्युनिस्ट वनकन्या विवाह को कॉन्ट्रेक्ट रूप में स्वीकार करती है। डॉ. शीला स्विंग विवाह परम्परा को व्यक्ति के लिए धोखा, छल कपट एवं अत्याचारों से प्रेरित मानती हुई स्वयं विवाह बंधन में नहीं बंधती। वैवाहिक जीवन में कटु अनुभवों से गुजरकर 'एक इंच मुस्कान' की अमला दूसरा विवाह नहीं करना चाहती "मैं इतनी निर्बल और निरीह नहीं हूँ कि मुझे जीवन बिताने के लिए कोई सहारा चाहिए।"[20] 'उखड़े हुए लोग' में जया का कथन है "विवाह आज समझौता है और इसके सिवा कुछ नहीं हो सकता। जब आपस में यह गुंजाइश नहीं रहेगी, तो यह समझौता टूट जाएगा।"[21] 'झूठा सच' में कनक और तारा प्रथम विवाह से असंतुष्ट होकर नवीन सम्बन्ध बनाती है। अतः इस युग की नारी भावुक समर्पण की बजाय एक स्वस्थ बौद्धिकता का आग्रह करती है। स्त्री अब अस्वस्थ दाम्पत्य सम्बन्धों को जीने के लिए तैयार नहीं है। 'शरफों का कटरा' में इस स्थिति को बताया गया है। "हमारे देश में पति ही पत्नियों को छोड़ते रहे हैं। पत्नियों ने अब पति को छोड़ना शुरू किया है।"[22]

व्यक्त्विादी चेतना का स्वर अज्ञेय के उपन्यास 'नदी के द्वीप' की नायिका रेखा के चरित्रांकन में प्रतिध्वनित है। उसकी पहचान– 'रेखा में एक दूरी है– एक अलगाव है कि वह जिस समाज से घिरी है और जिसका केंद्र है, उससे अछूती भी है। अतः कहा जा सकता है कि रेखा साधारण नहीं है, न ही उसका दुःख साधारण है। जीवन के प्रवाह में रेखा अपने को प्रवाह का एक द्वीप जैसा अनुभव करती है।' सामाजिक सम्बन्धों, नियमों, नैतिकताओं के प्रति वह विद्रोह करती है, जो समाज उसे सुरक्षा नहीं दे सकता, उसकी मर्यादा का पालन न करके वह अपनी व्यक्तिगत रुचियों और अन्तर्मन की लालसा को महत्त्व देती है। भुवन के उत्कट प्रेम में वह अपने जीवन की समस्त कटुताओं को भुला देती है– 'फुलफिल्ड, शांत, स्तब्ध, निर्बाध, मैं बस हूं। कोई प्रश्न मेरे भीतर नहीं उठते।' डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने रेखा के चरित्र के विषय में लिखा है– 'नदी के द्वीप' में रेखा के व्यक्तित्व की बनावट सबसे अर्थपूर्ण है, क्योंकि कई बार टूटकर भी वह अपने व्यक्तित्व की आँच को बनाए रख सकी। उसका स्वीकार और अस्वीकार दोनों एक आत्मचेतन स्वभाव के तीखेपन से परिचित कराते हैं। उसका प्रेम, समर्पण और अलगाव लेखक के आदर्श आग्रहों से परिचालित नहीं है। कृष्णा सोबती ने 'मित्रो मरजानी' में सदियों पुरानी जमीन को तोड़ा है और औरत का विद्राह उसके घर से ही शुरू किया है। उसका निर्णय परिस्थितियों के संघात से स्वयं एक सम पर आता है। लक्ष्मीनारायण लाल ने 'छोटी चम्पा बड़ी चम्पा' उपन्यास में नारी के इसी प्रखर रूप को अभिव्यक्ति दी है "मर्दजात औरत के शरीर की इज्जत कभी नहीं करता, उसकी यह आदत ही नहीं रह गई। वह यह कतई भूल गया है कि इसके भीतर भी कुछ है।"[23] मित्रो का चरित्र लेखिका ने बहुत ही जटिल तानेबाने से बुना है। बगावत में भी उसकी पीड़ा स्पष्ट है– 'जिठानी! तुम्हारे देवर सा बगलोल कोई और दूजा न होगा। न दुःख–सुख, न प्रीति प्यार, न जलन–प्यास, बस आए दिन धौल धप्पा लानत–मलामत।' वह मजे ले–लेकर अन्याय का विरोध करती है और उतनी ही सहजता से न्याय और सत् का पक्ष भी लेती है। पुस्तक के पृष्ठभाग पर मित्रो का रूपांकन करते हुए लिखा है न तो वह रवीन्द्र की अश्रुमयी है और न शरत या जैनेन्द्र की विद्रोहिणी, बल्कि वह तो मात्र मांस मज्जा से बनी एक ऐसी नारी है, जिसमें स्नेह भी है, ममता भी, माँ बनने की हवस भी है और एक उद्दाम वासना–सरिता भी। उसे न आदर्श का मोह है और न समाज तथा ईश्वर का भय, वस्तुतः वह नारी के सभी पुराने बिम्बों के खिलाफ एक नया आकर्षण है।

यहाँ सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि औरत सिर्फ शरीर या घर की दासी नहीं है, वह अपना संतोष, अपना निर्णय चाहती है। 'रुकोगी नहीं राधिका' में उषा प्रियम्वदा ने राधिका के माध्यम से युवा स्त्री की इच्छाओं को वाणी दी है। वह पति परमेश्वर की परिपाटी से बाहर निकल कर समान धरातल पर एक स्वतंत्र इकाई के रूप में अपने अस्तित्व को तलाश रही है "मैं ऐसा संगी चाहती हूँ, जिसमें स्थिरता हो औदार्य हो, जो मुझे मेरे सारे अवगुणों सहित स्वीकार कर ले, मेरे अतीत को झेल ले।"[24] स्वतंत्र चेतना की जागृति के साथ ही नारी की लड़ाई दोहरी हो गई है, व्यक्तिगत भी, सामाजिक भी। निजी लड़ाई में वह मानसिक समायोजन चाहती है अपने जीवन साथी से और विरोध उत्पन्न होने पर वह समाज से अपने अस्तित्व और सच्चाई के लिए लड़ती है, क्योंकि हमारा समाज स्वतंत्र नारी को जीने नहीं देता, पति अच्छा हो या बुरा, उसका साया अनिवार्य माना जाता रहा है। आज का पुरुष भी पत्नी को समान धरातल पर या अधिक सफल व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं कर पाता और कई बार वह उसकी सफलताओं में बाधाएँ भी डालता है। मोहन राकेश के उपन्यास 'न आने वाला कल' की शारदा पति के अन्याय का प्रतिकार करती हुई कहती है "आजकल कोई जमाना है मार खाने का ? हम आजकल की औरतें भी चाहें तो दूसरी शादी कर सकती हैं। सरकार ने इसके लिए कानून ऐसे ही नहीं बनाया।"[25] 'चिड़ियाघर' की मिसेज रिजवी मात्र पत्नी बनकर घर की चारदीवारी में बंद नहीं होना चाहती। वह पत्नीत्व के साथ कर्मशीलता भी चाहती है। स्वतंत्रता के बाद स्थापित मूल्यों और धारणाओं में परिवर्तन से आस्थाओं के रंग भी बदले हैं और परस्पर सम्बन्धों के निर्वाह में भी अन्तर आया है। अज्ञेय ने आत्मनेपद में लिखा है "नैतिक मूल्यों की समस्या और भी विकट इसलिए हो गई थी कि प्राचीन शास्त्रीय, धार्मिक अथवा ईश्वर संभूत धार्मिकता इस युग में क्रमशः क्षीण (लुप्त) होती जा रही थी और नैतिकता का आधार एक मानव संभूत नीति से खोजा जा रहा था। जो दायित्व अब तक ईश्वर या धर्मपरक था, वह अब मानव ने स्वंय ओढ़ लिया है।"[26]

परस्पर सम्बन्धों का निर्वाह मूल्यों में आस्था और अहं के उदारीकरण पर निर्भर होता है। किन्तु समस्त नैतिकताओं के प्रतिमान जब सुविधाओं पर निर्भर हो जाए और पाप–पुण्य, धर्म–अधर्म भी अपनी व्यंजना खो बैठें, तब सहृदयता सूख जाती है कभी दरिद्रता से, कभी लालच से, कभी रूढ़ियों से और कभी महत्वकांक्षाओं से। इन सबके बीच शिकार बनती है स्त्री। चोट लगती है उसकी चेतना पर और इन्हीं अंधेरी खोहों में से कभी वह रास्ता तलाशती है और कभी खत्म हो जाती है। आजादी के बाद का दौर बहुत जानलेवा

था–मर्यादा, नैतिकता, परम्पराएँ, कदम–कदम पर बेड़ियाँ बनती रहीं। 'सारा आकाश' की प्रभा का दोष था शिक्षित होना और पति का निकम्मा होना। सास, ससुर, जेठ, जिठानी, पति के अन्याय और शोषण के बीच वह मौन रहकर भी विद्रोह का संकेत देती है। घूंघट के प्रति विद्रोह, छत पर बाल सुखाना, घड़ी बाँधकर खाना पकाना, अपने कमरे में पुस्तकें पढ़ना, घर से बाहर जाने की ललक और भविष्य के सपने संजोती प्रभा परिवार के अन्य सदस्यों से तालमेल बिठाने की भी पूरी कोशिश करती है। 'मित्रो मरजानी' की मित्रो अपनी उद्दाम जीवैषणा के आगे किसी को कुछ गिनती ही नहीं किन्तु अन्याय का विरोध वह हर जगह करती है। सूर्यबाला के 'मेरे संधिपत्र' की शिवा परिवार के कल्याण के लिए स्वयं को खपाकर भी अपना एक अलग महनीय व्यक्तित्व पाठक के मन पर अंकित करती है। बदलते संदर्भों में बेटी ने बेटे के दायित्वों को भी चुपचाप वहन किया है। 'पचपन खंभे लाल दीवारें' की सुषमा कॉलेज में लेक्चरर होकर अपने परिवार का भरण–पोषण करती है मगर एक पूर्ण अस्तित्व और स्वाभिमान के साथ पारिवारिक सम्बन्धों के निर्वाह में कुछ सकारात्मक और कुछ नकारात्मक पहलू भी अनेक भूमिकाओं के रूप में दिखलाई देते हैं– कमलेश्वर के उपन्यास 'काली आंधी' में पत्नी राजनेता बनकर पति और संतान का साथ नहीं निभा पाती। 'रुकोगी नहीं राधिका' परिवार से अलग मुक्त व्यक्तित्व व्यतीत करती है। विमाता के आगमन से परिवार में उसका दम घुटता है। वह अपने अस्तित्व एवं स्वतंत्रता का बोध करवाती है अपने पिता से कहती है "जो आप चाहते हैं, वही हमेशा क्यों हो ? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नहीं। मैं आपकी बेटी हूँ, यह ठीक है पर अब मैं बड़ी हो चुकी हूं और जो मैं चाहूँगी वही करूँगी।"[27] मनहर चौहान के उपन्यास 'रात खो गई' में बेटी अपनी माँ की उसके प्रति उदासीनता को देखकर सोचती है "माँ, यह सब क्यों नहीं सोचती ? केवल अपने पति को ही क्यों बचाना चाहती है ? उसे बचाने के लिए मेरी हत्या का हक किसने दिया ? इसे हत्या न कहूँ तो क्या कहूँ।"[28] औचित्य–अनौचित्य संबंधी धारणाओं को नैतिकता के रूप में व्याख्यायित करते हुए अमृतलाल नागर 'अमृत और विष' में लिखते हैं "नैतकता इस बात में नहीं कि आदमी कितना सच्चा त्यागी तपस्वी और प्रामाणिक है, प्रश्न यह है कि व्यक्ति को अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं और आचार–व्यवहार को गति देने में मुक्ति मिली है। प्रामाणिकता का आग्रह झूठा और बेकार है।"[29] परस्पर सम्बन्ध व्यक्ति की अपेक्षाओं के समीकरण पर निर्भर करते हैं और इसी समीकरण के गलत हो जाने पर 'घर' घर नहीं रहता। एक आम मध्यवर्गीय व्यक्ति को यह कल्पना अच्छी लगती है कि 'उसका सुन्दर सजा–सजाया घर हो, औसत सुन्दर बीवी और एक–दो

बच्चे हों, अगर पगड़ी पर मकान और छोटी सी मोटर भी हो तो कहना क्या ?' किन्तु यथार्थ की स्थितियाँ सदा कल्पना पर नहीं चलती, कई बार भरे–पूरे परिवार के बावजूद व्यक्ति किसी अपने नितान्त निजी कोने की चाह में बेघर होता चला जाता है। ममता कालिया ने 'बेघर' उपन्यास में इसी त्रासदी को प्रस्तुत किया है। दाम्पत्य सम्बन्धों में संक्रमण के दौरान नई व पुरानी मान्यताओं में टकराव होता रहा है। शिक्षा ने और नौकरी ने पत्नी की स्थिति को सुदृढ़ बनाया ही है। फलतः कहीं वह पति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति से भी आगे निकल गई है और पति कुंठित होता चला गया है। उच्चता और हीनता की ग्रंथियों के कारण पति–पत्नी के दाम्पत्य सम्बन्धों में ही दूरी आती गई है। कहीं–कहीं पति इसका अतिरिक्त लाभ भी उठाते हैं और ढिठाई की हद तक अकर्मण्य हो जाते हैं। गिरिराज किशोर के चिड़ियाघर में इसी स्थिति का चित्रण है "पत्नी के मित्रों को देखते ही सलीके से कपड़े पहन लेना, अदब से बैठना, चाय आदि बनाकर लाना तथा पत्नी की अनुपस्थिति मे चोरी–छिपे बीड़ी पीने का शौक पूरा करना इसके उदाहरण हैं। एक इज्जतदार महिला के पति होने का गर्व उन्हें होता रहता है।"[30]

दाम्पत्य सम्बन्धों में तनाव के अनेक कारण दिखाई देते हैं, पत्नी की सुदृढ़ स्थिति पति को बौनेपन का अहसास करवाती है और पत्नी का अहंभाव असहज दाम्पत्य सम्बन्धों को जन्म देता है। लेकिन इसके विपरीत पति अपनी अहंकारी और क्रूर प्रवृत्ति के कारण पत्नी का शोषण भी करता है, मानसिक रूप से आघात देने के कारण उसकी अर्जित कमाई को छीनने का अधिकार भी समेट लेता है। आपसी विश्वास और सद्भावना के नष्ट हो जाने पर सामान्य सम्बन्ध समाप्त होने लगते हैं। पारिवारिक शांति के नाम पर नारी का सब कुछ झेलते जाना और समझौते करते जाने में स्थितियों में बदलाव नहीं आता, तनाव बढ़ते रहते हैं। स्त्रियों की गहरी संस्कारशीलता, समाज का भय अकेलेपन की त्रासदी उसे इन तनावों को झेलने के लिए मजबूर करते रहते हैं। "किन्तु क्या महिला की लाचारगी इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देती ? इस दृष्टि से विचार करने पर यहाँ महिला वर्ग ही दोषी माना जाएगा। पारिवारिक शांति के नाम पर वह जितनी सहजता से अपने श्रम, वेतन तथा अधिकारों का विसर्जन करती है, यह उसकी दुर्बलता का सूचक है। यहाँ पर भी विचारणीय है कि ऐसा करने पर क्या वह परिवार में शांति एवं सामंजस्य स्थापित कर पाती है ? खेद की बात है कि मध्यवर्ग की महिला, विशेष रूप से इस दुर्बलता से आक्रांत है।"[31] स्त्री–पुरुष सम्बन्ध मित्रता की परिधि में आने से व्यक्तित्व को धार दे सकते हैं। स्वस्थ भागीदारी, अनेक समस्याओं और मुद्दों को सुलझाना, परामर्श लेने–देने, परस्पर सहायता की स्थिति तक

ही नारी की कार्य कुशलता को सराहनीय बना सकते हैं किन्तु प्रायः इन सम्बन्धों को विकृत दृष्टिकोण से देखा जाता है। पति–पत्नी की शंकालु मनोवृत्तियाँ और स्त्री–पुरुष के परस्पर आकर्षण की परिधियाँ कई बार जीवन को तनावग्रस्त कर देती हैं। पति–पत्नी के सम्बन्धों की वैचारिक भिन्नता पत्नी के लिए कई बार चुनौती बन जाती है। पत्नी केवल आत्मनिर्भर होने के कारण ही परिवार से नाता नहीं तोड़ना चाहती। वह घर में अपना सम्मान, स्वायत्त निर्णय भी चाहती है एक सुंदर वातावरण भी चाहती है, अतः पति की संकीर्णता, पत्नी की महत्त्वकांक्षा में बाधा डालने का प्रयत्न, पत्नी के चरित्र पर लांछन लगाने की प्रवृत्ति स्त्री के स्वाभिमान को ठेस पहुँचाती है। ऐसी स्थिति में समस्त तनावों और कठिनाइयों के बावजूद वह समाज में अपना स्थान, अपनी क्षमता का परिचय देती है। महीप सिंह के 'यह भी नहीं' में शांता और सोहन के स्वभाव में भिन्नता होने के कारण परस्पर सम्मान की भावना समाप्त होने लगती है। व्यक्तिगत मान्यताओं को प्राथमिकता देने के कारण सहयोग की भावना पनपती है किन्तु बच्चों और घर के प्रति स्त्री अधिक प्रतिबद्ध होती है, अतः उत्तरदायित्व भी वही संभालती है। अब नारी पहले की तरह पति को परमेश्वर मानकर सब कुछ भूल नहीं पाती और उसका मन क्षोभ तथा विरक्ति से भर जाता है। ममता कालिया ने 'नरक–दर–नरक' में इस विरक्ति को प्रस्तुत किया है। इन तनावों की स्थिति का चित्रण उपन्यासों में हुआ है पति–पत्नी की विरोधी मान्यताओं का यह सिलसिला किसी एक बिन्दु पर सामंजस्य करने को तैयार नहीं– हाँ एक छत के नीचे कर्जदार और अजनबी बनकर जीवन गुजारने की त्रासदी अवश्य झेलनी पड़ती है। कौन गलत है और कौन सही इसका निर्णय कौन करे– अतः जीवन एकांगी और बोझिल होता रहता है। वस्तुतः "पति–पत्नी की प्रकृतिगत भिन्नता, आपसी सामंजस्य का अभाव, स्त्री,–पुरुष में मूलभूत अन्तर मानने वाली परम्परागत विचारधारा कामकाजी तथा गैर कामकाजी महिला के वैवाहिक संबंधों को समान रूप से प्रभावित करने वाले घटक हैं।"[32]

आजादी के बाद नारी मन की दबी ढकी लालसाएँ और उसका अन्तर्मन लेखन के स्तर पर उद्घाटित हो रहा था, दूसरी और बाह्य परिवेश की चुनौतियाँ उसको आमंत्रित कर रही थीं। अब तक भीड़ का हिस्सा बनी नारी ने स्वयं को नेतृत्व तक ले जाने के मार्ग पर पाँव रख दिया था। कमलेश्वर ने नए परिवेश के आमंत्रित करते आवाहन को 'काली आंधी' उपन्यास के माध्यम से प्रस्तुत किया। उपन्यास की नायिका मालती–अपने उच्च

वर्गीय परिवेश से न केवल अहं दीप्त और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व प्राप्त करती है, बल्कि अपने कैरियर की सफलता के लिए परिवार को छोड़ने पर भी विवश हो जाती है। डॉ. रोहिणी अग्रवाल ने पारिवारिक विघटन के कारणों का विश्लेषण करते हुए लिखा है– 'आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर तथा समाज में निश्चित 'स्टेटस रखने वाली' कामकाजी महिलाओं के सामने व्यक्तित्व के टकराव की समस्या सदा बनी रहती है। दूसरे, दोहरी भूमिका निभाने के साथ–साथ उसे जीवन में परस्पर विरोधी लक्ष्य लेकर भी चलना पड़ता है। विवाह जहाँ आत्मत्याग एवं सहयोग की मांग करता है वहीं कामकाज आत्मोन्नति एवं प्रतिस्पर्धा की दोहरी जिम्मेदारी के दावों की चिंता न केवल क्लान्त करती है, बल्कि यह चिंता स्वयं भी एक समस्या का रूप ले सकती है।' विशिष्ट तो वही है जो अनेक विसंगतियों और अनचाही स्थितियों में से निकल कर भीड़ से अलग हो उठे। शिवानी की लेखनी ने अनेक विशिष्ट नारी चरित्रों की सर्जना की है किंतु सौंदर्य और साहस के तमाम मानदण्डों को नकारती एक अलग छवि है 'कृष्ण कली' की। कृष्ण कली अपने अन्दर–बाहर के द्वंद्वों, संघर्षों से झूझती अनेक स्थानों पर स्नेह सुरक्षा की तलाश में भटकती है। शिवानी ने अनेक अस्वाभाविक और असामान्य स्थितियों–परिस्थितियों का धूप–छाँव में 'कृष्ण कली' के रूप में एक अद्‌भुत नारी की सौन्दर्यशास्त्रीय परिकल्पना की है। अृमतलाल नागर के प्रत्येक उपन्यास में नारी पात्रों को विशेष गरिमा प्रदान की गई है। कभी प्रेम के संदर्भ में, कभी सेवा समर्पण के सम्बन्ध में, कभी राजनीति के संदर्भ में, तो कभी आत्मनिर्भरता की दोहरी भूमिका के संदर्भ में, नागर जी ने नारी की भूमिका और चरित्र को स्वतंत्र पहचान दी है। उनके उपन्यास 'नाच्यो बहुत गोपाल' 'निर्गुनिया' हिन्दी औपन्यासिक यात्रा का अन्यतम पड़ाव है। नागर जी ने निर्गुण के ब्राह्मणत्व संस्कारों को जलाकर मेहतरानी बनने के अन्तर्द्वंद्वों को पूरी ईमानदारी और सच्चाई तथा मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है। आरंभ की डरी, सहमी निर्गुनिया आपत्ति पड़ने पर स्वावलम्बन का ऐसा पाठ सीख लेती है कि पूरे उपन्यास में उसका चरित्र उत्तरोत्तर निखरता चला गया है। ढेर सारे विरोधाभासों के मिथक से बनाया गया एक तरल–गरल व्यक्तित्व है निर्गुनिया का। निर्गुण के माध्यम से नारी समाज की त्रासदी, पुरुष समाज का अहं और मनमानी जैसे खुलकर सामने आ गई है। स्वातंत्र्योतर हिन्दी साहित्य में बदलते सामाजिक संदर्भों में जिस चरित्र पर दृष्टि ठहरती है, वह है 'बसन्ती'। बसन्ती का चरित्र आरंभ से ही सजीव और आत्मनिर्भर है, साथ ही महानगरीय परिवेश की

तमाम विसंगतियों और विभीषिका के बीच जिजीविषा की लड़ाई लड़ती हुई बसन्ती के जीवन का चित्र भी है। उसके मुख व्यक्तित्व का परिचय इन शब्दों में स्पष्ट है– 'किस किससे डर के रहूँ बीबीजी ? बापू से ? माँ से, आपसे ? भगवान से ?' निम्न वर्ग का यह आधुनिक नारी चरित्र अन्य वर्गीय स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उग्र है। इसमें अपने अधिकारों के प्रति चेतना भी तीव्र है। वर्तमान संदर्भों में साहित्यकार की सामाजिक प्रतिबद्धता आधुनिक नारी की स्थापित छवि में निरंतर परिवर्तन से जुड़ी है। ये परिवर्तन बाह्य कम–आन्तरिक अधिक हैं। साधारण से असाधारण होती हुई नारी की एक छवि है– 'शाल्मली'। नासिरा शर्मा ने इसमें शाल्मली के माध्यम से नारी के आत्माभिमान, स्वत्व और अस्तित्व की लड़ाई को पारिवारिक संदर्भों में दर्शाया है। शाल्मली के केन्द्रीय भाव को डॉ. रोहिणी अग्रवाल के शब्दों में स्पष्ट किया जा सकता है। पुरुष अभी भी सामन्ती दंभ व अपेक्षाएँ पाले हुए हैं जो बदले में स्त्री की प्रभुता को देख उसे हीन भाव से ग्रस्त करती हैं या फिर स्त्री के प्रति प्रतिद्वंद्विता का भाव पनपाती है। प्रतिद्वंद्विता पारिवारिक स्तर पर हो या सामाजिक स्तर पर स्वस्थ विकास तथा शांति के लिए अहितकर होती है। जहाँ तक नारी की भूमिका का सवाल है, वह अपने महत्त्व व स्थान के प्रति सचेत है। 'ठीकरे' की मंगनी में नासिरा शर्मा ने औरत के अपने भरे–पूरे वजूद को तमाम पुरानी परम्पराओं के खिलाफ खड़ा कर दिया है– एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाप और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो। विष्णु प्रभाकर ने 'अर्द्धनारीश्वर' में नर और नारी की समान सहभागिता को महत्त्वपूर्ण माना है। इस उपन्यास में पहचान का मूल मन्तव्य स्त्री को वस्तु या निजी सम्पत्ति समझने की मानसिकता से मुक्त करना है। पति–पत्नी एक–दूसरे को अपनी दासता से मुक्त करके ही सही अर्थों में पति–पत्नी हो सकते हैं। प्रभा खेतान ने 'छिन्नमस्ता' में नारी को सारी रूढ़ियों और मात्र सजावटी वस्तु के साँचे से निकलकर एक आत्मनिर्भर सफल कार्यशील महिला के रूप में स्थापित किया है, जो महानगरीय जीवन से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक अपनी पहचान बनाती है। ग्रामीण परिवेश में सामाजिक जागरण का दायित्व उठाती है मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'इदन्नमम' की नायिका मन्दाकिनी। यह नारी अपने सीमित साधनों में नितान्त भारतीय शैली में अपने जीवन की सार्थकता तलाश लेती है। सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास 'मुझे चांद चाहिए' मध्यवर्गीय नारी की गगनचुंबी महत्त्वाकांक्षाओं का दस्तावेज है। स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की नूतन व्याख्या और कस्बाई मानसिकता के

निरन्तर संघर्ष से उपजती है एक स्वतंत्र नारी। भारतीय नारी समस्त जागृति, स्वाभिमान, आत्मनिर्भरता और बौद्धिक क्षमता के बावजूद परिवार, पति और बच्चों को सर्वाधिक महत्व देती है। विशेष रूप से मातृत्व उसका सर्वाधिक प्रबल पक्ष है, अतः पति के दायित्वहीन होने पर भी वह बच्चों के भविष्य को दाँव पर नहीं लगा पाती। वह पति से अलग रहकर अथवा विधवा होने पर माता और पिता दोनों की भूमिकाएँ स्वयं निभाती है। उसका निजत्व प्रबल होने पर आपका बंटी की समस्या उत्पन्न हो जाती है। नारी की स्वयं की भी और समाज की भी मानसिकता नारी के त्याग को ही महत्त्व देती है। पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव इस रूप में अभी बहुत ही कम है। भारतीय समाज में विवाह संस्था का महत्त्वपूर्ण स्थान है और जीवन की सार्थकता और सफलता इसी आधार पर टिके हैं। परिवार और समाज के प्रति भूमिका भी इसी आधार से ही आरंभ होती है। स्त्री और पुरुष दोनों ही उसके अनिवार्य अंग हैं, जीवन के स्वस्थ विकास के लिए पति–पत्नी का सामंजस्य एक महती आवश्यकता है। बदलते संदर्भों में यदि नारी की भूमिका बदलती है तो पुरुष की भी। मगर अभी भी नारी की भूमिका में सेवा, त्याग, समझौता, दीनता, समर्पण और हीनता की भावनाओं को ही महत्त्व दिया जाता है, अभी भी उसकी बौद्धिक क्षमता और व्यक्तित्व को नकारने की मानसिकता बनी हुई है, अतः कहीं दबाव और तनाव है तो कहीं विद्रोह और स्वच्छंदता का आग्रह। मुख्य रूप से अहंभाव का टकराव सर्वाधिक है। सामाजिक समस्याओं में पुरुष प्रधान सत्ता और दहेज प्रथा ने नारी पर कठोर प्रहार किया है। साहित्यकारों ने बिखराव, टूटन, हताशा और आदर्श का भरपूर चित्रण किया है बल्कि नकारात्मक दृष्टिकोण का रेखांकन ही प्रायः किया गया है। किन्तु सेक्स और विकृत संबंधों से ऊपर आत्मविश्वास और दृढ़ इच्छा शक्ति के उदात्त रूप का चित्रण बहुत कम हुआ है। जहाँ स्त्री ने समस्त टूटन के बावजूद स्वयं को एक चारित्रिक दृढ़ता और मनोबल दिया है, ऐसे चरित्रों का उद्‌घाटन आवश्यक है। किन्तु समस्त विडंबनाओं के बावजूद नारी का स्वतंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में स्वरूप एवं अवधारणा में बदलाव अवश्य हुआ है।

निष्कर्ष :

1. वैदिक साहित्य में स्त्री का महत्त्व पुरुष से भी अधिक है तथा वहाँ वह उच्च गौरवशाली पद पर सुशोभित है।

2. वैदिक काल में स्त्री गृह की ही नहीं वरन् पुरुष के मन एवं कर्म दोनों की साम्राज्ञी रही है। ऐसा सम्मान धरती पर उसे आज तक प्राप्त न हो सका है।
3. मध्यकाल में महाभारत के युद्ध से उन्नीसवीं शताब्दी तक इतना शोषण तथा भोग्यवस्तु के रूप में अत्याचार स्त्री पर हुआ जितना पशुओं के साथ आज तक प्रतिदिन प्रतिक्षण होता है।
4. पशुओं को जितना उपयोग ले सकते हैं उतना लेकर अन्त में उनकी निर्दयतापूर्ण अनेक तरीकों से हत्या कर दी जाती है वैसा ही मध्य युग में बर्ताव स्त्रियों ने भोगा है।
5. 1857 की क्रान्ति से जो राष्ट्र जागरण काल था वही काल स्त्री जागरण भी था। स्त्रियों पर होते अत्याचार एवं दुःख की ओर हिन्दी साहित्यकारों की कलम चलने से समाज का ध्यान उस ओर जाने लगा। जिसमें राजाराम मोहन राय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, फूले, रानाडे, महात्मा गाँधी आदि अन्य अनेक महापुरुषों का भारी योगदान रहा।
6. स्वतंत्रता के पश्चात् बढ़ती जनसंख्या, महानगरीय बोध, औद्योगीकरण तथा बढ़ती गरीबी के कारण हिन्दी साहित्य में स्त्री का स्वरूप एक नहीं अनेक धाराओं में विकसित होने लगा। वे अपने अस्तित्व की रक्षा एवं समाज से प्रतिकार को भी तैयार थी।

♦♦♦♦

सन्दर्भ 2.1

1. अद्‌भुत भारत, ए.एल. बाशम, प्रकाशक : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा 1994, पृ.सं.141
2. वही, पृ.सं.142
3. ऋग्वेद 3/53/4 जायेदस्तं मघवन् त्सेदु योनिः
   तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।
   यदा कदा च सुनवाम सोमम्।
   अन्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ।।
4. त्वं सम्राज्ञयेधि पत्युरस्तं परेत्य। अथर्व. 14/1/43
5. सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
   ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। ऋग्वेद 10/85/46
6. मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च। अथर्व. 14/1/46
7. मा म आयुः प्रमोषीर मो अहं तव। यजु. 4/23
8. लोकं पृण छिद्रं पृण, अथो सीद ध्रुवा त्वम्। यजु. 12/54
9. हृदे त्वा मनसे त्वा। यजु. 6/25
10. वेधा ऋतस्य। ऋग्. 1/86/10
11. समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। ऋग्वेद 10/85/47
12. शिवा स्योना पति लोके विराज। अथर्व. 14/1/64
13. यशस्वतीः अपस्युवो न सत्याः। ऋग्वेद 1/79/1
14. अहं केतुरहं मूर्धा। ऋग्वेद 10/159/2
15. असपत्ना सपत्न्घ्नी। ऋग्वेद 10/159/5
16. निघण्टु 1/1
17. निघण्टु 1/8
18. निघण्टु 1/13
19. निघण्टु 2/11
20. निघण्टु 2/2
21. ऋग्वेद 1/23/24

22. ऋग्वेद 1/136/6

23. ऋग्वेद 2/33/1

24. ऋग्वेद 10/18/2

25. ऋग्वेद 10/85/27

26. ऋग्वेद 10/85/43

27. ऋग्वेद 10/128/5

28. यजुर्वेद 3/19

29. यजुर्वेद 3/37

30. यजु 17/50

31. यजु 19/48

32. यजु 34/10

33. अथर्ववेद 14/1/48

34. अथर्ववेद 14/1/53

35. अथर्व 14/1/54

36. अथर्व 14/2/31

37. अथर्व 14/2/64

38. ऋग्वेद 10/159/3

39. पुत्रिणा ता कुमारिणा
विश्वमायुर्व्यश्नुतः ऋग्. 8/31/8

40. अविता नो अजाश्वः पूषा यामनि
यामनि। आवक्षत् कन्यासु नः। ऋग्. 9/67/10

41. आ ब्रह्मन ब्राह्मणो बह्मवर्चसी जायताम्... पुरंधि : योषा यजु. 22/22

42. कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके। ब्रध्नू यामेषु शोभते ऋग्. 4/32/23

43. यथा यश : कन्यायाम अथर्व. 10/3/20

44. जनीयते जायां मह्यं धेहि शचीपते अथर्व. 6/82/3

45. स्त्रैषूयम् अन्यत्र दधत् पुमांसम् उदधदिह अर्थव. 6/11/3

46. अथर्व 8/6/25

47. ऋग्. 8/33/17

48. निघण्टु 2/1, 3/9

49. ऋग्. 10/95/15

50. ऋग्. 5/61/6 व 7

51. ऋग्. 5/61/8

52. द्रष्टव्य – वैदिक इण्डैक्स में पति–पत्नी शब्द।

53. अथर्व 3/18

54. ऋग्वेद 10/159/1

55. ऋग्वेद 10/151/5, 6

56. ऋग्वेद 10/101/11

57. ऋग्वेद 1/105/8, 10/33/2

58. ऋग्वेद 7/26/3

59. अथर्व 14/1/61

60. अथर्व 14/2/14

61. अथर्व 18/3/1

62. अथर्व सायण भाष्य 18/3/1

63. भर्तारम् उद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्।
व्यालग्राही यथा सर्पं बलाद् उद्धरते बालत्।।

64. अर्थव 18/3/2

65. इस मंत्र का सायणाकृत अर्थ भी यही है मन्त्र की उत्थानिका में वह लिखता है कि सती होने के लिए मृत पति के पास लेटी हुई पत्नी यदि बाद में जीवित रहने की इच्छा करने लेग तो उसे यह मंत्र बोल कर उठाए।

66. अथर्व 18/3/3

67. सायण ने यह मंत्र गाय द्वारा मृत पुरुष की परिक्रमा करने में घटाया है, जो गाय प्रेत को स्वर्ग पहुँचाएगी।

68. को वां शयुत्ता विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ऋग्वेद 10/40/2
को वां शयने विधवेव देवरम् ? देवरः कस्माद् ? द्वितीयो वर उच्यते–निरुक्त 3/14

69. ऋग्वेद 10/18/7

70. ऋग्वेद 1/126/6

71. ऋग्वेद 8/19/36

72. स्वः स्वकीयः नयः विशिष्टा दानादि नीतिर्यस्य स स्वनयः।

73. पौरुकुत्स्यस्य बहुवज्रादिशस्त्रास्त्रविदोऽपत्यस्य दयानन्द भाष्य ऋग्वेद 5/33/8
पुरुबहु – निघण्टु 3/1
कुत्स वज्रः निघण्टु 2/20

74. त्रसदस्युः त्रस्यन्ति दस्यवो यस्मात् सः (द.भा.ऋग्वेद)4/38/1

75. सुष्ठु बिभर्ति शिष्यान् इति सुभरिः, स एव सोभरिः।

76. वधूर्जाया स्नुषा स्त्री च। अमर कोष। 3/102/ स्नुषा=पुत्रवधू।

77. अयज्ञियो वै पत्न्यो बहिर्वेदिहिताः। शांखायन ब्राह्मण 27/4

78. अयज्ञियो वैष योऽपत्नीकः। शतपथ ब्राह्मण 3/3/3/1

79. न वै कन्या न युवतिर्नाल्पविद्यो न बालिशः।
होता स्यादग्निहोत्रस्य नार्तो नासंस्कृतस्तथा।। मनु. 11/36

80 ऋग्वेद 1/146/3

81. समानम् एकमेव वत्सं वत्सस्थनीयं पुत्रवद् हर्षहेतुम् अग्निम्
अभिमुखं संचरन्ती संचरन्त्यौ द्वे धेनू अग्निहितकरणेन
प्रीणयन्त्यौ पत्नीयजमानलक्षणौ धेनू विष्वग् विचरतः संचरतः सायण

82. समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसम् उर्विया विभाति।
एति प्राची विश्ववार नमोभिर् देवाँ ईडाना हविषा धृताची।।

83. नमोभिः स्तोत्रैः देवान् इन्द्रादीन ईडाना स्तुवती हविषा पुराडाशादिलक्षणेन युक्तया
घृताची घृताच्या स्रुवा सहित विश्ववारा सर्वमपि पाप रूपं शत्रुं वारयित्री एतन्नामिका
प्राची प्राङ्मुखी सती एति एंवभूतम् अग्निं प्रति गच्छति–सायण

84. या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः। देवासो नित्ययाशिरा।
प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यंचा बर्हिराशाते। न ता वाजेषु वायतः।। आदि

85. चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुः यत्र देवा दधिरे भाग धेयम्।।

86. चतुष्कपर्दा चतुष्कोणा भुवतिः स्त्रीरूपा सुपेशा शोभनालंकारा
घृतप्रतीका घृतप्रमुखहविष्का एतादृशी वेदि... तस्यां वेद्या
वृषणा वृषणौ हविषां वर्षितारौ सुपर्णा सुपतनौ जाया पति
यजमानब्राह्मणौ वा निषेदतुः निषण्णौ भवतः– सायण

87. उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची। ऋग्वेद 7/1/6

88. आ रोह चर्मोपसीद– अग्निम्, एष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा। अथर्व. 14/2/24

89. अथर्ववेद 1/27/4

90 जैमिनीय उप. ब्रा. 4/27/17

91. तैत्ति. ब्रा. 3/3/3/5

92. तैत्ति. ब्रा. 2/2/2/6

93. शतपथ ब्रा. 5/2/1/10

94. ऐत. ब्रा. 8/24

95. शत. ब्रा. 11/4/3/2

96. तैत्ति. ब्रा. 3/9/4/7

97. पारस्कर गृह्यसूत्र. 1/7/2

98. मनु. 3/56

99. मनु. 3/59

100. ऋग्वेद 8/33/19

101. ऋग्वेद 10/159/2

102. ऋग्वेद 10/159/3

103. ऋग्वेद 10/159/5

104. ऋग्वेद 10/159/6

105. ऋग्वेद 4/34/7

106. अथर्ववेद 11/1/27

107. ऋग्वेद 3/53/4

108. ऋग्वेद 5/61/6

109. ऋग्वेद 5/61/7

110. अथर्ववेद 14/2/15

111. यजुर्वेद 14/3

112. ऋग्वेद 7/80/2

113. अथर्ववेद 1/27/4

114. अथर्ववेद 1/27/2

115. ऋग्वेद 10/86/9

116. यजुर्वेद 13/26

117. ऋग्वेद 10/271/2

118. ऋग्वेद 8/6/29

119. अथर्ववेद 6/70/3

120. अथर्ववेद 20/126/11

121. ऋग्वेद 1/83/3

122. ऋग्वेद 7/1/6

123. ऋग्वेद अथर्व. 10/86/10,20/126/10

124. ऋग्वेद अथर्व. 10/18/7,12/2/31

125. ऋग्वेद 5/61/7

126. अथर्ववेद 10/1/3

127. ऋग्वेद 10/271/2

128. अथर्ववेद 6/70/3

129. अथर्ववेद 14/2/27

130. यजुर्वेद 14/2

131. अथर्ववेद 1/14/3

132. ऋग्वेद 3/53/4

133. ऋग्वेद 8/33/19

134. ऋग्वेद 10/32/3

135. ऋग्वेद 4/58/8

136. अथर्ववेद 6/60/2

137. अथर्ववेद 2/30/5

138. अथर्ववेद 11/1/27

139. अथर्ववेद 6/82/2

140. ऋग्वेद 10/271/2

141. ऋग्वेद 10/86/6 अथर्व. 20/126/6

142. अथर्ववेद 14/2/30

143. ऋग्वेद 8/26/13 अथर्ववेद 6/81/3

144. अथर्ववेद 2/36/3,1/14/4

145. अथर्ववेद 2/36/4

146. अथर्ववेद 7/38/4

147. ऋग्वेद 1/82/5 अथर्ववेद 2/30/4,1/3/24

148. अथर्ववेद 12/3/39

149. अथर्ववेद 3/23/3

150. ऋग्वेद 10/85/42

151. ऋग्वेद 5/5/8

152. ऋग्वेद 10/10/12, 3/54/7 अथर्ववेद 18/1/14,1/17/1

153. अथर्ववेद 10/1/3,9/5/27

154. अथर्ववेद14/2/75

155. ऋग्वेद 5/61/7

156. ऋग्वेद

157. यजुर्वेद 13/26

158. ऋग्वेद

159. अथर्ववेद 1/27/4 तैत्तीरीय संहिता 2/2/8/1

160. ऋग्वेद 10/109/3,10/109/4 अथर्ववेद 5/17/3, 5/17/6

161. ऋग्वेद 1/124/7, 1/122/2,7/55/8 अथर्ववेद 4/5/3

162. ऋग्वेद 2/17/7,3/31/2,3/31/1

163. ऋग्वेद 10/95/15,10/33/17,4/5/5,10/85/29

164. ऋग्वेद 10/34/2,10/34/4

सन्दर्भ 2.2

1. उपदेश–मञ्जरी, पृ.सं.–100–101, मधुर प्रकाशन, दिल्ली (स्वामी दयानन्द सरस्वती के पूना में दिए गए पन्द्रह व्याख्यानों का संग्रह)
2. विधुरनीति (महाभारत–उद्योगपर्व 34 व 35 वाँ अध्याय) व्याख्याकार रेवती रमण शास्त्री, पृ.सं.–45 श्लोक 92, 93
3. भारत वर्ष का इतिहास ले. रघुवीरशरण दुबलिस, ज्येष्ठ संवत् 1975, पृ. सं.–133
4. महाभारत–12/266/31
5. महाभारत– 12/108/18
6. महाभारत – शान्तिपर्व 90/49
7. महर्षि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ भाषण, पृ.सं.–107 उपदेश मंजरी
8. भारत वर्ष का इतिहास ले. रघुवीरशरण दुबलिस, ज्येष्ठ संवत् 1975 पृ.सं. –153, 154, 155
9. वही, पृ.सं.–157
10. वही, पृ.सं.–159
11. उपदेश मंजरी, संपादक राजपाल सिंह शास्त्री, पृ.सं.–126,127,128
12. वही, पृ.सं.–130–131
13. वही, पृ.सं.–132–133
14. भारत वर्ष का इतिहास ले. रघुवीरशरण दुबलिस, ज्येष्ठ संवत् 1975, पृ.सं.–161
15. मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च। एते पंच मकाराश्चमोक्षदा हि युगे युगे।। पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले। पुनरुत्थाय वै पीत्वापुनर्जन्म न विद्यते।। प्रवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वेवर्णा द्विजातयः। निवृत्ते भैरवी चक्रे सर्वे वर्णाः प्रथक प्रथक।। मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु। लिङ्गं योन्यां तु संस्थाप्य जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः मातरमपि न त्यजेत्।।
    विस्तृत देखने के लिए तंत्र ग्रन्थ देखें।
    ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका–ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषय, ले. स्वामी दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–217
16. ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, भाष्यकरण शंकासमाधानादि विषयः महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–251

17. विस्तृत देखने के लिए महीधर का यजुर्वेद भाष्य देखें 23/19

अस्य मन्त्रस्य व्याख्याने तेनोक्तम्–अस्मिन्मन्त्रे गणपति शब्दादश्वो वाजी गृहीतव्य इति। तद्यथा महिषी यजमानस्य पत्नी, यज्ञशालायां, पश्यतां सर्वेषामृत्विजामश्वसमीपे शेते। शयना सत्याह–हे अश्व! गर्भधं गर्भं दधाति गर्भधं गर्भधारकं रेतः, अहं आ अजानि, आकृष्य क्षिपामि। त्वं च गर्भधं रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसि।।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका : स्वामी दयानन्द सरस्वती भाष्यकरण शंका समाधानादि विषयः पृ.सं.–252

सही अर्थ के लिए स्वामी दयानन्द सरस्वती का वेद भाष्य देखें या ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका देखें।

18. ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयावस्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु।। यजु. 23/20

महीधरस्यार्थः – अश्वशिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति।

महीषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति।।

सही अर्थ के लिए स्वामी दयानन्द का यजुर्वेद भाष्य देखें या उनकी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका अवश्य देखें।

19. वही, पृ.सं.–256

यकासकौ शकुन्तिकाहलगिति वञ्चति।

आहन्ति गभे पसो निगल्गलीति धारका।। यजु. 23/22

महीधरो वदति– अध्वर्य्वादयः कुमारीपत्नीभिः सह सोपहासं संवदन्ते। अङ्गुल्या योनिं प्रदेशयन्नाह, स्त्रीणां शीघ्रगमने योनौ हलहलाशब्दो भवतीत्यर्थः। भगे योनौ शकुनिसदृश्यां यदा पसो लिंगमाहन्ति आगच्छति, पुंस्प्रजननस्य नाम, हन्तिर्गत्यर्थः। यदा भगे शिश्न मागच्छति, तदा (धारका) धरति लिङ्गमिति धारका योनिः (निगल्गलीति) नितरां गलति वीर्यं क्षरति, यद्वा शब्दानुकरणं गल्गलेति शब्दं करोति।। सही अर्थ के लिए स्वामी दयानन्द का यजुर्वेद भाष्य देखें।

20. वही–पृ.सं.–257

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः।

प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमत२ꣳसंयत्। यजुर्वेद 23/24

महीधरार्थ–ब्रह्मा महिषीमाह–महिषी हये हये महिषि! ते तव माता च पुनस्ते तव पिता, यदा वृक्षस्य वृक्षजस्य काष्ठमयस्य मञ्चकस्याग्रमुपरिभागं रोहतः आरोहतः, तदा ते पिता गभे भगे मुष्टिं मुष्टितुल्यं लिङ्गमतंसयतंसयति प्रक्षिपति। एवं तवोत्पत्तिरित्यश्लीलम्। लिङ्गमुत्थानेनालङ्करोति वा तव भोगेन स्निह्यामीति वदन्नेवं तवोत्पत्तिः।।

सही अर्थ के लिए स्वामी दयानन्द का यजुर्वेद भाष्य देखें।

21. वही, पृ.सं.–258
22. वही, पृ.सं.–259
23. वही, पृ.सं.–260
24. वही, पृ.सं.–261
25. पालि साहित्य का इतिहास लेखक भिक्षु धर्म रक्षित, पृ.सं.–86
26. वही, पृ.सं.–87
27. वही, पृ.सं.–87
28. वही, पृ.सं.–88
29. धम्मपद–अनुवादक एवं सम्पादक डॉ. त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित पंचम संस्करण 1987 पृ.सं.–103
30. वही, पृ.सं.–106–107
31. पालि साहित्य का इतिहास ले. डॉ. भरतसिंह उपाध्याय हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सन् 1972 पृ.सं.–272–273
32. वही, पृ.सं.–275,276
33. सत्यर्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती विररचित सं. पं भगवद्दत्त (रिसर्च स्कोलर), पृ.सं.–440
34. वही, पृ.सं.–477
35. वही, पृ.सं.–489
36. वही, पृ.सं.–455

    जैन साहित्य के विस्तृत गपोड़े देखने के लिए स्वामी दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश का द्वादश समुतलास अवश्य पढ़ें।

37. महाभारत उद्योगपर्व अ.–79/56
38. भागवतपुराण

    भागवत पुराण में पण्डों की कामनावासना उजागर हुई है इस पाखण्ड को विस्तार से समझने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत सत्यार्थ प्रकाश का एकादश समुल्लास अवश्य पढ़े।

39. ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड–4 अध्याय–125–61,143,144,148
40. वराहपुराण 166/61
41. सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द सरस्वती विरचित सं. पं भगवद्दत्त (रिसर्च स्कोलर), पृ.सं.–347–348

42. भागवत पुराण अ.22/46
43. सत्यार्थ प्रकाश, पृ.सं.–352
44. भागवत पुराण अ. 30,31 ।। 26 ।।
45. वही ।।27।।
46. वही ।।30।।
47. गीता 3/21
48. वही 3/23
49. सत्यार्थ प्रकाश, पृ.सं.–353
50. भागवत्–खण्डनम् : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–36
51. अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कालीदास कृत सं. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी, पृ.सं.–19
52. संस्कृत साहित्य का इतिहास, ले. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ.सं.–167–169
53. भारत वर्ष का इतिहास, ले. रघुवीरशरण दुबलिस, पृ.सं.–267–268
54. सत्यार्थ प्रकाश, पृ.सं.–578
55. वही, पृ.सं.–572
56. वही, पृ.सं.–574
57. वही, पृ.सं.–576, 598, 605
58. भारत वर्ष का इतिहास, ले. रघुवीरशरण दुबलिस, सं.–1975 पृ.सं.–262
59. वही, पृ.सं.–262
60. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–81
61. वही, पृ.सं.–95–96
62. वही, पृ.सं.–95–96
63. इस्लाम में नारी : ले. कुवर आनन्द सुमन–द्वितीय संस्करण,
पृ.सं.–6 कुरआन 22–36–38
64. वही, पृ.सं.–6, (कुरआन अननिसा–3)
65. वही, पृ.सं.–12
66. वही, पृ.सं.–12–13
67. हिन्दी साहित्य का इतिहास सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–97
68. कबीर वचनामृत : विजयेन्द्र स्नातक रमेश चन्द्र मिश्र
प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाऊस 23 दरियागंज दिल्ली–2 पृ.सं.–15
69. वही, पृ.सं.–141

70. कबीर–साखी सार : डॉ. तारकनाथ बाली व श्रीरामवशिष्ठ
प्रकाशक : विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ.–100
71. वही, पृ.सं.–100
72. वही, पृ.सं.–100
73. वही, पृ.सं.–101–104
74. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द पं. भग्वद्दत पृ.सं.–377
75. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल नागरी प्रचारिनी सभा, वाराणसी, पृ. –48
76. वही, पृ.सं.–49
77. जायसी ग्रन्थावली : सं. राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, मानसरोदक खंड, पृ.सं.–87
78. वही, नखशिख खंड, पृ.सं.–159
79. विनय पत्रिका : गोस्वामी तुलसीदास
सं. डॉ. कृष्ण देव शर्मा, पृ.सं.–8
80. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–84
81. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र पृ.सं.–201–202
82. वही, पृ.सं.–202
83. हिन्दी साहित्य –डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल, पृ.सं.–192
84. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–388
85. वही, पृ.सं.–390
86. वही, पृ.सं.–391
87. उपदेश मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–122
88. मीरा पदावली : सं. डॉ. शम्भूसिंह मनोहर, पृ.सं.–16
89. वही, पृ.सं.–47
90. गाँधी और दलित भारत जागरण : श्री भगवान सिंह, पृ.सं.–114

सन्दर्भ 2.3.1

1. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : ले.डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–378
2. वही, पृ.सं.–405
3. औरत कल, आज और कल : आशा रानी व्होरा, पृ.सं.–19–20
4. वही, पृ.सं.–61–62
5. शृंखला की कड़ियाँ : महादेवी वर्मा, पृ.सं.–90
6. बाणभट्ट की आत्म कथा : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं.–110
7. वीमेन्स एण्ड सोसल इन्जस्टिस : महात्मा गाँधी, हरिजन 8–6, पृ.सं.–178–179
8. प्रेमचन्द के पात्र : प्रयागराज मेहता, पृ.सं.–199
9. निर्मला : प्रेमचन्द, पृ.सं.–150
10. गबन : प्रेमचन्द, पृ.सं.–344
11. हिन्दी उपन्यासों में नारी : शैल रस्तोगी, पृ.सं.–81–82
12. प्रेमचन्द के पात्र : प्रयाग राज मेहता पृ.सं.–44
13. वही, पृ.सं.–179
14. प्रेमचन्द और गुण : रामविलास शर्मा, पृ.सं.–132
15. विकास : प्रतापनारायण श्रीवास्तव, पृ.सं.–355
16. हिन्दी उपन्यासों में नारी : शैल रस्तोगी, पृ.सं.–65
17. कंकाल : जयशंकर प्रसाद, पृ.सं.–279
18. तितली : जयशंकर प्रसाद, पृ.सं.–236
19. कल्याणी : जैनेन्द्र, पृ.सं.–17
20. शेखर एक जीवनी : अज्ञेय भाग द्वितीय, पृ.सं.–215
21. इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास : वल्लभ तिवारी, पृ.सं.–76
22. गुनाहों का देवता : धर्मवीर भारती, पृ.सं.–102
23. वही, पृ.सं.–267
24. मृगनयनी : वृन्दावन लाल वर्मा, पृ.सं.–215
25. वृन्दावन लाल वर्मा उपन्यास और कला : शिवकुमार मिश्र, पृ.सं.–78–79
26. दादा कामरेड : यशपाल, पृ.सं.–110
27. देश द्रोही, पृ.सं.–339
28. प्रगतिशील साहित्य की समस्याऐं : रामविलास शर्मा, पृ.सं.119–120
29. घरौंदे : रांगेय राघव, पृ.सं.–189
30. शोले : भैरव प्रसाद गुप्त, पृ.सं.–120–121
31. महाकाल : अमृतलाल नागर, पृ.सं.–175
32. बीज : अमृतराय, पृ.सं.–328–329

सन्दर्भ 2.3.2

1. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व, पृ.सं.–42
2. सूरज किरन की छांव : राजेन्द्र अवस्थी, पृ.सं.–180–181
3. हिन्दी उपन्यास में दाम्पत्य चित्रण : उर्मिला भटनागर, पृ.सं.–14
4. आपका बंटी : मन्नू भंडारी, पृ.सं.–62
5. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : रोहिणी अग्रवाल, पृ.सं.–172
6. वही, पृ.सं.–182
7. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक : जयश्री वरहाटे, पृ.सं.–199
8. हिन्दी उपन्यास के पद्चिह्न, पृ.सं.–299
9. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा
10. परछाइयों के पीछे : शशि प्रभा शास्त्री, पृ.सं.–237
11. अपने पराये : शशि भूषण सिंहल, पृ.सं.–142
12. वही, पृ.सं.–137
13. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप, पृ.सं.–135
14. वही, पृ.सं.–137
15. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : रोहिणी अग्रवाल, पृ.सं.–132
16. आज का हिन्दी उपन्यास : इन्द्रनाथ मदान, पृ.सं.–83
17. हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ : विवेकीराय, पृ.सं.–45
18. मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल, पृ.सं.–761
19. हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ : विवेकीराय, पृ.सं.–46
20. मन्नू भंडारी एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव, पृ.सं.–111
21. उखड़े हुए लोग : राजेन्द्र यादव, पृ.सं.–19
22. शरीफों का कटरा : मन्मथ गुप्त, पृ.सं.–117
23. छोटी चम्पा बड़ी चम्पा : लक्ष्मीनारायण लाल, पृ.सं.–114
24. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा, पृ.सं.–61
25. न आने वाला कल : मोहन राकेश, पृ.सं.–179–180
26. आत्मनेपद : अज्ञेय, पृ.सं.–196
27. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा, पृ.सं.–61
28. रात खो गई : मनहर चौहान, पृ.सं.–62
29. अमृत और विष : अमृतलाल नागर, पृ.सं.–599–600
30. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : रोहिणी अग्रवाल, पृ.सं.–113
31. वही, पृ.सं.–138
32. वही, पृ.सं.–143

अध्याय तृतीय

दयानन्द सरस्वती की स्त्री विमर्श सम्बन्धी दृष्टि

"जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।"

–स्वामी दयानन्द सरस्वती

"स्वामी जी (दयानन्द सरस्वती) की इस महत्ता को देखकर मालूम हो जाता है कि स्त्री समाज को उठाने वाले पश्चिमी शिक्षा प्राप्त पुरुषों से वह बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वह संसार और मुक्ति दोनों प्रसंगों में पुरुषों के ही बराबर नारियों को अधिकार देते हैं।"

– सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

"स्त्रियों की दुर्दशा निवारण के लिए दयानन्द ने बड़ी उदारता के साथ कार्य किया।"

– प्रसिद्ध फ्रांसिसी इतिहासकार–रोमां रोलां

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जहाँ अपने समय में, भारत में प्रचलित विविध कुरीतियों, अन्धविश्वासों तथा मिथ्या धारणाओं के उन्मूलन का बीड़ा उठाया, वहाँ स्त्री–जाति को दयनीय स्थिति से उबारकर समाज में उचित स्थान दिलाने का भी भरसक प्रयास किया। उस समय स्त्रियों की अवस्था बड़ी सोचनीय थी स्त्री शिक्षा का प्रसार नाम को भी नहीं था स्त्रियों को शिक्षित करना सर्वथा अनावश्यक समझा जाता था। घरों में उनका सम्मान भी नहीं होता था, अपितु वे ताड़न की ही अधिकारिणी समझी जाती थीं। विधवाओं का मांगलिक उत्सवों में भाग लेना अच्छा नहीं समझा जाता था बल्कि यदि इस समय उनके दर्शन हो जाए तो अशुभ होने की भावना लोगों में विद्यमान हो चुकी थी। विधवाएँ या तो मृत पति के साथ सती हो जाती थीं या जीवन भर कष्ट भोगती रहती थीं और समाज से अपमानित होती रहती थीं। नारियों को वेद पढ़ने के अधिकार से भी वंचित रखा गया था। वे बाहर नहीं निकलती थीं, घर में भी उन्हें पर्दे में रहना पड़ता था। नारी के विदूषी और अध्यापिका बनने की बात कोई स्वप्न में भी नहीं सोच सकता था। स्वामी दयानन्द ने नारी के विषय में प्रचलित समाज के इन हीन विचारों को परिवर्तित करने के लिए और समाज में नारियों को उच्च स्थान दिलाने के लिए वेदों को आधार बनाकर अपनी लेखनी और वाणी को प्रवृत्त किया।

बालविवाह निषेध – महर्षि दयानन्द ने जब देखा कि छोटी–छोटी बालिकाओं के विवाह हो जाते हैं तब देश के इस अधःपतन को देखकर उनका हृदय नारी जाति के प्रति दयार्द्र हो उठा। "यदि इस समय हम लोगों में बाल विवाह प्रचलित न होता तो विधवाओं की संख्या कभी इतनी न होती और न इतने गर्भपात और इतनी भ्रूण हत्यायें होतीं।"[1]

उस समय के पण्डित लोग पाराशरी शीघ्र बोध ग्रन्थों का प्रमाण देते हुए कहते थे कि आठ वर्ष की कुमारी 'गौरी' नौ वर्ष की 'रोहिणी' दस वर्ष की 'कन्या' और दस वर्ष से ऊपर रजस्वला कहलाती है। आठवें वर्ष विवाह कर देना सबसे अच्छा है उसके बाद नवें वर्ष और उसके बाद दसवें वर्ष, दसवें वर्ष के पश्चात् जो कन्या को अविवाहित देखते हैं वे माता–पिता और ज्येष्ठ भ्राता नरक में गिरते हैं। स्वामी दयानन्द ने इन पण्डितों की भर्त्सना करते हुए कहा कि जिन ग्रन्थों को तुम प्रमाण रूप में प्रस्तुत कर रहे हो उन्हें बने भी अभी अस्सी वर्ष भी व्यतीत नहीं हुए हैं उन्होंने मनु तथा वेदों का प्रमाण देकर बताया कि तुम्हारे श्लोक कपोल कल्पित हैं मनु ने लिखा है कि कुमारी ऋतुमती होना आरम्भ होने के तीन वर्ष पश्चात् विवाह करें–

"जीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।

ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम्।।"[2]

सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास तथा संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में स्वामी दयानन्द ने कई वेद मंत्र यह प्रमाणित करने के लिए दिये हैं कि युवा और युवती का ही विवाह होना चाहिए। यथा–

"युवा सुवासाः परिवीत आगात्

स उश्रेयान् भवति जायमानः।"[3]

अर्थात् यज्ञोपवीतधारी उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त, सुन्दर वस्त्र धारण किए हुए जो ब्रह्मचारी युवा पुरुष गृहाश्रम में आता है वह आचार्य से विद्या जन्म प्राप्त करके श्रेष्ठ बना होता है अभिप्राय यह है कि प्रथम जन्म माता–पिता से होता है, द्वितीय जन्म विद्या पढ़ चुकने के पश्चात् आचार्य से होता है। जो ब्रह्मचर्यपूर्वक आचार्याधीन रहकर विद्या पढ़कर युवा हो जाता है, वही गृहाश्रम में प्रवेश का अधिकारी है स्वामी दयानन्द के अनुसार स्त्री–पुरुष की विवाह योग्य आयु इस प्रकार है।

स्त्री	**पुरुष**
16	25
17	30
18	36
19	38
20	40
21	42
22	44
23	46
24	48

महर्षि दयानन्द ने लिखा है– "48वें वर्ष से आगे पुरुष और 24वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य ने रखना चाहिए, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है और जो विवाह करना ही न चाहें, वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें, परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले, जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है।"[4]

स्वामी दयानन्द बाल विवाह की हानि और युवा विवाह के लाभ बताते हुए लिखते हैं– "सोलहवें वर्ष से लेकर चौबीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीसवें

वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है।... जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है, वह देश दुःख में डूब जाता है।....जो ब्रह्मचर्यधारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये बिना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं, वे स्त्री–पुरुष नष्ट–भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते।"[5]

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश और संस्कार विधि के अतिरिक्त अपने वेद भाष्य में तथा अन्य ग्रन्थों की व्याख्या में युवा–विवाह पर बल दिया है तथा इसी प्रकार स्त्री–पुरुष और उनके सन्तान सुखी हो सकते हैं और देश समृद्ध हो सकता है, ऐसा माना है।

वर–वधू का चुनाव – स्वामी दयानन्द ने देखा कि लड़के–लड़कियों को सर्वथा अनजान रखकर, उन्हें एक दूसरे को पसन्द कराये बिना और योग्य अयोग्य की समुचित परीक्षा भी न करके उनके सम्बन्धीजन–विवाह निश्चित कर देते हैं, परिणामतः अधिकतर विवाह बेमेल होते हैं, अतः उन्होंने इसके विरोध में भी आवाज उठाई। विवाह करना माता–पिता के अधीन होना चाहिए व लड़का–लड़की के अधीन ? इस प्रश्न के उत्तर में स्वामी दयानन्द लिखते हैं कि– "लड़का–लड़की के अधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता–पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का–लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिए, क्योंकि एम दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और संतान उत्तम होते हैं।"[6] लड़के–लड़की की सहमति से जो विवाह होता है, उसे स्वामी दयानन्द ने स्वयंवर कहा है, परन्तु परस्पर सहमति का अभिप्राय उनके अनुसार यह नहीं है कि वे केवल एक दूसरे का रूप–रंग देखकर विवाह का निश्चय कर लें। स्वामी दयानन्द इसके लिए पूर्ण सतर्क हैं कि यह चुनाव गुण–कर्म के आधार पर होना चाहिए।

आगे वे लिखतें हैं कि– "जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री–पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिए। जब तक इनका मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता।.....विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार होनी चाहिए।.....यह गुण–कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोहलवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिए और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिए।"[7]

वहीं चुनाव में अध्यापक–अध्यापिकाओं के सहयोग के विषय में लिखा है– "जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छह महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब, अर्थात् जिसको फोटो ग्राफ कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें। जिस–जिस का रूप मिल जाए उस–उसके इतिहास अर्थात् जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें। जब दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव सदृश हों तब जिस–जिस के साथ, जिस– जिस का विवाह होना योग्य समझें उस–उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिंब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाए तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ, नहीं तो कन्या के माता–पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता–पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक–दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें।"[8]

एक–दूसरे की परीक्षा कराने के सम्बन्ध में संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में लिखते हैं– "जब विवाह करने का समय निश्चय हो चुके, तब कन्या चतुर पुरुषों से वर की और वर चतुर स्त्रियों से कन्या की परोक्ष में परीक्षा करावें।"[9]

यह स्वामी दयानन्द सरस्वती–सम्मत स्वयंवर का स्वरूप है दयानन्द स्वयंवर रीति से विवाह का इतना अधिक महत्त्व समझते हैं कि अपने वेद भाष्य में भी मंत्रों के भावार्थ में अनेक स्थलों पर उन्होंने इसका उल्लेख किया है यथा– "जैसी विद्या, गुण, कर्म और स्वभाव वाले पुरुष हों उनकी स्त्री भी वैसी ही होनी ठीक हैं क्योंकि जैसा तुल्य रूप, विद्या, गुण, कर्म, स्वभाव वालों को सुख का सम्भव होता है, वैसा, अन्य को कभी नहीं हो सकता। इससे स्त्री अपने समान पुरुष व पुरुष अपने समान स्त्रियों के साथ आपस में प्रसन्न होकर स्वयंवर–विधान से विवाह करके सब कार्यों को सिद्ध करें।"[10] इस मामले में दयानन्द बहुत सजग थे क्योंकि समाज का मूल आधार विवाह ही होता है यहीं से अच्छे–बुरे समाज का निर्माण होता है।

"वेद की आज्ञा से एक–से रूप, स्वभाव और एक–सी विद्या तथा युवावस्था वाले स्त्री और पुरुषों की परस्पर इच्छा से स्वयंवर–विधान से विवाह होने योग्य है।

'सब राजपुरुषादिकों को अत्यन्त योग्य है कि अपने कन्या और पुत्रों को दीर्घ ब्रह्मचर्य में संस्थापित कर विद्या और उत्तम शिक्षा उनको ग्रहण करा पूर्ण विद्या वाले, परस्पर प्रसन्न पुत्र व कन्याओं का स्वयंवर विवाह करावें, जिससे जब तक जीवित रहें, तब तक आनन्दित रहें।'

"जो वधू और वर स्वयंवर विवाह से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं, वे सूर्य और उषा को समान गृहाश्रम को उत्तम आचार से अच्छे प्रकार प्रकाशित कर सर्वदा आनन्दित होते हैं।"[11]

दयानन्द अत्यंत दूर दृष्टा थे उन्होंने स्थान–स्थान पर विवाह से पूर्व परीक्षा शब्द लिखा है देखो कितने दूर की सोच उस महान संत की थी कि आगामी समाज का निर्माण सुदृढ़ हो उसमें किसी प्रकार का धोखा एवं ठगी न हो क्योंकि यह संबंध अत्यन्त निश्छल होना चाहिए।

"स्त्री और पुरुष विवाह से पहले परस्पर एक दूसरे की परीक्षा करके अपने समान गुण, कर्म, स्वभाव, रूप, बल, आरोग्य, पुरुषार्थ और विद्या से युक्त होकर स्वयंवर विधि से विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों।

हे कुमारियों! तुम ब्रह्मचर्य के साथ समस्त विद्याओं को प्राप्त करके , युवती होकर अपने अभीष्ट, स्वयं परीक्षित, वरने योग्य पतियों को स्वयं वरो।"[12]

स्वामी दयानन्द ने जो दृष्टि वा विचार यथार्थ जन सामान्य के बीच में रखे उनसे आने वाली पीढ़ियों में किसी प्रकार का विच्छेद ना हो इस कारण उन्होंने स्वयंवर–विवाह पर बल दिया। माता–पिता गुरुजनों के सामने विवाह पूर्व ही परीक्षा प्रथा किसी प्रकार की गुप्त शंका को सबके सामने लिखित में एक–दूसरे को देना कितना बड़ा दर्शनशास्त्र या समाज शास्त्र है किसी ने इसकी कल्पना भी न की होगी। इसमें होने वाले पति–पत्नी का शंका समाधान भी हो जाये और लिखित होने से अपनी गुप्तता भी प्रदर्शित न हो इसके पीछे का दर्शन यह है कि यह जो सम्बन्ध बनेगा वह सत्य की मिसाल पर निश्छल संबंध होगा जो भावी सुदृढ़ समाज व राष्ट्र का परिणाम होगा तथा इसमें क्या–क्या सतर्कताएँ बरती जानी चाहिए इसका भी उल्लेख किया है।

कन्या और वर के विवाहोचित गुण – कैसी कन्या से विवाह करे और कैसी से न करे, इस विषय में मनु ने अध्याय तीन श्लोक 4–10 में कुछ विचार व्यक्त किये हैं उन श्लोकों को

स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में उद्धृत किया है। उनसे केवल इतना ज्ञात होता है कि कन्या मातृकुल की छह पीढ़ियों में और पिता के गोत्र की नहीं होनी चाहिए। साथ ही उस कुल की भी नहीं होनी चाहिए जिसमें सत्क्रिया एवं वेदाध्ययन आदि न होता हो या जिस कुल में कोई विशेष रोग चला आता हो। पीले वर्ण वाली, अधिकांगी, रोगिणी, अलोमा, बहुलोमा, वाचाल, नदी, वृक्ष, पक्षी, साँप, दास आदि नामों वाली, भयंकर नाम वाली, कन्या से भी विवाह वर्जित किया है। इसके विपरीत सरलांगी, सौम्यनाम्नी, हंसगामिनी, गजगामिनी, पतले लोम, केश, दाँतों वाली, मृद्वंगी कन्या विवाह योग्य कही गई है। इसमें जो अनुचित नामों वाली कन्या को वर्जित किया गया है, वह उत्कृष्ट नाम रखने की प्रेरणा के लिए समझना चाहिए। अन्य सब अनुकूलताएँ हों, तो उनका नाम परिवर्तित करके उनसे विवाह किया जा सकता है। विवाह योग्य कन्या की विशिष्ट योग्यताएँ स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य में कई स्थानों पर मिलती हैं कुछ अंश यहाँ बताना आवश्यक है।

"हे पुरुषों! जो कन्या अपने सदृश, विदूषी, शुभ गुण–कर्म–स्वभाव वाली होवें, वे ही पत्नी होने के लिए स्वीकार करने योग्य हैं।"

'हे ब्रह्मचारी जनो! जो ब्रह्मचारिणी, मेघ के सदृश गंभीरभाषिणी, थोड़ा बोलने वाली, पवित्र और विदूषी होवें वे ही पहले उत्तम परीक्षा करके विवाह के योग्य हैं।'

'हे मनुष्यों! जो शिक्षित, रूप–लावण्य आदि उत्तम गुणों से युक्त, विदूषी, ब्रह्मचारिणी कन्या होवें, उन्हीं को यथा योग्य विवाहों ?'

'जो कभी द्वेष और द्वेष करने वाले का संग नहीं करती और सत्यभाषिणी तथा प्रशंसायुक्त है, वही स्त्री श्रेष्ठ।'

'यदि सुन्दर, प्रिय, उत्तम लक्षणों से युक्त, अद्भुत रूप वाली, पतिव्रता स्त्री–पुरुष को प्राप्त होवे, तो वह उषा के सदृश कुल को प्रकाशित करती हुई और संतानों को उत्तम शिक्षा देती हुई सबको आनन्द देती है।'

'हे मनुष्यों! जो उषा के समान वर्तमान, सत्यशास्त्र–श्रवणादियुक्त, बलिष्ठ, विचक्षण, धन और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली, रक्षा में तत्पर, विदूषी स्त्रियाँ हों, उनके बीच से अपनी–अपनी प्रिया भार्या को सब ग्रहण करें।'

"जो स्त्री विद्या शिक्षा युक्त वाणी को ग्रहण करती है, वह अनादि भूत वेदविद्या को जानने योग्य होती है वह जिसके साथ विवाह करे उसका अहोभाग्य होता है।"[13]

इसी प्रकार दयानन्द ने स्त्रियों को भूमि के सदृश क्षमा करने वाली प्रकाशक भी बताया है।

"जो स्त्री पृथिवी के समान क्षमा युक्त, आकाश के समान अक्षोभ्य और यन्त्र कला के तुल्य जितेन्द्रिय होती है, वह कुल का प्रकाश करने वाली होती है।

जो स्त्री पृथिवी के तुल्य क्षमा करने वाली, क्रूरता आदि दोषों से रहित, बहुत प्रशंसित, दूसरों के भी दोषों का निवारण करने हारी है, वही घर के कार्यों में योग्य होती है।"[14]

जैसे वर पक्ष के लिए कन्या के गुणों का विचार किया जाता है, वैसे ही कन्या पक्ष के लिए वर के गुणों का विचार आवश्यक होता है। वर और कन्या अनुरूप गुणों वाले होने चाहिए इसलिए दयानन्द लिखते हैं–

'अति उत्तम विवाह वह है, जिसमें तुल्य रूप और स्वभाव युक्त कन्या–वर का संबंध होवे, परन्तु कन्या से वर का बल और आयु दूना वा ड्योढ़ा होना चाहिए।'

'ब्रह्मचारिणी कन्या प्रसिद्ध कीर्ति वाले, सद्पुरुष, सुशील, उत्तम रूप और गुणों से युक्त, प्रीति करने वाले को पति–रूप से ग्रहण करने की इच्छा करें'।

"स्त्री ऋतुगामी, ऊर्ध्व रेता, सुशील, विद्वान्, प्रसिद्ध यश वाले जन को पतित्व के लिए ग्रहण करें।"[15] पुरुष में निम्न गुण होना चाहिए।

विवाह की कामना करने वाली युवती स्त्री को चाहिए कि जो छल–कपट आदि आचरणों से रहित, सत्यभाव का प्रकाश करने वाला, एक स्त्रीव्रती, जितेन्द्रिय, उद्योगी, धार्मिक, दाता, विद्वान् पुरुष हो, उसके साथ विवाह करके आनन्द में रहे।

"जो प्रमादी पुरुष विवाहित स्त्री को छोड़कर पर स्त्री का सेवन करता है, वह इस लोक और परलोक में दुर्भागी होता है और जो संयमी, अपनी ही स्त्री को चाहने वाला, दूसरे की स्त्री को नहीं चाहता, वह दोनों लोक में परम् सुख को क्यों न भोगेगा। इससे सब स्त्रियों को योग्य है कि जितेन्द्रिय पति का सेवन करें, अन्य का नहीं।"[16] लम्पट पुरुष त्यागने योग्य है स्त्रियों को वर चयन में सतर्कता बरतनी चाहिए।

पत्नी का कर्त्तव्य – जिस प्रकार पुत्री के विवाह के समय घर के बुजुर्ग एवं पुत्री के माता–पिता पुत्री से ससुराल के व्यवहार तथा कर्त्तव्यों के बारे में समझाते हैं उसी प्रकार महर्षि दयानन्द ने उस विवाहित को पुत्री के समान कर्त्तव्य बताते हैं और मनु का श्लोक उद्धृत करते हैं– **"सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।**

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।।"[17]

स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई वर्ते। सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे। सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो औषधिरूप होकर शरीर व आत्मा में रोग को न आने देवें। जो–जो व्यय हो उसका हिसाब यथावत् रखकर पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथा–योग्य काम लेवें। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवें।

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में स्त्री सदा प्रसन्न रहे क्योंकि उसकी प्रसन्नता से ही वह स्वस्थ एवं सर्वत्र प्रसन्नता विद्यमान होगी इसलिए वे जगह–जगह स्त्री की प्रसन्नता की बात पर जोर देते दिखाई देते हैं। स्त्री को कभी भी मन कर्म एवं वचन से दुःख नहीं पहुँचना चाहिए। स्वस्थ व सुदृढ़ समाज का मूल स्त्री ही है।

"हे वरानने! तू अच्छे मंगलाचरण करने तथा दोष और शौकादि से पृथक् रहनेहारी, गृहकार्यों में चतुर और तत्पर रहकर उत्तम सुख युक्त होके पति, ससुर और सासु के लिए सुखकर्ती और स्वयं प्रसन्न हुई इन घरों में सुखपूर्वक प्रवेश कर।

हे वधू! तू श्वशुरादि के लिए सुख दाता, पति के लिए सुखदाता और गृहस्थ सम्बन्धियों के लिए सुखदायिनी हो और इस सब प्रजा के अर्थ सुख–पद और इनके पोषण के अर्थ तत्पर हो।"[18]

स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य से पत्नियों के निम्नलिखित प्रमुख कर्त्तव्य ज्ञात होते हैं– "स्त्रियों को चाहिए कि अपने–अपने घर में ऐश्वर्य की उन्नति, श्रेष्ठ रीति और दुष्टों का ताड़न निरन्तर किया करें।'

'जो कन्याएँ विद्या को पढ़कर ग्रहाश्रम को प्राप्त हों वे सत्कार करने योग्यों का सत्कार कर और तिरस्कार करने योग्यों का तिरस्कार कर पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ावें।'

'हे स्त्रियों! जैसे प्रातर्वेला सम्पूर्ण प्राणियों को जगाकर कार्यों में प्रवृत्त करती है, वैसे ही पतिव्रता होकर पतियों के साथ अनुकूलता से वर्त प्रशंसित होओ।'

'जो स्त्री पति को पुरुषार्थी, धार्मिक, लोभी और कामातुर जानकर दोषों के निवारण और गुणों के ग्रहण करने के लिए प्रेरणा करती है, वही पति आदि की कल्याण करने वाली होती है।'

'जैसे प्रभात वेला अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती है, वैसे ही विद्यायुक्त स्त्रियाँ अपने उत्तम स्वभाव से दोषों का निवारण करके उत्तम प्रकार संस्कार युक्त अन्न आदि से सबकी उत्तम प्रकार रक्षा करें।'

'जो स्त्रियाँ विदुषी होकर सत्य, धर्म और उत्तम स्वभाव को स्वीकार करके मेघ के सदृश सुखों की वृष्टि करती हैं, वे बड़े सुख को प्राप्त होती हैं।'

'वही प्रशंसित स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करें।'

हे स्त्रियों! तुम चतुरता से सब पति आदि को सन्तोष देकर, घर के कार्यों को यथावत् अनुष्ठान कर, अति विषयासक्ति को छोड़ और सुन्दर शोभायुक्त होकर सदैव पुरुषार्थ से धर्मयुक्त कामों को सूर्य के समान प्रकाशित करो।"[19]

स्वामी दयानन्द ने स्त्री के कर्त्तव्य के साथ ही एक विशेष गुण बताया है जो आज के समय में महिलाएँ उस गुण से पूरे विश्व में अपना नाम रोशन कर रही हैं वह है प्रबंधन का गुण स्त्री एक कुशल प्रबन्धक होती है जो स्त्री घर का प्रबन्धन ठीक कर सकती है वह पूरे विश्व में किसी भी कार्य में अपनी प्रबन्धन दक्षता को प्रकाशित कर सकती है– "घर के काम में कुशल स्त्री को चाहिए कि घर के, भीतर के सब काम अपने अधीन रखके ठीक–ठीक बढ़ाया करे।"[20] इसमें अधिकारी एवं प्रबन्धक दोनों के गुण दयानन्द ने बताए हैं क्योंकि जो घर में सुशासन कर सकता है वही बाहर भी कार्य करने में सक्षम है। पति–पत्नी का पारस्परिक व्यवहार–स्वामी दयानन्द ने वेद व मनुस्मृति के वचन उद्धृत करते हुए गृहस्थों का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया है कि **पति–पत्नी का पारस्परिक व्यवहार अत्यन्त प्रेममय और मधुर होना चाहिए।**

गृहाश्रम के लिए मनुस्मृति का उदाहरण देते हुए लिखते हैं–

"सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।। **–मनु.।।**

हे गृहस्थां! जिस कुल में भार्या से पति प्रसन्न और पति से भार्या सदा प्रसन्न रहती है, उसी कुल में निश्चित कल्याण होता है और दोनों परस्पर अप्रसन्न रहें तो उस कुल में नित्य कलह वास करता है।

स्त्रियां तु रोचमानायं सर्वं तद् रोचते कुलम्।

तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।। **–मनु.।।**

यदि पुरुष स्त्री को प्रसन्न नहीं करता, तो उस स्त्री के अप्रसन्न रहने से सब कुलभर अप्रसन्न=शोकातुर रहता है और जब पुरुष से स्त्री प्रसन्न रहती है, तब सब कुल आनन्द रूप दीखता है।"[21]

अपने वेद भाष्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस सम्बन्ध में विचार प्रकट किये हैं उनमें से अत्यल्प यहाँ देना अनुचित न होगा।

"जैसे रात्रि में नक्षत्रलोक चन्द्रमा के साथ और प्राण शरीर के साथ वर्तते हैं, वैसे विवाह करके स्त्री–पुरुष आपस में वर्ता करें।'

'जैसे चक्र के समान घूमते हुए रात्रि–दिन परस्पर संयुक्त वर्तते हैं, वैसे विवाहित स्त्री–पुरुष अत्यन्त प्रेम के साथ वर्ता करें।"[22]

स्वामी दयानन्द ने पति–पत्नी एवं परिवार में सुख कैसे बढ़े इसके उपाय बताये हैं आजकल पारिवारिक कलह इतने बढ़ गये हैं कि सामुहिक परिवार नष्ट हो चुके हैं। एक दूसरे का सम्मान एवं भावना को समझना ठोस परिवार का सूत्र है।

"स्त्री–पुरुष ऐसे व्यवहार में वर्तें कि जिससे उनका परस्पर भय और उद्वेग नष्ट हो, आत्मा का दृढ़ उत्साह, प्रीति, गृहाश्रम व्यवहार की सिद्धि और ऐश्वर्य बढ़े। वे दोषों तथा दुःखों को दूर कर चन्द्रमा के समान एक–दूसरे के आह्लादक हों।'

'पूर्ण युवा पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कुमारी कन्या के साथ विवाह करे, उसका अप्रिय कभी न करे। कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस कुमार ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे, उसका अनिष्ट कभी मन से न विचारे। इस प्रकार दोनों परस्पर प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य सम्भालें।'

'स्त्री की सम्मति के बिना पुरुष और पुरुष की आज्ञा के बिना स्त्री कुछ भी काम न करे।' 'जैसे पुरुष स्त्री को अच्छे कर्मों में नियुक्त करे, वैसे स्त्री भी अपने पति को अच्छे कर्मों में प्रेरणा करे, जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े।"[23]

पति–पत्नी के सम्मिलित कर्त्तव्य – विवाह के पश्चात् स्त्री–पुरुष को अपने–अपने ब्राह्मणादि वर्ण के अनुसार कर्त्तव्य कर्म करने होते हैं, जिनमें पंच यज्ञ आदि सम्मिलित हैं। यहाँ उस

विस्तार में न जाकर स्वामी दयानन्द के वेद भाष्य में प्रतिदिन कतिपय कर्त्तव्यों का उल्लेख किया जा रहा है– "जैसे नदी और समुद्र मिलकर रत्नों को उत्पन्न करते हैं, वैसे स्त्री–पुरुष प्रशस्त सन्तानों को उत्पन्न करें।'

'यदि प्रसन्नता से विवाह किये हुए स्त्री और पुरुष विद्या, बुद्धि और उत्तम वाणी से युक्त होकर इस संसार में गृहाश्रम में स्थित होकर प्रेम से उत्पन्न होने वाले पुत्रों को उत्पन्न कर, पालन कर और उत्तम शिक्षा से युक्त करके तथा उनका स्वयंवर विवाह कराके उन्हें निवास कराते हैं, तो वे इस गृहाश्रम में मोक्ष के सदृश सुख का अनुभव करते हैं।'

'हे स्त्री–पुरुषों! आप लोग यदि रात्रि के चौथे पहर में उठ और आवश्यक कृत्य करके वाहन वा पैरों से सूर्योदय से पहले शुद्धवायु वाले देशों में भ्रमण करें तो आप लोगों को रोग कभी न प्राप्त होवें, जिससे बलिष्ठ और दर्घायु होकर इस गृहाश्रम में बड़े आनन्द की उन्नति करें। जहाँ स्त्री पुरुष बुद्धिमान और पुरुषार्थी होकर सत्कर्मों का आचरण करते हैं, वहाँ सारी लक्ष्मी विराजमान होती है।"[24]

स्वामी दयानन्द ने एक–एक मंत्र में बड़ा ही गूढ़ रहस्य स्थापित किया है जिससे समाज सुधार का कार्य आगे बढ़े और स्त्रियों की समाज में भूमिका बढ़े।

"इस संसार में तुल्य गुण, कर्म, स्वभाव वाले स्त्री–पुरुष सूर्य के समान कीर्ति से प्रकाशमान और पुरुषार्थी होकर धर्म से ऐश्वर्य को निरन्तर संचित करें।'

'सदुत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहाश्रम का आचरण करने वाली स्त्रियाँ अपनी सहेलियों को तथा गृहाश्रमी पुरुष अपने इष्ट–मित्र और बन्धुजन आदि को बुलाकर भोजन आदि से तथा योग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर उपदेश, शास्त्रार्थ तथा विद्या–वाग्–विलास को करें।'

'गृहस्थों को उचित है कि यथा योग्य रीति से गृहाश्रम में रह के अच्छे गुण–कर्मों का धारण, ऐश्वर्य की उन्नति तथा रक्षा, प्रजापालन, सुपात्रों को दान, दुःखियों का दुःख छुड़ाना, शत्रुओं का जीतना और शरीरात्मबल में प्रवृत्ति आदि निरन्तर धारण करें।'

गृहस्थों को चाहिए कि अति प्रयत्न के साथ भूगर्भादि विद्याओं को प्राप्त कर, जितेन्द्रिय तथा परोपकारी होकर, उत्तम धर्म से गृहाश्रम के व्यवहारों को उन्नति देकर सब प्राणियों को सुखी करें।

'इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम–नियमों का

सेवन और उत्तम सहाय के बिना किसी मनुष्य से गृहाश्रम नहीं धारा जा सकता। इनके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिए इसका पालन सबको बड़े यत्न से करना चाहिए।'

'विवाहित स्त्री–पुरुषों को चाहिए कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत को प्रकाशित करता है, वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होकर घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रखे।'

'विवाह के समय स्त्री और पुरुष व्यभिचार–त्याग की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का संग सर्वथा छोड़, आपस में भी अति विषयासक्ति को छोड़, ऋतुगामी होके, परस्पर प्रीति के साथ पराक्रमी सन्तानों को उत्पन्न करें। व्यभिचार के समान स्त्री या पुरुष के लिए अप्रिय, आयु का नाशक, निन्दायोग्य कर्म दूसरा कोई भी नहीं है। इसलिए इस व्यभिचार–कर्म को सर्वथा छोड़ और धर्माचरण करने वाले होके दीर्घायुष्य के सुख को भोगें।'

'ब्रह्मचर्य के साथ विद्या पढ़ विवाह किये हुए स्त्री–पुरुषों को चाहिए कि वे बहुश्रुत हों। सत्यवक्ता, आप्तजनों से सुने बिना पढ़ी हुई भी विद्या फल दायक नहीं होती। इसलिए सदैव सज्जनों का उपदेश सुनकर सत्य को धारण करें और मिथ्या को छोड़ देवें।' 'स्त्री–पुरुषों को चाहिए कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रिय आचरण, शास्त्र–श्रवण और औषधि आदि का सेवन करें और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें।"[25]

इन उद्धरणों से पति–पत्नी के निम्न कर्त्तव्य पर प्रकाश पड़ता है– श्रेष्ठ संतान उत्पन्न कर उनका यथोचित पालन, शिक्षण कर स्वयंवर विवाह कराके उन्हें कार्य क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना, दुष्ट आचरण का त्याग, सदाचरण में प्रवृत्ति, विद्या की उन्नति, आलस्य का त्याग, पुरुषार्थ, शिल्प विषयक उन्नति प्रातः भ्रमण आदि आरोग्य कारक उपाय अपनाना, ऋतुगामिता, धर्म से ऐश्वर्योपार्जन, अतिथि सत्कार, सत्पात्रों को दान, दीन–दुःखियों की सहायता, शत्रु–विजय, शारीरिक–आत्मिक बल की वृद्धि, जितेन्द्रियता, सज्जन–संग, यम–नियम–पालन, पवित्रता, व्यभिचार त्याग, बहुश्रुतता, यज्ञानुष्ठान।

दो विशिष्ट प्रतिज्ञाएँ–विवाह संस्कार में वधू–वर पाणिग्रहण आदि के मंत्रों से परस्पर कुछ प्रतिज्ञाएँ करते हैं उनमें पारस्परिक सौभाग्य–वृद्धि की प्रतिज्ञा, धर्ममार्ग पर चलने–चलाने की प्रतिज्ञा, परस्पर साहचर्यपूर्वक दीर्घ जीवन के यत्न की प्रतिज्ञा, ऐश्वर्य–वस्त्र–आभूषण

आदि प्रदान करने की प्रतिज्ञा, प्रजावृद्धि की प्रतिज्ञा, परस्पर चोरी से खान–पान आदि न करने की प्रतिज्ञा तथा एक–दूसरे में रूचि लेने एवं सौहार्द रखने की प्रतिज्ञा है। ये सब प्रतिज्ञाएँ पति–पत्नी के पारस्परिक व्यवहार से सम्बन्ध रखती हैं। यजुर्वेद भाष्य में स्वामी दयानन्द विवाह काल में वधू–वर से दो अन्य प्रतिज्ञाएँ भी कराने का निर्देश देते हैं। वे प्रतिज्ञाएँ परस्पर से सम्बन्ध न रखकर दूसरों से सम्बन्ध रखती हैं। **पहली प्रतिज्ञा** – "हम दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि जैसे अपने हित के लिए आचरण करेंगे, वैसे ही अपने माता–पिता, आचार्य और अतिथियों के सुख के लिए भी निरन्तर बर्ताव करेंगे।"[26]

दूसरी प्रतिज्ञा–"हम दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि जिस ब्रह्मचर्य से और जिस विद्या से हम दोनों स्त्री–पुरुष कृतकृत्य होते हैं, उस ब्रह्मचर्य और उस विद्या का सदैव प्रचार करेंगे और पुरुषार्थ से धनादि को बढ़ाकर उसे सन्मार्ग में व्यय करेंगे।"[27]

प्रथम प्रतिज्ञा से विवाहित स्त्री–पुरुषों का यह कर्त्तव्य सूचित होता है कि उन्हें अपने हित के साथ–साथ अन्य सबके हित की भी चिन्ता करनी चाहिए। दूसरी प्रतिज्ञा यह बताती है कि जिस बात से वे लाभ प्राप्त करें, उसका उन्हें अन्यों के कल्याण के लिए सर्वत्र प्रचार करना चाहिए।

स्त्री शिक्षा – स्वामी दयानन्द ने स्त्री–शिक्षा पर बहुत बल दिया है प्राचीन काल में स्त्रियाँ शिक्षित होती थीं, इस ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए उपदेशमञ्जरी (पूना प्रवचन) के तृतीय प्रवचन में वे कहते हैं– "पूर्वकाल में आर्य लोगों में स्त्रियाँ उत्कृष्ट रीति से पढ़ती थीं। आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखो, स्त्रियाँ आजन्म ब्रह्मचर्य–व्रत धारण कर रहती थीं और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरुगृह में वास इत्यादि संस्कार होते थे। गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि बड़ी–बड़ी सुशिक्षित स्त्रियाँ होकर बड़े–बड़े ऋषि मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं।"[28]

स्वामी दयानन्द के समय स्त्री–शिक्षा का प्रचार नाम मात्र को भी नहीं था। सत्यार्थ प्रकाश में प्रश्न उठाया गया है– क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है, जैसा यह निषेध है 'स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः' स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है। इसका उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द लिखते हैं– "सब स्त्री और पुरुष, अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है, किसी प्रामाणिक ग्रन्थ

की नहीं।"[29] पुनः स्त्री शिक्षा के विरोधियों को फटकारते हुए कहते हैं– "और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है।"[30]

स्वामी जी अध्ययन का अर्थ या पर्याय ही यह बताते हैं कि– "अध्ययन–अध्ययन अर्थात् लड़कों को पढ़ाना, वैसे ही लड़कियों को पढ़ाना यह है।"[31]

दयानन्द लड़के–लड़कियों सबकी शिक्षा को अनिवार्य बताते हैं। जो माता–पिता उन्हें शिक्षा से वंचित रखना चाहें उन्हें राजदण्ड मिलना चाहिए–ऐसा कहते हैं– "इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो।"[32] वे भाष्य में लिखते हैं कि राजा ऐसा यत्न करे जिससे सब बालक और कन्याएँ ब्रह्मचर्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हो सत्य, न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें।"[33] इसी प्रकार आगे लिखा है कि– "राजा को प्रयत्नपूर्वक अपने राज्य में सब स्त्रियों को विदुषी बनाना चाहिए।"[34] दयानन्द भाष्य के निम्न लिखित वचन भी द्रष्टव्य है, जिनसे यह स्पष्ट होता है कि नारी–शिक्षा की स्वामी जी को कितनी चिन्ता थी वे शिक्षित नारी को ही समाज का सुदृढ़ प्रतिरूप मानते थे।

"विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पण्डित बनावें, जिससे सब विद्या के फल को प्राप्त होकर सुमति हों।"

'जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी उन विदुषियों से ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबको विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें।'[35]

"यदि माता–पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके, फिर विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक रखकर पढ़वावें, तब वे कन्या और पुत्र सूर्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों।"[36]

"जैसे माताएँ सन्तानों को दूध आदि देकर बढ़ाती हैं, वैसे विदुषी स्त्रियाँ और विद्वान् पुरुष कुमारियों और कुमारों को विद्या और अच्छी शिक्षा से बढ़ावें।"[37]

"गुरु और गुरु पत्नी को चाहिए कि वेद और उपवेद तथा वेद के अंग और उपांगों की शिक्षा से देह, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे–अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।"[38]

स्वामी दयानन्द के काल में तत्कालीन पण्डित स्त्रियों को वेदाध्ययन एवं किसी भी प्रकार की शिक्षा नहीं देते थे। इसलिए सत्यार्थ प्रकाश में प्रश्न उठाया गया है–क्या स्त्री लोग

भी वेदों को पढ़ें ? स्वामी जी उत्तर देते हैं– "अवश्य; देखो ! श्रौतसूत्रादि में– **इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्** अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े (ऐसा लिखा है)। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर सके ? भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं– यह शतपथब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। भला ! जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्य प्रति देवासुर–संग्राम घर में मचा रहे, फिर सुख कहाँ ?"[39]

स्त्रियों और पुरुषों दोनों के लिए विस्तृत पाठ्यक्रम की रूपरेखा स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश व संस्कार विधि के अन्तर्गत दी है, जिसमें समस्त वेद, वेदांग, उपवेद और षड्दर्शन आदि आ जाते हैं। स्त्रियों के लिए न्यून से न्यून का विधान करते हुए स्वामी जी लिखते हैं– "ब्राह्मणी (को सब विद्या) क्षत्रिया को सब विद्या (और युद्ध तथा राजविद्याविशेष), वैश्या को व्यवहार विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून–से–न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए, वैसे स्त्रियों को व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या (और वेदादि शास्त्र–विद्या) तो अवश्य ही सीखनी चाहिए, क्योंकि इनके सीखे विना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्तमान (बर्ताव), यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन, वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्यों को जैसा चाहिए वैसा करना–कराना, वैद्यकविद्या से औषधवत् अन्न–पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकती। जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें। शिल्प विद्या के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र–आभूषण आदि का बनाना–बनवाना, गणितविद्या के विना सब का हिसाब समझना–समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म से कभी नहीं बच सके।"[40] भाष्य में कन्याओं के लिए पाक विधि सीखने का भी विधान किया है– "लड़के पुरुषों की और लड़कियाँ स्त्रियों की पाठशाला में जा ब्रह्मचर्य की विधिपूर्वक सुशीलता से विद्या और भोजन बनाने की क्रिया सीखें।"[41]

स्त्रियाँ अध्यापिका बने – महर्षि दयानन्द का विचार था कि नारियों को विदुषी बनकर कन्या–गुरुकुलों और कन्या पाठशालाओं में कन्याओं को शिक्षित करना चाहिए। कन्या पाठशालाओं में पुरुष अध्यापक रखने का वे निषेध करते हैं– "जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों, वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें।"[42] जो गुण कर्मानुसार ब्राह्मण हैं, उनके लिए वे निर्देश देते हैं कि– "जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कों को पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियों को पढ़ावे। नानाविध उपदेश और वृक्तृत्व करके उनको विद्वान् करें।"[43]

अपने वेद भाष्य में महर्षि दयानन्द ने लिखा है– "सब विद्वान् जन अपनी–अपनी विदुषी स्त्री के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि तुम्हें सबकी कन्याओं को पढ़ाना चाहिए और सब स्त्रियों को सुशिक्षित करना चाहिए। अध्यापक जन पुत्रों को और अध्यापिकाएँ पुत्रियों को ब्रह्मचर्य–नियम में लगाकर उनके दूसरे विद्या–जन्म को सम्पन्न कर जीवन के उपाय अच्छी प्रकार सिखाकर समय पर उनके माता–पिता को सौंपे।"[44] कन्या का सुख शिक्षायें हैं। "जो स्त्रियों के बीच में विदुषी स्त्री हो, वह सब स्त्रियों को सदा सुशिक्षा करे जिससे स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हो। जैसे प्रभात–बेला जागते हुए मनुष्यों को सुख देने वाली होती है, वैसे ही विदुषी स्त्रियाँ कुमारी विद्यार्थिनी कन्याओं के विद्या, सुशिक्षा और सौभाग्य को बढ़ाने के सदैव इन कन्याओं को आनन्दित किया करें।"[45] स्त्रियों की शिक्षा के बारे में दयानन्द ने उस काल के सारे भ्रम तोड़ दिये। उन्होंने स्त्री शिक्षा को बड़े ही गंभीरता से लिया है। अधापिकाओं को दयानन्द ने सबसे महान् माना। "जो स्त्रियाँ समस्त सांगोपांग वेदों को पढ़के पढ़ाती हैं, वे सब मनुष्यों की उन्नति करती हैं। जो भूमि के तुल्य क्षमाशील, लक्ष्मी के तुल्य शोभती हुई, जल के तुल्य शान्त, सहेली के तुल्य उपकार करने वाली विदुषी अध यापिकाएँ हों, वे सब कन्याओं को पढ़ावे और सब स्त्रियों को उपदेश से आनन्दित करें।"[46]

स्त्रियाँ यदि अध्यापन करेंगी तो वे घर का कार्य कैसे कर पाएँगी, इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती का कथन है कि वे आवश्यक होने पर परिचारिकाएँ रख सकती हैं। "श्रेष्ठ स्त्रियों को उचित है कि वे अच्छी शिक्षित चतुर दासियों को रखें, जिससे सब पाक आदि की सेवा ठीक–ठीक समय पर होती रहे।"[47] इसी मन्त्र के भाष्य में परिचारिका के गुण भी बताए गए हैं कि वह प्रीतियुक्त, अच्छे केशों वाली, सुन्दर श्रेष्ठ कर्म करने वाली और अच्छे स्वादिष्ट भोजन के पदार्थ बनाने वाली होनी चाहिए। आज के युग में जो स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में है तथा कन्या गुरुकुलों, कन्या पाठशालाओं और कन्या महाविद्याालयों विश्वविद्यालयों में अध्यापिकाओं की एक बड़ी संख्या छात्राओं के चरित्र–निर्माण और अध्यापन में लगी हुई है यह दयानन्द का संदेश एवं अथक प्रयास का ही परिणाम है।

स्त्रियाँ युद्ध क्षेत्र में– क्षत्रिय स्त्रियों को धनुर्वेद की शिक्षा भी दी जानी चाहिए इस विषय में इतिहास का साक्ष्य देते हुए स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि स्त्रियाँ किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से कदापि कम नहीं हैं– "देखो! आर्य्यावत्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छी प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकतीं ? और युद्ध कर सकतीं।"[48] वेद भाष्य में स्वामीजी ने लिखा है कि– "जो रानी धनुर्वेद जानने वाली, शस्त्रास्त्र चलाने वाली

है, उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिए।"[49] राजा की अनुपस्थिति में रानी सेनापतित्व का कार्य संभाले, ऐसा निर्देश करते हुए लिखते हैं। "संग्राम में, राजा के अभाव में रानी सेनापति हों और जैसे राजा युद्ध कराने के लिए वीरों को प्रेरणा दें और उत्साहित करे, वैसे ही वह भी आचरण करे।"[50] पुरुषों के समान स्त्रियों को भी युद्धविद्या सिखाने की प्रेरणा करते हुए लिखते हैं– "सभापति आदि को चाहिए कि जैसे युद्ध विद्या से पुरुषों को शिक्षित करें, वैसे ही स्त्रियों को भी शिक्षित करें। जैसे वीर पुरुष युद्ध करे, वैसे स्त्रियाँ भी करें।"[51]

स्त्रियाँ राजकाज एवं न्याय विभाग में – राजा और राजपुरुषों की स्त्रियाँ राज्य के विभिन्न विभागों में तथा न्याय–विभाग में भी कार्य करें, ऐसा स्वामी जी को अभिप्रेरित है। "राजपुरुष आदि को चाहिए कि आप जिस–जिस राज्य–कार्य में प्रवृत्त हों, उस–उस कार्य में अपनी–अपनी स्त्रियों को भी तैयार करें। जो–जो राजपुरुष पुरुषों का न्याय करे, उस उसकी पत्नी स्त्रियों का न्याय किया करे। राजाओं की स्त्रियों को चाहिए कि सब स्त्रियों के लिए न्याय और अच्छी शिक्षा देवें। स्त्रियों का न्यायादि पुरुष न करें, क्योंकि पुरुषों के सामने स्त्री लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ नहीं सकती।"[52] "जहाँ शुभ कर्मस्वभावयुक्त राजा पुरुषों का और वैसे ही गुणों वाली रानी स्त्रियों का न्याय और पालन करें, वहाँ सबकाल में विद्या, आनन्द, आयु और ऐश्वर्य बढ़ेंगे।"

रानी राजा के प्रति कहे कि मैं आपसे न्यून नहीं हूँ। जैसे आप पुरुषों के न्यायधीश हो, वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करने वाली होती हूँ। जैसे पहले राज–महाराजों की स्त्रियाँ प्रजास्थ स्त्रियों का न्याय करने वाली हुई, वैसे मैं भी होऊँ।[53] "जो राजकुल की स्त्रियाँ पृथिवी आदि के समान धीरता आदि गुणों से युक्त हैं, वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं।"[54] इससे यह सूचित होता है कि स्त्रियाँ राज्य–संचालन भी कर सकती हैं। "जैसे ब्राह्मण पुरुषों और ब्राह्मणी स्त्रियों को पढ़ावें, वैसे ही राजा पुरुषों का और रानी स्त्रियों का न्याय तथा उन्नति सदा किया करें।"[55]

माता का महत्त्व – स्वामी दयानन्द अपने ग्रन्थों में कई स्थानों पर 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद' इस वचन को उद्धृत करते आये हैं। "जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता, इसलिए (मातृमान्) अर्थात् प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्। धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर

जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश न करे'।"[56] वेद भाष्य में भी माता के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार प्रकट करते हैं। "माता की शिक्षा से ही सन्तान उत्तम होते हैं और प्रकार से नहीं।' 'माता सूर्य के सदृश्य जिन अपने सन्तानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है, वे सन्तान उत्तम होते हैं।"[57] जन्म से पाँचवें वर्ष तक माता का ही शिक्षा का क्षेत्र हैं, ऐसा दयानन्द ने लिखा है माता किस प्रकार की शिक्षा करें यह बताया है कि– "बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हो और किसी अंग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे, तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे। जब वह कुछ–कुछ बोलने और समझने लगे, तब सुन्दर वाणी और बड़े–छोटे, मान्य माता–पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण उनसे वर्तमान (बर्ताव), उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करे, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होके सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय हों और सत्संग में रूचि करे, वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या–द्वेषादि न करें। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदनत्व आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें।"[58] इसी प्रकार वेद भाष्य में लिखते हैं कि– "माता जनों को चाहिए कि अपने सन्तानों को बाल्यावस्था में अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् कर उनके साथ अतुल सुख भोगें।"[59] "माता को चाहिए कि अपनी सन्तानों को अच्छी शिक्षा देवें, जिससे ये परस्पर प्रीतियुक्त और वीर होवें और जो करने योग्य है वहीं करें, न करने योग्य कभी न करें।"[60] स्वामी दयानन्द ऐसी माताओं को सभी के लिए सत्करणीय मानते हैं जो अपने सन्तानों को सत्यभाषण, सत्यविद्या आदि से युक्त कर विद्वान् बनाती हैं। "जो स्त्री (माता) प्रभात वेला के समान, सूर्य के समान वा विद्वान् के समान अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्वान् करती है, वह सबके सत्कार करने योग्य है। जो स्त्रीजन (माताएँ) सत्यभाषण युक्त वाणी को और सर्वोत्तम सत्यविद्या को सन्तानों के लिए देती हैं वे देवी विदुषी स्त्रियाँ बहुत मान करने योग्य होती हैं।"[61] इसलिए सत्यार्थ प्रकाश में पंचायतन पूजा के वास्तविक पूजनीय पाँच देव कौन से हैं यह गिनाते हुए दयानन्द ने स्पष्ट किया है कि– "प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों को तन–मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना।"[62]

नारी का सम्मान – स्वामी दयानन्द इसके प्रबल पक्षपाती थे कि नारियों को घर में और समाज में अत्यन्त सम्मान की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। इसलिए सत्यार्थ प्रकाश में मनु के श्लोक का उदाहरण देते हुए लिखते हैं–

"पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। – मनु.।।

पिता, भ्राता, पति और देवर को योग्य है कि अपनी कन्या, बहिन, स्त्री और भौजाई आदि स्त्रियों की सदा पूजा करें, अर्थात् यथायोग्य मधुर भाषण, भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि से उन्हें प्रसन्न रक्खें, जिन्हें कल्याण की इच्छा हो वे स्त्रियों को क्लेश कभी न देवें।

जिस कुल में नारियों की पूजा, अर्थात् सत्कार होता है, उस कुल में दिव्य गुण, दिव्य भोग और उत्तम सन्तान होते हैं और जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती, वहाँ जानों उनकी सब क्रिया निष्फल हैं।.....

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च।। –मनु.।।

इस कारण ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाले पुरुषों को योग्य है कि सत्कार के अवसरों और उत्सवों में स्त्रियों की भूषण, वस्त्र, खान–पान आदि से सदा पूजा, अर्थात् सत्कार कर प्रसन्न रक्खें।"[63]

वधू के प्रति घर वालों का कैसा व्यवहार होना चाहिए, इस विषय में स्वामी जी लिखते हैं– "अपने घर आके पति, सास, श्वशुर, नणन्द, देवर, देवराणी, ज्येष्ठ–जेठाणी आदि कुटुम्ब के मनुष्य वधू की पूजा, अर्थात् सत्कार करें। सदा प्रीतिपूर्वक परस्पर वर्तें और मधुरवाणी वस्त्र, आभूषण आदि से सदा प्रसन्न और संतुष्ट वधू को रक्खें।"[64]

पति और पत्नी दोनों एक–दूसरे के सम्मान के योग्य हैं, इस "स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।"[65] "स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए स्वपत्नी पूजनीय है।"[66] "जो पुरुष स्त्रियों का और जो स्त्री पुरुषों का सत्कार करती हैं, उनके कुल में सब सुख निवास करते हैं और दुःख भाग जाते हैं।"[67]

"पति स्त्री का और स्त्री पति का सदा सत्कार करे। इस प्रकार आपस में प्रीतिपूर्वक मिल के ही सुख भोगें।"[68]

इस प्रकार नारी के विषय में स्वामी दयानन्द के समस्त विचार उसे एक गरिमामयी पद पर प्रतिष्ठित करने वाले हैं। इन वेदमूलक विचारों का प्रभाव शनै–शनै समाज पर पड़ा

है और इनसे नारी–जाति के उत्थान में बड़ी सहायता मिली है। दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने भी उनके विचारों से अनुप्राणित होकर नारी को समाज में उत्कृष्ट स्थान के लिए सराहनीय प्रयास किया है। आज बाल–विवाहों की संख्या बहुत कम रह गई है। आर्य समाज के ही एक स्तम्भ स्वर्गीय श्री हरविलास शारदा के प्रयत्न से सन् 1929 ई. में बाल–विवाह विरोधी कानून पारित हुआ था। विधवाओं की दशा भी सुधरी है आज वर–वधू के चुनाव में लड़की की सम्मति उपेक्षा योग्य नहीं रह गई है। स्त्रीशिक्षा का भी बहुत प्रसार हुआ है और आज के युग में नारियाँ विविध विधाओं तथा वेद–वेदांगों में पुरुषों के समान ही वैदुष्य प्राप्त करती है। यज्ञ के अधिकार से भी वे वंचित नहीं हैं। स्त्रियों के लिए उन्नति के सब द्वार खुले हुए हैं। इस नारी जागरण और नारी उत्थान के लिए देश और समाज निश्चय ही दयानन्द का ऋणी है।

वस्तुतः स्त्रियों को स्वतंत्रता देने तथा उनको बराबर का अधिकार दिलाने के लिए दयानन्द ने बड़ी सामाजिक यातनाओं को सहन किया है कई बार इस सुधार के कार्य को रोकने के लिए जो राष्ट्र विरोधी थे उन्होंने दयानन्द को विष तक भोजन में या अन्य वस्तु में मिलाकर दिया लेकिन दयानन्द रुके नहीं। मध्यकाल में जो नारी का स्वरूप, स्थिति एवं उसके प्रति जो अवधारणाएँ लोगों की थी उसे दयानन्द ने प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा निराधार एवं असत्य साबित कर दिखाया तथा पद दलित समझे जाने वाली स्त्री को शीर्श आसन पर बैठाने का अनथक प्रयास किया। नारी को समस्त सम्मान एवं विशिष्ट अधिकार तो मिले किन्तु दयानन्द के बताये गृहाश्रम के नियमों का पालन नहीं करने के कारण आज के युग में बड़ा दुःख फैलता जा रहा है और वह है स्वच्छन्दता का अतिक्रमण। इसके कारण नित्य प्रतिदिन स्त्रियों का बलात्कार के बाद हत्या एवं हजारों गर्भ गिराये जाना है इसमें देश का प्रत्येक नागरिक तथा मुख्यतः सरकार जिम्मेदार है। संचार के सर्वसुलभ संसाधनों पर नियंत्रण न होना अश्लील दृश्यों की ओर युवा स्त्री–पुरुषों की लगाम न होना चिन्ता और देश अवनति का विषय है।

अब तक के अनुसंधान में हम यह समझ चुके हैं कि नारी के प्रति दयानन्द की दृष्टि क्या है और वे नारी को किस रूप में स्थापित करना चाहते थे किन्तु नारी के स्वरूप से ही समाज का स्वरूप अस्तित्व में आता है और समाज के स्वरूप से ही राष्ट्र के स्वरूप की पहचान विश्व मानचित्र पर आँकी जाती है इसलिए महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों और रचनाओं पर अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है, इधर परिवार की मुख्य नारी है तो उधर विश्व में राष्ट्र को पहचान दिलाने वाली भी नारी ही है क्योंकि नारी ही वह इकाई है

जो व्यक्तित्व निर्माण करने में प्रथम सोपान है इस आधार पर हमें दयानन्द के विचारों से राष्ट्र के शीर्षस्थ पद का प्रथम प्रवेश द्वार जो गृह है गृहाश्रम है उसे पुनः विस्तृत समझना पड़ेगा। यदि गृहस्थाश्रम में सुख चैन है तो पुरुष व स्त्री समाज व राष्ट्र की सोचेंगे और यदि पहले में ही विफल होकर जीवन समाप्त हो जाये तो राष्ट्र तक कैसे पहुँचा जा सकता है। गृहस्थ हमारे जीने के लक्ष्य की प्रथम सीढ़ी है जिसे स्त्रियाँ ही पकड़े रखती हैं नहीं तो सब धड़ाम–धड़ाम गिरकर नष्ट हो जाते हैं। स्वामी दयानन्द को रात–दिन सबसे अधिक चिन्ता राष्ट्र के उत्थान की थी और राष्ट्र के उत्थान की बेचैनी से ही उन्होंने अपना सारा जीवन सुधार के लिए लगा दिया। उन्हें पता था कि यह सत्य है कि राष्ट्र का उत्थान नारी के उत्थान के बिना कदापि नहीं हो सकता। इसलिए उन्होंने नारी के प्रति तत्कालीन बेड़ियों को काटने का प्रण किया और ऐसे उपाय बताए जिससे सबका कल्याण संभव हो। ऐसी चाबी को ढूँढा जो हर ताले को खोल सके और वह चाबी है स्वस्थ गृहाश्रम।

गृहस्थाश्रम – आश्रमों की दृष्टि से दूसरा होने पर भी गृहस्थ की महत्ता असन्दिग्ध है। गौतम धर्म सूत्र में गृहस्थ को सब आश्रमों का मूल कहा गया है। क्योंकि अन्य आश्रम प्रजातन्तु का विस्तार नहीं करते।[69] अतः यह एक मात्र गृहस्थ को ही अपने आचार्य द्वारा अनुमोदित मानते हैं।[70] यह वर्णन चारों आश्रमों में गृहस्थ की महत्ता का द्योतक है। मनु भी गृहस्थ की सागर से उपमा देते हैं जिसमें सब नद तथा नदी आश्रय पाते हैं।[71]

वही सबका अन्न – धन से पालन करता है अतः वह सबसे ज्येष्ठ आश्रम है।[72] तैत्तरीय ब्राह्मण ने अपत्नीक को अयज्ञिय कहा है।[73] शतपथ ब्राह्मण कहता है–स्त्री, पुरुष का अर्धभाग होती है। जब तक पुरुष स्त्री को नहीं पाता तब तक उसमें पूर्णता नहीं आती।[74] ऐतरेय आरण्यक की मान्यता है–पुरुष पत्नी को पाकर अपने को पूर्ण सा समझने लगता है।[75]

गृहस्थ से बढ़कर धर्म न तो देखा है और न सुना है। वशिष्ठादि ज्ञानी आचार्यों ने भी इसका आश्रय लिया था। मनु तो मोक्ष तथा संसार सुख के इच्छुक को गृहस्थाश्रम को प्रयत्नपूर्वक धारण करने को कहते हैं।

गृहाश्रम गरिमावर्धक है। महर्षि–दयानन्द का मत है कि– "इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते ? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है। और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है।"[76]

महर्षि ने भगवान् की भाँति गृहाश्रम को भी सोलह कलाओं से परिपूर्ण परम ऐश्वर्य देने वाला बतलाया है।[77] इसी मंत्र के भावार्थ में महर्षि दयानन्द लिखते हैं– गृहाश्रम के अधीन ही सब आश्रम हैं। वे वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहार से सेवन किये हुए अभ्युदय तथा निःश्रेयस सुख सम्पन्नता के लिये होते हैं। अतः परमैश्वर्य की प्राप्ति के लिये गृहाश्रम का सेवन करना ही उचित है।[78] अतः जिस गृहाश्रम से इह लोक का सुख तथा परलोक का आनन्द सुलभ कहा है इससे अधिक इस आश्रम की सर्वांगीणता तथा महिमा क्या हो सकती है।

गृहाश्रमी के भेद – महर्षि दयानन्द गृहस्थों के भेदोपभेद को स्वीकार नहीं करते किन्तु 'नारद परिव्राजकोपनिषद' ने 'षड्विधं गार्हस्थ्यम्' लिखकर गृहस्थ के छः भेद माने हैं, जिनका नाममात्र से उल्लेख ही किया है किन्तु आश्रमोपनिषद् ने नामोल्लेखपूर्वक गृहस्थों के चार भेद बतलाए हैं जो ये हैं–

1. **वार्ताकवृति**– कृषि गोरक्षा तथा उत्तम वाणिज्य करते हुए सौ वर्ष वाली क्रियाओं से यजन करते हुए जीवन यापन करने वाले।[79]

2. **शालीना वृत्ति** – स्वयं यज्ञ अध्ययन तथा दान करने तथा अन्यों का यज्ञ अध्ययन न कराने वाले एवं दान न लेने वाले होकर सौ वर्ष वाली क्रिया से यजन करके जीवन यापन करने वाले।[80]

3. **यायावर** – यज्ञ अध्ययन दान की क्रियाओं को करके उपर्युक्त जीवनचर्या चलाने वाले।[81]

4. **घोर संन्यासिक** – उद्धृत परिपूत जल से कार्य करके दैनिक आनीत उञ्छवृत्ति करके शत संवत्सर वाली क्रियाओं से यजनपूर्वक जीवन यात्रा पूर्ण करने वाले।[82]

गृहाश्रमी के उपर्युक्त भेदों के अन्तर्गत केवल ब्राह्मण एवं वैश्य वृत्ति वाले गृहस्थ ही आ सकते हैं, क्षत्रिय तथा शूद्रवृत्ति वाले नहीं। इस प्रकार गृहस्थ के चार भेद होने पर भी वर्णों की दृष्टि से अधूरापन रह जाता है।

गृहस्थ में प्रवेश की प्रेरणा – यजुर्वेद गृहस्थ की प्रेरणा देते हुए कहता है–हे गृहस्थों। गृहस्थ से न डरो तथा न काँपो, पराक्रम को धारण करते हुए हम लोग अन्य गृहस्थों को प्राप्त होते रहे।[83]

अथर्ववेद (14/1/22) तथा ऋग्वेद (10/85/42) 'इहैव स्तं मा वि यौष्टम्' आदि वचनों से गृहस्थ की प्रेरणा देता है। यजुर्वेद में एक स्थान पर कहा है–हे गृहस्थों! तुम लोगों की इस गृहाश्रम में प्रीति, इसमें सब पदार्थों की धारणा, स्व पदार्थों का धारण तथा तुम्हारी सत्यवाणी और सत्यक्रिया हो। तुम इस ग्रहाश्रम में रमण करो।[84]

गृहाश्रम में प्रवेश का समय – गृहाश्रम में प्रवेश के विषय में पर्याप्त मतभेद है। किन्तु वेद भी कन्या को तभी विवाह की आज्ञा है–जब वह जनसमुदाय से अपना मित्र ढूंढ सके (स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्)[85] घरों में जाकर गृह पत्नी, सबको वश में करने वाली तथा यथार्थ बोलने वाली।[86] प्रजा से समृद्ध, गार्हस्थ के लिये जागरूक तथा पति के साथ शरीर मिलाने के योग्य हो।[87] यह कार्य युवती ही से संभव है बाला से नहीं। ऋग्वेद में वधू को सन्तति प्रजनन के योग्य[88] सास, सुसर, ननद तथा देवरों पर साम्राज्य करने वाली।[89] पति की इच्छा करने वाली।[90] तथा स्वयं युवती होकर युवा को प्राप्त होने वाली कहा है।[91]

अथर्ववेद कहता है– कन्या ब्रह्मचर्यपूर्वक युवा पति को प्राप्त करती है।[92] महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेदभाष्य में युवावस्था में ही विवाह का उल्लेख किया है।

यथा –

1. यदा स्त्रीपुरुषौ विवाहं कुर्तुमिच्छेतां तदा ब्रह्मचर्येण विधया स्त्रीपुरुषधर्माचरणे विदित्वैव कुर्याताम् (38/2 भावार्थ)।
2. हे कुमारियों! तुम ब्रह्मचर्यपूर्वक समग्रविधा प्राप्त करके युवती होकर अपने इच्छित, परीक्षित, वरने योग्य पतियों को स्वयं चुनो (34/10 भावार्थ)।
3. ये दोनों (पति–पत्नी) युद्ध कर्म में भी पृथक् न बसें। (11/50 भावार्थ)।
4. पूर्ण जवान पुरुष जिस ब्रह्मचारिणी कन्या के साथ विवाह करे उसके साथ विरोध कभी न करे। जो कन्या पूर्ण युवती स्त्री जिस ब्रह्मचारी के साथ विवाह करे, उसका अनिष्ट कभी मन से भी न विचारे (11/39 भावार्थ)।
5. ब्रह्मचर्य से शुद्ध शरीर सद्गुण सद्विद्यायुक्त होकर विवाह की इच्छा करने वाले कन्या और पुरुष युवावस्था को पहुँचकर और परस्पर एक दूसरे के धन की उन्नति को अच्छे प्रकार देखकर विवाह करें। अन्यथा धनाभाव से दुःख बढ़ेगा। (8/11 भावार्थ)। एक अन्य मन्त्र में पूर्ण ब्रह्मचर्य करके स्वयंव

रीति से विवाह का उल्लेख है। (25/46 भावार्थ)।

सुश्रुत भी 16 वर्ष से न्यून आयु की स्त्री तथा 25 वर्ष से कम आयु वाले पुरुष को सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य मानता है।[93]

मनु तथा बोधायन ऋतुमती होने के तीन वर्ष बाद कन्या को विवाह के योग्य ठहराता है।[94] बौधायन, कौशिक सूत्र ने विवाह की क्रियाओं के बीच मासिक धर्म प्रकट हो जाने पर प्रायश्चित्त का विधान किया है।[95] इन सबसे भी युवावस्था में ही विवाह होना सिद्ध

है। महाभारत तथा वशिष्ठ धर्मसूत्र विवाह का काल युवावस्था ही मानते हैं। वेदों में अनेक स्थानों पर कन्या के लिये सूर्या शब्द प्रयुक्त हुआ है जो उसके आदित्य ब्रह्मचारिणी होने का निर्देशक है।[96]

महर्षि दयानन्द 16 वर्ष की कन्या तथा 25 वर्ष के पुरुष का विवाह अधम मानते हैं तथा विवाह की अन्तिम आयु स्त्री की 24 वर्ष तथा पुरुष की 48 वर्ष मानते हैं।[97] वे बाल विवाह तथा अनमेल विवाह को अयुक्त मानते हैं। किन्तु लौगाक्षिगृह्यसूत्र कन्या का ब्रह्मचर्य 10 या 12 वर्ष का स्वीकारता है। ये सब ग्रन्थ 200 ईस्वी के लगभग अथवा उसके पश्चात् के लिखे हैं तथा वेदविरुद्ध होने से अमान्य हैं।

इस प्रथा का कारण बौद्ध भिक्षु भिक्षुणियाँ बनना, कन्याओं के पठन–पाठन न होने से उन्हें घर पर रखना व्यर्थ प्रतीत होना, सोम गन्धर्व तथा अग्नि से कन्याओं के सम्बन्ध के विश्वास के कारण कन्या में अंगों में परिवर्तन से पूर्व विवाह करना तथा अविवाहित स्त्री को स्वर्ग न मिलने की मान्यता है। कुछ भी हो, इस मान्यता से समाज को हानि उठानी पड़ी है। बाल्यावस्था में विवाह तथा पुनर्विवाह एवं नियोग पर प्रतिबन्ध, कैसा दारुण रहा होगा उस समय नारी का जीवन।

महर्षि दयानन्द बाल्यावस्था के विवाह का निषेध करते हुए लिखते हैं–जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है।[98] और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।[99] यजुर्वेद भाष्य में वे गुरुजनों को कन्या तथा पुत्रों को विद्या और शिक्षा से युक्त करके उन्हें पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् गृहाश्रम में जाने का उल्लेख करते हैं।[100] जैसे पथिक मार्ग के रूप को छोड़ सुखपूर्वक गन्तव्य पर पहुँचते हैं वैसे ही बालविवाह के विघ्न को छोड़ अपने सन्तानों को सुख–मार्ग पर चलावें।[101] इस प्रकार महर्षि दयानन्द ब्रह्मचर्य न पालने वाले तथा विद्या ग्रहण से रहित, बाल्यावस्था वाले तथा अयोग्यों का विवाह निषिद्ध मानते हैं।

विवाह की महत्ता – प्रायः मन प्रत्यक्ष की ओर भागा करता है। शायद इसका कारण वर्तमान सुख से भी अधिक ऊँचे सुख का अन्वेषण हो। यही कारण है कि युगों से चले आ रहे सुमधुर प्रेममय विवाह सम्बन्ध को व्यक्ति बन्धन समझकर तोड़ना चाहता है। मेकेन्जी मानव प्रकृति को अधिकांश जन्तुओं की अपेक्षा अस्थिर बताते हुए स्त्री पुरुषों के स्वभाव, चिन्तन और अनुभूति में परिवर्तन तथा उसका परिणाम विवाह बन्धन की समाप्ति की इच्छा की ओर प्रेरित होना बतलाता है। वह जन्तुवर्ग के अति निकटस्थ मानव को स्थायी साहचर्य के उपयुक्त बनाने में भी सन्देह व्यक्त करता है।

इसी कारण वह तलाक की अधिक सुविधाएँ चाहता है। किन्तु आगे वह विवाह की आवश्यकता पर बल देते हुए जापान में लम्बे काल से इस प्रकार की सुविधाओं के होने पर अब वहाँ भी विवाह बन्धन की दृढ़ता को वाञ्छनीय समझने का उल्लेख करता है। बच्चों की पर्याप्त देख–भाल के लिये माताओं का होना आवश्यक है जिसे विवाह बन्धन की शिथिलता कठिन बना देती है।

बिना विवाह के अनाचार, व्यभिचार और बलात्कार की प्रवृत्ति का विकास मानते हुए विवाह को उसके निवारण का उपाय, सात्विक प्रेम और स्वस्थ सन्तानोत्पत्ति, ब्रह्मचर्य, सामाजिक स्वास्थ्य और दैवी सम्पद् का आधार, पशु प्रवृत्ति पर संयम, कामवासना की तृप्ति तथा उसमें से कई सुन्दर फलों का जन्म तथा समाज शरीर का पालन और उसके जीवन का पोषण बतलाते हैं। इस प्रकार मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक आवश्यकता के स्थान से भी विवाह संस्था मानव समाज के लिये बड़ी उपयोगी चीज है, पर विवाह संस्था एक और ख्याल से भी उपयोगी है। यह मनुष्य की आध्यात्मिक आवश्यकता है।

नन्दकिशोर विद्यालङ्कार विवाह से पुरुष तथा स्त्री की भिन्न–भिन्न शक्तियों के मिलने से एक सम्पूर्ण व्यक्ति बनना तथा परिवार में कितने ही छिपे गुणों को उत्तेजना प्राप्ति मानते हैं।[102] घर का मधुर तथा स्नेहमयी पत्नी के साथ विवाहित प्रेममय जीवन तथा उसके फलस्वरूप होने वाली सन्तान का पालन–पोषण वैदिक आर्यों को अत्यन्त प्रिय थे, अतः प्राचीनकाल में ही विवाह को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो चुका था।[103]

विश्व के मनीषियों का विवाह की आवश्यकता पर बल देने का कारण यह है कि बिना विवाह बन्धन के स्त्री पुरुष का संयोग मानव जाति की शक्ति का ह्रास तथा पाश्विक प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना है। दुःख, मुसीबत तथा वृद्धावस्था, जिनमें सहयोग की नितान्त अपेक्षा है, उनका साथी कोई न मिलेगा। महर्षि दयानन्द विवाह की मर्यादा पर बल देते हुए लिखते हैं–इस संसार में मनुष्य जन्म को पाकर स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य, उत्तम विद्या, अच्छे गुण और पराक्रमयुक्त होकर विवाह करे। विवाह की मर्यादा ही से सन्तानों की उत्पत्ति और रति क्रीड़ा से उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होकर नित्य आनन्द में रहें। बिना विवाह के स्त्री–पुरुष या पुरुष–स्त्री के समागम की इच्छा मन से भी न करे, जिससे मनुष्य शक्ति की बढ़ती होवे। इससे गृहस्थ का आरम्भ स्त्री–पुरुष करें।[104]

यजुर्वेद भाष्य में वे अनेक स्थलों पर विवाह का उल्लेख करते हैं।

विवाह के लिये पुरुष की योग्यता–विवाह के लिये पुरुष में निम्न गुणों की आवश्यकता विभिन्न आचार्य मानते हैं।

1. वेद या वेदों का विद्वान्, अखण्ड ब्रह्मचर्य युक्त तथा दुर्बलेन्द्रिय न हो।
2. माता–पिता कुलीन हों तथा वर बुद्धिमान् हो। उत्तम कुल, उत्तम आचरण, शुभ लक्षण, अध्ययन सम्पन्नता तथा आरोग्य।
3. कुल, शील, वपु (शारीरिक स्वस्थता), यश, विद्या, धन एवं सनाथता (सम्बन्धी तथा मित्रों का आलम्बन)।[105]

महर्षि दयानन्द ने वर के निम्न गुण यजुर्वेद में गिनाए हैं–

1. कन्या के सदृश रूप, गुण, कर्म, स्वभाव तथा विद्यावाला, कन्या से अधिक बलयुक्त, इच्छायोग्य तथा कन्या की अन्तःकरण से प्रीति वाला।
2. छल कपटादि आचरण रहित, परमैश्वर्य युक्त, दानशील, सत्यभाव प्रकाशक, पत्नी व्रती, जितेन्द्रिय, सब प्रकार से उद्योगी, धार्मिक तथा विद्वान्।
3. सदैव अप्रमादी, उभय जन्म पालक, विद्या गुणों में सूर्यवत् प्रकाशमान, मन आदि का वशीकर्ता।
4. सब ऋतुओं में सुख देने वाले घर वाला तथा वीर्यवान्।
5. सोमगुण सम्पन्न, बहुत धनी, यज्ञ में प्रशंसनीय स्त्री ग्रहण करने वाला, बड़ी वेदवाणी के पालक का पुत्र तथा गृह और सम्बन्धी जनों से युक्त।
6. अपने गुणों से दुःखों का नाश करने वाला, जन्म क्रम से अनेक विद्या विषयों में प्रवेश करने वाला, परमैश्वर्य को सिद्ध करने वाला तथा समस्त व्यवहारों में ध्यान देने वाला।
7. उत्तम भुजा, सुन्दर हाथ, शोभायुक्त अंगुली सूर्य के समान ऐश्वर्य दाता तथा उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त हो।
8. ब्रह्मचर्य से बलवान् पिता का पुत्र, पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि को इकट्ठा करने वाला तथा शुद्ध स्वभाव युक्त हो।[106]

महर्षि दयानन्द के उपर्युक्त गुणों के अन्तर्गत पूर्वोक्त आचार्यों के मत से भी गुणाढ्यता के दर्शन होते हैं। कुछ आचार्य सदृश पति न मिलने पर गुणहीन वर का भी समर्थन करते है। किन्तु महर्षि दयानन्द मनु के आधार पर गुणहीन को कन्या देने के विषय में लिखते हैं– चाहे मरण पर्यन्त कन्या पिता के घर में बिना विवाह के भी बैठी रहे, परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी भी न करें और वर कन्या भी अपने आप स्वदृश के साथ ही विवाह करें।[107]

विवाह के लिये कन्या की योग्यता – इस विषय में अनेक आचार्यों ने विचार किया है। जिनका सार है– उत्तम कुल, स्वास्थ्य, शारीरिक रचना, विशिष्ट नाम तथा बोलने का प्रकार आदि। कुछ के अनुसार कन्या लक्षण–सम्पन्न, सीधे अंग, समकेश वाली तथा घूमने पर ग्रीवा में दो आवर्त आए। कुछ धन रूप विद्या प्रज्ञा तथा बान्धव में से आगे वालों को वरीयता देते हैं। वह बुद्धि, रूप, शील, लक्षण तथा आरोग्य युक्त हो। याज्ञवल्क्य की भी ऐसी ही मान्यता है।[108]

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास तथा संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में मनु. के आधार पर माता की 6 पीढ़ी तथा पिता के गोत्र का निषेध करके सुन्दर अंग, उत्तम नाम, हंस तथा हस्तिनी सी चाल, सूक्ष्म केश दाँत तथा कोमल अंगों वाली कन्या से विवाह का विधान किया है। यजुर्वेद भाष्य में महर्षि ने कन्या की विवाह विषयक निम्न विशिष्टताओं का उल्लेख किया है। वह हृदय को प्रिय, स्वदृश गुण कर्म स्वभाव वाली, विदुषी, उत्तम लक्षणों से युक्त, रूपलावण्यादि गुणों से सुशोभित, प्रेमबद्ध, बलकारिणी, विस्तृत स्तुति और शिर के बाल वाली, कामना करने वाली तथा विद्वानों की बहन, आत्मज्ञान रखने वाली, श्रेष्ठशील से प्रकाशमान, प्रशंसनीय गुण युक्त, स्वीकरणीया, मनोहरस्वरूप, रमण करने योग्य, अत्यन्त आह्लाद देने वाली, उत्तम बातें तथा वेद जानने वाली, अत्यन्त प्रशंसनीय तथा विज्ञान वाली हो।[109]

कन्या की शैक्षिक योग्यता – महर्षि दयानन्द कन्याओं का शिक्षण अनिवार्य मानते हुए भी सह–शिक्षा तथा समान शिक्षा के पक्षधर नहीं थे। कन्याओं की शिक्षा में मुख्यतः व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये।[110]

विवाह के प्रकार – गृह्य सूत्रों, धर्म सूत्रों, स्मृति तथा महाभारत आदि के काल से प्रायः आठ प्रकार के विवाह माने गए हैं। वे हैं– ब्रह्म, प्रजापत्य, आर्ष, दैव, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पिशाच। इनकी संख्या तथा क्रम में भेद भी मिलता है। यथा–

1. मनु – ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पिशाच।
2. वशिष्ठ – ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व, क्षात्र (राक्षस) तथा मानुष (धन क्रोता)।
3. आश्वलायन ने प्राजापत्य की गणना पहले की है।
4. मानव गृह्यसूत्र ने ब्राह्म तथा शौल्क (आर्य) इन विवाहों को माना है।[111]

यजुर्वेद भाष्य में विवाह के प्रकार– महर्षि दयानन्द का विशेष बल स्वयम्वर विवाह पर है। अन्य विवाहों का उल्लेख भी उनके वेदभाष्य में मिलता है। ब्राह्म विवाह, यथा–

1. जब विवाह के लिये दृढ़ प्रीति वाले स्त्री–पुरुष हों, तब विद्वानों को बुला के उनके समीप वेदोक्त प्रतिज्ञा करके पति और पत्नी बने।
2. जब स्त्री–पुरुष एक दूसरे की परीक्षा करके आपस में दृढ़ प्रीति वाले होंवे तब वेदोक्त रीति से यज्ञ का विस्तार और नियमानुसार विवाह करके धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करें।[112]

स्वयम्वर विवाह – ऋग्वेद में एक स्थल पर कहा है कि वह सुन्दरी वधू भाग्यशालिनी है, जो जनसमुदाय से अपना–मित्र स्वयं चुनती है।[113] अथर्वेवेद कहता है–यह पति की कामना लेकर आई है और मैं पत्नी की कामना लेकर।[114] यह स्पष्ट स्वयम्वर की ओर संकेत है। प्रजापति पुत्री सूर्या सावित्री के स्वयम्वर का उल्लेख है। कृत्यकल्पतरू में नारद को उद्धृत करते हुए लिखा है–पिता आदि कन्यादान करने वालों के अभाव में कन्या राजा के पास जा उसकी अनुमति से वर की परीक्षा करके कुल रूप आयु एवं ज्ञान के अनुरूप सवर्ण वर को चुने।[115]

उस क्रान्तिकारी ऋषि ने ऐसे युग में वर तथा कन्या को परस्पर एक–दूसरे के गुण कर्म स्वभाव देखकर विवाह करने पर बल दिया था, जब वे एक–दूसरे को विवाह से पूर्व देख भी नहीं सकते थे। वे संस्कार विधि में लिखते हैं– **हे मनुष्यों! यदि तुम पूर्ण ब्रह्मचर्य से सुशिक्षित विद्यायुक्त अपने सन्तानों को कराके स्वयम्वर विवाह कराओ तो वे कामना के योग्य, सब सत्य विद्याओं को जानने हारे, सत्कार के योग्य, शरीरात्म बलों से युक्त होके तुम्हारे लिये सब सुख प्राप्त कराने को समर्थ होवें... क्योंकि–जिससे जिसकी विवाह करने में पूर्ण प्रीति हो उसी से उसका विवाह होना अत्युत्तम है।**[116]

उनके मतानुसार, आर्यावर्त देश में जब एक ऐसी वर्ण व्यवस्था और पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य, विद्या ग्रहण, उत्तमता से स्वयम्वर विवाह होता था, तभी देश की उन्नति थी।

सत्यार्थ प्रकाश में वे विवाह को माता–पिता के अधीन न मानकर लड़के–लड़की के अधीन मानते हैं तथा उससे विरोध कम तथा सन्तान उत्तम होना बतलाते हैं तथा कहते हैं–जैसी स्वयम्वर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है, वही विवाह उत्तम है।[117] वे यजुर्वेद भाष्य में अनेक स्थलों पर स्वयम्वर विवाह का उल्लेख करते हैं तथा उसके लिये राजनियम बनाने के लिये राजाओं से कहते हैं। यजुर्वेद भाष्य में तो माता–पिता तथा आचार्यों को भी इस प्रकार की विद्या तथा शिक्षा देने का उल्लेख है, जिससे कन्याएँ निश्चित होकर दुर्व्यसन त्यागी तथा समावर्तन के पश्चात् स्वयम्वर विवाह करके पुरुषार्थी तथा सुखी रहे।[118]

कुमारियों को स्वयम्वर का उपदेश – यजुर्वेद भाष्य में कुमारियों को भी स्वयम्वर का उपदेश दिया गया है। यथा–

1. सब ब्रह्मचर्याश्रम सेवन की हुई युवती कन्याओं को ऐसी आकांक्षा अवश्य रखनी चाहिये कि अपने सदृश रूप गुण–कर्म स्वभाव और विद्या वाले, अपने से अधिक बलयुक्त, अपनी इच्छा के योग्य, अन्तःकरण से जिस पर प्रीति हो ऐसे पति को स्वयम्वर विधि से स्वीकार कर उसकी सेवा किया करें।
2. हे कन्या लोगों! तुम जो पूर्ण अखण्डित ब्रह्मचर्य से सम्पूर्ण विद्या और अच्छी शिक्षा को प्राप्त युवती होकर अपने तुल्य वर के साथ स्वयम्वर विवाह करके गृहाश्रम का सेवन करो तो सब सुखों को प्राप्त हो और सन्तान भी अच्छी होंवे।
3. सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण धर्म शिक्षा, आयुर्वेदादि पढ़ स्वयम्वर विवाह कर...। ऐसे ही अन्य अनेक स्थानों पर स्त्री–पुरुषों को स्वयम्वर विवाह करने को लिखा है।[119]

स्वयम्वर विवाह के लाभ – महर्षि दयानन्द ने यजुर्वेद भाष्य में स्वयम्वर विवाह के निम्नलिखित लाभ बतालाएँ हैं–

1. बहुत ऐश्वर्य की प्राप्ति तथा नित्य उन्नति।
2. पुरुषार्थ–चतुष्टय की प्राप्ति।
3. गृहाश्रम की उन्नति।
4. सब सुखों तथा उत्तम सन्तानों की प्राप्ति।
5. सब सुखों की सिद्धि तथा आनन्द की उपलब्धि।
6. उभयलोक सुख।[120]

अतः यजुर्वेद भाष्य में महर्षि ने स्वयम्वर को उत्तम माना है।

विवाह दूर देश में हो – महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में 8 हेतु तथा संस्कार विधि में 3 हेतु देकर तथा निरुक्त को उद्धृत कर विवाह के दूर देश में होने का समर्थन किया है।[121] "यजुर्वेद भाष्य में पावकवत् तेजस्वी विज्ञान युक्त पति को दूर देश से अति उत्तम गुण रूप और स्वभाव वाली कन्या की कीर्ति सुन के आने का उल्लेख मिलता है।"[122]

इस मन्त्र के भावार्थ में महर्षि लिखते हैं– मनुष्यों को चाहिये कि अपनी कन्या या पुत्र का समीप देश में विवाह कभी न करें। जितना ही दूर विवाह किया जाए उतना ही अधिक सुख होवे। निकट करने में कलह होता है।[123]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि दयानन्द दूर देश में तथा स्वयम्वर रीति से विवाह का होना उपयुक्त मानते हैं।

विवाह का स्थान – वर्तमान समय में प्रायः घर पर ही विवाह सम्पन्न किये जाते हैं। किन्तु महर्षि के अनुसार–विवाह के दो स्थान हैं, एक आचार्य का घर तथा दूसरा अपना घर। दोनों ठिकानों में से किसी एक ठिकाने, आगे विवाह में लिखे प्रमाण सब विधि करें। इसी भाँति सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं– "जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहाँ, नहीं तो कन्या के माता–पिता के घर में विवाह होना योग्य है।"[124] यजुर्वेद भाष्य में भी उल्लेख है कि– "जब दोनों का विवाह करना निश्चय होवे तभी माता–पिता और आचार्य आदि इन दोनों का विवाह करे। यहाँ विवाह कराने वालों में माता–पिता के साथ आचार्य की गणना भी कदाचित उपर्युक्त मत का द्योतक है।"[125]

गृहस्थ धारक तत्त्व – सब आश्रमों के मूल गृहस्थ को अनेक आचार्य वरीयता देते हैं। ज्येष्ठता के साथ ही इस आश्रम का उत्तरदायित्व भी सर्वाधिक है। इसमें सन्देह नहीं कि गृहस्थ आश्रमों में रहते हुए अपने कर्त्तव्यों के पालन में मनुष्य को त्याग, तपस्या श्रम आदि के अत्यन्त कठिन व्रतों का पालन करना पड़ता है। महान् से महान् नैतिक आदर्शों के अनुसरण का अवसर मिलता है।[126]

अपने प्रति, समाज तथा सम्बन्धियों के प्रति ही नहीं अपितु अन्य प्राणियों के प्रति दायित्वों को निभाने के लिये उसे साधन जुटाने पड़ते हैं। जिनमें सदाचार धन आदि आते हैं। यजुर्वेद भाष्य में महर्षि लिखते हैं–इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम नियम और उत्तम सहाय के बिना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा नहीं जा सकता। इसके बिना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। इसलिये इसका

पालन सबको बड़े प्रयत्न से करना चाहिये। धनादि के संचय के लिये पुरुषार्थ से सुवर्णादि का संचय, अश्वादि पशुओं का रक्षण तथा वीरों को रखे बिना गृहाश्रम रूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं किया जा सकता।[127]

यजुर्वेद कहता है–धन की प्राप्ति के लिये वह (गृहस्थ) अग्नि विद्या का ज्ञान अवश्य करे। हे मनुष्यों! तुम लोग लक्ष्मी प्राप्त कराने हारे अग्नि आदि पदार्थों को जान तथा उनको कार्यों में संयुक्त करके धनवान् होओ। अग्नि तथा विद्युत अग्नि से धन प्राप्ति का उल्लेख यजुर्वेद भाष्य में अनेक स्थानों पर हुआ है।[128]

धनादि पदार्थों के अर्जन के साथ ही यजुर्वेद भाष्य में विवाह समय व्यभिचार त्याग की प्रतिज्ञा कराते हुए कहा है कि स्त्री या पुरुष के लिये अप्रिय, आयुनाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचार के समान दूसरा नहीं है। अपनी स्त्री के नियम में पुरुष और पतिव्रता स्त्री होकर मिलकर चलें। विवाह की इच्छुक युवती ऐसे पुरुष से विवाह करे जो छल कपट आदि से रहित, प्रकाश (ज्ञान का) करने वाला, एक ही स्त्री को चाहने वाला, जितेन्द्रिय, सब प्रकार से उद्यमी, धार्मिक तथा विद्वान् हो। पत्नी की रक्षा तथा प्रसन्नता का ध्यान रखना भी पति का कर्त्तव्य है। इसके बिना भी गृहस्थ सुखपूर्वक नहीं चल सकता। यजुर्वेद में कहा है–वह पति भी स्त्री की रक्षा और उसकी प्रसन्नता करने को नित्य उत्साही हो। पत्नी भी पति से यही कामना करती है कि जैसे मैं सेवा के योग्य, आनन्दचित्त आपको प्रतिदिन चाहती हूँ, वैसे आप भी मुझको चाहो और पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो।[129]

स्त्री का पति के प्रति व्यवहार तथा कर्त्तव्य – यजुर्वेद भाष्य आदि में पत्नी के निम्नलिखित कर्त्तव्यों का उल्लेख हुआ है–

1. पतिव्रता होना, जैसा कि पीछे बतला आए हैं।
2. अपने गुणों से पति को आकृष्ट कर प्रसन्न रखना तथा निम्न गुण युक्त स्त्रियों से उसकी रक्षा करना।

   ये गुण भी व्यक्ति को आकर्षित करते हैं।

(क) ब्रेशी – जलवत् निर्मल विद्या में व्याप्त सुशीलत्व गुण वाली।

(ख) कुकूनना – निरन्तर शब्द विद्या से नमनशील।

(ग) भन्दना – कल्याणकारी आचरणों जैसी।

(घ) भदिन्तमा – अत्यन्त प्रसन्न सदैव हँसते रहने के स्वभाव वाली।

(ङ) मधुन्तमा – अत्यन्त मीठा बोलने वाली।

उपर्युक्त गुणों से आकृष्ट होकर पुरुष पत्नीव्रत को शिथिल कर सकता है, अतः पत्नी स्वपति को इस प्रकार की स्त्रियों से बचाए। एक मंत्र के भाष्य में विद्वानों से शिक्षित स्त्री तथा अन्य स्त्रियों को यथायोग्य उत्तम कर्म सिखाए जिससे वे किसी भाँति अधर्म की ओर न डिगे।[130]

उत्तम भोजन निर्माण – पाक विधा का ज्ञान भी नारी का कर्त्तव्य है जिससे ऋत्वनुकूल भोजन बनाकर परिवार के शरीर, मन तथा आत्मा को निरोग रखा जा सके। मनु ने भी सदा प्रसन्न रहना, गृहकार्यों में दक्षता, उत्तम भोजन निर्माण तथा व्यय में खुला हाथ न रखना नारी के कर्त्तव्य बतलाए हैं।[131]

यजुर्वेद शिक्षित स्त्रियों को परीक्षित पदार्थ खाने तथा पति को खिलाने का उल्लेख करता है, जिससे बुद्धि बल और विद्या की वृद्धि हो। खान–पान के पदार्थ रुचिकर बनवावे या बनावे।[132]

पति के धन की सुरक्षा तथा वृद्धि – गृहस्थ शकट के दो चक्र पति–पत्नी में से पति धन अर्जन करके लाता है तथा पत्नी उसकी रक्षा एवं वृद्धि करती है। यजुर्वेद कहता है–स्त्री धनादि पदार्थों को भी बढ़ाती रहे। वह अपने पति के आश्चर्य रूप अन्नादि पदार्थ वाले सेवनीय प्राचीन धन की रक्षा करे। पतिव्रता स्त्री तो अपने पति के सुख के लिये धन तथा घृतादि वस्तु संभालकर रखती है। वह तो 'राधोमूर्त्ता' अर्थात् धन की उन्नति करने वाली है। अतः धन की सुरक्षा तथा वृद्धि भी उसका कर्त्तव्य है।[133]

धार्मिक कृत्यों में पति का सहयोग– स्वयं पत्नी शब्द ही धार्मिक विधि–यज्ञ की स्मृति दिला देता है। क्योंकि अष्टाध्यायी के अनुसार यज्ञ का संयोग ही पत्नी बनाता है।[134] महर्षि ने भी पत्नी शब्द का अर्थ 'यज्ञ में सहाय देने वाली' किया है। यजुर्वेद भाष्य में ब्रह्मचारिणी कन्या को अन्य सुखद पतियों के निकट रहने वाली तथा अग्निहोत्र आदि कर्म का अनुष्ठान करने वाली स्त्रियों जैसा बनने का उल्लेख है। स्त्री मन्त्र के भावार्थ में गुरु–पत्नी को अग्निहोत्रादि कर्मों में स्थिर बुद्धि रखने वाली कहा है। इससे स्पष्ट है कि स्त्रियाँ यज्ञादि धार्मिक कृत्यों में अपने पति की सहयोगिनी होती है। इसी प्रकार पति की तृप्ति तथा उसके अपराधों को क्षमा करना भी पत्नी का कर्त्तव्य बतलाया है।[135]

पति पत्नी के सम्मिलित कर्त्तव्य – यजुर्वेद तथा पारस्कर बृह्मसूत्र में स्त्री को भूमि तथा पुरुष को धुलोक कहा गया है। पारस्कर के वचन का अर्थ करते हुए संस्कार विधि में कहा है–तू पृथिवी के समान गर्भादि गृहाश्रम के व्यवहारों को धारण करने हारी है और मैं वर्षा कराने हारे सूर्य के समान हूँ।[136] यजुर्वेद भाष्य में इसको और स्पष्ट करते हुए लिखा है–

"जैसे सूर्य लोक जलादि पदार्थों को खींचकर और वर्षा कर रक्षा और पृथिवी आदि पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे यह पति श्रेष्ठ गुण और पदार्थों का संग्रह करके देने से रक्षा और विद्या आदि गुणों से प्रकाशित करता है वैसे स्त्री गर्भ आदि व्यवहारों को धारण कर सबकी पालना करती है।"[137] अतः पुरुष का कर्त्तव्य बाहर से पदार्थ लाना तथा स्त्री का कुल वृद्धि आदि है।

सहभोज – विशेष अवसरों पर पत्नी द्वारा अपनी सहेलियों तथा पति द्वारा अपने इष्ट मित्रादि के आमन्त्रण तथा सत्कार का उल्लेख करते हुए यजुर्वेद भाष्य में कहा गया है–"अच्छे उत्साह बढ़ाने वाले कामों में गृहस्थ स्त्री अपनी सहेलियों या पुरुष अपने इष्टमित्र और बन्धुजन आदि को बुलाकर भोजन आदि पदार्थों से यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करें और परस्पर भी सदा प्रसन्न रहें।"[138]

पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि – मनु के अनुसार मोक्ष और सांसारिक सुख का इच्छुक दुर्बलेन्द्रिय से धारण न करने, योग्य गृहाश्रम का प्रयत्न से धारण करे। यजुर्वेद भाष्य में उल्लेख है कि– "स्त्री पुरुष...स्वयम्वर विवाह करके ऐसा यत्न करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त हों। अतः गृहस्थ का कर्त्तव्य पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त करना भी है।"[139]

अन्य कर्त्तव्य – पति–पत्नी के कुछ कर्त्तव्यों का यजुर्वेद भाष्य के अनुसार संक्षेप से उल्लेख किया जाता है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। "दोनों विद्या की वृद्धि तथा बालकों और कन्याओं को शिक्षा दिया करें।"[140]

परस्पर मित्र होकर संसार में विख्यात होवें। जैसे अपने लिये वैसे ही औरों के लिये भी अत्यन्त सुख करने वाले धनों को उन्नति युक्त करें। परम् पुरुषार्थ से गृहाश्रम की शोभा करें और वेदविद्या का निरन्तर प्रचार करें। एक–दूसरे की प्रसन्नता के लिये प्रयत्नशील रहें तथा परस्पर अनुमोद से गृहाश्रम धर्म को पूर्ण करें। एक दूसरे का अनिष्ट चिन्तन मन से भी न करें। दोनों प्रसन्न हुए प्रीति के साथ घर के कार्य संभालें। सुख और संतानों से शोभायमान होके घर के कार्य करें।[141] दोनों श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचरण का ग्रहण कर शरीर और आत्मा के आरोग्य को प्राप्त कर अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करें। दोनों व्यभिचार से पृथक् रहें। युद्ध में भी दोनों साथ रहें। परस्पर सेवा करें तथा जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे अच्छे स्वभाव के आनन्द से स्त्री–पुरुष भी परस्पर प्रसन्न रहें। शरीर तथा आत्मा के बल बढ़ाने का उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष और विदुषी स्त्री की सेवा तथा सत्संग नित्य करें तथा तुच्छ बुद्धि वाले स्त्री–पुरुषों का संग

कदापि न करें।[142] सत्य व्यवहार से धन प्राप्ति तथा कीर्तिकार कर्म करें। जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का है वह स्त्री का भी होवे। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये किन्तु आपस में मिलके आनन्द भोगें। जैसे घोड़े आदि पशुओं के खाने के लिये पशुपालक दूध आदि पदार्थ नित्य इकट्ठे करते रहते हैं वैसे अपने ऐश्वर्य को बढ़ाके अन्यों को सुख देवें। और धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्ष्या कभी न करें। किन्तु दूसरों की वृद्धि वा धन देखकर सदा आनन्द भोगें।[143] इस पर परस्पर तथा अन्यों के साथ व्यवहार करके गृह को स्वर्ग बनाने में स्त्री–पुरुष सदैव प्रयत्नशील रहें।

गृहस्थों के वस्त्राभूषण – विवाहित स्त्री–पुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य अपने प्रकाश से सब जगत को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होकर घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रखें।[144] यजुर्वेद भाष्य में स्त्री को नित्य ही वस्त्र और आभूषणों से अपने शरीर को सजाने का उल्लेख मिलता है। वहाँ स्त्री को 'स्वावेशा' अर्थात् सुन्दर वेशवाली कहा है।[145] तथा स्त्री–पुरुषों को 'सम्वसानौ' अर्थात् सुन्दर वस्त्राभूषणों से युक्त कहा है।[146] इससे स्पष्ट है कि गृहस्थ स्त्री–पुरुष सुन्दर, स्वास्थ्योपयोगी, ऋत्वनुकूल वस्त्र तथा आभूषणों का धारण कर सकते हैं।

गृहस्थों का भोजन – भोजन का जीवन से बहुत सम्बन्ध है। ''आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः'' आदि वाक्य शुद्ध भोजन करने की ओर इंगित करते हैं। किन्तु कतिपय विद्वान् ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी के मांसादि निषेध का तात्पर्य यह लेते हैं कि गृहस्थ को मांस खाने की छूट थी। उवट, महीधर ने अपने यजुर्वेद भाष्य में पशुओं की बलि देने का उल्लेख किया है। किन्तु महर्षि के यजुर्वेद भाष्य को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण वेदों में कहीं भी मांसभक्षण का विधान नहीं है, अपितु निषेध है। स्वामी दयानन्द ने मद्य मांस का निषेध ही नहीं किया अपितु इतना तक लिखा है कि माँस आदि खाने वाले मलेच्छ के हाथ का भी भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका शरीर अशुद्ध मांस के परमाणुओं से बना होता है।

"जो–जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य–मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य–मांस के परमाणुओं ही से पूरित है, उनके हाथ का न खावें।

जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात्, जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस छह सौ मनुष्यों को सुख पहुँचता है वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें। जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से

दो सेर दूध प्रतिदिन होवे, उसका मध्य भाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है। कोई गाय अट्ठारह और छह महीने तक दूध देती है, उसका भी मध्य भाग बारह महीने हुए। अब प्रत्येक गाय के जन्मभर के दूध से 24960 (चौबीस सहस्र नौ सौ साठ) मनुष्य एक वार में तृप्त हो सकते हैं। उसके छह बछियाँ छह बछड़े होते हैं। उनमें से दो मर जाएँ तो भी दश रहे। उनमें से पाँच बछड़ियों के जन्मभर के दूध को मिलाकर 124800 (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते हैं अब रहे पाँच बैल, वे जन्मभर में 5000 (पाँच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं। उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिला 3,74,800 (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते है दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में 4,75,600 (चार लाख पचहत्तर सहस्र छह सौ) मनुष्य एक बार पालित होते हैं और पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है। इससे भिन्न बैलगाड़ी, सवारी, भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा वैसे (गाय) दूध में अधिक उपकारक होती है, परन्तु जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे (गाय) भैंसे भी हैं, परन्तु गाय के दूध-घी से जितने बुद्धि वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं। इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा।

बकरी के दूध से 25920 (पच्चीस सहस्र नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानिएगा।"[147]

स्वामी दयानन्द तीव्र मेधा शक्ति वाले महापुरुष व योगी थे उनकी कलम एक विषय पर नहीं चली अपितु सृष्टि के सारे विषय उन्होंने झट सुलझा दिये। उनका अर्थशास्त्र इतना तगड़ा था कि जो पशुओं की गणना एवं उनसे होने वाली आय एवं पालन से मनुष्यों की भलाई का विवरण प्रस्तुत किया है यह निश्चित ही किसी राष्ट्र को गरीबी एवं भुखमरी से तुरन्त राहत देने वाला उपाय है। जिन पशुओं पर दयानन्द राष्ट्र की अर्थव्यवस्था बनाये हुए हैं उन्हें काटने एवं मारने का कैसे कह सकते हैं इसलिए गृहस्थ में जितनी मांस की आवश्यकता नहीं होती उससे अधिक घी, दूध आदि की होती है। **यदि किसी स्त्री की रसोई में प्रचुर मात्रा में दूध, घी नहीं होगा तो क्या वह उसके स्थान पर मांस से काम चला सकती है? नहीं! नारी विमर्श में नारियों को यह भी भान होना चाहिए कि क्या भक्ष्य है और क्या अभक्ष्य।**

यजुर्वेद भाष्य में चावल और साग के धान, जौ, अरहर, उड़द, मटर, तिल, नारियल, मूँग, चने, कंगुनी, सूक्ष्म चावल (इसे सहारनपुर जनपद में मकड़ा कहते हैं), समा (सांवा), महुआ पटेरा, चेना आदि छोटे अन्न नीवार, गेहूँ तथा मसूर सब अन्नों के दाता परमेश्वर से समर्थ हों। महर्षि ने इस मंत्र के भावार्थ में सब मनुष्यों को चावल आदि से अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए भात आदि को बना अग्नि में होम करके स्वयं खाने तथा अन्यों को खिलाने का उल्लेख किया है।[148] कुमारियाँ भी स्वयंवर विवाह के पश्चात् औषधियों तथा औषधिवत् अन्न और दाल–कड़ी को अच्छा पका, उत्तम रसों से युक्त कर पति आदि को भोजन कराकर स्वयं करके बल तथा आरोग्य की सदैव उन्नति करें।

अतः गृहस्थों को चावल आदि सात्विक अन्नों तथा दाल कढ़ी आदि व्यंजनों का भोजन करना चाहिये। एक मन्त्र में घर पर आए पितरजनों का घी, दूध, फलों के रस आदि से सत्कार करने का उल्लेख है।[149]

सन्तानोत्पत्ति – सन्तानोत्पत्ति भी गृहस्थ के मुख्य कर्त्तव्यों में से एक है। तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण सन्तान को 'हृदय' और 'तन्तु' तथा शतपथ 'विश्वज्योतिः' कहता है।[150] ये प्रेमाधिक्य, कुलतन्तु की वृद्धि तथा हर्ष एवं आशा की ज्योति के प्रतीक वचन हैं। शतपथ तथा गोपथ कहते हैं– "पूर्व वयस में पुत्र पिता द्वारा पाले जाते हैं तथा उत्तरवयस में पुत्र पिता को पालते हैं।"[151] ऐतरेय पुत्रविहीन के लिये कोई लोक नहीं मानता। ऐतरेय तथा आपस्तम्ब कहते हैं कि सन्तान, गृहस्थ का अमरत्व है क्योंकि तुम अपनी सन्तान के रूप में पुनः उत्पन्न होते हो। यजुर्वेद भाष्य में कहा है–जैसे वायु सबके जीवन का मूल है वैसे उत्तम सन्तान सबके सुख के निमित्त होते हैं। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में आवश्यकतानुसार दस पुत्रों के उत्पन्न करने का आदेश तथा उनको शिक्षा देकर ऐश्वर्य वृद्धि कर प्रीतिपूर्वक रमण करने का उल्लेख है।[152]

यजुर्वेद भाष्य में स्त्री–पुरुषों को वीर्य वाले पुरुषार्थी होकर अन्नादि से विद्वान् को प्रसन्न कर धर्म से सन्तानोत्पत्ति करने एवं सत्य आचरणों से सन्तानों को उत्पन्न कर बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होके नित्य उन्नति करने का उल्लेख मिलता है। यह भी ध्यान रखें कि–स्त्री पुरुष उत्कण्ठापूर्वक संयोग करके जिन सन्तानों को उत्पन्न करें वे उत्तम गुण वाले होते हैं। धर्म, सत्याचरण तथा उत्कण्ठा के साथ ही 'सावधानी से गर्भाधानादि संस्कारों की रीति के अनुकूल अच्छे सन्तान उत्पन्न करके उनमें वेद, ईश्वर और विद्यायुक्त बुद्धि उत्पन्न करें। क्योंकि ऐसा अन्य धर्म अपत्य सुख का हितकारी नहीं है। यह भी स्मृतव्य है कि–

जिसके माता और पिता विद्वान् न हों उनके सन्तान भी उत्तम नहीं हो सकते। अतः "जो मनुष्य दुर्गुण और दुष्ट संगों को छोड़ कर व्यभिचार से दूर रहते हुए वीर्य को बढ़ा के सन्तानोत्पत्ति करते हैं, वे अपने कुल को प्रशंसित करते हैं।"[153] अतः सदाचार और सत्याचरण का पालन करते हुए इच्छापूर्वक गर्भाधान की रीति से विद्वान् व्यक्ति संतानों को उत्पन्न करें, यह यजुर्वेद भाष्य से स्पष्ट है।

सन्तान का पालन और निर्माण – गृहस्थ को ऐसे कार्य करने हैं जो उसे भूत भविष्यत् तथा वर्तमानकाल में सुख प्रदान करें। उसके भविष्य का आधार उसकी सन्तान है। अतः माता–पिता को यह भी चाहिये कि वे अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें। क्योंकि–सन्तानों के लिये विद्या और अच्छी शिक्षा का प्राप्त कराना माता–पिता और आचार्य का परम् धर्म है।[154]

सन्तान के पालन तथा निर्माण के यजुर्वेद भाष्य में निम्नोक्त बातों की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है–

1. उन्हें (सन्तानों को) अच्छी शिक्षा देकर अपने ऐश्वर्य की वृद्धि करें।
2. स्त्री–पुरुष अपने सन्तानों आदि को विद्यादि गुणों से सुभूषित करें।
3. माता–पिता को चाहिये कि अपने सन्तानों को विद्यादि अच्छे–अच्छे गुणों में प्रवृत्त कराकर अच्छे से उनके शरीर की रक्षा करें, जिससे वे भी निरोग शरीर हों और उत्साह से गुण सीखें।
4. विद्वान् माता–पिता और आचार्यों को उचित है कि अपने पुत्र–पुत्री को अच्छे प्रकार उपदेश से शरीर और आत्मा को बल वाले करें।
5. इस संसार में माता–पिता बन्धु वर्ग तथा मित्रवर्गों को चाहिये कि अपनी सन्तान आदि को अच्छी शिक्षा देके ब्रह्मचर्य करावें जिससे वे गुणवान् हों।
6. जिन माता–पिताओं के सन्तान विद्या, अच्छी शिक्षा और ब्रह्मचर्य सेवन से शरीर और आत्मा के बल से युक्त, धर्म का आचरण करने वाले हैं वे ही सुखी हों।
7. जो सन्तान वा विद्यार्थी को विद्वान् बनने की बुद्धि देते, दुष्टाचरणों से पृथक् रखते, कल्याण कारक कर्मों को सेवन कराते हैं वे ही इस लोक और परलोक के सुख को प्राप्त होते हैं इससे विपरीत नहीं।[155]

इस प्रकार सन्तान सुख तथा अपने ऐहिक, आमुष्मिक सुख प्राप्ति के लिये सन्तान का पालन तथा निर्माण माता–पिता का अत्यावश्यक कर्त्तव्य है।

सन्तान की शिक्षा – दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रन्थों में कई स्थलों पर इसका वर्णन किया किन्तु यजुर्वेद भाष्य के कतिपय स्थलों को यहाँ उद्धृत करना भी अप्रासंगिक न होगा। यथा –

1. माता–पिताओं को यह अति उचित है कि सन्तानों को उत्पन्न कर बाल्यावस्था में आप शिक्षा दें, ब्रह्मचर्य करा, आचार्य कुल में भेज के विद्यायुक्तकरें।
2. माता–पिता अपने पुत्र तथा कन्याओं को अच्छी शिक्षा देके पीछे विद्वान् और विदुषी के समीप बहुत काल तक स्थिति पूर्वक (रखकर) पढ़वावें। तब वे कन्या और पुत्र सूर्य के समान अपने कुल और देश के प्रकाशक हों।
3. जब तक कन्या पुत्र आठ वर्ष के हों तब तक माता–पिता उनको अच्छी शिक्षा देवें, इसके पीछे ब्रह्मचर्य धारण कराये विद्या पढ़ाने के लिये अपने घर से बहुत दूर आप्त विद्वान् पुरुषों और आप्त विदुषी स्त्रियों की पाठशाला में भेज देवें। वहाँ पाठशाला में जितने धन का खर्च करना उचित हो उतना करें, क्योंकि सन्तानों को विद्यादान के बिना कोई उपकार वा धर्म नहीं बन सकता। इसलिये इसका निरन्तर अनुष्ठान किया करें।
4. जिस गृहाश्रम में स्त्री–पुरुष प्रशंसनीय गृहाश्रम के धर्म को प्राप्त होते हैं, उसमें कामना देने वाला, निष्पाप, धर्मात्मा, पुरुषार्थी, वृद्धावस्था के दुःखों से रक्षा करने वाला पुत्र उत्पन्न होता है और वह उत्तम धन को प्राप्त होता है। इसके अनन्तर वह विद्या, कुटुम्ब और धन के ऐश्वर्य से बढ़ता है।[156]

अतः सन्तानोत्पत्ति, उत्तम शिक्षा दिलाना, धनार्जन, धर्मपालन, सबसे यथायोग्य व्यवहार करने तथा विद्यादि ऐश्वर्य से सन्तान को सम्पन्न कराना गृहस्थ का कर्त्तव्य है। महर्षि दयानन्द यह भी लिखते हैं कि– जैसे निवृत्ति मार्ग में परमयोगी योगबल से सब सिद्धियों को प्राप्त होता है वैसे ही अन्य गृहस्थ लोगों को भी प्रवृत्तिमार्ग में सब ऐश्वर्य को प्राप्त होना चाहिए।[157]

वानप्रस्थाश्रम और उसका काल – याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका के अनुसार वन में प्रकृष्ट रूप से नियम पालन करते हुए रहना वानप्रस्थ है, वही संज्ञा में दीर्घ होकर वानप्रस्थ कहलाता है।[158]

मनु के अनुसार गृहस्थ जब देखें कि शिर के बाल सफेद हो गए हैं तथा मुख पर झुर्रियाँ आ गई हैं एवं पुत्र का भी पुत्र हो गया है तब गृहस्थ के कार्यों से उपरत होकर आत्मोन्नति के लिये घर छोड़कर वन में प्रवेश करें। वानप्रस्थ ग्राम के सब आहारों तथा वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़, स्त्री को पुत्रों के पास छोड़ अथवा यदि उसकी साथ चलने की इच्छा हो तो उसे साथ लेके वन में प्रवेश करे।[159]

ऋग्वेद का एक रहस्यात्मक सूक्त है, जिसमें कहा है– "हे अरण्यानि! जो तू हम गृहस्थों से विमुख होकर चली आई है, क्यों ग्राम की बातों में रुचि नहीं लेती, क्या तुझे भय नहीं लगता।"[160] इससे प्रतीत होता है कि पति की वानप्रस्थ से पूर्व मृत्यु होने पर यदि स्त्री की इच्छा होती थी तो अकेली भी वानप्रस्थ ले सकती थी।

सौ वर्ष की आयु के चार विभाग करके प्रत्येक आश्रम की 25–25 वर्ष की अवधि मानी है। नारद परिव्राजकोपनिषद् तथा कुल्लूक ने इसकी पुष्टि की है।[161] किन्तु यह मान्यता सर्वत्र उपयुक्त नहीं है। क्योंकि 45 वर्ष में विवाह करने वाला आदित्य ब्रह्मचारी पचासवें वर्ष में वानप्रस्थ कैसे ले सकेगा। इसलिए मनु की उपर्युक्त व्यवस्था ही उपयुक्त है, जिसमें पौत्र का होना आवश्यक बतलाया है।

वानप्रस्थ के भेद – महर्षि दयानन्द ने अपने किसी भी ग्रन्थ में वानप्रस्थ के भेदों का उल्लेख नहीं किया है किन्तु कई शास्त्रज्ञों ने बाद में अपनी बुद्धि लगाते हुए वानप्रस्थ के कई भेद कर दिए जिनमें मांस भक्षणादि के निकृष्ट कार्य भी उन्होंने लिखे हैं, जो वेदोक्त नहीं हैं स्वामी दयानन्द ने इन अनौचित्यपूर्ण कृत्यों का विरोध किया है और मनुष्य जीवन में माँस भक्षण अनुचित कार्य बताया है।

जबकि मनु ने नाना प्रकार के मुनियों के पवित्र अन्नों तथा शाक–मूलफलों से महायज्ञों के करने तथा उन्हीं के खाने का वानप्रस्थ को विधान किया है तथा मद्य मांस का निषेध किया है।[162] सम्वर्त की भी यही मान्यता है। अतः वानप्रस्थ के जो लक्षण वेद तथा मनु ने बतलाए हैं वही मान्य हैं। शेष तो ज्ञानवर्धन मात्र के लिये उद्धृत कर दिये गए हैं। ऋग्वेद का अरण्यानी सूक्त वानप्रस्थ का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करता है।

वानप्रस्थ के कर्त्तव्य – यजुर्वेद में 'गिरिशयाय' शब्द आया है जिसका अर्थ महर्षि 'यो गिरिषु पर्वतेषु श्रितः सन् शेते तस्मै वानप्रस्थाय' अर्थात् पर्वतों पर सोने वाला करते हैं।

गृहस्थ आश्रम का वेदोक्त विधि से पालन करके जब गृहस्थ के बाल श्वेत हो जाए, मुख पर झुर्रियाँ आने लगें तथा पुत्र के घर भी पुत्र हो जाए तब वह गृहस्थ को त्याग कर आत्मोन्नति के लिये वानप्रस्थ आश्रम को ग्रहण कर लें। वहाँ वन में रहते हुए जंगली कन्द मूल आदि से निर्वाह करें तथा उसी से पंच महायज्ञ करें। स्वाध्याय तथा आत्मोन्नति के लिये नित्य यत्नवान् रहता हुआ जीवन के तृतीय भाग को पूर्ण करें। इसके उपरान्त आयु के चतुर्थ भाग में संन्यास ग्रहण करें। संन्यास में ज्ञान तथा वैराग्य की प्रमुखता है। इसीलिये संन्यास का अधिकार केवल ब्राह्मण को ही है। वह सब लोगों को धर्म का उपदेश देता है तथा उनके अन्दर से पाखण्ड को दूर कर सत्य मार्ग सुझाता है। इससे समाज में सुख–शान्ति की वृद्धि होती है। लेकिन यहाँ पर यह विशेष ध्यातव्य है कि संन्यास केवल पुरुष ही नहीं ग्रहण करते थे स्त्रियाँ भी संन्यास ग्रहण करती थी सत्यार्थ प्रकाश पंचम समुल्लास के संन्यास प्रकरण में स्वामी दयानन्द ने लिखा है– "जो निर्वाह न कर सके, इन्द्रियों को न रोक सके वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे। परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे ? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्य संरक्षण के गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उसका वीर्य विचाराग्नि का इन्धनवत् है अर्थात् उसी में व्यय हो जाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यकता रोगी के लिए होती है वैसी निरोगी के लिए नहीं। इसी प्रकार जिस स्त्री वा पुरुष को विद्या, धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे जैसे पञ्चशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियाँ हुई थीं, इसलिए संन्यासी का होना अधिकारियों को उचित है और जो अनाधिकारी संन्यास ग्रहण करेगा तो आप डूबेगा ओर औरों को भी डुबावेगा। जैसे 'सम्राट' चक्रवर्ती राजा होता है वैसे 'परिव्राट' संन्यासी होता है।"[163] इस प्रकार स्त्री व पुरुष संन्यास ग्रहण कर वैदिक उपकार का कार्य करते थे।

यहाँ पर इस ओर ध्यान आकृष्ट करना उचित होगा कि महर्षि दयानन्द ने अपने विचारों में पूर्ण रूप से वेदों का ग्रहण किया है। मनु आदि ने भी वेदों का ग्रहण किया है किन्तु मनु ने जो मनुस्मृति बनाई है वह उस समय की राज नियमावली थी जिसे आज की भाषा में संविधान कह सकते हैं। संविधान राष्ट्र के प्रत्येक जनसामान्य के लिए मानने योग्य होता है यदि कोई संविधान के विरुद्ध कार्य करता है उसे दण्ड का भागी बनना पड़ता है।

जगह–जगह दयानन्द ने मनु स्मृति के उदाहरण दिये हैं क्योंकि मनुस्मृति को दयानन्द ने वेदोक्त प्रथम संविधान माना है। मनुस्मृति में भी कई स्थलों पर लोगों ने बाद

में श्लोक प्रक्षिप्त किये हैं। उन्हें दयानन्द ने अलग कर मूल मनुस्मृति के श्लोकों को ही मान्य कर उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। जो न्याय्य है। स्वयं दयानन्द के शब्दों में "अब मनु जी का धर्मशास्त्र कौन सी स्थिति में है। इसका विचार करना चाहिए। जैसे ग्वाले लोग दूध में पानी डालकर उस दूध को बढ़ाते हैं और मोल लेने वाले को फँसाते हैं, उसी प्रकार मानव धर्मशास्त्र की अवस्था हुई है। उसमें बहुत से दुष्ट क्षेपक श्लोक हैं, वे वस्तुतः भगवान मनु के नहीं हैं। यदि कोई कहे कि यह कैसे ? तो इसका प्रमाण यह है कि एक बार इन श्लोकों को मनुस्मृति की पद्धति से मिलाकर देखने से वे श्लोक सर्वथैव अयुक्त दिखते हैं। मनु सदृश श्रेष्ठ पुरुष के ग्रन्थ में अपने स्वार्थ साधन के लिए चाहे जैसे वचनों को डालना बिल्कुल नीचता दिखलाता है।"[164] इस प्रकार मनुस्मृति आद्यग्रन्थ था कुछ लोगों का यह मानना बिल्कुल गलत है कि यह महाभारत के बाद स्मृतिकाल का लिखा हुआ ग्रन्थ है।

वस्तुतः महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो नियम स्त्रियों को बताये हैं वे केवल स्त्रियों को ही करने योग्य नहीं हैं। उन नियमों से पुरुष भी सदा बाध्य हैं। कई स्थानों पर कुछ विशेष नियम हैं जो केवल स्त्रियों के लिए ही उपयुक्त हैं। हर जगह उन्होंने लड़के के साथ लड़की लिखा है। ब्रह्मचारी के साथ ब्रह्मचारिणी लिखा है। अध्यापक के साथ अध्यापिका लिखा है। बालक के साथ बालिका लिखा है। पुरुष के साथ स्त्री लिखा है गृहस्थ में पति के साथ पत्नी लिखा है। ऐसा नहीं है कि जिन क्षेत्रों में पुरुषों को अधिकार दिया है उन क्षेत्रों में स्त्रियों को वंचित रखा हो। उन्होंने स्त्री–पुरुष को समान अधिकार देकर बराबरी का दर्जा दिया है। कई बार लोग अज्ञानवश अपनी विद्वता झाड़ने के लिए दयानन्द पर यह आक्षेप लगाते हैं कि दयानन्द ने केवल स्त्रियों को ही नियमों में बाँधकर सारे बन्धन उसी पर लगा दिये जबकि यह सत्य नहीं। सत्य यह है कि दोनों पर समान बन्धन हैं देखिए– "जो विद्या पढ़ने–पढ़ाने के विघ्न हैं उनको छोड़ देवें। जैसा कुसंग अर्थात् दुष्ट विषयी जनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीस वर्षों से पूर्व पुरुष और सोहलवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह हो जाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य न होना, राजा, माता–पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने–पढ़ाने, परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य से वीर्य बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्ति

के दर्शन–पूजन में व्यर्थ काल खोना, माता, पिता, अतिथि और आचार्य, विद्वान् इनको सत्यमूर्ति मानकर सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कण्ठी, माला धारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास, पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, विद्या धर्म योग परमेश्वर की उपासना के बिना मिथ्या पुराणनामक भगवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना, लोभ से धनादि में प्रवृत्ति होकर विद्या में प्रीति न रखना, इधर–उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फंस के ब्रह्मचर्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं।

आजकल के सम्प्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या–सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसा के उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते हैं और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जाएँगे तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे। **इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें।**"[165] इन सब बातों से प्रतिबंधित स्त्री और पुरुष दोनों हों जब जाकर सत्य शिक्षा को प्राप्त करना संभव है।

अतः सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के शब्दों में कह सकते हैं कि– "स्वामी जी ने वेद के उद्धरणों द्वारा सिद्ध किया है कि स्त्रियों की शिक्षा अध्ययन आदि वेद विहित है। उनके लिए ब्रह्मचर्य के पालन का भी विधान है। स्वामी जी की इस महत्ता को देखकर मालूम हो जाता है कि स्त्री समाज को उठाने वाले पश्चिमी शिक्षा प्राप्त पुरुषों से वह बहुत आगे बढ़े हुए हैं। वह संसार और मुक्ति दोनों प्रसंगों में पुरुषों के ही बराबर नारियों को अधिकार देते हैं। इस एक ही वाक्य से साबित होता है कि किसी भी दृष्टि से वह नारी–जाति को पुरुष जाति से घटकर नहीं मानते।"[166]

निष्कर्ष :

1. आधुनिक युग में स्त्रियों की स्वतंत्रता के सर्वप्रथम प्रणेता स्वामी दयानन्द थे।
2. स्त्री मुक्ति की बात दयानन्द से पहले किसी ने की हो, किन्तु स्त्रियों के दुःख निवारण के लिए जितना कार्य स्वामी दयानन्द ने किया शायद ही कोई कर पाया हो। इसका प्रमाण हमें नहीं मिलता।

3. प्रथम बार महर्षि दयानन्द ने स्त्रियों एवं शूद्रों को वेद पढ़ने की वकालात की है इससे पहले वैदिक युग को छोड़कर यह सिद्ध करना कठिन है।

4. महर्षि दयानन्द ने 5000 वर्ष की काली घनघोर अंधेरी रात्रि के बाद स्त्रियों को शिक्षा रूपी सूर्य के दर्शन ही नहीं कराए, बल्कि उन्हें प्रथम बार पुरुषों के समकक्ष होने का दर्जा भी दिया।

5. प्रथम बार सारे राष्ट्र के अंधकार को धोकर स्वाधीनता, स्वभाषा (हिन्दी), स्वदेशी वस्तु एवं घोर पाखण्ड का विरोध कर उसे जड़ से समाप्त करने के लिए दयानन्द आजीवन लड़े। क्योंकि आज तक इतिहास साक्षी है कि स्त्रियों की जो दशा हुई है उसका मूल कारण स्त्रियों को शिक्षा से दूर होना या करना तथा पाखण्ड का हावी होना रहा है।

6. विधवा विवाह, बाल विवाह निषेध, स्त्रीशिक्षा, सतीप्रथा विरोध आदि अन्य पर जितना कार्य दयानन्द एवं इनकी संस्था ने किया है उतना कोई अन्य नहीं कर पाया।

♦♦♦♦

सन्दर्भ 3.0

1. उपदेश मञ्जरी (पूना प्रवचन) : सं. राजपाल सिंह शास्त्री, पृ.सं.–119
2. मनुस्मृति 9/90
3. ऋग्वेद 3/8/4 सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास चतुर्थ में तीन वेद मंत्र, (ऋग्वेद 1/179/1, 3/8/4, 3/55/16) तथा संस्कार विधि में पाँच वेद मन्त्र (ऋग्वेद – 2/35/4–6, 5/37/3, 5/41/7) अर्थसहित दिए गये हैं मन्त्र तथा उनके महर्षि दयानन्द कृत अर्थ पाठक वहाँ देख सकते हैं।
4. सत्यार्थ प्रकाश, ले. महर्षि दयानन्द सरस्वती सं. पं. भगवद्दत्त (रिसर्च स्कॉलर) पृ. सं.–41, 42 संस्कार विधि, महर्षि दयानन्द–पृ.–99, वेदारम्भ संस्कार
5. वही, पृ.सं.–75, 79
6. वही, पृ.सं.–78
7. वही, पृ.सं.–78, 80, 84
8. वही, पृ.सं.–87–88
9. संस्कार विधि : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–148
10. ऋग्वेद भाष्य : महर्षि दयानन्द सरस्वती 1/22/11
11. वही 1/30/13, 1/167/3, 6/64/6
12. यजुर्वेद भाष्य : महर्षि दयानन्द सरस्वती, 8/9, 34/10
13. ऋग्वेद भाष्य : महर्षि दयानन्द सरस्वती 4/51/3, 4/51/2, 4/51/8, 4/52/4, 4/14/3, 6/64/3, 6/61/1
14. यजुर्वेद भा. स्वामी दयानन्द 14/22, 35/21
15. ऋग्वेद भा. स्वामी दयानन्द 1/56/3, 5/32/11, 5/32/12
16. यजुर्वेद भा. स्वामी दयानन्द 8/2, 8/3
17. मनुस्मृति 5/150
18. अथर्ववेद 14/2/26, 14/2/27
19. ऋग्वेद भा. स्वामी दयानन्द, 1/123/5, 2/17/7, 3/61/1, 4/52/7, 5/61/7, 4/52/6, 5/66/5, 5/79/6, 6/64/2
20. यजुर्वेद भा. स्वामी दयानन्द 11/62
21. संस्कार विधि : महर्षि दयानन्द, विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क दिल्ली–6, पृ.सं.–203–204

22. ऋग्वेद भा. महर्षि दयानन्द 1/50/2, 1/62/8
23. यजुर्वेद भा. महर्षि दयानन्द 6/34, 6/35, 11/39, 12/65, 14/12
24. ऋग्वेद भा. महर्षि दयानन्द 3/1/7, 3/33/13, 3/54/13, 3/57/5, 4/14/4, 5/76/3, 5/75/9, 7/39/1
25. यजुर्वेद भा. महर्षि दयानन्द 20/55, 8/12, 8/17, 8/21, 8/31, 11/40, 11/49, 13/57, 14/8
26. विवाह प्रतिज्ञास्वियमपि कारयितव्या–हे स्त्रीपुरुषौ! युवां यथा स्वहितायाचरतं तथास्माकं मातापित्राचार्यातिथीनां सुखायापि सततं वर्तेयाथाम्। यजुर्वेद भा. 15/55
27. विवाहे स्त्रीपुरुषाभ्यामियमपि द्वितीया प्रतिज्ञा कारयितव्या। येन ब्रह्मचर्येण यया विद्यया च युवां स्त्रीपुरुषौ कृतकृत्यौ भवथः तत् तां च सदैव प्रचारयतम्। पुरुषार्थेन धनादिकं च वर्धयित्वैतत् सन्मार्गे वीतम्। यजुर्वेद भा. 15/56
28. उपदेश मञ्जरी : महर्षि दयानन्द, पृ.सं.–22
29. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द, पृ.सं.–68
30. वही, पृ.सं.–69
31. उपदेश मञ्जरी : महर्षि दयानन्द, पृ.सं.–21
32. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द, भगवद्दत्त पृ.सं.–33
33. ऋग्वेद भा. 6/44/18
34. यजुर्वेद भा. 10/7
35. ऋग्वेद भा. 3/1/23, 2/41/16
36. यजुर्वेद भा. 11/36
37. ऋग्वेद भा. 1/152/6
38. यजुर्वेद भा. 6/14
39. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द, पृ.सं.–69
40. वही, पृ.सं.–70
41. यजुर्वेद भा. 11/59
42. सत्यार्थ प्रकाश म.द. पृ.सं.–32
43. वही पृ.सं.–104
44. ऋग्वेद भा. 2/41/17, 1/117/24

45. यजुर्वेद भा. 20/85, 34/40

46. ऋग्वेद भा. 1/164/41, 7/40/7

47. यजुर्वेद भा. 11/56

48. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द, पृ.सं.–69

49. ऋग्वेद भा. 6/75/15

50. वही 6/75/15

51. यजुर्वेद भा. 17/45

52. वही 13/17, 10/26

53. ऋग्वेद भा. 1/126/7

54. यजुर्वेद भा. 13/18

55. संस्कार विधि : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–241

56. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–23

57. ऋग्वेद भा. 1/48/16, 4/18/5

58. सत्यार्थ प्रकाश, पृ.सं.–24–25

59. ऋग्वेद भा. 6/61/4

60. यजुर्वेद भा. 11/68

61. ऋग्वेद भा. 1/124/4, 6/48/13

62. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–330

63. संस्कार विधि : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–204–205

64. वही पृ.सं.–188

65. सत्यार्थ प्रकाश समु.–4

66. वही समु.–11,पृ.सं.–330

67. ऋग्वेद भा. 1/113/20

68. यजुर्वेद भा.–13/24

69. ब्रह्माचारी गृहस्थो भिक्षुर्वेखानसः तेषां गृहस्थो योनिरप्रजननत्वादितरेषाम्।। गौतम धर्मसूत्र 1,3,2–3 पृ.–62

70. ऐकाश्रम्यं त्वाचार्यः प्रत्यक्षविधानाद् गार्हस्थ्यस्य गार्हस्थ्यस्य। वही 1/3/36,

71. यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्। तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्।। मनु.–6/90

72. यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्। गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही।। वही 3/78

73. अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः। तै ब्रा. 2/2/2/6

74. अधो ह वा एष आत्मनो यज्जाया। यावज्जायां न विन्दते असर्वो हि तावद्भवति।। शत. 5/2/1/10

75. पुरुषो जायां वित्त्वा कृत्स्नमिवात्मानं मन्यते।। ऐत.आ. 1/3/5

76. सत्यार्थ प्रकाश, समु. 4 पृ.सं.–118

77. यजु. 32/5 में परमात्मा को 'षोडशी' कहा है तथा यजु. 8/33 में गृहस्थ को 'षोडशिने' कहा है।

78. यजु. 8.33 का भावार्थ

79. तत्र वार्ताकवृत्तयः कृषिगोरक्षवाणिज्यमगर्हितमुपयुञ्जानाः शतसंवत्सराभिः क्रियाभिर्यजन्त आत्मानं प्रार्थयन्ते।। आश्रमोपनिषद्, पृ.सं.–652

80. शालीनवृत्तयो यजन्तो न याजयन्तोऽधीयाना नाध्यापयन्तो ददतो न प्रतिगृहणन्तः शतसंवराभि. वही पृ.सं.–651–652

81. यायावरा यजन्तो याजयन्तोऽधीयाना अध्यापयन्तो ददतः प्रतिगृह्णन्तः शत.।। वही पृ.सं.–652

82. घोर संन्यासिका उद्धृतपूताभिरद्भिः कार्यं कुर्वतः प्रतिदिवसमाहृतोञ्छवृत्तिमुप युञ्जानाः शत.।। वही पृ.सं.–652

83. गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि। यजुर्वेद 3.41

84. इह रीतिरिह रमध्वमिह धृतिरिहस्वधृतिः।। वही 8.51 पदार्थ द्रष्टव्य

85. ऋग्वेद 10.85.12

86. गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथा सो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।। वही. 10/85/26

87. इह प्रियं प्रजया ते समृध्यातामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि। एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाध जिव्री विदथमा वदाथः।। ऋग्वेद 10/85/27

88. तां पूषञ्छिव तमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्।। ऋग्वेद 10/85/37

89. सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। ऋग्वेद 12/85/46

90. वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति।। ऋग्वेद 5/37/3

91. तमस्मेरा युवतयो युवानम्।। ऋग्वेद 2/35/4

92. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।। अथर्ववेद 11/5/18

93. ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम्। यद्याधत्तेपुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते।। जातो वा न चिरंजीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत्।। सुश्रुत शारीरस्थान अ. 10 श्लोक 47-48

94. त्रीणी वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती। ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्दते सदृशं पतिम्।। मनु. 9/90

95. बौधायन गृ. 4/1/10 कौशिक सूत्र 79/16

96. अनुशासन पर्व 44/16 तथा वशिष्ठ 17/67-68

97. संस्कार विधि, गर्भाधान प्रकरण, वेदारम्भ तथा सत्यार्थ प्रकाश समु. 4, पृ.सं.-75

98. स.प्र., समु. 4 पृ.सं.-75

99. वही, पृ.सं.-78

100. यजुर्वेद भा. स्वामी दयानन्द 11/60 भावार्थ

101. यजुर्वेद भा. स्वामी दयानन्द 28/13 भावार्थ। इस विषय में महर्षि जी लिखते हैं, जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्या ग्रहण रहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है। सत्या.प्र., समु. 4 पृ.सं.-75,78 यजुर्वेद 19/49 तथा 28/13 भी द्रष्टव्य।

102. विवाह का आदर्श : नन्दकिशोर विद्यालंकार, पृ.सं.-11

103. हिन्दू संस्कार : डॉ. राजबलि पाण्डेय, पृ.सं.-195

104. यजुर्वेद भा. 8/10 भावार्थ

105. मनु. 3/2/9

106. यजु. 8/1,8/3,8/8,8/9,8/30,11/63,11/70 भावार्थ

107. मनु. 9/89 व संस्कार विधि, विवाह प्रकरण

108. याज्ञवलक्य स्मृति 52-53 आचाराध्याय

109. यजु. भाष्य 10/34, 34/10, 8/43

110. सत्यार्थ प्रकाश, समु., 3 पृ.सं.–70

111. यजुर्वेद भा.15/54

112. यजुर्वेद भा. 11/58

113. भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्। ऋग्वेद 10/27/12

114. एयमगन् पतिकामा जनिकामोऽहमागमम्।। अथर्ववेद 2/30/5

115. तत्र नारदः – यदा तु नैव कश्चित् स्यात् कन्या राजानमाव्रजेत्। अनुज्ञया तस्य वरं परीक्ष्य वरयेत् स्वयं सवर्णमनुरूपञ्च कुलरूपवयः श्रुतैः।। कृत्यकन्वतरु गार्हस्थ्य काण्ड 12/22

116. संस्कार विधि : महर्षि दयानन्द, विवाह प्रकरण, पृ.सं.–145

117. सत्यार्थ प्र., समु., 4 पृ.सं.–78

118. दयानन्द यजुर्वेद भाष्य 3/41, 8/1,5,9,11/63–64, 12/35, 53–54, 56,14/8,15/8,53,17/97,19/15,44,48, 20/40, 25/46, 26/20, 34/10, 35/7,38/2, 33/84,15/44,12/54

119. द. यजुर्वेद भाष्य 8/1,12/53, 19/15, 8/5, 12/35, 11/63–64, 12/56,15/8,53,19/48

120. द. यजुर्वेद भा. 8/5, 14/2, 25/46,12/35, 12/53, 19/48, 26/20, 12/54, 15/8, 20/40, 12/56

121. सत्यार्थ प्रकाश, समु. 4, पृ.सं.–73 तथा संस्कार वि. विवाह प्रकरण, पृ.सं.–142

122. यजुर्वेद भा. 11/72

123. वही 11/72

124. सत्यार्थ प्र., समु. 4, पृ.सं.–88, संस्कार विधि, समावर्तन संस्कार

125. यजुर्वेद भा. 11/64

126. मनु. 378 बौधायन 2/6/11/29 यजुर्वेद भाष्य 8/33।

127. यजुर्वेद भाष्य 8/31, 8/63

128. यजुर्वेद भा. 3/24, 3/45, 11/24

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्या न्यक्रमीत्। दधद्रत्नानि दाशुषे।।

11/25,11/28, 15/21, 26–27, 31–33 तथा 35 भी द्रष्टव्य।

129 यजुर्वेद भाष्य11/48, 11/64, 8/2, 8/26, 8/27

130. दयानन्द यजुर्वेद भा. 8/48, 8/43

131. सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया। सुसंस्कृतोपस्कटया व्यये चामुक्तहस्तया।। मनु. 5/150

132. यजुर्वेद 8/42, 11/69

133. यजुर्वेद 8/42 मित्रस्य चर्षणीधृतोऽव देवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम्।। 11/62, 6/34

134. पत्युर्नो यज्ञसंयोगे।। अष्टाध्यायीय 4/1/33

135. यजुर्वेद भा. 6/34, 6/25,13/26

136. संस्कार वि. विवाह प्रकरण, पृ.सं.–169

137. यजुर्वेद भा. 8/32

138. यजुर्वेद भा. 8/12

139. स सन्धार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता। सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्योदुर्बलेन्द्रियैः 3/79, यजुर्वेद भाष्य 8/9

140. यजुर्वेद भा. 8/43

141. यजुर्वेद भा. 17/98, 6/34, 11/39, 52,

142. यजुर्वेद भा. 11/49, 50,51,53,64,65 तथा 14/3

143. वही 11/67, 11/74, 11/75

144. वासो अग्ने विश्वरूप ँ संव्ययस्व विभावसो।। 11/40 विश्वरूपम्– विविधस्वरूपम् दयानन्दः

145. सदैवात्युत्तमैर्वस्त्रभूषणैः शरीराणि संसृज्य वर्तेरन्। स्वावेशा–सुष्ठु समान्ताद् वेशो यस्याः सा (महर्षि दयानन्दः) 14/3

146. 6/14–16, 8/28–31, 23/17–19 का उवट–महीधर भाष्य।

147. सत्यार्थ प्रकाशः महर्षि दयानन्द सरस्वती सं. भगवद्दत्त (रिसर्च स्कालर) पृ.सं.–275–276 अधिक देखने के लिए दयानन्द कृत गोकरुणानिधि देखें।

148. ब्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मे ऽणयश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।। 18/12 पर महर्षि दयानन्द भाष्य।

149. ऊर्ज वहन्तीरमृतं घृत पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधास्थ– तर्पयत मे पितॄन् 2/34

150. पुत्रो हि हृदयम्।। तै. 2/2/7/4, प्रजा वै तन्तुः।। ऐत. 3/11/38, प्रजा वै विश्वज्योतिः।। श. 6/5/3–5, 7/4/2/26

151. तस्मादुत्तरवयसे पुत्रान् पितोपजीत्युप हवा एनं पूर्ववयसे पुत्रा जीवन्ति।। श. 12/2/3/4, उपहवा पूर्वे वयसि पुत्रा पितरमुपजीवन्त्युपोत्तमे वयसि पुत्रान् पितोपजीवति।। गोपथ. 4/7

152. नापुत्रस्य लोकोऽस्ति ऐत. 7/13 ऐतरेय ब्रा. 33/1, आपस्तम्ब 2/14/1, यजुर्वेद 27/33 भा./ऋग्वेद 10/85/45 तथा यजुर्वेद 8/1 भा.

153. यजुर्वेद भा. 19/87, 12/35, 8/5, 26/24, 12/51, 8/9, 19/84

154. यजुर्वेद भा. 8/6, 12/39, 12/45

155. यजुर्वेद भा. 12/24, 6/36, 3/55, 6/9, 12/108, 9/4

156. यजुर्वेद भा. 12/207, 11/36, 11/58,... पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे 8/5

157. द. यजु. भा. 19/91

158. वने प्रकर्षेण नियमेन च तिष्ठति चरतीति वनप्रस्थ, वनप्रस्थ एव वानप्रस्थः संज्ञायां दैर्ध्यम्। याज्ञ. स्मृति. 3/45

159. गृहस्थस्तु यदा पश्येद् बलीपलितमात्मनः। अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्।। मनु. 6/2, 6/3

160. ऋग्वेद 10/146/1

161. मनु. 3/50, नारद परि. 1/1

162. मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा। एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद् विधिपूर्वकम्। मनु. 6/5 वर्जयेन्मधुमांसं च।। 6/14

163. सत्यार्थ प्रकाश, पृ.सं.–131

164. उपदेश मञ्जरी : महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृ.सं.–87

165. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द सरस्वती, सं.पं. भगवद्दत्त (रिसर्च स्कॉलर), पृ.सं.–67–68

166. महर्षि दयानन्द और युगान्तर : स्व. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' वैदिक पथ मासिक नवम्बर 2008, पृ.सं.–29

अध्याय चतुर्थ

आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श का विकास

"जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तो विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का प्रमाण यथा योग्य होना चाहिए।"

– दयानन्द सरस्वती

"स्वामी दयानन्द दया स्वरूप थे। वह प्रांशु विशाल दर्शन भ्रद पुरुष थे। उनका मेरे साथ व्यवहार कृपापूर्ण और पितृतुल्य था। वह शुद्ध भाषा प्रभावोत्पादक स्वर में बोलते थे। उन्होंने स्त्री और शूद्र वर्ग को भी वेद के अध्ययन का अधिकारी घोषित किया था।"

– पण्डिता रमा बाई

वैदिक युगीन गौरवमयी सामाजिक व्यवस्था में शीर्षस्थ एवं अति सम्मानीय पद पर सुशोभित नारी रामायण काल में कुछ अपना अस्तित्व विकृत करने ही वाली थी किन्तु समय रहते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की शासन व्यवस्था ने शौर्यपूर्ण सामाजिक परिवर्तन को पुनः सुव्यवस्थित करके वही स्थान स्त्री को प्राप्त करवाया जो वैदिककाल में था इसी वजह से किंवदन्ती है कि राम राज्य ग्यारह वा चौदह लाख वर्षों तक चला। वह स्थिति उस समय होने वाले सामाजिक बदलाव को पुनः काबू में करने की थी वस्तुतः राम द्वारा राज्य तो उतना ही किया गया जितनी उस काल में मनुष्यों की आयु थी किन्तु लाखों वर्षों तक सिस्टम वही था जो राम के शासन काल में था। इसलिए लाखों वर्षों तक राम राज्य चला और उसमें स्त्रियों की स्थिति वही थी जो वैदिक युग में थी। किन्तु महाभारतकाल में स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त विकराल बन गई थी, जिसका वर्णन मध्ययुग में स्त्री विमर्श में कर चुके हैं, उस विकरालता का दंश स्त्रियाँ आज तक भी भुगत रही हैं। महाभारत कालीन साहित्य से लेकर बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य, पुराण साहित्य सिद्ध, नाथ, आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में अनेक डुबकियाँ लगाने के पश्चात् 1857 की क्रान्ति से कुछ साहस बटोरकर अपनी नौका को सम्हालने में तथा स्वतंत्रता तक आते–आते अपने अधिकारों के लिए स्त्री कुछ जागरुक हुई।

वैदिक साहित्य में कई स्थानों पर कई मंत्रों में आया है कि स्त्री जागरुक हों लेकिन व्यथा यह थी कि सम्पूर्ण विश्व में कोई जागरुक नहीं था वैदिक नियम उखाड़ फैंके थे ऐसी दशा में जागरुकता की बात करना जरा कठिन था। आज जागरुक हैं किन्तु पूरी तरह नहीं। "आधुनिक युग में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज ने पुराने धर्म को नये समाज के अनुरूप ढालने का प्रयास किया। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज ने तो नये परिवर्तनों को स्पष्ट रूप से अंगीकार कर लिया, पर आर्य समाज वैदिक धर्म के मूल स्वरूप को बनाये रखना चाहता था। किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आर्य समाजी वैदिक युग की रीति–नीतियों में लौट जाना चाहते थे। उस समय की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विचारधारा पर आर्य समाज का विशेष प्रभाव पड़ा।"[1] स्वामी दयानन्द का वह पहला प्रयास था कि खोई हुई संस्कृति को पुनः प्राप्त कर राष्ट्र संगठित करना। उस समय ब्रह्म समाज की स्थापना कर राजाराम मोहनराय ने भी अमानवीय एवं राष्ट्र विरोधी ताकतों का विरोध करने का संकल्प किया। इसमें सती प्रथा विरोध उनका मुख्य कार्य स्त्रियों के प्रति था। उनका ज्ञान अरबी एवं फारसी में अधिक था तथा वे अंग्रेजियत की ओर झुके हुए थे। प्रार्थना समाज ने भी मनुष्य की समानता, अन्तरजातीय विवाह तथा स्त्री

शिक्षा पर बल दिया। थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्णमिशन आदि ने भी इस जागरण में अपनी भूमिका अदा की। लेकिन धीरे–धीरे अंग्रेजियत की ओर इनका झुकाव होने से इनका प्रभाव कम होने लगा या फिर यह कहना अनुचित न होगा कि इनके संस्थापकों के बाद इन संस्थाओं को उन्नति पर पहुँचाने के लिए बाद में अच्छे प्रतिभाशाली व्यक्तियों का अभाव रहा। बल्कि दयानन्द ने जो जागरण स्थापित किये उसमें स्त्रियों की स्थिति को निरन्तर सुधारने का प्रयास उनकी संस्था ने आज तक पुरजोर ढंग से किया है। स्वामी दयानन्द ने अपने प्रचार एवं राष्ट्र जागरण की भाषा हिन्दी को चुना और इसी का यह परिणाम हुआ कि जो बुद्धिमान, तर्कवान, कवि साहित्यकार हुए वे सबके सब 1857 के आन्दोलन से दयानन्द की मृत्यु पश्चात् भारत स्वतंत्र होने तक कुछ तो दयानन्द से प्रत्यक्ष मिले हुए थे एवं कुछ शिष्य परम्परा तथा आर्य समाज से अत्यन्त प्रभावी थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि ऋषि दयानन्द के अनेक मिशनों में से एक स्त्री जागरण को हिन्दी साहित्य में अधिक बल मिलता गया। स्त्रियों की भावना में आत्म स्वाभिमान की निरन्तर बढ़ोतरी होती गई और साहित्य में स्त्री विमर्श के विकास को गति प्राप्त होती गई।

महाराष्ट्र में जागरण की लहर उदय हुई, पुरुष वर्चस्व से स्त्री मुक्ति के प्रयत्न प्रारंभ हुए। इस दौरान स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान बढ़ा स्त्री शिक्षा की दिशा में किये गये प्रयासों की चर्चा करते हुए हिन्दी के प्रो. अमरनाथ अपने लेख 'आखिर स्त्री विमर्श है क्या' में लिखते हैं– "इस युग में स्त्री अधीनता के विरुद्ध उठी आवाजों ने अनेक माँगों का रूप ले लिया, जैसे विधवा का पुनर्विवाह, बहुविवाह, सती व पर्दा प्रथा पर रोक तथा स्त्रियों के लिए शिक्षा व कानूनी या संवैधानिक स्वतंत्रता। भारत की आरंभिक आन्दोलन कर्ताओं में प्रमुख थीं। पंडिता रमाबाई और सावित्री बाई फूले। दोनों ही उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सक्रिय रहीं, पंडिता रमाबाई ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया, हिन्दी धर्म की रूढ़िवादिता पर आघात किया तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में स्त्रियों की स्वतंत्रता की बात की। उन्होंने स्वयं सदा स्वाधीन जीवन बिताया। सावित्री बाई फूले ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण काम किये। उनके लिए अलग स्कूल खोला। एक तरह से हम उन्हें देश की पहली शिक्षिका कह सकते हैं।"[2] इसके साथ ही महात्मा गाँधी का स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण उन्हें दासतापूर्ण जीवन से मुक्त करा शिक्षा की ओर अग्रसर करना रहा। गाँधी ने स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान ही नहीं दिया अपितु स्त्रियों के प्रति पुरुष मानसिकता को बदलने की भी बात कही तब जाकर स्त्रियाँ पिछड़ेपन से बाहर आयेगी।

स्त्रियों के लिए शिक्षा पर बल देते हुए गाँधी जी ने अफ्रीका में रहते हुए लिखा– "स्त्री शिक्षा में भारत बहुत पिछड़ा हुआ है, यह हमें स्वीकार करना पड़ता है।" किन्तु पाठक

यह न समझे कि गाँधी भी उपनिवेशवादी बौद्धिकों की तरह भारत को सदा से पिछड़ा हुआ राष्ट्र मानते हैं इसलिए इस वाक्य के बाद वे लिखते हैं– "इस स्वीकृति से हमारा हेतु यह कहने का नहीं है कि भारतीय स्त्रियाँ अपना कर्त्तव्य नहीं करती। हमारी तो यह मान्यता है कि सम्पूर्ण बातों का विचार करते हुए जैसे भारतीय पुरुष की तुलना में दुनिया के किसी भी वर्ग का पुरुष नहीं पहुँच पाता, उसी प्रकार हमारी यह भी मान्यता है कि भारतीय नारी के स्तर को पहुँच पाने वाली नारियाँ संसार की अन्य स्त्रियों में अभी पैदा ही नहीं हुई है। परन्तु यह सब भारत की वर्तमान निर्बल, अधम और कंगाल परिस्थितियों में ज्यादा समय निभ सके, ऐसा नहीं है। यह जमाना ऐसा है कि यदि कोई एक स्थिति में बना रहना चाहे, तो नहीं रह सकता। जो आगे बढ़ना नहीं चाहते या नहीं बढ़ते उन्हें पिछड़ना ही होगा। यदि यह विचार सत्य है तो हम देख सकेंगे कि भारतीय पुरुषों ने भारतीय स्त्रियों को बहुत पिछड़ा हुआ रखा है। आजकल सुधार का दम्भ करने वाले अथवा खा–पीकर सुखी रहने वाले बहुतेरे भारतीय–भले ही वे हिन्दू हो या मुसलमान, पारसी हों या ईसाई स्त्रियों को या तो खिलौने के समान रहने देते हैं, या अपने विषय भोग के लिए मनमाने ढंग से रखते हैं। परिणाम यह होता है कि स्वयं दुर्बल होते हैं और वैसे ही रहते हैं तथा दुर्बल प्रजोत्पत्ति में सहायक बनकर ईश्वर या खुदा को जो मंजूर होगा सो होगा, ऐसा कहकर धर्ममय जीवन बिताते हैं। यदि यों ही निरंतर चलता रहा तो भारत को अंग्रेज सरकार से जितना मिलना चाहिए उतना पाने पर भी भारत अधम दशा में ही बना रहेगा। यदि भारत में पचास प्रतिशत मानव–प्राणी हमेशा अज्ञान की दशा में और खिलौने बनकर रहें, तो उससे भारत की पूँजी में कितना घाटा होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है।....दक्षिण अफ्रीका में भारतीय आबादी में लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ बड़ी संख्या में हैं। हमारा निश्चित मत है कि इन दोनों की अच्छी शिक्षा की बड़ी ही जरुरत है। शिक्षा यद्यपि उन्हें सहज ही दी जा सकती है तथापि यह तो तब हो सकता है जब हम खिलवाड़ करना छोड़कर अपने कर्त्तव्य को समझें। शिक्षा देते हुए भी हमें यह सोचना चाहिए कि वह किस हेतु से दी जानी चाहिए। यदि स्वार्थ के हेतु से देंगे तो उससे कोई सार नहीं निकलेगा। वह तो केवल वेश बदलने जैसा होगा।"[3]

जिस स्त्री जागरण की लहर 1857 से प्रारंभ होकर अनेक महापुरुषों के प्रयास से आगे बढ़ी तथा रीतिकालीन मानसिकता से ऊपर उठती हुई पुरानी विचारधारा से मुक्त नये आयामों को छूती हुई निरन्तर विकास की ओर बढ़ती गई उसी "भारतेन्दु–युग की मुख्य विशेषता यह है कि कवियों ने सामाजिक जीवन की उपेक्षा न कर जनता की समस्याओं के निरूपण की ओर पहली बार व्यापक रूप में ध्यान दिया। इसके पूर्व

रीतिकाल में राजाओं और सामन्तों के आश्रय में लिखित दरबारी काव्य में सामाजिक परिवेश के चित्रण की ओर नगण्य रूप में ध्यान दिया गया था। इसीलिए भारतेन्दु–युग में नारी–शिक्षा, विधवाओं की दुर्दशा, अस्पृश्यता आदि को लेकर जो सहानुभूतिपूर्ण कविताएँ लिखी गयीं। उनके प्रतिपाद्य की नवीनता ने सहृदय–समुदाय को विशेष रूप से आकृष्ट किया।"[4] इस काल में स्त्रियों की समाज में स्थिति की ओर चिन्ता व्यक्त कर साहित्यकार उसके सभी पक्षों को लेकर रचनाएँ कर रहे थे साथ में भक्ति भावना, राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, श्रृंगारिकता, प्रकृति चित्रण, हास्य व्यंग्य आदि पर भी लेखकों का पूरा ध्यान गया। भारतेन्दु जी के नाटकों में स्त्री सुधार की ओर ध्यान गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन कवियों ने भी अपने साहित्य में इस स्त्री जागरण को दर्शाया है इसमें बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास आदि रहे हैं।

इस समय यदि इनकी रचनाओं में थोड़ा भी स्त्री संबंधी व्यवहार आता है तो जागरण का विकास ही कहलायेगा जो इस समय के राष्ट्र जागरण, भाषा जागरण में ही संनिहित था। स्त्री जागरण, राष्ट्र जागरण का ही अंग था। "यह मानवता वाद है, व्यापक दृष्टिकोण की सूचना है, यही नवयुग की चेतना का स्वरूप है। इसी को हम जनवादी विचार धारा के नाम से पुकारते हैं। प्रताप नारायण मिश्र स्त्रियों की शिक्षा के पक्षपाती हैं, बाल विवाह के विरोधी हैं, विधवाओं के दुःख से क्षुब्ध हैं–

निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव पहिचानैं,
स्त्रीगण को विद्या देवैं, करि पतिव्रता यश लेवैं।
झूठी यह गुलाब की लाली, धोवत है मिटि जाय,
बाल ब्याह की रीति मिटाओं रहे लाली मुँह छाय।
विधवाविलपैं नित धेनु कटें कोउ लागत हाय गोहार नहीं।।"[5]

यह काल 1857 की क्रान्ति के बाद की रचनाओं का काल था। राष्ट्र जागरण की भावना में रचनाकार सभी प्रकार की बुराईयों से समाज को छुटकारा दिलाने के लिए समाज का ध्यान उन सब बुराईयों की ओर आकृष्ट करना चाहते थे जो राष्ट्र की उन्नति के लिये अति घातक थीं। जिसमें सामाजिक पाखण्डों के साथ स्त्री पर होने वाले सारे अन्याय भी शामिल थे। 1857 के बाद से समाज सुधारकों का राष्ट्रव्यापी अभियान समाज को जाग्रत करने का ही लक्ष्य रहा था जिससे स्त्री पर सदियों से होते आ रहे अत्याचारों पर साहित्यकारों की लेखनी को बल मिलता गया। रानी झाँसी का शौर्य भी इस काल की महिलाओं के लिए प्रेरणास्पद विषय रहा।

द्विवेदी युग तक आते–आते जनता जागरुक होने लगी, पुरानी सामन्तवादी व्यवस्था को समझ गई और 1857 के बाद जो प्रयास सामाजिक संस्थाओं ने और सुधारकों ने किये थे वे धीरे–धीरे व्यक्तियों को जाग्रत अवस्था में लाने का काम करने लगे। "अब कवियों का सामाजिक समस्याओं को परखने का दृष्टिकोण भी बदल रहा था धीरे–धीरे कवि स्त्री शिक्षा के समर्थक हो रहे थे और दमयन्ती, सीता, गार्गी जैसी विदुषियों के देश की स्त्रियों की अविद्या एवं हीनदशा पर सहानुभूति प्रकट करने लगे थे। ज्यों–ज्यों स्त्री शिक्षा और नारी जागृति का प्रादुर्भाव और विकास हुआ त्यों–त्यों स्त्रियों के प्रति उच्च भावना का भी विकास हुआ।"[6] जो बीज 1857 की क्रान्ति में महर्षि दयानन्द जैसे समाज सुधारकों ने धरती पर बिखेरे थे वे आर्य समाज, ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसायटी के द्वारा पुष्पित पल्लवित होकर द्विवेदी काल में और अधिक मजबूती से राष्ट्रीयता के मुद्दों को आगे बढ़ाने का बल मिला। सभी बिन्दुओं में स्त्री जागरण भी एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु था। "उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी तथा इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और समाज के पुनरुत्थान की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी। आलोच्य काल में इसका और भी विकास और विवर्द्धन हुआ। बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं और निःस्वार्थ समाज सेवियों ने देशवासियों के स्वाभिमान को जगाने तथा अपनी गौरव परम्पराओं के प्रति उन्हें निष्ठावान बनाने का सफल प्रयास किया।"[7]

इस काल खण्ड में ऐसा नहीं है कि पुरुष साहित्यकार ही स्त्री जागरण का ध्येय लिए हुए थे। इसमें स्त्रियों की भी भूमिका यत्र–तत्र रही है। चाहे वह पर्दे के पीछे ही क्यों न हो। "जब हम इस काल खण्ड के मध्य स्त्रियों की भूमिका पर दृष्टिपात करें तो उस समय की राजनीति और साहित्यिक सक्रियता और हलचलों की नेपथ्य शक्ति के योगदान का विस्मरण करके नहीं। स्पष्ट सी बात है, नेपथ्य की शक्ति स्त्री थी, जो कहीं–कहीं मुखर होकर उस काल खण्ड के पटल पर आती है और कभी–कभी आयने में झलमलाते सत्य की तरह मुखरित होते हुए भी शब्दों की पकड़ से दूर। लोकगीतों में बिखरा स्त्री साहित्य वैसा ही है।"[8] इसे स्त्री विमर्श का विकास कहने में हमें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। विभिन्न क्षेत्रिय भाषाओं में मिलकर इन स्त्री निर्मित लोकगीतों से हिन्दी साहित्य के भंडार में अभिवृद्धि हुई है। कहने का तात्पर्य यह है कि ये रचनाएँ स्त्रियों द्वारा प्रसूत हैं और स्त्रियाँ इनमें दृश्यमान होते हुए भी साहित्य में अदृश्यमान रही हैं।

जहाँ तक द्विवेदी युगीन काव्य धारा में व्यक्त नारी की समानता का सम्बन्ध है, इसका मेल कांग्रेस के मध्यवर्गीय आन्दोलन और उसके व्यापक स्वरूप में ढूँढा जा सकता है। कांग्रेस का आन्दोलन समाज की पूर्ण व्याप्ति को आधार बनाकर चलता है, इसमें नारी का योग भी सहज ही प्राप्त हुआ। जो कि पूर्व में महर्षि दयानन्द सरस्वती तथा उनकी क्रान्ति, आर्य समाज एवं महात्मा गाँधी के विचारों से सहज से कन्धा मिलाकर चलने वाली वीर प्रसू के रूप में नजर आती है। इस प्रकार श्रृंगार कालीन नायिका भेद की लक्षण स्वरूपा नारी जीवन की मान्यताएँ बदली। स्त्री स्वतंत्र्य सम्बन्धी भावनाओं का विकास नवयुग की चेतना के विकास के साथ ही हुआ था। अब समानता की दृढ़ भावना हो रही थी और इस समानता की चर्चा में ही नारी के प्रति पूत भावनाओं का सहज ही विकास हो रहा था। इस सम्बन्ध में प्राचीन रूढ़ियों में भी नवयुग दर्शन का प्रभाव परिलक्षित हो रहा था। नारीत्व के प्रति उच्च भावना की अभिव्यक्ति करने वाले द्विवेदी युग के चार कवि प्रमुख हैं। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, आयोध्या सिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त। इन कवियों ने स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। श्रीधर पाठक ने स्त्री को इन अत्याचारों से बचाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की है जो आधुनिक हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विकास का अंग है–

"प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुगजोर।
दीनबन्धु सुदृष्टि की जै बाल-विधवा ओर।।"[9]

राम नरेश त्रिपाठी ने प्रेम की कितनी स्वच्छ छवि प्रकाशित की है यदि इस प्रकार स्त्री-पुरुष प्रेम को समझे तो स्त्री-पुरुष वाकई में एक सिक्के के दो पहलू बनने में कोई हानि न हो–

"गन्ध-विहीन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका-हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन।।
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय-अलोक।।"[10]

प्रिय प्रवास में एक स्थल पर अयोध्या सिंह उपाध्याय नारी के हृदय की पीड़ा को अधिक गंभीरता से समझने के लिए नारी को ही उपयुक्त मानते हैं–

पीड़ा नारी-हृदय-तल की नारि ही जानती है।
जूही तू है विकच वदना, शान्ति तू ही मुझे दे।

भारत भारती में मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी साहित्य के स्त्री विमर्श के विकास को आगे बढ़ाते हुए स्त्रियों की महत्ता को साहित्य में उतारना और प्रसार करना चाहते हैं साथ ही उन पर होते अत्याचारों को कोसते हुए पुरुष की जननी की दुर्दशा पर खेद प्रकट करते हैं–

"होगी यहाँ तक कर्कशा क्या लेखनी! तू परवशा–
गृह देवियों की जो हमारी लिख सके तू दुर्दशा?
किस भाँति देखोगे यहाँ, दर्शक दृगों को मीच लो,
यह दृश्य है क्या देखने का, दृष्टि अपनी खींच लो।।
अनुकूल आद्या शक्ति की सुख दायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,
नर–जाति की जननी तथा शुभ शान्ति की स्रोतस्वती!
हा देव! नारी–जाति की कैसी यहाँ है दुर्गति!"[11]

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नारी वादी लेखन में नारी की स्थिति का क्रमिक विकास हो रहा था। उसका जो स्वरूप मध्य युग में नजर आता था वह अब सुधरने लगा था। नारी को भोग एवं तिरस्कार की वस्तु न मानकर उसके प्रति श्रद्धा के भाव हिन्दी साहित्य में जागृत हो रहे थे। इस जागरण काल में नारी के प्रति तथा उसके दुःखों के प्रति साहित्यकारों को बड़ी चिन्ता थी। जयशंकर प्रसाद ने भी नारी के प्रति यही भाव प्रकट किए हैं–

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास–रजत–नग पदतल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।

भले वास्तविक जीवन में नारी की पीड़ा कम नहीं हुई हो परन्तु साहित्य में तो उसे उच्च स्थान मिल चुका था। वास्तविक जीवन का कष्ट एवं कठिनाइयाँ हिन्दी साहित्य में स्त्री जागरण के रूप में उसकी समस्याओं को स्पष्ट रूप से दिखाया जा रहा था। प्रेमचन्द अपने साहित्य में सेवासदन से लेकर गोदान तक सुमन, सोफिया, निर्मला, धनिया, झुनिया, सीलिया, मालती जैसे स्त्री चरित्रों के माध्यम से स्त्री जीवन की नाना छवियाँ प्रस्तुत करते हुए उनमें विद्रोह, संयम, साहस, दृढ़ता का सम्यक निर्वाह करते हैं किसी स्त्री चरित्र में उन्होंने छिछोरापन नहीं दिखाया है। छायावादी कवियों ने भी स्त्रीमुक्ति के सवाल को बड़ी प्रखरता से उठाया। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाट्य ध्रुवस्वामिनी में ध्रुवस्वामिनी के रूप में ऐसी स्त्री चरित्र को प्रस्तुत किया जो अनुचित के विद्रोह की मूर्ति है। वह अपने कायर बुज़दिल पति रामगुप्त का परित्याग कर जिस–जिस मार्ग का अवलम्बन करती है

वह स्त्री विमर्श का विकास है। ध्रुवस्वामिनी कहती है– "मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का जो अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा नारी का गौरव नहीं बचा सकते तो मुझे बेच भी नहीं सकते हाँ तुम लोगों को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।" ध्रुव स्वामिनी यह बात अपने पति राजा रामगुप्त से कहती है जो अपने शत्रु शकराज को उसे उपहार स्वरूप देकर अपनी जान बचाना चाहता है। पूरा नाटक यही दिखाता है कि कैसे वह अपने कायर पति के इस अनुचित कार्य का प्रतिरोध करती हुई अपनी पसन्द का रास्ता अख्तियार करती है। ऐसे नालायक पति से सम्बन्ध विच्छेद कर वह अपने लायक साथी का चुनाव करती है। पुरुषों के दमन, दलन, उत्पीड़न से मुक्ति के लिए स्त्रियों को स्वयं पहल करने की गुहार प्रसाद ने लगाई।

महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अपनी प्रसिद्ध कविता 'वह तोड़ती पत्थर' एक मजदूरन के रूप में स्त्री–शक्ति एवं जुझारूपन की छवि रचते दिखाई पड़ते हैं हांलाकि 1937 ई. में लिखी इस कविता के सम्बन्ध में निराला पर मार्क्सवादी प्रभाव की चर्चा प्रगतिवादी–मार्क्सवादी समीक्षकों ने खूब की है, लेकिन वास्तव में तो वह खोजने पर पूरे भारतीय परिवेश में स्त्री–शक्ति की फैलाई जागृति का ही प्रभाव मानना चाहिए। सौन्दर्य प्रसाधनों का तिरस्कार करते हुए स्त्रियों के आत्मबल के विकास पर बल दे रहे थे। इस कविता में निराला ने एक ऐसी ही युवा स्त्री को प्रस्तुत किया है जिसकी कलाइयों में न चूड़ियाँ हैं, न हाथों में मेंहदी रची है, न बालों में गजरा है, है तो सिर्फ 'गुरू हथौड़ा हाथ, करती बार–बार प्रहार' यानी उसके हाथ में भारी–भरकम हथौड़ा है जिससे वह पत्थर तोड़ती रही है जो सांकेतिक है उसके द्वारा अपने प्रति यानी स्त्री के प्रति–निर्मम पाषाण बने पुरुष–समाज पर चोट करने का लक्ष्य निराला का रहा है। यहाँ अपनी मुक्ति की लड़ाई एक और खुद लड़ रही है। निस्सन्देह इस कविता में एक स्त्री द्वारा खुद पत्थर जैसे निष्ठुर बने समाज पर प्रहार कर अपनी मुक्ति का प्रयास करने का जो बिम्ब है वह निरला द्वारा निरन्तर स्त्रियों में आत्मबल, आत्म सजगता को उभारने की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है।

हिन्दी की कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान भी बहुत अग्रणी एवं उल्लेखनीय भूमिका में रही। उन्होंने राष्ट्रीय भावना को उद्दीप्त करने वाली झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई को लेकर कविता लिखकर स्त्री शक्ति के महत्त्व का अहसास कराया, तो पत्नी, माँ, बहन आदि रिश्तों का सम्यक निर्वाह करते हुए स्वराज्य के लिए अनेक बार जेल यात्राएँ भी की। छायावाद की काल्पनिक उड़ान के लिए विख्यात कवयित्री महादेवी वर्मा ने भी स्त्रियों की पीड़ा को स्वयं समझा तथा उस पीड़ा को यत्र–तत्र अपने साहित्य में प्रकट किया है।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जिस तरह राजनेताओं से लेकर बुद्धिजीवियों तक में पश्चिमोन्मुखी होने, उनकी नकल करने की प्रवृत्ति बढ़ी, उसी की एक कड़ी के रूप में हमारे यहाँ भी स्त्री मुक्ति आन्दोलन की अलग से चर्चा चल पड़ी। लेकिन यह स्त्री मुक्ति–आन्दोलन पश्चिम के उस स्त्री आन्दोलन से प्रेरित नहीं था जो स्त्रियों के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, समानता–स्वतंत्रता के अधिकारों को लेकर चला था। इस स्वातंत्र्योत्तर भारतीय स्त्री आन्दोलन का प्रेरणास्रोत बना पश्चिम में द्वितीय विश्व युद्ध के बाद नये अंदाज में उभरा स्त्री मुक्ति आन्दोलन जिसके केन्द्र में स्त्रियों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों में व्याप्त असमानताओं से मुक्ति का नहीं, अपितु सिर्फ यौन मुक्ति या यौन स्वच्छन्दता का सवाल महत्त्वपूर्ण हो गया है। जाहिर है यौन स्वच्छन्दता को सर्वोपरि महत्त्व देने वाली या देने वाले, यौन को ही सभी प्रकार की मुक्ति का पर्याय समझने वालों को वास्तविक स्त्री मुक्ति उसके अधिकारों एवं उसकी सच्ची समानता के लिये किये गये प्रयासों से कोई अर्थ न था। वास्तव में सच्ची स्त्री मुक्ति स्त्री–पुरुष, पति–पत्नी के संबंधों में परस्पर निष्ठा, विश्वास, सेवा, त्याग के महत्त्व से प्रतिपादित होना चाहिए। जबकि आज के यौनतावादियों के लिए ये सारे मूल्य बकवास हैं। इन्हें कपड़े बदलने की तरह अपने साथी बदलने की छूट होनी चाहिए। इन्हें पति–पत्नी नहीं सेक्स–पार्टनर जैसे शब्द अच्छे लगते हैं।

जो भी हो स्वतंत्रता के बाद महिला रचनाकारों ने सारे आवरण उतार फैंके। सैद्धान्तिक रूप से नारी ने सारे संवैधानिक अधिकार प्राप्त कर लिए परन्तु लिंग–भेद आर्थिक–वैषम्य, नैतिकता ह्रास तथा दोहरे मूल्यों की वजह से समाज की जड़ मानसिकताओं में कोई परिवर्तन नहीं आया। नारी अब और अधिक बौद्धिक और जागरूक हो गई है फिर भी उसका स्थान दलित, शोषित और पिछड़े वर्ग के साथ है। जब महादेवी या इस्मत चुगताई स्त्री के पक्ष में जाँच पड़ताल कर रही थी तब पश्चिम में नारीवादी आन्दोलन का प्रारंभ नहीं हुआ था। शृंखला की कड़ियाँ और अन्य कृतियों में महादेवी ने स्वतंत्र भारतीय स्त्री के स्वर को वाणी दी। उन्होंने अपने अधिकारों के प्रति सजग नारी तथा उपेक्षित उत्पीड़ित नारी की मार्मिक वेदना का आख्यान प्रस्तुत किया। स्त्री जीवन के अभिशप्त पक्ष के प्रति अपनी चिन्ताएँ वे ईमानदारी से व्यक्त करती हैं।

सन् साठ के बाद के दौर में बंग्ला लेखिकाएँ आशापूर्णा देवी तथा महाश्वेता देवी ने भारतीय नारी के परम्परागत रूप को तथा बंगाल की स्त्री के बदलते रूप को अपने कथा साहित्य में जीवन्तता से प्रस्तुत किया। "आशापूर्णा देवी के 'प्रथम प्रतिश्रुति' से स्त्री

जागरण का स्वर फूटा वह 'सुवर्णलता' और 'बकुलकथा' में आधुनिक स्त्री की परिवर्तित मनो भूमि का ज्वलंत दस्तावेज बन गया।"[12]

इस दौर में उषा देवी मित्रा, कौशल्या अश्क, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, उषा प्रियंवदा आदि साहित्यकार विवाह बेमेल विवाह, दहेज, विधवा समस्या, संयुक्त परिवार की समस्याओं को लेकर लेखन के क्षेत्र में सक्रिय थीं लेकिन आधुनिक साहित्य में स्त्री लेखन आज कुछ तीखे प्रश्नों तथा विरोधाभासों को विचार का मुद्दा बना रहा है अपने अस्तित्व की पहचान स्थापना के लिए प्रयासरत नारी और पुरुष की सामन्ती मानसिकता का द्वन्द्व अनेक जटिलताएँ पैदा कर स्त्री को साहित्य सृजन के लिए प्रेरित कर रहा है इसके पीछे उसके शारीरिक मानसिक तनाव भी शामिल हैं। सन् सत्तर अस्सी में जर्मेन ग्रीयर, सीमोन दबोउवा स्त्रियों के अन्दर फूटती विद्रोह की भावना के लिए क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। मन्नू भण्डारी का 'आपका बन्टी', अमृता प्रीतम की रचना 'रसीदी टिकट', कृष्णा सोबती का 'सूरजमुखी अँधेरे के', 'मित्रो मरजानी' और 'जिन्दगी नामा' जैसी कृतियाँ सामाजिक संरचना के स्त्री विरोधी रवैये को तीव्र प्रतिक्रियावादी आक्रोश के साथ व्यक्त करती हैं मृदुला गर्ग के 'उसके हिस्से की धूप', 'चितकोबरा', 'कठगुलाब' और 'अनित्य' में व्यापक सामाजिक सन्दर्भों से जुड़ने का प्रयास दिखाई देता है। प्रभा खेतान का 'छिन्नमस्ता', 'पीली आंधी', राजी सेठ का 'तत्सम' मंजुल भगत का 'अनारो', शशिप्रभा शास्त्री का 'सीढ़ियाँ', मेहरूनिशा परवेज का 'अकेला पलाश', नासिरा शर्मा का 'ठीकरे की मंगनी', 'शाल्मली', सूर्यबाला का 'मेरे संधिपत्र' अलका सरावगी का 'कलि कथा वाया बाइपास', गीतांजलि श्री का 'तिरोहित', नमिता सिंह का 'अपनी सलीबें' तथा दीप्ति खण्डेलवाल की 'प्रतिध्वनियाँ', चित्रा मुद्गल का आवाँ और 'अपनी जमीन' आदि कृतियाँ हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श से जोड़ती हुई स्त्री जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को परत–दर–परत उधेड़ कर उजागर कर देती हैं। भारतीय समाज में आज भी स्त्री जीवन में प्रेम विवाह और गृहस्थी की समस्याएँ महत्त्व रखती हैं। उक्त साहित्यकारों का लेखन स्त्री अधिकारों के प्रति सजगता आक्रामकता तथा तीखेपन से भरा है। आजादी के बाद के बिखराव और रिश्तों की टूटन और बिखरन के जितने प्रमाणिक दस्तावेज इन रचनाकारों के साहित्य में मिलते हैं वे विचार करने योग्य हैं। इनकी रचनाओं में पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर जीवन को विविध कोणों से देखने तथा विडम्बनीय स्थितियों को प्रतिबिंबित करने की जो सजगता और संवेदनशीलता दिखाई देती है वह स्वतंत्र्योत्तर साहित्य में अपना एक स्थान रखती है। गगन गिल ने एक स्थान पर

लिखा है– "आजादी के पहले व आज के महिला लेखन के तेवर में निश्चित ही बड़ा फर्क है। आजादी से पहले की सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा हर सामाजिक रचनात्मक आन्दोलन में बराबरी के स्तर पर शामिल रही। अपने समय के जोखिम उठाए। वह एक स्वस्थ परम्परा में संभव हो सका जो दुर्भाग्य से आज नहीं है।" नारी की सामाजिक स्थिति परिवार की भीतरी संरचना में गुंथी है। एक ओर वह माँ, बहिन, पत्नी और पुत्री है तो वह समाज में भी अपनी बौद्धिक क्षमता और प्रतिभा को स्थापित करना चाहती है। उसकी स्वाभिमानी चेतना और मुक्ति की छटपटाहट ने स्त्री विमर्श के विकास को सशक्त वाणी दी है।

आजादी के बाद पिछले दशकों में स्त्री की भूमिका बदली है। यशपाल ने मध्यवर्गीय स्त्री को सामाजिक संघर्ष से जोड़ा और प्रेमचन्द ने स्त्री को आजादी की लड़ाई का हिस्सा बनाया, साहित्य को धनिया, सुमन, मालती जैसे पात्र दिए। नासिरा शर्मा, नमिता सिंह, प्रभा खेतान आदि लेखिकाओं ने नारी को वस्तु से व्यक्ति बनाया। वे स्त्री की पुरानी छवि को बदलना चाहती हैं स्त्री के लिए नये क्षेत्र खुलते गये। संबंधों के नये समीकरण बनते गये। सम्बन्ध टूटने–जुड़ने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई। कृष्णा सोबती 'दिलो दानिश' में वैवाहिक विवाहेत्तर संतान और सम्पत्ति की समस्या को रेखाकिंत करती है। मृदुला गर्ग ने 'कठगुलाब' में कृत्रिम गर्भाधान की समस्या तथा किराये की कोख लेने के प्रश्न को उठाया। यह समस्या भारतीय समाज में भी सिर उठाती दिखाई दे रही है। कुछ वर्षों पूर्व विदेश में रह रही एक अनाम गुजराती महिला की माँ (नानी) ने अपनी पुत्री के लिए संतानोत्पत्ति का बीड़ा उठाया भारतीय समाचार पत्रों ने इसे बढ़ चढ़कर छापा। चित्रा मुद्गल के आवाँ में नमिता पाण्डे और संजय कनोई के माध्यम से इसी समस्या को उठाया गया है। प्रभा खेतना के 'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका नारी–पुरुष संबंध संपत्ति और आत्म निर्भरता के प्रश्नों के कारण पुरुष द्वारा दी गई घुटन से जूझती है। इसकी नायिका प्रिया एक ऐसी प्रतिभा सम्पन्न स्त्री है। जो अपनी अस्मिता के संघर्ष हेतु सामाजिक चुनौती बनकर उभरती है। प्रभा खेतना स्त्री विमर्श की महत्त्वपूर्ण लेखिका है। दिनेशनंदिनी डालमिया के स्त्री चरित्र पारिवारिक घुटन को सहते ऐसे चरित्र हैं जो विवाह सम्पत्ति और पुरुषवादी परिवार के खिलाफ विद्रोह की चेतना से युक्त हैं। उषा प्रियंवदा के 'अंवर्वंशी' में प्रावासी भारतीयों के जीवन के संघर्ष का चित्रण मिलता है। अमेरिका में जा बसे शिदेश वाना और राहुल की कथा बड़ी स्वाभाविक है। वाना अपने संस्कारों तथा कर्त्तव्य के द्वन्द्व में उलझ कर रह जाती है। "वह छिन्नमस्ता की प्रिया 'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा वशिष्ठ या 'आवाँ'

की नमिता पाण्डे की तरह कथा स्थितियों को नई दिशा नहीं दे पाती। ये चारों ही निजी आकांक्षाओं और स्थितियों के द्वन्द्व या अपने निर्णयों के बीच अपने व्यक्तित्वों का रूपांतरण करती है। चारों के लिए पुरुष अनिवार्य नहीं। संस्कार, संबंध, संतति कैरियर किसी के लिए पुरुष की रजामंदी जरुरी नहीं। ये स्त्री पात्र केवल बौद्धिक विमर्श से गुजरकर नहीं, बल्कि अनुभव सत्यों से गुजरकर सफलता अर्जित करते हैं।"[13] नासिरा शर्मा के स्त्री पात्र विद्रोही फैसले तो लेते हैं परन्तु अपने पिंजरे को तोड़ नहीं पाते। 'ठीकरे की मंगनी' मुस्लिम समाज में स्त्री की स्थिति और रूढ़ि भरे माहौल की घुटन से बाहर निकलने के संघर्ष को चित्रित करता है। नायिका महरुख एक शिक्षित युवती है जो अपने परिवेश के बीच परम्परा और आधुनिकता, खानदानी रिवायतें, मुस्लिम समाज की स्त्री की परिवर्तित स्थिति और पश्चिमीकरण की अंधी दौड़ आदि सवाल पर चिन्तनशील होकर अपनी जिन्दगी को नये ढंग से गढ़ती है। अपने सम्पर्क में आने वाली शिक्षित स्त्रियों के बारे में वह सोचती है– "स्त्री को सिर्फ सहना और बर्दाश्त करना है। सारी कथित स्वतंत्रता और संविधान में दर्ज बराबरी के दावे के बावजूद समाज में स्त्री और पुरुष का रिश्ता अभी भी अपने आदिम रूप में है अर्थात् मालिक और गुलाम का रिश्ता। वह महसूस करती है कि सामाजिक परिवर्तन के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाई एक लम्बी लड़ाई है और बिना दिमाग के हथियार बंद किए कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।"[14]

प्रभा खेतान के हिन्दी रूपान्तर 'स्त्री उपेक्षिता' (द सेकेण्ड सेक्स) की भूमिका में सीमोन की यह बात अक्षरशः सच है कि– "स्त्रियाँ ही नारी जगत को पुरुषों की अपेक्षा अधिक आंतरिकता से जानती हैं क्योंकि उनकी जड़े इसमें निहित हैं।"[15] प्रसिद्ध समीक्षक मधुरेश जी महिला लेखन के संदर्भ में लिखते हैं– "अन्ततः स्त्री को अपनी लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। हिन्दी कथा साहित्य में भी परती तैयार करके बीज बोने की प्रक्रिया शुरु हो चुकी है.....साहित्य और संस्कृति की फसलें अनाज की फसलों की तरह चन्द महीनों में पककर तैयार नहीं होती।"[16] अपनी पहचान के लिए संघर्ष करना आसान नहीं होता। 'एक और पंचवटी' की साध्वी परम्परागत नैतिक अनुशासन और वैवाहिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाती है। 'इदन्नम', 'गोमा हँसती है', 'चाक' आदि कृतियों में मैत्रेयी पुष्पा का स्त्री विमर्श अपनी अभिव्यक्ति द्वारा स्वतंत्र नारी की अस्मिता और स्त्री सशक्तिकरण की एक जमीन तैयार करता है। 'देह की सीता' में डॉ. शालिनी देह को भोगने में ही जीवन की सार्थकता मानती है। 'रसीदी टिकट', 'सूरज मुखी अंधेरे के', 'मित्रो मरजानी', 'कस्तूरी कुण्डल बसै' ऐसी औपन्यासिक आत्म कथात्मक कृतियाँ हैं जो स्त्री के अनुभवों के

गोपनीय पक्षों को बेबाक भाषा में उजागर करती हैं। नासिरा शर्मा के उपन्यास 'शाल्मली' में स्त्री मुक्ति की अवधारणा को व्यक्त करते हुए शाल्मली कहती है– "मेरी नज़र में रही नारी मुक्ति और स्वतंत्रता समाज की सोच और स्त्री की स्थिति बदलने में है। बाहर निकलो या घर में रहो, हर स्थान पर पुरुष तुमसे टकरायेगा। तलाक लेना समस्या का समाधान नहीं। स्त्री–पुरुष के संबंधों की सामाजिक परिकल्पना को ही बदलना है।" 'एक जमीन' और आवाँ में चित्रा मुद्गल ने मुक्तिकामी स्त्री की दशा दिशा और छवि पर गंभीर प्रश्न उठाए हैं। "नीता जैसी आधुनिक स्त्रियाँ स्वतंत्र एवं वर्जनाहीन समाज की खोज में जिस दिशा में जा रही है वहाँ अवैध बच्चों का जन्म नींद की गोलियाँ खाकर आत्म हत्या का रास्ता ही बचा रहता है।"[17] हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श के विकास में स्त्री रचनाकारों की संवेदनशील अभिव्यक्ति व साहसिक आत्मस्वीकृतियाँ कई मायनों में चौंकाने वाली हैं। उन्होंने स्त्री होने के नाते जिस गहराई और बारीकी से स्त्री जीवन की व्यथा, जरुरतों, अधिकारों व माँगों पर विचार किया है वह पुरुष रचनाकारों की तुलना में कहीं अधिक सूक्ष्म और प्रभावक है यही कारण है कि साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्त्री रचनाकारों में स्त्री विमर्श को व्यापक धरातल प्रदान किया है।

अनामिका की कविता 'दरवाजा' में कवयित्री ने स्त्री की पीड़ा को इस तरह अभिव्यक्त किया है–

"मैं एक दरवाजा थी
मुझे जितना पीटा गया
मैं उतना खुलती गई
------x-----x------
खुदा ने कलम रख दी
और कहा–
'औरत है; उसने यह गलत नहीं कहा।

आगे अनामिका की कविता 'बेवजह' में स्वयं के लिए जगह बनाती स्त्री का चित्रण किया गया है–

परम्परा से छूटकर बस यह लगता है–
किसी बड़े क्लासिक से
पास कोर्स बी.ए. के प्रश्न–पत्र पर छिटकी
छोटी सी पंक्ति हूँ–
चाहती नहीं लेकिन
कोई करने बैठे
मेरी व्याख्या सप्रसंग।।"[18]

स्त्री की इस पीड़ा व कथा के लिए जिम्मेदार परम्परागत रूढ़ियाँ, स्त्री को एक बँधी–बँधाई लकीर पर जीने के लिए विवश करती सामाजिक व्यवस्था, पितृसत्ता तथा पुरुष सत्ता को चुनौती देती कवयित्रियों ने इन सब पहलुओं की बारीकी से पड़ताल कर उन्हें पूरी तरह नकारने का साहसिक कदम उठाया है।

सविता सिंह की कविता 'नमन करूँ छोटी बेटियों में' कवयित्री का रोष इन शब्दों में प्रकट होता है–

"नमन करूँ इस देश को
जहाँ मार दी जाती हैं हर रोज़
ढेर सारी औरतें
जहाँ एक औरत का जीवित रहना
एक चमत्कार की तरह है।"[19]

नारी अस्मिता की पहचान और गरिमा के लिए अनेक आन्दोलन होते रहे हैं। उनके सामने आने वाली चुनौतियों को आर्थिक आधार पर विशेष रूप से आंका गया है। सारी लड़ाई का मुख्य प्रयोजन ही यह है कि नारी के लिए एक सुखद भविष्य का निर्माण, निष्पक्ष न्याय और दुराग्रहों के बिना हो सके। एक बेहतर समाज की कल्पना के लिए उदार दृष्टि की आवश्यकता है। "किन्तु स्वतन्त्रता–पूर्व नवजागरण से स्थिति बदलने लगी थी। आजादी की लड़ाई और सामाजिक सुधारों में बराबर की हिस्सेदारी से भारतीय स्त्री को स्वतंत्र करने के संविधान में अनायास ही बराबरी के वैधानिक अधिकार मिल गए। नवजागरण काल के सामाजिक सुधार हो या अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतन्त्रता–संग्राम, भारतीय स्त्रियों ने अपनी लड़ाई पुरुषों की अगुवाई में, उनके साथ–सहयोग से, उनके कन्धे से कन्धा लगाकर लड़ी इसलिए किसी भी क्षेत्र में उतरने के लिए उन्होंने मार्ग की बाधाओं को अपेक्षाकृत अधिक आसानी से पार किया। देश की आजादी के तुरन्त बाद उन्हें मिले बराबरी के संवैधानिक अधिकार इसी साक्षी लड़ाई के प्रतिफल स्वरूप थे।"[20]

भारत की संवैधानिक स्वतन्त्रता के बाद नारी को समान अधिकार दिए गए किन्तु लिंग भेद समाप्त न हो सका। जनतांत्रिक व्यवस्था में लिखित मूल्यों और आदर्शों का व्यावहारिक रूप बहुत भिन्न है। आर्थिक वैषम्य, स्त्री शिक्षा का अपेक्षाकृत कम अनुपात और नैतिकता का ह्रास लगातार एक बेहतर समाज की कल्पना को धूमिल किए हुए है। सामाजिक संगठनों और आन्दोलनों से इस उद्देश्य की प्रतिबद्धता के प्रति एक आश्वासन

अवश्य मिलता है किन्तु सदियों के संस्कारों से जड़ मानसिकता को बदलना अभी भी कठिन है। "स्त्री–संबंधी विमर्श के शास्त्रीय आधार जितने संपुष्ट हैं, उससे कम संपुष्ट उसके लोकतात्त्विक आधार नहीं।"[21] आज की नारी स्वयं को कितनी ही तेजस्वी, मनस्वी और प्रबुद्ध क्यों न समझने लगी हो, अपनी बौद्धिकता और प्रबुद्धता को स्थापित करने के लिए उसने कितनी ही पुरानी जंजीरों को तोड़ा हो, किन्तु उसकी उपयोगितावादी भूमिका में कोई अन्तर नहीं आया। "महात्मा गाँधी ने कहा था–हमारे समाज में स्त्रियों को गुलामों की तरह जीना पड़ता है और उन्हें यह भी नहीं पता चलता कि वे गुलामों का जीवन जी रही हैं। जो डॉक्टर यह कहते हैं कि मादा भ्रूण सहमति से गिराया जाता है, वे सरासर झूठ बोलते हैं। दरअसल यह गुलामी का चरम है जहाँ औरत के पेट को फ्रिज समझा जाता है। दरअसल महिला भ्रूण को नष्ट करना सिर्फ एक हत्या समझा जाता है, जबकि इसके साथ कई बड़े अपराध जुड़ते हैं और यह पुरुष द्वारा औरत के गुलाम बनाये जाने का सबसे बड़ा सबूत है।"[22] समाज में महिलाओं के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण को खोजना कठिन है। निस्सन्देह यह एक गंभीर समस्या है। मगर आज की औरत निराश नहीं। यह तप है कि आज से पहले स्त्री और स्त्रीवाद को लेकर विमर्श और व्यवहार के स्तर पर इतनी जोरदार पहल कभी नहीं हुई, जैसी आज हो रही है। "स्त्रीवाद के अब तक के सफरनामें का यह सबसे अहम पड़ाव है। इन्हीं बदलावों के उजाले में औरत को एक नए ढंग से जानने–समझने की कोशिश है। तेजी से बदल रहे परिवार, समाज और संस्कृति में औरत की जिम्मेदारी और जवाबदेही तो तय है, मगर आज भी उसके अधिकार और स्पेस तय नहीं। आर्थिक उदारीकरण और संचार क्रांति ने समाज के ताने–बाने पर अपना व्यापक असर डाला है। परिवर्तन की इस आंधी ने बहुत कुछ बदला है औरत की स्थिति भी इससे अछूती नहीं है वह परिवर्तन के नए आयामों से रूबरू है।"[23] समाज सुधारकों ने उन्नीसवीं शती में अनुभव कर लिया था कि नारी पर अन्यायपूर्ण सामाजिक रूढ़ियों को थोपना उचित नहीं है, वह शिक्षा ग्रहण कर सके, अपनी इच्छा से उचित आयु में विवाह कर सके विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकें और स्त्रियाँ समाज निर्माण के कार्यों और परिवर्तनकारी योजनाओं में महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सके, वह अपरिहार्य है। वह स्त्री की मुक्ति के लिए छटपटाहट की कोशिशों को तो पकड़ता ही है, अस्तित्त्व के संघर्ष को भी बारिक नजर से देखता है। "इक्कीसवीं सदी में भारतीय नारी के समक्ष कई नई चुनौतियाँ हैं। भारतीय संविधान ने पुरुष और नारी को समान अधिकार दिए हैं, इसलिए उन अधिकारों को संवैधानिक आश्वासन द्वारा सुदृढ़ करना जरूरी नहीं है, किन्तु यदि हमारा वास्तविक सामाजिक यथार्थ

समानता के उन अधिकारों की अवहेलना करता है तो स्त्री को आगे आकर भी अपने सम्मान को अभिव्यक्ति देनी होगी, किंतु यह व्यक्ति–व्यक्ति पर निर्भर करता है। सब महिलाओं का एक ही सांचे में ढलना न संभव है, न उचित। फिर भी यह तथ्य रेखांकित करना आवश्यक है कि स्त्री का जीवन केवल राजनीति, कैरियर या सामाजिक आन्दोलन से ही सार्थक नहीं होता, अपने पति के जीवन में सार्थक भूमिका निभाना भी उसकी क्षमता और व्यक्तित्व की सार्थकता और प्रशस्ति हो सकती है।"[24] मानव समुदाय का आधा हिस्सा होते हुए भी नारी की स्थिति समाज में एक इकाई के रूप में नहीं है। आत्म सजगता और आत्म चेतना का परिणाम है अस्तित्त्वबोध। बदलते संदर्भों में समाज की एक इकाई के रूप में अपने होने के अहसास से ही अस्तित्व की पहचान होती है। "मानव मुक्ति के व्यापक प्रसंग में हाशिए के सभी अंगों की चर्चा साहित्य व कलाओं में सशक्त रूप में विद्यमान समय को समकालीन विशेषण से अभिहित किया जाता है। प्रकृति से दूर होने वाले मनुष्य की कशमकश को देखकर, उसके समाधान के रूप में प्रकृति उन्मुख जीवन बिताने की मांग इस समय में सशक्त है। प्रकृति व संस्कृति के द्वंद्व की व्यापक चर्चा इस तरह इतिहास में कभी नहीं हुई थी। एक ओर समवाय व सहयोगिता की मांग है तो दूसरी ओर प्रकृति व संस्कृति के उपांगों में विकसित समस्त ढंग से द्वंद्वों को पुनर्वाचित करने का प्रयास हो रहा है। समकालीन मनुष्य अस्मिता व अस्तित्व का संकट महसूस कर रहा है।"[25] नारी के स्वत्व की पहचान को साहित्य के माध्यम से, साहित्यिक अभिव्यक्ति नारी के संघर्ष के इतिहास का दस्तावेज बन पाई है या नहीं–अथवा साहित्यिक यथार्थ के नाम पर अनेक आन्दोलन चलाए जाते रहे हैं और यथार्थ चित्रण के साथ–साथ आदर्श की निष्कर्षात्मक परिणति को साहित्यिक लक्ष्य माना जाता रहा है। "स्त्री विमर्श, समकालीन साहित्य और पत्रकारिता का आज केन्द्रिय विषय है। सबसे बड़ी बात यह है कि ये पत्रिकाएँ स्त्री जिजीविषा के उस चेहरे से हमें रू–ब–रू कराती हैं, जब भारतीय स्त्री अशिक्षित थी, घर की चारदीवारी में जीवनपर्यन्त सिसकते हुए दम तोड़ देना उसकी नियति थी और बाल विवाह, वृद्ध विवाह और समाज में एक दोयम दर्जे की वस्तु मानी जाती हुई भी घर–समाज और सरकार से एक साथ वह लड़ रही थी।"[26] समाज में आज भी उसे दोयम दर्जे की नागरिक समझा जाता है, उसका स्थान दलित, शोषित, पिछड़े वर्ग के साथ है और कभी उसे सौन्दर्य की कमनीय प्रतिमा मानकर आधुनिकता के अलंकरण से लैस किया जाता है तो कभी उसे 'उपकरण' में बदल दिया जाता है। जो स्त्री इसका विरोध करती है, अपनी प्रतिभा का प्रमाण देती है, उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। "स्त्री संदर्भों

को लेकर जो प्रश्नाकुलता और रचनात्मक छटपटाहट देखने को मिल रही है, उससे यह आभास होता है मानो स्त्री विमर्श आधुनिक या उत्तर आधुनिक साहित्य की ही सामाजिक चिन्ता है। शायद अतीत में पत्रकारिता या साहित्य में यह विषय विस्तृत और उपेक्षित रहा होगा। स्त्री विमर्श के सामाजिक–आर्थिक सरोकारों से पूरी तरह लैस होकर सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई लड़ रही थी।"[27] नारी अस्मिता का प्रश्न बहुआयामी है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में नारी की चेतना मन की संकल्पनात्मक भूमिका और अवचेतन मन की इच्छा शक्ति होती है। एक लम्बी, पुरानी स्थापित व्यवस्था को तोड़कर जनसंघर्ष से जुड़ना और कदम–कदम पर यथार्थ से मुठभेड़ करना अस्मिता की पहचान का तकाजा है। "पश्चिम में अकेले मस्तिष्क पर होने वाला रिसर्च वर्क हमारे यहाँ के स्वास्थ्य के कुल बजट से ज्यादा है। शक्ति हृष्ट–पुष्ट मांसपेशियों में नहीं, मस्तिष्क में होती है। स्त्रियों को हमेशा से शारीरिक शक्ति के मामले में ही कमजोर बताकर उन्हें मानसिक रूप से कमजोर करने की साजिश सदियों से चली आ रही है। संकीर्ण मानसिकता वाले घिसे–पिटे पुरुषों के विचार से औरत का काम केवल घर संभालना और बच्चे जनना ही रहा है। रेलवे अपनी प्रतिदिन चलने वाली साढ़े सात हजार यात्री गाड़ियों में महिला ड्राइवर इसलिए नहीं रखना पसंद करता क्योंकि रेलवे प्रबंधन को लगता है कि सौ किलोमीटर प्रति घंटा की गति से भागने वाली शताब्दी एक्सप्रेस को एक औरत कैसे संभाल पाएगी, जबकि लड़कियों ने दो हजार प्रति घन्टा की गति से चलने वाला लड़ाकू विमान बखूबी हैंडल करके दिखा दिया।"[28] हिन्दी उपन्यासों में नारी अस्मिता की खोज इसी सरोकार की प्रतिबद्धता को दृष्टि में रखकर की गई है। बदलते सामाजिक संदर्भों में पुरानी नैतिकताएँ बदलती ही नहीं, टूटती भी हैं। साहित्य में काव्यात्मक और रोमानियत के स्थान पर कठोर और खुरदरा यथार्थ प्रबल हो जाता है, नीति, उपदेशों की बातें व्यर्थ हो जाती है, तब यथार्थ के नाम पर लेखनी उन कोनों, दराजों को खंगालने लगती है, जिसे सीधी दृष्टि से ओझल कर दिया जाता है।

"आज समय के आईने में स्त्रियों के उपलब्धियों की एक मुकम्मल तस्वीर नजर आती है। ऐसी तस्वीर जिसे आप समाज, राष्ट्र की उपलब्धि और सांस्कृतिक धरोहर के रूप में सहेजकर रखना चाहेंगे। किन्तु यदि हम कला के विविध क्षेत्रों से गुजरते हुए साहित्य के दरवाजे तक पहुँचे तो बेहतर है। भारतीय चित्रकला में आदिकाल से ही स्त्रियों की साझेदारी रही है। माटी की भित्तियों, चौबारों पर प्रकृति से लेकर अन्न की बालियों और पशु–पक्षियों तक के चित्रों को उकेरा और उन्हें जीवन का अंग बनाया। इसे लोककला, महिला–कला या आंगन–कला कहकर बौद्धिक कला की नई दुनिया रच ली जाती है।"[29]

प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता के इस दौर में उसकी क्षमता और स्वाभिमान का मूल्यांकन सामन्ती संस्कारों को ग्राह्य नहीं होता, नारी अस्मिता का संघर्ष यहीं से शुरू होता है। औरत भी अन्य प्राणियों की तरह एक स्वतन्त्र और स्वायत्त जीव है, लेकिन यही जीव ऐसे जगत में रहता है जो उसकी अतिक्रमण की क्षमता को कुन्द करके उसको हमेशा के लिए अन्तर्वर्ती अवस्था में रख देना चाहता है। अपनी इच्छा शक्ति और संकल्प के बिना वह अपने किसी कार्य को न्याय–अन्याय की तुला पर तोलने में सक्षम नहीं हो सकी। "बुद्धिजीवियों तथा उदार, प्रगतिशील एप्रोच वाले पुरुषों की दुहरी मानसिकता के सन्दर्भ में भी एक बुनियादी सवाल यह है कि इन साथियों की दृष्टि में बदलाव कैसे लाया जाए ? अब महिलाओं का कोई अलग देश तो नहीं जहाँ वह स्वतन्त्र रूप से अपने समाज व सत्ता को कायम रख सकें। लीला किसान कहती हैं– 'मैंने देखा है कि क्रान्तिकारी कार्य करने वालों में भी जमींदारों जैसी कठोरता है। उनके भी घर में महिला–उत्पीड़न है। ये चीजें अभी भी पूरी तरह खत्म नहीं हुई हैं। हम सब क्रान्ति करने चले हैं, अतः इन सारे अवरोधों को तोड़ना होगा। यदि हम संकीर्णताओं में कैद रह गए तो दूसरे लोग क्या करेंगे ?'... महिलाएँ व्यवस्था का विद्रोह सामाजिक नजरिये से करती हैं।"[30]

नारी और पुरुष समाज की दो स्वतन्त्र इकाईयाँ हैं, अपनी स्वतन्त्र चारित्रिक और प्रवृत्यात्मक पहचान के साथ। किन्तु न जाने कब इतिहास की अंधी गलियों में नारी को पुरुष की छाया और अनुगामिनी बना दिया गया। यह समाज पुरुष सत्ता प्रधान समाज है, नारी का अपना संगठित इतिहास नहीं है, जैविक दृष्टि से भी वह कोमलंगी है, अतः वह दोयम दर्जे की नागरिक बना दी गई। वस्तुतः नारी की अस्मिता इन्हीं अन्तर्विरोधों और असमता के प्रति बदलाव लाना चाहती है।

"हर स्त्री चाहती है कि यह समाज उसकी तकलीफ में शरीक हो और खुशी में उसके साथ मुस्कराए। यह बात सही है कि जमाना वह नहीं रहा जो कभी था, पर यह बात भी सही है कि जमाना वह भी नहीं आया कि स्त्री अपने स्त्री होने पर गर्व करे। कुछ बरस पहले तक बलात्कार सड़कों पर नहीं नाचता था, पर आज यह दिन भी देखना पड़ रहा है कि स्त्री उम्र के किसी भी पड़ाव पर हो, उसे समाज से थर–थर कांपना पड़ रहा है। हर ओर नोच–खसोट, भ्रूण–हत्याएँ, दहेज–हत्याएँ, सती–प्रथा के नाम पर हत्याएँ, बाल–विवाह के नाम पर बलि यही सब हो रहा है। घर के दायरे में भी तार–तार की जा रही है नारी। मुखौटा ओढ़े समाज एक ओर स्त्री का साथ देता है तो दूसरी ओर, साथ देने के बदले उसका पहुंचा भी पकड़ लेता है–उम्र के हर पड़ाव पर स्त्री शिकार होती है।"[31]

कई बार लगता है– नारी मुक्ति की बात अब घिस चुकी है और इस 'विशिष्टि चिन्तन' की आवश्यकता नहीं रही है, किन्तु मुट्ठी भर ऑकड़ों और नगरीय क्षेत्रों में कार्यालयों में काम करती हुई स्त्रियों को देखकर भी अनेक बुनियादी सवाल नारी अस्मिता से जुड़े हैं। मुख्य सवाल यह है–औरत कहीं भी हो घर में या बाहर–उसकी वास्तविक स्थिति, उसकी अहमियत, उसकी सोच, उसकी सत्ता और समाज की मुख्य धारा में उसकी सक्रिय भागीदारी किस स्तर तक है। "स्त्री को अपनी अस्मिता का बोध ही, उसकी मुक्ति की तरह पहला कदम है या अस्मिता का अर्थ है स्त्री में इस अहसास का होना कि वह स्वयं में पुरुष के समकक्ष एक इकाई है। वह गुलाम नहीं, इसलिए उसे समान अधिकार चाहिए। स्त्री को जैसे ही यह अहसास हो जाएगा कि समाज, विशेषकर पुरुष, उसके प्रति विवेक–मूलक दृष्टिकोण अपनाए, उस पर वर्चस्व नहीं जमाए, वह प्रतिरोध करने का मन बनाने की दिशा में सोचने लगेगी। यह सोच ही मुक्ति का लक्षण है। आज तक समाज ने स्त्री में ऐसा प्रतिरोध पैदा न होने देने के लिए हर हथकंडा अपनाया है। बौद्धिक स्तर पर दार्शनिकों, चिंतकों, बुद्धिजीवियों ने अपनी उक्तियों, टिप्पणियों व सिद्धांतों के माध्यम से औरत को दो नम्बरी सिद्ध करने के लिए कोई कोर–कसर नहीं छोड़ी। ऊपर से धार्मिक प्रवक्ताओं ने सतत फतवे, निषेधाज्ञाएँ व टैबू जारी कर उन्हें इतना भयभीत किए रखा कि वह टस से मस न हो सके। जिस किसी स्त्री ने भी प्रयास किया, वह मारी गई या कुलटा, डायन, व्यभिचारिणी, बदचलन, छिनाल ठहरा दी गई। यह तो आद्यौगिक युग के बाद विज्ञान की 'हवा' बही, जिससे औरतों के प्रति कतिपय लोगों के दिमाग की बंद खिड़कियाँ खुली और शुरू हुइ। 'स्त्री–मुक्ति' की मुहिम। आज भी पुरुष समाज, स्त्री को पूर्ण मनुष्य मानने को तैयार नहीं है। मुक्ति का सपना हर मनुष्य देखता है, और भी।"[32]

इतिहास के अनेक कालखण्डों से गुजरकर आज नारी ने अपेक्षाकृत अधिक सुविधाएँ प्राप्त की हैं–शिक्षा और अधिकारों के क्षेत्र में, अपनी प्रतिभा की पहचान के अवसर के रूप में, स्वावलम्बन और स्वतन्त्र निर्णयों के क्षेत्र में भी उसमें अपने गुणों और व्यक्तित्व को सम्पन्न बनाया है, किन्तु आज ये उपलब्धियाँ वास्तविक उपलब्धियाँ हैं अथवा ये अधिकार क्या एक नया इतिहास गढ़ सकते हैं–यह एक गंभीर चिंतन का विषय है। "मुझे पहले इस सत्य के स्वीकार करने में बाधा थी कि स्त्री पुरुष की दासी है। मैं उसे पुरुष की सहचरी, अर्द्धांगिनी समझती थी, पर अब मेरी ऑखें खुल गईं। मैंने कई दिन हुए एक पुस्तक में पढ़ा था कि आदिकाल में स्त्री–पुरुष की उसी तरह संपत्ति थी, जैसे गाय, बैल या खेत–बारी। पुरुष को अधिकार था–स्त्री को बेचे, गिरो रखे या मार डाले। विवाह की प्रथा

उस समय केवल यह थी कि वर–पक्ष अपने सूर–सामंतों को लेकर सशस्त्र आता था और कन्या को उड़ा ले जाता था। कन्या के साथ कन्या के घर में रूपया–पैसा, अनाज या पशु जो कुछ उसके हाथ लग जाता था, उसे भी उठा ले जाता था। वह स्त्री को अपने घर ले जाकर, उसके पैरों में बेड़ियाँ डालकर, घर के अन्दर बन्द कर देता था। उसके आत्म–सम्मान के भावों को मिटाने के लिए यह उपदेश दिया जाता था कि पुरुष ही उसका देवता है, सोहाग स्त्री की सबसे बड़ी विभूति है। आज कई हजार वर्षों के बीतने पर भी पुरुष के उस मनोभाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। पुरानी सभी प्रथाएँ कुछ विकृत या संस्कृत रूप में मौजूद है। आज मालूम हुआ कि उस लेखक ने स्त्री–समाज की दशा का कितना सुन्दर निरूपण किया था।"[33] नारी स्वतन्त्रता का अभिप्राय अनेक भ्रमों को उत्पन्न कर सकता है। शिक्षा के प्रसार और संचार माध्यम के कारण बढ़ती जागरुकता के कारण समाज में नारी की पारम्परिक छवि एक परिवर्तित संस्करण के रूप में सामने आई है। पुरानी परिस्थितियाँ बदली हैं, परिवार व्यवस्थाएँ बदली हैं, अधिकार–चेतना बदली है किन्तु नारी की मूलभूत स्थिति में ज्यादा अन्तर नहीं आया है। नारी को परिवार के दायरे तक ही सीमित मानने की मानसिकता, गृहकार्यों को श्रम और उपलब्धि के रूप में स्वीकार न करना, आर्थिक परवशता, पत्नीत्व और मातृत्व की रूढ़ि अवधारणाएँ और कठोर बन्धन तथा नारी की चिरन्तन आदर्श छवि के प्रति जकड़न उसे किसी भी स्वतन्त्र सोच से परहेज करना सिखाती है। पुरातन मूल्यों, परम्पराओं और मान्यताओं के विरूद्ध एक लम्बी लड़ाई लड़ते हुए जहाँ व्यक्तित्व का प्रभाव और उसकी सार्थकता महत्त्वपूर्ण हो जाती है, वहीं सामाजिक संरचना के अन्तर्विरोधों को एक नया धरातल प्राप्त हो सकता है। "गाँव और खेत की औरत की मुक्ति की बात तो छोड़ ही दीजिए, उन पेशों की औरत भी पूरी तरह 'मुक्ति' नहीं पा सकी है, जिन पेशों को समाज के 'प्रभुवर्ग' में रखा जाता है। रूपन देओल बजाज आई.ए.एस. थीं, पर उनके 'नितंबों' पर किसी ने सार्वजनिक रूप से थपकी दे दी थी। यह अलग बात है कि ऐसा पराक्रम करने वाले पुरुष महोदय भी बहुत नामी–गिरामी पुलिस अधिकारी थे। लेकिन सच तो यही रहा न कि रूपन की त्रासदी भी वही है जो किसी छोटे कस्बे की किसी तंग गली में रहने वाली किसी निम्न मध्यवर्गीय लड़की की है। खैर, दूसरी ओर चलते हैं। पत्रकारिता को समाज में रोबदार पेशा माना जाता है, पर यहाँ भी जो औरतें हैं, वे वही लड़ाई लड़ रही है जो सामान्य औरतें लड़ रही हैं।"[34] नारी मजदूरी से चलती–चलती एक आईएएस का सफर कई बाधाओं और संघर्ष के बाद तय करती है। तब भी वह यौन–शोषण का शिकार होती है तो दोनों के बीच का अन्तर ही स्त्री–विमर्श का विकास है। अर्थात्– 'कोई

अन्तर, अन्तर नहीं है।' यह विकास सतत् जारी रहेगा। जहाँ तक सम्पूर्ण व्यवस्था में सुधार ना हो। "राजस्थान की एक महिला पत्रकार ने भी ऐसा ही दुखड़ा सुनाया। वहाँ महिलाओं को राजनीतिक रिपोर्टिंग नहीं दी जाती, क्योंकि उन्हें देर रात तक काम करना पड़ेगा। महिलाएँ तैयार हैं, लेकिन प्रबन्धन उन्हें ऐसा करने से रोकता है। इस बात को बल मिलता है दिल्ली की वरिष्ठ पत्रकार मनीषा के एक वक्तव्य से। वह कहती हैं– यह तय है कि इस मर्दाना व्यवस्था में सैंकड़ों काम ऐसे हैं जिन्हें करने के लिए तमाम जद्दोजहद करनी पड़ती है। ऊँचे ओहदों पर प्रबन्ध में बैठे पुरुष औरतों को सिर्फ लाचार ही नहीं मानते, बल्कि उनके आगे बढ़ने पर कई दफा रोड़े भी अटकाते हैं। इसके लिए वे सामाजिक ताने–बाने को कसूरवार ठहराती हैं–जहाँ देर रात सड़कों पर औरत सुरक्षित नहीं चल सकती, तो प्रंबधन उसे क्या काम सौंपे, क्या खाक सुरक्षा दे ? यही वजह है कि राजस्थान जैसे मानसिक रूप से पिछड़े राज्य में महिलाओं को दुस्साहसी पत्रकारिता के अवसर नहीं दिए जा रहे हैं।"[35]

सर्वाधिक बैचेनी मध्यवर्ग में है। शिक्षा का प्रसार, भौतिक साधनों का आकर्षण महत्त्वकांक्षाओं का अदम्य दबाव, जुझारू प्रवृति और पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों की जकड़न से निकलने की बैचेनी मध्यवर्गीय नारी में अनेक स्तरों पर है। जब तक स्त्री अपने मानवीय अधिकारों की मांग करने का साहस नहीं करती, तब तक उसके अस्तित्व की लड़ाई जारी रहती है। हमारा समाज पुरुष को तो स्वभाव से ही स्वतन्त्र मानता है। लेकिन स्वतन्त्र अस्तित्व की घोषणा करने वाला नारी वर्ग कितने प्रतिशत है ? यह एक विचारणीय विषय है। हमारे समाज में स्त्री–पुरुष का यही अन्तर ही स्त्री–विमर्श का विकास है।

"स्वतन्त्रता को पुरुष का जन्मजात–सच या कहा जाए 'जन्मसिद्ध अनिवार्य अधिकार' माना जाता है। न जाने किन परिस्थितियों में 'स्वेच्छाचारी' शब्द, खासकर औरत के संदर्भ में अवमानित कर दिया गया और वह एक 'व्यभिचारी', 'आवारा' या 'बदमाश' औरत के अर्थ में परिभाषित किया जाने लगा। हालांकि 'स्वेच्छाचारी' शब्द का सीधा सपाट अर्थ या कहें शब्दार्थ होता है, 'वह जो अपनी इच्छा से आचरण करे!' दरअसल अपनी इच्छा से आचरण करना तो किसी मनुष्य या व्यक्ति की स्वतन्त्र प्रवृत्ति या मुक्तता की भावना का द्योतक है, जबकि दूसरे की इच्छा से आचरण करने से दासत्व या गुलामी की ध्वनि निसृत होती है। इतना स्पष्ट अर्थ होने के बावजूद भाषा में व्याप्त पुरुष शाउनिज्म ने इस शब्द के अर्थ को नकारात्मक अर्थ दे दिया और औरत के स्वेच्छाचारी होने का अर्थ उसकी चरित्र–हीनता का पर्याय बना दिया। तसलीमा नसरीन ने भी स्वेच्छाचारी शब्द को स्त्री–मुक्ति

के सन्दर्भ में अधिक संप्रेषणीय और सही ठहराते हुए कहा है, 'हां में स्वेच्छाचारी हूँ।' तसलीमा नसरीन के शब्दों में, "स्वेच्छाचारी का अर्थ जिस–किसी के साथ सो जाना नहीं है। वही औरत स्वेच्छाचारी कहला सकती है, जो इच्छा न होने पर मर्द के साथ न सोए और सोने से इंकार कर दे।"[36] बौद्धिक रूप से हर चुनौती को स्वीकारने वाली यह स्त्री दोहरी तिहरी भूमिकाएँ निभाते हुए भी अपनी सार्थकता निर्विवाद रूप से नहीं पहचान पाई है ? किन्तु एक स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में उसके अवचेतन मन की भूमिका ही प्रबल है। साहस और लड़ाई मात्र श्रम और अर्थ के समान धरातल पर ही नहीं होता, बल्कि सदियों से चली आई सांस्कारिक जड़ता से भी है, यही व्यक्तिवादी चेतना की खोज है, जिसके द्वारा वह यांत्रिक वस्तु से व्यक्ति में तब्दील होना चाहती है। स्थापित व्यवस्थाओं को तोड़ना आसान नहीं।

"सामाजिक स्तर पर बेटा–बेटी को बराबर मानने की समझदारी विकसित करने के प्रयास जारी हैं। निश्चितरूपेण स्त्री के जीवन में परिवर्तन आया है। शिक्षा और रोजगार का प्रतिशत बढ़ा है। वे अवसर पाकर जी–तोड़ मेहनत कर रही हैं। कुछ क्षेत्रों में पुरुषों से आगे बढ़कर उन्होंने अपनी क्षमताओं को उजागर करते हुए विशेष पहचान बनाई है। जल, थल और नभ तीनों दिशाएँ उनके लिए भी खोल दी गई हैं और वे सभी स्थलों पर दृढ़ता से पांव रख रही है। लेकिन दूसरी ओर, उन पर विभिन्न प्रकार की हो रही ज्यादतियों की भी संख्या बढ़ी है। बलात्कार, छेड़छाड़ नंगा घूमना, घरेलू हिंसा, मारपीट, दफ्तरों में भेद–भाव, पत्नियों की पिटाई, न जाने कितने स्वरूप हैं ज्यादतियों के। इस प्रकार विकास की दिशा की ओर बढ़ती नारी भययुक्त वातावरण में जी रही है। शक्ति–संपन्न नारियाँ भी कल उन पर कोई कहर न ढहा दिया जाए, भायातुर है। डरी–सहमी हैं। चिंतित है मानस। घर और बाहर असुरक्षित है।"[37] स्त्री आज जिन सवालों के जवाब चाहती है, उनकी जमीन कितनी गहरी और ठोस है, साथ ही समाज के साथ सीधी मुठभेड़ करने का कितना साहस उसमें है ? आज की स्त्री के पास यदि सुदृढ़ इतिहास या संगठन नहीं है तो कम से कम उसकी आज की लड़ाई की एक ठोस भावी रूपरेखा तो होनी चाहिए। कोई भी परिवर्तन केवल सक्रिय पक्षधरता लिए नहीं रहता–उसके समानान्तर अनेक प्रतिक्रियाएँ भी होती हैं–स्त्री की स्वतन्त्रता स्वच्छंदता भी हो सकती है, अस्तित्व मुक्ति यौन मुक्ति भी बन सकती है–अनुशासनहीनता सामाजिक विकृतियों और अव्यवस्था का कारण भी बन सकती है। "स्त्री–समाज इतना भोला, सीधा और प्रेम वाला होता है कि जरा में अपने आपको भूलकर अपना सर्वस्व निछावर करने को भी तैयार हो जाता है। पुरुषों में ऐसे कम व्यक्ति

देखने को मिलेंगे, जिनपर अत्याचार–पर–अत्याचार होते हों, फिर भी वे दो बातों में ही विह्वल बन जाए। जहाँ उसे जरा मौका मिला कि तुरन्त उसने अपना सिर ऊँचा किया। स्त्री–जाति ही एक ऐसी है, जो पति के लात, गाली–गलौज, झिड़की आदि सहते हुए भी वैसी सरलमना बनी रहती है। कभी भी पति के प्रति तिरस्कार नहीं प्रकट करती। इसका मुख्य कारण है कि वे निष्कपट प्रेम करने वाली होती है। अपने को सदैव नीचे गिरी हुई मानती हैं। यह भाव हमारे देश में ही नहीं, पर सर्वत्र ही देखने को मिलते हैं।"[38]

आज चिन्तन की बुनियादी आवश्यकता है– नारी शोषण से मुक्ति चाहे वह आर्थिक, मानसिक हो या दैहिक–शारीरिक। समाज के प्रभुता सम्पन्न तत्त्वों की मानसिकता में बदलाव तभी संभव है, जब नारी स्वयं चेतना सम्पन्न हो अथवा उत्पीड़न शोषण के विरूद्ध प्रतिरोधात्मक समझ रखती हो। सामन्ती वैचारिकता में नारी मुक्ति का कोई आधार नहीं था किन्तु बदलती सामाजिक व्यवस्थाओं में औरतों की लड़ाई का सामुदायिक वैचारिक आधार बना। मानववाद की बढ़ती चेतना ने मानवीय अस्मिता की सोच को बढ़ावा दिया। "इस समय पाश्चात्य जगत में यद्यपि स्त्री–स्वातंत्र्यवाद का काफी दौर दौरा है, फिर भी यदि विवेक–बुद्धि से काम लिया जाएगा, तो यह प्रत्यक्ष नजर आएगा कि स्त्री–जाति, पुरुष जाति के आश्रय में रहने में ही अपना गौरव समझती है। यदि ऐसा न होता, तो कदापि भी पुरुष–जाति के साथ रहना वे पसंद न करतीं। प्रकृति ने स्त्री–जाति को इस ढंग का बनाया है कि वे पुरुष–जाति के साथ ही रहने में विशेष प्रसन्न रहती हैं और अपनी जाति में इतनी प्रसन्नता का अनुभव कदापि भी नहीं करतीं। पुरुष केवल मनोरंजन के लिये स्त्रियों के साथ रहना पसंद करता है। जहाँ उसका मतलब निकल गया, वह उससे अलग होने का तरीका खोजने लगता है, परन्तु पुरुष, पुरुष में ही प्रसन्न रहता है। उसे कभी भी स्त्री–जाति के साथ रहने में पूर्ण प्रसन्नता नहीं मिलती, इसी से आप समझ लीजिए कि चाहे पाश्चात्य जगत् में स्त्री–स्वातंत्र्यवाद की काफी लहर बह रही है, पर फिर भी वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के साथ रहने में ही अपना अहो भाग्य मानती हैं।"[39]

भारतीय समाज के वर्तमान पतन का यही कारण है कि स्त्रियाँ–पुरुषों के आधिपत्य में रहना पसन्द करती हैं एवं स्वयं के विवेक बुद्धि का प्रयोग नहीं करती। पहले स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा गया और फिर उन्हें शिक्षा दी जाने लगी तो उस शिक्षा संस्कारिता का अपने अस्तित्व के साथ जुड़ी अपनी अस्मिता की पहचान का समावेश न था। स्त्री स्वातन्त्र्य और स्त्री व्यक्तित्व की एक अलग पहचान के लिए आवश्यक है कि स्त्री की नैसर्गिक क्षमता का स्वाभाविक विकास हो, उसकी रुचियाँ, उसकी प्रकृति, जीवन को

सुन्दर बनाने की कल्पना और उसकी निर्माण क्षमता को सही दिशा मिले। इतिहास साक्षी है कि समाज और विश्व में पुरुष अपने बल, पौरुष और बुद्धि को अहंकार के तराजू पर तोलता रहा है, अतएव समाज में न मिथ्या दंभ की आवश्यकता होती है न ही किसी प्रतिद्वंद्वता की।

स्त्री विमर्श के अन्तर्गत "विज्ञापनों की दुनिया पर नजर डालें तो भारतीय स्त्री–समाज के विविध वर्गीय खाके नजर आते हैं। उन्हें केवल 'देह' तो समझा ही गया है, इसीलिए 'एप्पल जूस' के विज्ञापन में जैकी श्राफ स्त्री की नंगी पीठ पर आटोग्रॉफ देते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री की छवि अमानवीय, क्रूर, संवेदनहीन व्यक्ति की है। दूसरी ओर, वह बुद्धिहीन सुपर नौकरानी है, जिसे आप आदर्श गृहिणी की संज्ञा देते हैं–फर्श साफ करती, कपड़े धोती, बर्तन धोती, खाना पकाती, काकरोच मारती, कपड़े साफ न धुलने पर पति की झिड़कियाँ सहती, रिझाने के लिए साज–शृंगार करती। पहनावे से आधुनिक लगने वाली ये नारियाँ उसी पुरानी दासता को महिमा–मंडित करती हैं। एकाध विज्ञापन को छोड़ दें, तो अधिकांश विज्ञापन ऐसे ही मिलते हैं जिनमें महिलाओं को बौद्धिक कार्य करते नहीं दिखाया जाता।"[40] नारी के स्वतन्त्र व्यक्तित्व और अधिकार उसे हीन भाव से किस सीमा तक उबार सकते हैं–यह एक अहम प्रश्न है। क्योंकि जो गरिमा मय है, वह करुण नहीं, वह दयनीय भी नहीं है, वह प्रार्थी भी नहीं। व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति अपनी स्वायत्तता, समाज और देश के प्रति अपनी भूमिका और अपनी क्षमता के प्रति सजग होता है। विज्ञापनों के माध्यम से भी स्पष्ट बताया जाता है कि किस तरह स्त्री चाहे प्रतिष्ठित नायिका हो या आम स्त्री उसे हर जगह अपना स्थान अपनी देह को माध्यम बनाने के बाद ही प्राप्त होता है।

"स्त्री विमर्श के तहत महिलाओं की सामाजिक–मानसिक स्थिति में स्वतन्त्रता के मूल्य के आविर्भाव ने उनमें आत्मविश्वास का संचार किया है। उन्हें उनके अधिकारों के प्रति सजग किया है और राष्ट्र के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए भी तैयार किया है। इतने सुखद परिवर्तन से जहाँ लेखिका प्रसन्न है, वहीं प्रगति के नाम पर पश्चिमी सभ्यता की नकल और अंधानुकरण से वह कुपित भी हैं। वह लिखती हैं कि– "स्त्रियों में पहिरावे के नए–नए फैशनों का रिवाज अब काफी बढ़ रहा है। पाउडर, सोप, क्रीम आदि विलास के साधन व यूरोपियन लेडियों की तरह अपने बाल भी कटवाने लगी हैं।"[41] स्त्रियों में आज दिखाई पड़ने वाली बौद्धिक तथा अन्य असमर्थताएँ या विकृतियाँ अन्तर्निहित नहीं हैं अपितु ये असमर्थताएँ वर्तमान समाज में उनकी दीन–हीन स्थिति के कारण हैं। प्रायः स्त्रियों के स्वभाव के बारे में जो कहा जाता है वह एकदम बनावटी या गलत

है और जो कुछ कमी है वह बलात् दमन या फिर कुछ क्षेत्रों में अप्राकृतिक प्रोत्साहन का ही परिणाम है।

"महिला आंदोलन सिर्फ महिलाओं तक ही केन्द्रित और सीमित नहीं है, बल्कि उसका सम्बन्ध समाज के हर शोषित, उपेक्षित, पीड़ित और संघर्षरत व्यक्ति और वर्ग से है, जो अपने इंसानी हकों की मांग करते हैं। अपने इस अर्थ में नारीवाद एक वैचारिक प्रवाह है, जो अन्याय भेदभाव और शोषण को अपने वैचारिक प्रवेगों से उखाड़ फेंकने को कटिबद्ध है। आन्दोलन का एकमात्र उद्देश्य हिंसा को चुनौती देने तथा उसे रोकने के लिए समुदायों को संगठित करना रहा है। घरेलू हिंसा, शोषण, महिलाओं के श्रम अधिकार, महिला स्वास्थ्य और हिंसा ऐसे न जाने कितने मुद्दों को आन्दोलन ने आवाज दी है, जो कभी गंभीर समस्या के रूप में देखे ही नहीं गए। यह महिला आन्दोलन की ही देन है कि आज हम इन मुद्दों पर सशक्त कानूनों और महिला सुरक्षा के दावेदार बन पाए हैं।"[42] सामाजिक नवजागरण ने इसके लिए वातावरण तैयार किया। सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में नारी की बढ़ती सक्रिय भागीदारी ने न केवल उसके भय, संकोच को दूर किया, बल्कि अपनी यथास्थिति के प्रति स्वतन्त्र निर्णय क्षमता के विकास और विरोध के चिन्तन को भी बढ़ावा दिया। औरतों की इस वर्गीय चेतना ने सामूहिक चेतना को संगठित किया। अपने श्रम, कार्य एवं उत्पादन की गुणवत्ता की समझ के साथ ही उसके मूल्य के प्रति भी उसका आग्रह बढ़ा है। "हम प्रत्येक स्थान पर महिलाओं को ही दोषी मानते हैं। यह दोष सामाजिक स्तर पर प्रकट होता है, इसलिए 'जेंडर' को जानना समझना जरूरी है। वेश्या बुरी औरत के रूप में बिकती है, गुनाह के नाम पर और दूसरी 'अच्छी औरत' के रूप में बिकती है इज्जत और नैतिकता के नाम पर। उनके निभाने के लिए दोनों ही काम तय किए गए हैं 'पितृसत्तात्मक व्यवस्था' द्वारा। इसी तरह जितनी भी गालियाँ हैं, वह भी स्त्रियों के जननअंग को लेकर अथवा स्त्री को ही लेकर होती हैं। कभी–कभी औरतें पुरुष को किस तरह गाली देती हैं और उनको इसका भान भी नहीं होता कि उसने स्वयं को ही गाली दे दी है। किसी काम के खतरे को देखकर वह कह देती है कि तुम चूड़ियाँ पहनकर घर में बैठो। इसका सीधा अर्थ हुआ कि चूड़ियाँ कायरता की निशानी है, जिसे पहनकर वह घर में बैठी रहती है। उन चूड़ियों को कायर ही धारण करते हैं, जबकि स्त्री उसे बचपन से धारण करके बचपन से स्वयं को कायर मानकर बैठी हुई है। अच्छी औरतें–माताएँ, बहनें, बेटियाँ या बीवियाँ होती हैं, ये सारे रिश्ते पुरुष के साथ जुड़े होते हैं और बुरी औरते केवल वेश्याएँ ही होती हैं। पुरुष ने महिलाओं को दो वर्गों में बाँटकर रखा है– अच्छी और बुरी औरत।

तीसरी औरत, जो कि कार्यालय में काम करती है, खेत पर काम करती है, वह सिर्फ औरत होने एवं किस श्रेणी में आए, उसके लिए उसका संघर्ष जारी है।"[43] हमारे समाज में महिला को ही क्यों श्रेणी में रखा जाता है। पुरुषों के लिए श्रेणी की कमी होती है। यदि कोई पुरुष कार्यालय में कार्य करता है। तो वह एक अच्छा पुरुष हो सकता है। पर यदि कोई पुरुष कुछ भी नहीं करता न कार्यालय में कार्य, न कोई व्यापार, न घर का कार्य तो भी वह सिर्फ और सिर्फ अच्छा पुरुष ही बना रहता है। स्त्री उस समय कार्यकुशलता का परिचय दे तो अच्छी अन्यथा बुरी। यह आग्रह पुरुष प्रधान समाज के सामन्ती संस्कारों के प्रति विद्रोहपरक होते हुए भी दयनीय और समझौता परक रहा है। "पुरुष–प्रधान समाज के सभी ताने–बाने पुरुषों की अभिलाषा के अनुरूप ही बुने गए हैं, जिसमें स्त्री की भूमिका अधिकारी की नहीं, अधीनस्थ की रही है। जब किसी पुरुष को अपना पौरुष सिद्ध करना होता है तो वह स्त्री को माध्यम बनाता है। युद्ध चाहे कोई भी हो, कैसा भी हो, स्त्री की देह पर से होकर ही पूर्ण होता है। युद्ध के मैदान में पीठ दिखाकर भागने वाले अथवा पराजित होने वाले अपनी स्त्रियों से 'जौहर' कर लेने की अर्थात् जीवित जल मरने की आकांक्षा रखते हैं, अन्यथा जाते–जाते वे स्वयं ही अपनी स्त्रियों को मौत के घाट उतार जाते हैं। विजेताओं की बात ही कुछ और होती है, उनके लिए पराजितों की स्त्रियाँ अपनी वासना और रक्त–पिपासा शांत करने का अद्वितीय साधन होती हैं।"[44]

भारतीय समाज में स्त्री आज के दौर में अनेक असमतल द्वीपों में प्रकट हुई, कहीं विज्ञापन संस्कृति में स्त्री ने पश्चिमी सभ्यता को अपनाकर अति आधुनिक होने की घोषणा की है, तो कहीं निम्न–मध्यवर्ग और मध्यवर्ग में स्त्री दहेज के नाम पर जिन्दा जलाई जाती है। पहले राजाओं द्वारा 'जौहर' की प्रथा एवं आज के युग में 'दहेज' के नाम पर वही सब होता आ रहा है। "दुर्भाग्य से मानव सभ्यता के इतिहास में सभ्य मानव की यह घिनौनी 'सभ्यता' भी दर्ज है। इससे भी बड़ा दुर्भाग्य यह है कि यह जघन्य कृत्य अतीत में तो होता ही था, वर्तमान में भी होता है। दो घरों के बीच की झड़पों में भी 'बेटी को उठवा लेने' अथवा 'बीवी–बहन को चौराहे पर नंगा करने' की धमकियाँ आम बात हैं। उससे भी आम बात हैं वे गालियाँ जो अपने पौरुष का सिक्का जमाने के उद्देश्य से बेधड़क, बेहिचक दी जाती हैं– 'मां चो....', 'बहन चो....', मानो विजय का मार्ग योनि से होकर ही गुजरता है....मानो पुरुष के पौरुष की सीमा स्त्री की देह से आगे नहीं है....मानो स्त्री की देह की परिधि के आगे पुरुष स्वयं को नपुंसक पाता है.... मानो पौरुष की अंतिम घोषणा वासनात्मक दुष्कर्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।"[45]

यौन अपराधों की बढ़ती संख्या इस बात का प्रमाण है कि आज भी औरत केवल देह है, सारी नैतिकता उसकी देह से लिपटी हुई है–धड़ से ऊपर उसका प्रखर मस्तिष्क, चुनौती देती मुद्रा पुरुष सत्तात्मक समाज को स्वीकार्य नहीं। नारी ने पुरुषों के क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण मानकर उसमें घुसपैठ की है और अपनी बुद्धि की सार्थकता सिद्ध की है। "अधिकतर भारतीय स्त्रियाँ बेटी, माँ और पत्नी की भूमिका में निरंतर हिंसा की शिकार होती हैं। यह हिंसा एक ऐसे दमन–चक्र की तरह होती है, जिसके घेरे में हर वर्ग और आयु की स्त्री घसीट ली जाती है, मगर स्वरूप बदलता जाता है। स्त्रियों के विरुद्ध सेक्स और हिंसा से जुड़ी घटनाओं का समाज में किन–किन स्तरों पर गैर–बराबरी का दर्जा है तथा किन–किन हथियारों से, किन–किन तरीकों से स्त्री के प्रति प्रताड़ना का दौर चलता रहता है। लड़कियों पर मानसिक, शारीरिक और आर्थिक अत्याचार की कहानियाँ सबसे पहले घर से ही शुरू होती हैं।"[46] नारी के द्वारा सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार करने का लक्ष्य अनेक आयामी है। उसने यदि नैतिकता और विवाह के प्रचलित मानदण्डों और रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न किया है तो दूसरी ओर जीवन की अनिवार्य स्थितियों को स्वीकार करते हुए भी अपने बौद्धिक विकास को महत्त्वपूर्ण माना है। अर्थोपार्जन एक आवश्यकता हो सकती है किन्तु आत्माभिव्यक्ति उसे अपने दायित्वों के प्रति अधिक गंभीर बनाती है।

"भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति बहुत विचित्र है। विचित्र यूँ कि यहाँ एक ओर उसे देवी का दर्जा दिया जाता है तो दूसरी ओर, चुड़ैल का यानी उसे बीच का वह दर्जा नहीं दिया जाता जैसा वह चाहती है। वह प्रथमतः इंसान होना चाहती है। एक ऐसा इंसान जिसकी भावनाओं को समाज समझे, जिसके दुःख–सुख में वह बराबर शरीक हो, जिसके निर्णय का वह स्वागत करे। भारतीय समाज में नारी की दुरूह स्थिति है। पुत्र के विवाहोपरांत नवविवाहिता यानी घर की बहू को 'पुत्रवती भव' का शुभ आशीर्वाद दिया जाता है। पास–पड़ौस की स्त्रियों से लेकर दूर–दराज से आए रिश्तेदारों की चाहत यही होती है कि बहू पुत्र जने। उनकी चाहत गौण होती है क्योंकि उनसे भी पहले घर में सास ऐसा चाहती है कि उसकी बहू कुल चलाने हेतु पुत्र को जन्म दे। आज तक किसी सास ने अपनी बहू को ऐसा आशीर्वाद नहीं दिया होगा कि 'पुत्रीवती भव'। यहीं से कन्या को जन्म देने से रोकने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है।"[47] हांलाकी वैदिक एवं दयानन्द के सिद्धान्तों को यहाँ लागू किया जाता है तो पुत्र का अर्थ पुत्र एवं पुत्री दोनों होता है यह वैदिक व्याकरण का नियम है। क्योंकि पुरुष शब्द आत्मा का परिचायक है न स्त्री न पुरुष का नए जीवनबोध की प्रक्रिया में पुराने महनीय और गुणात्मक उपमानों की आदर्शवादी व्याख्याएँ

अधिक व्यावहारिक धरातल पर ग्रहण की जाने लगी हैं। पाप–पुण्य, पवित्र–अपवित्र, नैतिक–अनैतिक शब्द अब धर्म के आधार पर नहीं, सामाजिक और व्यावहारिक आधार पर समझे जाने लगे हैं। सीमाओं का अतिक्रमण भी हुआ है। समता की समस्या पारिवारिक दायित्वों की सुनिश्चितता में अधिक प्रखर नहीं होती–अधिकांश बातें समझौतेपरक मंतव्यों में टल जाती हैं, हांलाकि इनका रूप बहुत संश्लिष्ट और जटिल होता है किन्तु स्थूल रूप में नारी जब घर के बाहर के समाज का हिस्सा बनती है, तब उसकी क्षमता, प्रतिभा और सामर्थ्य एक समान अधिकार की अपेक्षा रखती है, वहाँ सामाजिक दृष्टि और कानूनी संरक्षण दोनों आवश्यक हैं। "समाज–निर्माण में जहाँ नारी की विशेष क्षमताओं का सदुपयोग करना है, वहीं इनके संरक्षण और सुरक्षा के लिए विशेष व्यवस्था भी करती है। लेकिन बराबरी की दौड़ में जहाँ स्वयं नारी अपनी विशेषताओं को भूलती जा रही है, वहीं पुरुष, समाज और सरकार भी स्त्री–विकास की पुरुष के बराबर की कुछ स्थितियाँ मुहैया कराकर, कुछ कानून बनाकर, महिला थाना और महिला आयोग बनाकर निश्चित हैं।"[48]

आवश्यक है कि वह स्वयं को समाज की इकाईयों और संस्थाओं का एक हिस्सा समझे। परिवार और अन्य सदस्यों का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि उसकी प्रतिभा और व्यक्तित्व को परिष्कार के अवसर प्रदान करे। साथ ही अधिकार की चाह करने वाली स्त्रियों को भी उसकी सीमाओं और सदुपयोग को कुंठारहित होकर समझना होगा। बदलते संदर्भों में औद्योगिक क्रान्ति और कानूनी अधिकारों से स्त्रियों की क्षमताएँ बढ़ी हैं और सामाजिक मानसिकता में भी परिवर्तन हुआ है किन्तु आज भी वह व्यावसायिक शोषण की शिकार है। "शिक्षित और प्रगतिशील युवक भी महत्त्वकांक्षी और प्रतिभाशाली पत्नी की कामना नहीं करते–उन्हें धनी बाप की बेटी और सजी–सजायी 'गुड़िया' की तलाश रहती है। राष्ट्रीय–अन्तराष्ट्रीय स्तर पर अनेक प्रस्तावों के रखे जाने के बावजूद स्त्रियों के द्वारा स्वयं की क्षमताओं का परिचय दिए जाने के बावजूद यह भी सच है कि संवैधानिक स्वतन्त्रता व समानता के बावजूद सामान्य नारी आज भी उतनी ही पिछड़ी व घुटी हुई है और उतनी ही असुरक्षित है। हर संकट के समय, हर वर्ग–संघर्ष में, हर दंगे के समय यह असुरक्षा सामूहिक स्तर पर बढ़ जाती है और समानाधिकार सम्पन्न स्वतन्त्र कही जाने वाली नारी सदियों पीछे धकेल दी जाती है।"[49] नारी को देह मात्र समझने वाले व्यापारियों ने उसके शारीरिक सौष्ठव को विज्ञापन की वस्तु बनाया है। स्त्रियों ने स्वयं की सुंदरता और नारीत्व का उपयोग करके 'उन्नति' के शॉर्टकट को अपनाया है। बढ़ते संचार माध्यमों और पश्चिमी सभ्यता ने नारी सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में नारी देह का खुला प्रदर्शन किया है।

"अब किसी को यह शंका नहीं होगी कि पितृसत्तात्मक समाज में विवाह, कुटुम्ब और यौनिकता, पुरुष के द्वारा नियन्त्रित और संस्थागत स्वरूप में परिचालित हैं। वहाँ के अधिकारी पुरुष हैं, उसका काम है कि सबको पराजित करके खुद की स्थापना एवं राजत्व की स्थापना करते रहें। बाकि लोगों की स्थिति है कि वे हार मानते रहें, चाहे वे स्त्री हो, बच्चे हों या वृद्ध माता–पिता। हराने व हारने की स्थितियों में गुजरते हुए इस संस्था की अंदरूनी वृत्तियों का पर्दाफाश किया गया तो यह साफ हो गया कि इस संस्था को चालू रखने के लिए स्वामी के अलावा सब किसी का दान, त्याग व योगदान की जरूरत है। यदि स्वामी भी लोकतंत्रीय जीवन के भरोसेमन्द हैं तो उन्हें भी अपने समाज द्वारा प्रख्यापित 'दायित्वों' को निभाने हेतु त्याग करना होगा। न चाहने पर भी उन्हें परिवार को रखना होगा, पत्नी को सहना होगा, छिप–छुपकर अपने को बचाते रहना होगा। झुंझलाहट, खीझ, घुटन व तड़प की आत्मकथाएँ इस तरह रची जाने लगीं, मगर कोई आसार नहीं मिला। वर्षों के दांपत्य–जीवन को आत्मप्रवंचना का कालखंड मनाने वाले काफी लोग हैं।"[50] नारी मुक्ति आन्दोलनों ने भारतीय नारी को भी आकर्षित किया है और अनेक महिला संगठनों ने इसे बढ़ावा भी दिया है। पश्चिम से आयातित इस भावना ने पुरुष की प्रतिस्पर्धा में नारीत्व, पत्नीत्व के साथ मातृत्व को भी नकारा है किन्तु जागरण और चेतना का प्रमुख लक्ष्य रखते हुए क्रान्तिकारी स्त्रियों ने पुरुषों की अंधी नकल की। उनकी वेशभूषा, खुलापन, शराब, सिगरेट के साथ वर्जना रहित जीवन और अस्वाभाविक पौरुष का प्रदर्शन इन सब ने नारी को अधिक दिग्भ्रमित किया है। वस्तुतः समाज के विकास में अपनी भूमिका निर्धारण के लिए पहली शर्त है स्वयं में आत्म विश्वास और अपनी क्षमताओं की पहचान। नारीत्व को नकारे बिना हीन–भावना को दूर करना। जिस प्रकार पुरुष स्वयं इतिहास गढ़ता है, समाज में सीधे संघर्ष करता है, उसी प्रकार स्वयं को एक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न करना।

सार्वभौमिक दृष्टि में स्त्री मुक्त है, वह पूर्ण रूप से मुक्त है बस इतना करना आवश्यक है कि वह देश, काल, वातावरण को देखते हुए अपने आपमें कितना आत्मबल विकसित कर सकती है, सवाल यहाँ आकर ठहरता है। जहाँ–जहाँ उसका आत्मबल विकसित हुआ है वहाँ–वहाँ वह मुक्त है, किन्तु जब यदि उसे अपना अत्मबल बढ़ाना न आता हो वह वहाँ–वहाँ स्वयं ही पराधीन एवं आतंकित है। मार्ग उसके लिए खुले हुए हैं करना है तो उसे विकसित अपना शिष्ट समुन्नत रूप।

हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श का विकास सतत गतिमान है और इसके अभी और अधिक विकास की संभावनाएँ हैं। किन्तु यह विकास जब तक विकास नहीं माना जा सकता तब तक ग्रामीण स्तर की महिलाओं की और हमारा या सरकार का ध्यान उन्हें शिक्षित करने में नहीं जाता।

सक्रिय राजनीति में आने से पूर्व एक विलक्षण कथाकार रही हैं और अब उस वक्त को बहुत याद करती हैं। फरवरी में लिम्का बुक ऑफ रिकॉर्डस में दर्ज की गई लोकसभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन देश की इकलौती महिला सांसद हैं, जो 1989 से एक ही लोक सभा क्षेत्र और एक ही पार्टी से लगातार जीत रही हैं। लेकिन इससे इतर सुमित्रा महाजन का लम्बा जीवन संघर्ष भी है। जिससे आज भी अधिकतर लोग अनजान हैं। उनके शब्दों में "स्त्री मुक्ति का विचार ही गलत है अंतराष्ट्रीय महिला दिवस के मद्देनज़र लोक सभा अध्यक्ष सुमित्रा महाजन ने कहा कि स्त्री मुक्ति का विचार ही गलत है। मुक्ति किस चीज़ की ? ये शब्द ही असंगत है। उसे किस बात की मुक्ति चाहिए, परिवार से, अपने आपसे, पुरुष से या समाज से ? स्त्री के लिए सबसे पहले अहम है उस कु–विचार से मुक्ति जो उसे स्त्री मानता है, मनुष्य नहीं। उसके समाज और जीवन में सहभाग के लिए आवश्यक है उसे समकक्ष मानना। हमसफर मानना। हम अधिकार देंगे ऐसी बात ही गलत है। कोई अधिकार क्या देगा ? वह तो स्त्री का जन्मजात हक है। इसी पुरुष प्रधान मानसिकता को बदलना होगा।"[51] और यह समकक्षता का गुरु मंत्र स्वामी दयानन्द ने वर्षों पूर्व दिया था जिसकी प्रासंगिकता आज भी वैसी ही बनी हुई है।

निष्कर्ष :

1. स्त्री–विमर्श का विकास आज सतत हो रहा है। लेकिन इस विमर्श का प्रारंभ दयानन्द सरस्वती के राष्ट्रीय सुधार 1857 से प्रारंभ होता है।
2. सबसे प्रथम बार दयानन्द ने स्त्रियों को वेद पढ़ने की कह कर स्त्री–विमर्श की शुरुआत कर दी थी।
3. दयानन्द से प्रभावित दो महिलाओं सावित्री देवी फूले एवं पण्डिता रमा बाई ने 1878 से स्त्रियों के लिए कार्य कर इस स्त्री–विमर्श के विकास को आगे बढ़ाया। जो आज तक भी स्त्री रचनाकारों द्वारा निरन्तर विकसित है।
4. सावित्री बाई फूले 1875 में दयानन्द के पूना प्रवचन के दौरान अपने पति ज्योति राव फूले के माध्यम से तथा पण्डिता रमा देवी 1878 में दयानन्द से मेरठ में शिक्षित हुई थी।

♦♦♦♦

सन्दर्भ 4.0

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.–438
2. नया ज्ञानोदय (मासिक पत्रिका) अंक–नवम्बर 2006 में प्रकाशित, सं. रवीन्द्र कालिया, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली से प्रकाशित, पृ.सं.–11
3. स्त्री शिक्षा क्यों ? शीर्षक वह लेख 'इंडियन ओपिनियन' (गुजराती) के 19.1.1907 अंक में छपा था इसमें गाँधी जी ने स्वीकार किया है कि उनके अंदर ये विचार फ्रांस के शिक्षा शास्त्री श्री लाविस द्वारा बालिकाओं को दिये गये प्रवचन को पढ़कर उत्पन्न हुए थे। यहाँ पर यह उद्धत है 'शिक्षण और संस्कृति' नामक पुस्तक से, सं. रामनाथ सुमन, पृ.सं.–197–99 प्रकाश–उत्तरप्रदेश गाँधी स्मारक निधि, वाराणसी, संस्करण, 1968
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–451
5. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा–2, पृ.सं.–405
6. वही, पृ.सं.–376
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–488
8. हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास (1857–1947) : नीरजा माधव सामायिक बुक्स 3320–12, जटवाड़ा, दरियागंज, एन.एस. मार्ग, नई दिल्ली–2, पृ.सं.–16–17
9. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन खण्डेलवाल, पृ.सं.–422
10. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–491
11. भारत भारती : मैथिलीशरण गुप्त सप्तदश संस्करण 1999
    साहित्य प्रेस चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित, पृ.सं.–135
12. हिन्दी अनुशीलन, पृ.सं.–62
13. आदमी की निगाह में औरत : राजेन्द्र यादव, पृ.सं.–231
14. ठीकरे की मंगनी : नासिरा शर्मा, पृ.सं.–170
15. स्त्री उपेक्षिता : प्रभा खेतान, भूमिका पृ.सं.–30
16. हिन्दी उपन्यास–सार्थक की पहचान : मधुरेश, पृ.सं.–163
17. हिन्दी अनुशीलन, पृ.सं.–69
18. कहती हैं औरतें : अनामिका पृ.सं.–153
19. अपने जैसा जीवन : सविता सिंह, पृ.सं.–45
20. औरत कल, आज और कल : आशारानी व्होरा, प्रकाशक : कल्याणी शिक्षा परिषद् 3320–21, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली–2, पृ.सं.–5

21. स्त्री विमर्श की उत्तर–गाथा : अनामिका, पृ.सं.–43
22. हम सभ्य औरतें : मनीषा, पृ.सं.–60
23. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र : गीता श्री, पृ.सं.–9
24. आधुनिक परिवार में स्त्री : कमला सिंघवी, पृ.सं.–12
25. स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता : प्रमीला के.पी., पृ.सं.–56
26. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास : डॉ. संजय गर्ग, पृ.सं.–12
27. वही, पृ.सं.–12
28. हम सभ्य औरतें : मनीषा, पृ.सं.–72
29. इस्पात में ढलती स्त्री : शशिकला राय, पृ.सं.–15
30. वही, पृ.सं.–18–19
31. मोर्चे पर स्त्री : अंजु दुआ जैमिनी, पृ.सं.–10
32. स्त्री–मुक्ति संघर्ष और इतिहास : रमणिका गुप्ता, पृ.सं.–62
33. भारतीय नारी जीवन की कहानियाँ : प्रेमचंद, पृ.सं.–37
34. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र : गीता श्री, पृ.सं.–13
35. वही, पृ.सं.–16–17
36. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास : रमणिका गुप्ता, पृ.सं.–58–59
37. मात्र देह नहीं है औरत : मृदुला सिन्हा, पृ.सं.–17
38. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास : डॉ. संजय गर्ग, पृ.सं.–62
39. वही, पृ.सं.–62–63
40. इस्पात में ढलती स्त्री : शशिकला राय, पृ.सं.–62–63
41. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास : डॉ. संजय गर्ग, पृ.सं.–26–27
42. नारीवादी कांउसलिंग सिद्धान्त और व्यवहार : सुनीता ठाकुर, पृ.सं.–12
43. एन.जी.ओ. कार्य प्रणाली, सिद्धांत और व्यवहार : गोपाल नारायण आवटे, पृ.सं. –111–112
44. पिछले पन्ने की औरतें : शरद सिंह, पृ.सं.–47
45. वही, पृ.सं.–47
46. आधी दुनिया का सच : कुमुद शर्मा, पृ.सं.–15
47. मोर्चे पर स्त्री : अंजु दुआ जैमिनी, पृ.सं.–13–14
48. मात्र देह नहीं औरत : मृदुला सिन्हा, पृ.सं.–18
49. नारी शोषण : आइने और आयाम, पृ.सं.–231
50. स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता : प्रमीला के.पी., पृ.सं.–118
51. दैनिक भास्कर : रसरंग, रविवार, 8 मार्च, 2015, पृ.सं.–4

अध्याय पंचम

आधुनिक हिन्दी साहित्य पर महर्षि दयानन्द सरस्वती के स्त्री चिन्तन का प्रभाव

"यह मेरा निश्चित मत है कि महात्मा गाँधी के असहयोग कार्यक्रम में एक भी विचार ऐसा नहीं है, जो स्वामी दयानन्द जी महाराज की शिक्षा में न मिलता हो।"

– अमर शहीद लाला लाजपत राय

"उस भारत में सुविचार, प्रचार न पाते।
यदि दयानन्द गुरूदेव, उदार न आते।।"

– महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर'

"मैथिलीशरण गुप्त के साकेत के राम तो दयानन्द के कृणवन्तो विश्वमार्यम् का नारा लगाते हैं।"

– रामधारी सिंह दिनकर

"शिक्षा आन्दोलन के साथ ही साथ ईसाई मत का प्रचार रोकने के लिए मत मतान्तर संबंधी आन्दोलन देश के पश्चिमी भागों में चल पड़ें। पैगंबरी एकेश्वरवाद की ओर नवशिक्षित लोगों को खिंचते देख स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक एकेश्वरवाद लेकर खड़े हुए और संवत् 1920 से उन्होंने अनेक नगरों में घूम-घूम कर व्याख्यान देना आरंभ किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये व्याख्यान देश में बहुत दूर-दूर तक प्रचलित साधु हिन्दी भाषा में ही होते थे। स्वामी जी ने अपना 'सत्यार्थ प्रकाश' तो हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित ही किया, वेदों के भाष्य भी संस्कृत और हिन्दी दोनों में किए। स्वामी जी के अनुयायी हिन्दी को 'आर्यभाषा' कहते थे। स्वामी जी ने संवत् 1922 में 'आर्यसमाज' की स्थापना की और सब आर्य समाजियों के लिये हिन्दी या आर्य भाषा का पढ़ना आवश्यक ठहराया। संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों और पंजाब में आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार बड़ी तेजी से हुआ। पंजाबी बोली में लिखित साहित्य न होने से और मुसलमानों के बहुत अधिक संपर्क से पंजाब वालों को लिखने पढ़ने की भाषा उर्दू हो रही थी। आज जो पंजाब में हिन्दी की पूरी चर्चा सुनाई देती है, इन्हीं की बदौलत है।"

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.सं.-243)

स्वामी दयानन्द का कार्य क्षेत्र 1857 से प्रत्यक्ष रूप में रहा। इनका जो समाज सुधार का कार्य था वह व्यक्तिगत जीवन से लेकर राष्ट्र सुधार तक फैला रहा। इस समय मुगल साम्राज्य का पतन एवं अंग्रेजों का शासन था दोनों ही शासन ऐश्वर्यवादी और शोषणवादी रहे। विलासिता का जो बादल कवियों में मुगल शासन के दौरान छाया हुआ था वह अब धीरे-धीरे छटने लगा था स्त्रियों के प्रति जो कवि केवल मात्र नख-शिख भावना से ही काव्य करते थे और बादशाहों को आनन्दित करने का कार्य करते थे वह अब इस 1857 की क्रान्ति ने छीन लिया। दयानन्द एक ऐसा योद्धा हुआ कि उनके समाज सुधार के प्रत्येक बिन्दु पर उस काल के कवि, साहित्यकार विचार करने को मजबूर हो गये। 1857 से उनकी मृत्यु 1883 तक तो उन्होंने हिन्दी साहित्य में अविश्वसनीय परिवर्तन किए किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् वो हिन्दी साहित्य में अनेक, जो कवि व साहित्यकार थे वे सब या तो उनकी संस्था आर्यसमाज से प्रभावित थे या स्वयं आर्यसमाजी या दयानन्द के शिष्यों में से थे। आधुनिक हिन्दी साहित्य के चारों युगों भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग, छायावाद और छायावादोत्तर काल में जमकर सुधारात्मक साहित्य लेखन हुआ। प्रत्येक कवि तथा युगप्रवर्तक साहित्यकार दयानन्द से तथा आर्यसमाज से व्यक्तिशः प्रभावित थे।

इस आधुनिक हिन्दी साहित्य लेखन पर दयानन्द के विचारों का प्रभाव प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में पड़ा। इस दौरान महर्षि दयानन्द के समाज सुधार में जो नारी उत्थान की घोषणा थी वह प्रायः सभी साहित्यकारों में मुखर हुई। इसके पहले तक साहित्यकार स्त्री के दुःखों एवं उसकी उन्नति के बारे में सोच भी नहीं सके। उनका ध्यान केवल उस रीतिकाल की पुरानी रीति पर ही था। वे अपनी निजी विचारधारा प्रस्तुत करने में असक्षम रहे। इस क्रान्ति से पहले जिनका कवि हृदय था वे सब रीति रस में निमग्न होकर काव्य रचना करने में मशगूल थे। अचानक आये दयानन्द रूपी तूफान ने श्रृंगारिक रचनाएँ करने वाले साहित्यकारों के पत्ते उड़ा दिए और दयानन्द के क्रान्तिकारी प्रभाव से सबका ध्यान उनकी ओर गया, जिससे हिन्दी रचनाओं में भी श्रृंगार की प्रधानता कम होने लगी और वे सब राष्ट्र जागरण में, स्त्री–जागरण में लग गये। उस समय की साहित्यिक रचनाओं को देखने पर यह मालूम हो जाता है कि सबमें कहीं न कहीं स्त्री सुधार की बातें अवश्य दृष्टिगोचर होती है। जो भारतेन्दु अपनी रचनाएँ श्रृंगारिक लिखते थे उन्होंने भी वह चाल बदल दी और नई दिशा की ओर मुड़ गए। इस कार्य के लिए दयानन्द के साथ–साथ ही अन्य महापुरुषों का भी योगदान रहा। महात्मा गाँधी महर्षि दयानन्द से अत्यन्त प्रभावित थे और उनका बड़ा सम्मान उन्होंने अपने कई भाषणों में व्यक्त किया है और यहाँ तक कहा है कि– 'आज मैं जो कुछ हूँ दयानन्द की बदौलत हूँ।' दयानन्द के बाद हिन्दी पर महात्मा गाँधी का भारी योगदान रहा है।

गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र एम.ए., शुकदेव बिहारी मिश्र बी.ए., मिश्र बन्धु विनोद अथवा हिन्दी साहित्य का इतिहास तथा कविकीर्तन प्रथम भाग, खंडवा व प्रयाग हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मण्डली प्रथम संस्करण 1970 एक अत्यन्त शोध पूर्ण ग्रंथ है जिसमें तीन व्यक्तियों का शोध हुआ है। मिश्र बन्धुओं के अपने इतिहास में पृ.सं.–161 पर दयानन्द काल नाम से लिखा है कि दयानन्द ने "अपने समाज का यह एक मुख्य नियम कर दिया कि प्रत्येक सहृदय हिन्दी की सहायता करे। स्वामी जी द्वारा हिन्दी का भारी उपकार हुआ है।" तृतीय भाग पृ.सं.–1174 पर लिखते हैं– "इन्होंने जितने भाषा ग्रन्थ लिखे, उनमें वर्तमान शुद्ध हिन्दी का प्रयोग किया। आपकी भाषा बहुत ही सरल होती थी संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् होने पर भी आपने विशेषतया हिन्दी को आदर दिया और अपने प्रायः सभी ग्रन्थ हिन्दी में लिखे।"

हिन्दी पर स्वामी दयानन्द का कितना बड़ा भारी उपकार रहा, यह उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है। भारतेन्दु जब पैदा भी नहीं हुए थे जब स्वामी दयानन्द ने हिन्दी के लिए कितना बड़ा कार्य कर दिया था।

5.1 भारतेन्दु युग

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग 1843 ई. से, 1850 ई. से तथा "1868"[1] से माना जाता है और यही काल दयानन्द के कार्यों का काल था। हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग भारतेन्दु युग से आरम्भ होता है। जब भारतेन्दु का जन्म हुआ तब दयानन्द अपना तीन चौथाई जीवन पार कर चुके थे तथा भारतेन्दु के युवा काल में दयानन्द ने पाखण्ड, अत्याचार, नारी शोषण के विरुद्ध भारतीय धर्म दिग्गजों या कहें धर्म के ठेकेदारों के बीच अकेले सिंहवत् "काशीशास्त्रार्थ"[2] किया था। जिसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी मौजूद थे। तब दयानन्द ने मानवता के विरुद्ध दलन जिसमें स्त्री शोषण को भी तृणवत् उखाड़ फैंकने का क्रान्तिकारी फैसला किया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वामी दयानन्द के समकालीन थे। हिन्दी साहित्य में युगान्तरकारी परिवर्तन करने वाले भारतेन्दु ने दयानन्द के ही प्रभाव से अपने साहित्य लेखन में कई परिवर्तन किए। "भारतेन्दु के वैचारिक परिवर्तन में स्वामी दयानन्द के क्रान्तिकारी व्यक्तित्व तथा सिद्धान्तों ने परोक्ष भूमिका निभाई थी।"[3] यहाँ तक कि स्वामी जी "संस्कृत के अनुसार हिन्दी में लिंगों का प्रयोग करते थे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र व प्रतापनारायण मिश्र ने यही शैली स्वीकार की।"[4] भारतेन्दु ने तत्कालीन स्थिति को भांपकर पुष्टिमार्गीय आचार्य वल्लभ के मतानुयायी होने पर भी अपने लिखे ग्रन्थों को छोड़ नवजागरण से सम्बन्ध जोड़ा और साहित्यिक परिवर्तन लाने में अहम भूमिका निभाई, "स्वयं भारतेन्दु की अनेक रचनाओं में धार्मिक पाखण्ड, सामाजिक कुप्रथाओं तथा अन्धविश्वासों के प्रति जो तीव्र कटाक्ष युक्त आलोचना का स्वर मुखर हुआ उसे स्वामी दयानन्द के विचारों का ही प्रभाव समझना चाहिए। 'भारत दुदर्शा' नाटक में भारतेन्दु हिन्दू समाज में प्रचलित जाति भेद जन्म पत्र के आधार पर विवाह स्थिर करना, बाल विवाह, कुलीनों के बहु–विवाह, विधवा–विवाह निषेध, विलायतगमन निषेध आदि कुप्रथाओं का तीव्र खण्डन करते हैं। 'वैदिकी हिंसा–हिंसा न भवति' में उन्होंने साम्प्रदायिक पाखण्डों का पर्दाफाश किया है, जबकि अपने अपूर्ण नाटक 'प्रेम योगिनी' में तीर्थ स्थानों एवं धर्म स्थलों में फैले दुराचार तथा काशी जैसे धर्म स्थानों में विद्यमान पाखण्डों का भण्डाफोड़ करने में उन्होंने यथार्थवादी लेखक की भूमिका निभाई है। यह सब तथ्य इस बात के प्रमाण हैं कि परम् वैष्णव भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी वैचारिक उदारता के लिए स्वामी दयानन्द के ऋणी थे।"[5] जिस साहित्यकार के नाम से हिन्दी में युग विभाजन हुआ वह भी दयानन्दीय विचारों से साहित्य लिख रहा था, तो स्पष्ट है कि दयानन्द भारत के सभी प्रबुद्ध एवं अप्रबुद्ध व्यक्तियों के मन, मस्तिष्क एवं हृदय में झाँक चुका था। क्या हम यह मान सकते हैं कि

अंग्रेजों की गुलामी में जब अंग्रेजी शिक्षा आई तो क्या स्त्रियाँ स्वतंत्र हो गई थी उनके प्रति नज़रिया बदला था ? वस्तुतः जो क्रान्ति का उद्घोष था उसमें अन्य जागरण के साथ ही स्त्री जागरण भी अहम् था उस समय जो साहित्य राष्ट्रहित में लिखा जा रहा था, वह सब जागृति भरने वाला था। चाहे वह भाषा, आडम्बर, पाखण्ड या देश के प्रति बलिदान एवं स्त्री जागरण से सम्बन्धित ही क्यों न हो।

"सन् 1870 में स्वामी दयानन्द पंजाब का दौरा कर रहे थे। वहाँ उनसे आग्रह किया गया कि यदि आप अपने ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू–फारसी में कर दें, तो बहुत लोग लाभ उठा सकेंगे। **स्वामी ने उत्तर दिया कि दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं कि जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक और अटक से कटक तक हिन्दी अक्षरों का प्रचार होगा।** मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का ऐक्य सम्पादन करने के लिए ही अपने ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।"[6] हिन्दी भाषा की दयानन्द की घोषणा को भारतेन्दु ने इस प्रकार व्यक्त किया–

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल।।"[7]

सारे राष्ट्र को उस समय के साहित्यकारों ने एक करने की प्रेरणा दयानन्द से लेकर प्रथम भाषा की एकता का प्रसार किया। भाषा ही वह माध्यम है जिससे राष्ट्र जागरण के विभिन्न पहलुओं को जनता में पहुँचाया जा सकता था। इसमें स्त्री जागरण प्रमुख था देश की आधी आबादी स्त्रियों की है। राष्ट्र जागरण का उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता है जब पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी दुःख रहित हों, शिक्षित हों तथा पुरुषों के ही बराबर समान अधिकारी हों। यह लक्ष्य तत्कालीन महापुरुषों का रहा। जिसमें दयानन्द प्रथम कोटि के थे।

दयानन्द का प्रभाव भारतेन्दु पर एक और प्रमाण से सिद्ध होता है– "हुगली के इस शास्त्रार्थ का विस्तृत विवरण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'प्रतिमापूजन विचार' शीर्षक से 1873 ई. में ही लाइट प्रेस बनारस से मुद्रित कराकर प्रकाशित किया था। यह आश्चर्य की बात है कि 1870 में जिन हरिश्चन्द्र ने 'दूषण मालिका' जैसी पुस्तक लिखकर स्वामी दयानन्द पर अनर्गल आक्षेप वृष्टि की थी, अब वे ही तीन वर्ष पश्चात् प्रतिमापूजन का निषेधपरक शास्त्रार्थ प्रकाशित करते हैं।"[8]

इस काल के अनेक लेखकों ने हिन्दी की नींव को सुदृढ़ बनाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और उसके बाद तो साहित्य की उन्मुक्त धारा अबाध गति से बहने लगी।

इन लेखकों में पुरुषों के साथ–साथ स्त्रियों ने भी अपने–अपने रचना कर्म से हिन्दी भाषा को शक्तिशाली बनाने में योगदान दिया। यह अलग बात है कि अधिकांश हिन्दी भाषा के इतिहास लेखकों ने स्त्रियों के योगदान पर पर्याप्त दृष्टि डालने की आवश्यकता नहीं समझी। उनकी भूमिका का रेखांकन न किया जाना आश्चर्य में डालने वाला है। किन्तु फिर भी जो भारतेन्दु मण्डल के लेखक थे वे सभी किसी न किसी रूप में स्वामी दयानन्द से प्रभावित अवश्य थे तथा जो स्त्री रचनाकार जिनका हिन्दी साहित्येतिहास में कहीं वर्णन न हुआ था, ध्यान नहीं गया, वे भी तत्कालीन महापुरुष जिसने भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण संसार में अपनी पहचान बना ली थी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सकीं। भारतेन्दु मण्डल के लेखकों में प्रताप नारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, ठाकुर जगमोहन सिंह, बद्रीनारायण चौधरी, लाला श्रीनिवासदास, अम्बिकादत्त व्यास, महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी,पं. राधाचरण गोस्वामी, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू तोताराम, पं. मोहनलाल विष्णु लाल पण्ड्या, पंडित भीमसेन शर्मा आदि थे। उस युग में स्त्री लेखकों की भी रचनाएँ सामने आती हैं भले वह भारतेन्दु मण्डल की न हों किन्तु उनके समकक्ष अवश्य थीं जिनमें श्रीमती प्रताप कुँवरी बाई, महारानी वृषभानु कुँवरी, पण्डिता रमाबाई डोंगरे, राजरानी देवी, हेमन्त कुमारी चौधरी आदि थीं।

हिन्दी प्रचार आन्दोलन का दयानन्द का प्रभाव सम्पूर्ण भारत में था किन्तु दुविधा वह थी उस समय उर्दू एवं फारसी का अधिक प्रचार था। "हरिद्वार में एक दिन महाराज अपने आसन पर बैठे सत्संगियों को समझा रहे थे। बीच में एक सज्जन ने निवेदन किया यदि आप अपनी पुस्तकों का अनुवाद कराकर फारसी अक्षरों में छपवा दें तो पंजाबादि प्रांतों में जो लोग नागरी अक्षर नहीं जानते उनको आर्य धर्म के जानने में बड़ी सुविधा हो जाये। महर्षि ने उत्तर दिया–अनुवाद तो विदेशियों के लिए हुआ करता है नागरी के अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। आर्य भाषा का सीखना भी कोई कठिन काम नहीं है। फारसी और अरबी के शब्दों को छोड़कर ब्रह्मावर्त की सभ्य भाषा ही आर्य भाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। **जो इस देश में पैदा होकर अपनी भाषा सीखने में कुछ भी परिश्रम नहीं करता, उससे और क्या आशा की जा सकती है?**"[9] इस प्रकार हिन्दी को भारत देश में स्थापित करने की दयानन्द की कितनी उत्कट इच्छा थी। यही कार्य उनकी संस्था आर्य समाज ने किया जो आज तक जारी है। हिन्दी का जितना प्रचार–प्रसार दयानन्द के बाद आर्य समाज ने किया उतना शायद ही किसी संस्था ने किया होगा। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने 'हिन्दी साहित्यः उसका उद्भव और विकास' में लिखते हैं– "आर्य समाज के आन्दोलनों ने हिन्दी

को बहुत बल दिया क्योंकि आर्य समाज भी भारतीयकरण का पक्षपाती था, इसीलिए उसको सबसे अधिक लोहा उर्दू भाषा से लेना पड़ा। संयोगवश उर्दू लिपि का वैज्ञानिक मूल्य कुछ भी नहीं था, नागरी–लिपि की तुलना में संसार की कम लिपियाँ खड़ी की जा सकती हैं। फारसी लिपि तो किसी भी प्रकार उसकी प्रतिद्वंद्विनी नहीं बन सकती। इस लिपि के जीने का सबसे प्रबल कारण मुस्लिम भावनाएँ थीं। मुसलमान लोग उसे धर्म–लिपि मानते हैं और आग्रहपूर्वक उसे उत्तम स्थान देना पसन्द करते हैं। भारतवर्ष के विदेशी शासकों ने मुसलमानों की मनोवृत्ति को सहारा दिया और इस बात की बिल्कुल परवाह नहीं की कि शुद्ध उच्चारण और सुपाठ्य लेखन की दृष्टि से नागरी लिपि उर्दू से कहीं अधिक श्रेष्ठ थी।"[10] इसी कारण से अनेक शासकीय, अशासकीय विरोधों अन्तर्विरोधों को झेलने के बाद भी हिन्दी पूरे देश की संवाद एवं जोड़ने वाली भाषा बनी।

उन्नीसवीं सदी में समाजोन्नति के प्रश्न को हम हिन्दी साहित्य में स्त्री लेखन की भूमिका को समझ सकते हैं। यहाँ भारतेन्दु युग के महत्त्वपूर्ण लेखक राधाचरण गोस्वामी के योगदान को एवं उन पर पड़े महर्षि दयानन्द के प्रभाव को स्पष्टतः देखा जा सकता है। "पं. राधाचरण गोस्वामी वृंदावन के गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के प्रमुख व्यक्ति थे। कालान्तर में वे हिन्दी के प्रमुख लेखक तथा पत्रकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। यद्यपि कुल परम्परा से वे वैष्णव मतावलम्बी थे, किन्तु स्वामी दयानन्द के देश भक्तिपूर्ण भावों तथा प्रगतिशील विचारों के प्रति उनके मन में अत्यन्त आदर भाव था। स्वामी जी के सम्पर्क में आने का यह परिणाम निकला कि गोस्वामी जी बाल–विवाह के विरोधी, विधवा–विवाह के समर्थक तथा हिन्दू समाज में प्रचलित अन्यान्य कुरीतियों के कट्टर टीकाकार बन गये। जिस समय स्वामी जी का वृंदावन में आगमन हुआ उस समय राधाचरण गोस्वामी की आयु केवल 15 वर्ष की ही थी, परन्तु स्वामी जी के सम्पर्क में आने पर वैष्णवगद्दीधारी महन्त के इस किशोर पुत्र में आशातीत वैचारिक परिवर्तन आया।"[11] राधाचरण गोस्वामी ने 'यमलोक की यात्रा' नाम का व्यंग्य लेख लिखा। अपनी ही आकस्मिक मौत पर शोक व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं– "हा! न सारे हिन्दुस्तान में नागरी का दफ्तर और हिन्दी भाषा का प्रसार देखा। न विधवा–विवाह प्रचलित हुआ। न विलायत जाने की रोक उठी। न जाति–पाँति का झगड़ा मिटा। न सिविल सर्विस में भर्ती होकर हिन्दुस्तानियों को उच्चपद मिले। न हमारे जीते जी प्रेस एक्ट उठा।"[12] 1880 में लिखे गये इस लेख में गोस्वामी जी ने अपनी उन सारी आकांक्षाओं को सूत्रबद्ध किया है जो वे पूरी होते देखना चाहते थे। इस सुधार के विषय में उनकी तीन इच्छाएँ व्यक्त हुई हैं–विधवा–विवाह का प्रचलन, विदेश

यात्रा पर रोक हटे, जाति–पाँति का झगड़ा मिटे। इन तीनों का संबंध समाज सुधार एवं राष्ट्र उन्नति से था तथा यह दयानन्द के समाज सुधार के विषय भी थे। "पंडित राधाचरण गोस्वामी दयानन्द के परम् भक्त तथा प्रशंसक थे। इन्होंने वार्तालाप के एक प्रसंग में कहा था कि स्वामी दयानन्द के वाक्य मुझे वेद वाक्यवत् मान्य हैं और उनकी प्रत्येक बात मेरे लिए उदाहरण स्वरूप है। कालान्तर में जब लाहौर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'मित्र विलास' में स्वामी दयानन्द के विरुद्ध अनेक पत्र छपे, तो गोस्वामी जी ने उनका मुँह तोड़ उत्तर दिया था। स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में ही उन्होंने भारतेन्दु नामक मासिक पत्र (प्रकाशन काल 1882) प्रकाशित करना आरम्भ कर दिया था जिसमें वे यदा–कदा स्वामी जी के विषय में प्रशस्तिपूर्ण उद्‌गार प्रकट करते रहते थे।"[13] राधाचरण गोस्वामी ने 'बूढ़े मुँह मुँहासे' (1886) नामक प्रहसन की रचना की जो एक उल्लेखनीय कृति है। इसमें 'हास्य–व्यंग्यपूर्ण शैली में धार्मिक पाखण्डों एवं स्त्रियों के प्रति सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किए गये हैं।

पूर्व में लिख दिया है कि महर्षि दयानन्द ने अपने राष्ट्रीय जागरण में स्त्री जागरण को किस प्रकार महत्त्व दिया है वही सब इस काल, जो कि भारतेन्दु काल के नाम से हिन्दी साहित्य में जाना जाता है। के साहित्यकारों ने अपनाया है और स्त्रियों को वापस सम्मान प्राप्त कराने की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया है।

भारतेन्दु काल के ही दयानन्द से प्रभावित कवि "पं. भीमसेन शर्मा ये पहिले स्वामी दयानन्द जी के दाहिने हाथ थे। संवत् 1940 और 1942 के बीच इन्होंने धर्म सम्बन्धी कई पुस्तकें हिन्दी में लिखीं और कई संस्कृत ग्रन्थों के हिन्दी भाष्य भी निकाले। इन्होंने 'आर्य सिद्धांत' नामक एक मासिक–पत्र भी निकाला था।"[14] तथा स्त्री उद्धारक दयानन्द के लिए अपनी कलम चलाई व उनके स्त्री–विमर्श को हिन्दी साहित्य जगत में प्रचारित किया।

प्रतापनारायण मिश्र ने भी महर्षि दयानन्द के मार्ग को अपनाते हुए उनके बाल–विवाह निषेध तथा विधवाओं की पीड़ा को समझकर हिन्दी साहित्य में काफी योगदान दिया। जिस पुरजोर ढंग से दयानन्द ने स्त्रियों की शिक्षा की माँग की थी वैसे प्रतापनारायण मिश्र की पीड़ा भी इन पंक्तियों में प्रकाशित होती नजर आती है–

"निज धर्म भली विधि जानैं, निज गौरव पहिचानैं,
स्त्रीगण को विद्या देवैं, करि पतिव्रता यश लेवैं।

झूठी यह गुलाब की लाली धोवत ही मिटि जाय;
बाल ब्याह की रीति मिटाओं रहे लाली मुँह छाय।
विधवा विलपैं नित धेनु कटें कोउ लागत हाय गोहार नहीं।।

आर्य समाज की धार्मिक क्रान्ति भी इसी युग में हुई थी और उसका स्वर भारतेन्दु युग की कविता में पूर्ण रूप से मुखरित हुआ है। इस प्रकार दुरंगी विचार धारा का प्रभाव इस युग में लाक्षित होता है।"[15] सारा भारतेन्दु युग दयानन्द से प्रभावित था दयानन्द ने अपने पूना प्रवचन में स्त्रियों को जाग्रत करते हुए निम्न दृष्टांत दिए थे। "प्राचीन आर्य लोग पूर्ण युवावस्था पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करते थे, बाल–विवाह का उस समय कोई नाम तक नहीं जानता था, क्योंकि आर्य इतिहास में प्रायः स्वयंवर का ही वर्णन आता है। विधवा–विवाह का प्रचार केवल शूद्रों में था। द्विजों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों में नियोग का प्रचार था। विधवा–विवाह से जो लोग विरोध करते हैं, उनकी पुष्टि करके विधवा–विवाह का खण्डन करने की मेरी इच्छा नहीं है। पर यह अवश्य कहूँगा कि ईश्वर के समीप स्त्री–पुरुष दोनों बराबर हैं क्योंकि वह न्यायकारी है, उसमें पक्षपात का लेश नहीं है। **जब पुरुषों को पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी जावे तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जावे।** प्राचीन आर्य लोग ज्ञानी, विचारशील और न्यायी होते थे आजकल उनकी संतान अनार्य हो गई। पुरुष अपनी इच्छानुसार जितनी चाहे उतनी स्त्रियाँ कर सकता है। देश, काल, पात्र और शास्त्र का कोई बन्धन नहीं रहा। क्या यह अन्याय नहीं ? क्या यह अधर्म नहीं ?"[16]

यह इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन बुद्धिजीवी समाज भले ही भारतेन्दु की तरह एक दम पाखण्ड का विरोध करने में सक्षम न रहा हो किन्तु भीतर का विवेक दयानन्द उनका जगा चुके थे। इसी कारण हिन्दी भाषी बुद्धिजीवी कितनी तीव्रता से स्त्री शिक्षा के प्रसार की जरूरत महसूस कर रहे थे। पं. गौरीशंकर की रचना 'देवरानी जेठानी की कहानी' में ऐसी दो बहिनों की कहानी कही गई है जिसमें से एक शिक्षित है और दूसरी अनपढ़। यह हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है और इसकी रचना सन् 1870 में हुई थी। पंडित श्रद्धाराम फिलौरी की रचना 'भाग्यवती' जिसका प्रकाशन सन् 1877 में हुआ और जिसे शुक्ल जी ने 'सामाजिक उपन्यास' की संज्ञा दी है, हिन्दी का एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास माना जा सकता है। उसकी नायिका भाग्यवती भी एक शिक्षित स्त्री है और जो शिक्षित होने के कारण ही बिना किसी सहारे के जीवन यापन में सक्षम होती है और अपने पति के परिवार का संकट के समय नेतृत्व भी करती है। इस उपन्यास की रचना का मकसद ही यह है कि इससे लोगों तक यह संदेश पहुँचाया जा सके कि स्त्री के शिक्षित होने से घर

परिवार को कितना लाभ पहुँचता है। 1912 के पंचम संस्करण में यह सूचना भी प्रकाशित हुई है कि यह एक पाठ्य पुस्तक भी है जिसके लिखे जाने का मकसद स्त्री शिक्षा के प्रचार के साथ–साथ बाल–विवाह का विरोध करना, विवाह में फिजूल खर्ची पर रोक लगाना आदि है। इस दौर में स्त्री शिक्षा के प्रति मध्य वर्ग में जागरुकता व्याप्त होने का कारण महर्षि दयानन्द का सम्पूर्ण भारत को जाग्रत करने का अभियान ही था भारतेन्दु युग के लेखकों के योगदान के बारे में खास बात जो यहाँ कहने की है वह यह है कि उस दौर के लेखकों ने लेखों और निबंधों के द्वारा ही नहीं बल्कि कहानियों और उपन्यासों के द्वारा यह बताने का प्रयास किया है कि स्त्री शिक्षा देश और समाज की उन्नति के लिए कितनी आवश्यक है। सन् 1882 में प्रकाशित पुस्तक 'सीमंतनी उपदेश' स्त्री शिक्षा के ठोस परिणामों को हमारे सामने लाती है। यह पुस्तक पंजाब की एक शिक्षित महिला ने लिखी थी जिसने अपना नाम उजागर नहीं किया। हिन्दी जगत के सामने इस किताब को दोबारा लाने का श्रेय डॉ. धर्मवीर को जाता है जिन्होंने सन् 1988 में इसको पुनः प्रकाशित किया। यह पुस्तक इस बात का ठोस प्रमाण है कि इस अध्याय के प्रारंभ में लिखे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्द पंजाब में महर्षि दयानन्द और आर्य समाज की बदौलत हिन्दी की पैठ हुई है यहाँ यह समझाने के लिए काफी हैं कि महर्षि दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव हिन्दी साहित्य में किस कदर पड़ा था। जिसे गुमनाम हिन्दी स्त्री साहित्यकार से समझा जा सकता है। शिक्षा का प्रसार स्त्री चेतना को बदले वाला सिद्ध हुआ है। यह उन्नीसवीं सदी की भारतीय नारी की आजादी का घोषणा पत्र कहा जा सकता है। यह दयानन्द के प्रभाव से स्त्री जाति की क्रान्तिकारी चेतना का जीवित दस्तावेज है। उस समय की स्त्री जाति किस तरह के आर्थिक, सामाजिक और मानसिक बंधनों में जकड़ी हुई थी उसकी गहरी समझ ही इस अज्ञात महिला को नहीं है बल्कि वह इस बात को पूरे बल के साथ उजागर करती है कि पुरुष प्रधान समाज में किस तरह के दोहरे मापदंड प्रचलित हैं। वह एक ऐसे समाज की पक्षधर है जिसमें स्त्री और पुरुष के लिए एकसे अधिकार और एकसे कर्तव्य हों। वह उन महान् पुरुषों का आदर के साथ उल्लेख करती है जिन्होंने स्त्री शिक्षा के लिए प्रयत्न किया और जो स्त्री को सदियों की गुलामी से मुक्त कराने के लिए प्रयत्नशील रहे। इसमें महर्षि दयानन्द का प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से झलक रहा है। इसके बावजूद किताब पढ़ने से यह जाहिर हो जाता है कि इसमें व्यक्त विचार एक स्त्री ही पेश कर सकती है एक अर्थ में इसे हिन्दी की पहली नारीवादी रचना भी कहा जा सकता है। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि यह रचना लम्बे समय तक अज्ञात रही।

भारतेन्दु युग के लेखकों में से प्रतापनारायण मिश्र ने 'नारी', बाल कृष्ण भट्ट ने 'बाल–विवाह', 'स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा', 'महिला स्वातंत्र्य' जैसे सर्वाधिक समर्थ निबन्धों के माध्यम से स्त्रियों की स्थिति का वर्णन प्रस्तुत किया है जिसमें दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। गोपाल शर्मा शास्त्री ने 'दयानन्द दिग्विजय' (1881), प्रतापनारायण मिश्र ने 'आर्य चरितामृत' (1884), बलभद्र मिश्र ने 'स्वामी दयानन्द महाराज का जीवन चरित्र' (1897) आदि जीवनी साहित्य लिखकर उनमें महर्षि दयानन्द ने जो स्त्री जागरण एवं स्त्रियों के सुधार का प्रयास किया था उसका वर्णन उपरोक्त लेखकों ने बड़ी तत्परता से किया।

भारतेन्दु युग में जो नवयुग की चेतना का प्रसार हुआ जिसमें स्त्री का बालक पति होने का दुःख, फिर परस्पर मन न मिलने का वर्णन, उसके अनेक भावी अमंगल और अप्रीतिजनक परिणाम तथा भ्रूण हत्या, शिशु हत्या आदि को मिटाने के उपाय आदि का जो साहित्य में समायोजन हुआ और तत्कालीन कवियों ने इस स्त्री दुःख को सम्पूर्ण साहित्य में अंगीकार किया उसे पहले ही महर्षि दयानन्द पूना प्रवचन में कह चुके थे। उनकी स्त्रियों के प्रति पीड़ा देखने योग्य है। "प्राचीन आर्य लोगों में गार्गी, मैत्रेयी आदि कैसी–कैसी विदूषी स्त्रियाँ हो गई हैं। आजकल स्त्री को विद्या पढ़ने का अधिकार नहीं, वह शूद्र के समान है। यदि स्त्रियाँ पढ़ी लिखीं होती, तो इन पंडितों की बड़बड़ाहट का खण्डन करके एक घड़ी में इनका मुँह बन्द कर देतीं। यदि इस समय हम लोगों में बाल–विवाह प्रचलित न होता, तो विधवाओं की संख्या कभी इतनी न होती और न इतने गर्भपात और भ्रूण हत्याएँ होतीं और न इतनी रोगों की अधिकता होती। प्राचीन समय में यदि धनाढ्य पुरुष निःसंतान होता, तो आर्य सभा की व्यवस्था से उसका दायद वारिस नियत होता था।...विवाह में परस्पर स्त्री–पुरुषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि दोनों के मनचित्त आदि एक होंगे और वे कभी एक दूसरे के विरुद्ध कोई काम न करेंगे। बचपन में विवाह होने से भला लड़का–लड़की इन बातों को क्या जान सकते हैं और उन मन्त्रों का अर्थ करके कोई समझाता भी नहीं है। पंडित लोग कहते हैं कि केवल मन्त्र के सुनने से पुण्य होता है, चाहे मन्त्र बोलने वाला उसका अर्थ समझे या न समझे। ब्राह्मण को दक्षिणा दे दी कि सब विधान ठीक–ठाक हो गया। वाह रे! तुम्हारा सामाजिक प्रबन्ध। इस अन्ध परम्परा को देखकर तो मानना पड़ता है कि इससे विधवा–विवाह सब प्रकार अच्छा है।...नियोग का उस समय प्रचार था। पुनर्विवाह की अधिक आवश्यकता ही नहीं होती थी। अब इस समय में नियोग और पुनर्विवाह दोनों के बन्द होने से आजकल के आर्य लोगों में जो–जो भ्रष्टाचार फैला हुआ

है, वह आप लोग देख ही रहे हैं। हजारों गर्भ गिराये जाते हैं, भ्रूण हत्याएँ होती हैं।"[17] इस प्रकार भारतेन्दु काल के साहित्यकारों के मस्तिष्क में जो नवजागरण के पुनरुत्थानवादी वैज्ञानिक विचार आये वे सब महर्षि दयानन्द की वैज्ञानिक दृष्टि की ही उपज थे।

आधुनिक काल के स्त्री साहित्य को उस समाज सुधार आन्दोलन के प्रमुख स्वरूप दयानन्द सरस्वती के संदर्भ में भी समझा जाना चाहिए जिसका असर तत्कालीन हिन्दी के बुद्धिजीवियों पर दिखाई देता है। इनमें आर्यसमाज और बंगाल के नवजागरण का प्रभाव साफ तौर से देखा जा सकता है। दयानन्द के समाज सुधार के प्रभाव के कारण हिन्दी लेखकों ने स्त्री शिक्षा का समर्थन किया। बाल–विवाह, सती–प्रथा, कन्यावध का विरोध किया, कुछ लेखकों ने विधवा–विवाह का भी समर्थन किया। देशोन्निति के लिए वे जाति–पाँति को भी बड़ी बाधा के रूप में देखते थे। लेकिन इसके साथ ही इस आन्दोलन की सीमा यह थी कि इस पर हिन्दू पुनरुत्थानवाद का भी असर था। ईसाई धर्म प्रचारकों की प्रतिक्रिया में वे अतीत के गौरवगान, गौ रक्षा, प्राचीन ग्रन्थों की महिमा एवं वेदों आदि की ओर उन्मुख हुए। स्त्री शिक्षा का असर इस रूप में भी दिखाई देता है कि सदी के अंत तक हिन्दी में स्त्री लेखिकाएँ भी सामने आने लगी थी। इसके अतिरिक्त दयानन्द काल में उनके विचारों से प्रभावित लेखन करने वाली महिला रचनाकार ऐसी कई महिलाएँ भी थीं जिनका नाम हिन्दी के साहित्य इतिहासों में लगभग नहीं के बराबर है। यहाँ पर कुछ स्त्री रचनाकारों को हम देख सकते हैं जिन पर महर्षि दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव दृष्टिगत होता है। "श्रीमती राजरानी देवी का जन्म अगस्त में सन् 1869 में मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले में पिपरिया नामक ग्राम में हुआ था एक शिक्षित परिवार में जन्म लेने वाली राजरानी देवी का विवाह मात्र 13 वर्ष की अवस्था में लक्ष्मी प्रसाद के साथ हुआ था। लक्ष्मी प्रसाद सरकारी नौकरी में थे, जिसके कारण राजरानी के भीतर छिपे लेखन के बीज का अंकुरण हुआ। मध्यप्रदेश के विभिन्न नगरों में रहने और वहाँ के अनुभवों ने राजरानी को गहरे तक प्रभावित किया और वे लेखन कार्य में जुट गई थीं अपने समय की स्त्रियों की दुर्दशा देखकर उनका मन हाहाकार कर उठता था। भारत की महिलाओं को सम्बोधित करती हुई उनकी पंक्तियों का उद्धरण दृष्टव्य है–

देवियों क्या पतन अपना देखकर,
नेत्र से निकलते हैं नहीं।
भाग्यहीना क्या स्वयं का लेखकर
पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं।।

श्रीमती राजरानी देवी की रचनाओं में भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय चेतना और समाज की विसंगतियों का मुखर चित्रण हुआ है। यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता के क्षेत्र में नए युग का सूत्रपात किया था उसी प्रकार राजरानी देवी ने स्त्री रचनाकारों में अपनी एक अलग पहचान बनाई थी।

राजरानी देवी की कविता की दो पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं– (1) प्रमदा प्रमोद (2) सती संयुक्ता इनकी रचनाएँ उस समय की लोकप्रिय पत्रिकाएँ 'चांद', 'मनोरमा' और 'उषा' आदि में निरन्तर प्रकाशित होती रहती थीं।"[18]

इस प्रकार जो स्त्रियों में लेखन के प्रति जागृति देखने को मिलती है वह स्वामी दयानन्द के स्त्री शिक्षा के प्रचार का ही कारण था या फिर सारे भारत में घूम–घूम कर हिन्दी प्रचार या पुरुषों को स्त्रियों के प्रति शिक्षित करने का नतीजा था। दयानन्द ने सर्वत्र अपने स्त्री चिन्तन के प्रभाव को व्याप्त किया तथा अपने शिष्यों से देवनागरी में ही ज्ञान ग्रहण करने की ऐसी व्यवस्था कायम की, जिससे उनकी संस्था आर्य समाज ने भी इसमें बड़ा प्रशंसनीय सहयोग किया जिसका प्रभाव यह रहा कि आज भारत में ही नहीं वरन् विश्व में भी हिन्दी के प्रति लोगों की आस्था बढ़ चुकी है। हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग संपूर्ण रूप से दयानन्द के प्रभाव से प्रभावित रहे हैं।

5.2 द्विवेदी युग

ऋषि दयानन्द ने अपना पूरा जीवन समाज तथा राष्ट्र उत्थान के लिए अर्पित कर बलिदान कर दिया। इस समय में अंग्रेजों की जो दमन की नीति थी वह और भी भयानक हो चुकी थी। 1857 की क्रान्ति में जो बीज ऋषि दयानन्द ने भारतीय मनुष्यों में बोये थे वे अब और भी अधिक सुदृढ़ होकर वृक्षों में परिवर्तित होने लगे वस्तुतः यह काल और अधिक सुधार का काल बन गया। महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित संस्था ने और अधिक दयानन्द के विचारों को देश में फैलाना प्रारंभ किया। स्वामी दयानन्द का यह संदेश कि– "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है.... माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।"[19] जन–जन में बैठ चुका था। अब भारतीय और भी अधिक साहस के साथ विदेशी शासन को उखाड़ फैंकना चाहते थे। "वहाँ द्विवेदी कालीन कवि–मनीषियों ने देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ–साथ देशवासियों को स्वतंत्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी दी। उन्हें आत्मोत्सर्ग और बलिदान का मार्ग भी दिखाया।...सन् 1903 में आचार्य द्विवेदी 'सरस्वती' के

सम्पादक बने। उन्होंने नायिका भेद को छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छन्दों का व्यवहार करने, सभी काव्य रूपों को अपनाने तथा गद्य और पद्य भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया। उनकी अमोघ प्रेरणा एवं वात्सल्यमयी प्रोत्साहन के परिणाम स्वरूप अनेक कवि सामने आये, जो उन्हीं के आदर्शों को लेकर आगे बढ़े इनमें मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचनप्रसाद पाण्डेय आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। समयानुसार चलने वाले कतिपय कवियों ने अपना रास्ता बदला। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर' तथा राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' काव्य के चिर परिचित उपादानों को छोड़कर नये विषयों पर कविता लिखने लगे।"[20] महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा इस युग के लगभग सारे कवि एवं साहित्यकार पूर्णतः स्वामी दयानन्द के शिष्य तथा उनसे प्रभावित थे। इस काल में साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य में स्त्री के प्रति जो रचनाएँ लिखी वे सब महर्षि दयानन्द के स्त्री उत्थान से अनुप्राणित थीं। विचार दयानन्द के थे और साहित्यिक हृदय स्वयं लेखकों का। इस कारण ही कहीं न कहीं दयानन्द के चिन्तन का प्रभाव इनकी रचनाओं में देखने को मिलता है।

नारी का उत्कृष्ट रूप द्विवेदी युग के कवियों में मिलता है अब वे उसके प्रति दया की नहीं अधिकार एवं समानता की बात करने लगे थे। नारी अब समकक्ष कन्धे से कन्धा मिलाकर साहित्य के क्षेत्र में व राष्ट्रीय आन्दोलनों में भी साथ थी। इस काल के साहित्य में नारी के महान् स्वरूप का दर्शन होता है। नारी के प्रति उच्च भावना की अभिव्यक्ति करने वाले एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती से अत्यन्त प्रभावित रहे द्विवेदी युग के चार कवि प्रमुख हैं। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त। श्रीधर पाठक ने स्त्री जाति के प्रति अत्याचारों की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और ईश्वर से सुधार करने की प्रार्थना की है जो कार्य स्वामी दयानन्द ने प्रथम किये थे। "बाल–विवाह प्रचलित न होता, तो विधवाओं की संख्या कभी इतनी न होती।"[21] इसी दुःख को श्रीधर पाठक ने इस प्रकार काव्यबद्ध किया है–

"प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुग जोर।
दीनबन्धु सुदृष्टि कीजै बाल–विधवा ओर।।"[22]

इतना ही नहीं श्रीधर पाठक पर स्वामी दयानन्द व आर्य समाज का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता दिखता है क्योंकि स्वामी जी ही उस समय एक मात्र ऐसे व्यक्ति थे जो हिन्दी भाषा को आर्य भाषा के नाम से, हिन्दी संस्कृति को आर्य संस्कृति के नाम से, हिन्दू धर्म

को आर्य धर्म के नाम से तथा हिन्दू प्रचलित शब्द हिन्दू स्त्री–पुरुष न कहकर वे आर्य स्त्री–पुरुष नाम से संबोधित करते थे यहाँ तक कि वे देश के नाम को भी आर्यस्थान, आर्यखण्ड या आर्यावर्त नाम से पुकारते थे न कि हिन्दुस्तान। इसका प्रमाण उन्होंने कई स्थलों पर अपने प्रवचन एवं हिन्दी में लिखे अपने स्वयं के ग्रन्थों में दिया है जिसका छोटा सा प्रमाण यहाँ देखना उचित होगा। "आर्यावर्त देश कहने से पश्चिम में सरस्वती अर्थात् सिन्धु नदी और पूर्व में ब्रह्मपुत्र अथवा दृषद्वती उत्तर में हिमालय और दक्षिण में विन्ध्याद्रि, इनके बीच का जो प्रदेश है उसी को आर्यावर्त कहते हैं।

सरस्वतीदषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः।। मनु. 2/17

यह आर्यावर्त कितना सुन्दर है, कितना सुपीक (जरखेज) है, और जलवायु भी यहाँ का कितना उत्कृष्ट है। इसमें छहों ऋतु क्रम से आते रहते हैं।...उस समय ब्रह्मचारी और ब्राह्मण इनका नाम आर्य था, उसका सूत्र है कि–

"आर्यो ब्रह्मणकुमारयोः" अष्टाध्यायी 6/3/58

ऐसी व्यवस्था होते हुए हमारे देश का नाम 'आर्यस्थान', 'आर्यखण्ड' होना चाहिए, सो उसे छोड़ न जाने 'हिन्दुस्तान' यह नाम कहाँ से निकला ? भाई श्रोतागण! हिन्दू शब्द का अर्थ काला, काफिर, चोर इत्यादि है और हिन्दुस्तान कहने से काले, काफिर, चोर लोगों की जगह अथवा देश, ऐसा अर्थ होता है। भाई! इस प्रकार का बुरा नाम क्यों ग्रहण करते हो ? और आर्य अर्थात् श्रेष्ठ अथवा अभिज्ञात इत्यादि और आर्यावर्त कहने से ऐसों का देश, ऐसा अर्थ होता है। सो भाई ऐसे श्रेष्ठ नाम को तुम क्यों स्वीकार नहीं करते ? क्या तुम अपना मूल नाम भी भूल गए ? हाँ हम लोगों की यह स्थिति देखकर किसके हृदय को क्लेश न होगा ? अस्तु, सज्जन जन! आज से 'हिन्दू' नाम का त्याग करो और आर्य तथा आर्यावर्त इन नामों का अभिमान धरो। गुण भ्रष्ट हम लोग हुए तो हुए, परन्तु नाम–भ्रष्ट तो हमें न होना चाहिए। ऐसी आप सबों से मेरी प्रार्थना है।"[23] ऐसी दयानन्द की प्रार्थना देश में किसी ने मानी हो या न मानी हो किन्तु उनकी संस्था आर्य–समाज ने तथा द्विवेदी युग के साहित्यकारों ने तो अक्षर सह मानी है। इसी का प्रभाव है कि उनके साहित्य में आर्य शब्द को प्रधानता दी। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन साहित्यकारों पर दयानन्द का स्पष्ट प्रभाव था इस प्रभाव का स्पष्ट उल्लेख श्रीधर पाठक की काव्य रचना में दिखाई दे रहा है स्वामी दयानन्द स्त्रियों को वैदिक कालीन नारी सम्मान देना चाहते थे उसी को

श्रीधर पाठक ने द्विवेदी युग में समाज को बताना चाहा है–

"अहो पूज्य भारत–महिला–गण अहो आर्य कुल प्यारी।
अहो आर्यगृह लक्ष्मि सरस्वती आर्यलोक उजियारी।।
आर्य जगत में पुनः जननि निज जीवन–ज्योति जगाओ।
आर्य हृदय में पुनः आर्यता का शुचि श्रोत बहाओ।।"[24]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' द्विवेदी काल के प्रमुख कवियों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं नाथूराम शर्मा 'शंकर' महर्षि दयानन्द से अधिक प्रभावित थे इस कारण स्वामी जी के समाज सुधार आन्दोलन का प्रभाव इनकी कविताओं में प्रत्यक्ष दिखाई देता है इन्होंने दयानन्द के नारी सुधार को अपने साहित्य में बड़े ही प्रबल साहस के साथ स्थापित किया है। "शंकर जी पर आर्यसमाज तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों का गहरा प्रभाव पड़ा। देश–प्रेम, स्वदेशी–प्रयोग, समाज–सुधार, हिन्दी–अनुराग तथा विधवाओं और अछूतों का दारुण दुःख इनकी कविता के प्रमुख विषय हैं। सामाजिक कुरीतियों, आडम्बरों, अन्धविश्वासों, बाल–विवाह आदि पर इन्होंने बड़े तीखे व्यंग्य किये हैं।"[25] स्वामी दयानन्द के सारे विषयों को कवि शंकर ने पूर्ण प्रयास के साथ आगे बढ़ाया है ताकि समाज में जागृति का प्रसार हो। साहित्य से ही समाज वह शक्ति प्राप्त करता है जिसके कारण वह बुराईयों से लड़ सके और अच्छे समाज का निर्माण कर सके। साहित्य यदि अच्छा हो तो समाज भी अच्छा होगा।

"नाथूराम शर्मा 'शंकर' कृत 'गर्भरण्डा–रहस्य में' जन्म से पहले ही विधवा हो जाने वाली विधवाओं के कष्टमय जीवन का बड़ा मार्मिक चित्रण हुआ है। शिक्षा विहीन नारियों की दुर्दशा की ओर भी इस युग के कवियों ने संकेत किये हैं।"[26] दयानन्द के बाल–विवाह एवं विधवा–प्रथा के बिंदुओं की ओर कवि शंकर ने सर्वसाधारण का ध्यान इस प्राकर आकृष्ट किया जो एक दुष्ट सामाजिक बुराई थी तथा स्त्रियों के जीवन को नर्कमय बनाती जा रही थी। इस दशा का व्यंग्य पूर्ण वर्णन कर कविशंकर ने समाज पर तमाचा मारा है–

"शङ्कर! मान कुमंत्र, जननी ने विधवा जनी।
मैं अबला परतंत्र, विवश गर्भरण्डा बनी।।
------x-----x------x------
सत्य एक अखिलेश, और सब सपना सा है।
विधवा दल का दुःख, भयानक अपना सा है।।
मैं अपना अनुभूत, अमंगल दरसाती हूँ।

उच्च कुलों पर आज, अश्रु विष बरसाती हूँ।।

------x-----x------x------

जब से मुझको गर्भ, नरक में मिला बसेरा।
हा! बालक नवजात, बना तब ही वर मेरा।।
दिया राँड कर जनम, जिन्होंने मुझ दुहिता को।
किया सुकर्म अनन्य, धन्य उन मात पिता को।।"[27]

महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' का हृदय स्वामी दयानन्द द्वारा स्त्री सुधार के बड़े ही कारुणिक कर्त्तव्यों से जुड़ा हुआ था तथा दयानन्द के प्रति इनकी कृतज्ञता यही थी कि उनके द्वारा प्रारंभ किये कार्यों को आगे बढ़ाकर स्त्रियों को वही वैदिक स्थान प्राप्त कराना था जो वैदिक काल में उन्हें प्राप्त था। समाज के निर्लज्ज पुरुषों तथा स्त्रियों को इन्होंने अपनी कविता के माध्यम से खरी-खोटी सुनाई और उस धृष्ट समाज को फटकारा जो गर्भ में ही स्त्रियों का विवाह निश्चित कर दिया करते थे। विधवा की उपाधि लेकर इस संसार में आती है बाद में बड़ी होने पर पिता, पुत्री के लिए विवाह करने की बात कहता है तो माँ के अन्धकारपूर्ण वाक्य इस प्रकार हैं-

"मा सुन उठी पुकार, ननद विधवा है मेरी।
जो पति को दिन रात, तरसती है बहुतेरी।।
उसका पुनर्विवाह, किसी धग्गड़ से कर दो।
पर दुहिता को देव, दूसरी बार न वर दो।।"[28]

शंकर कवि दयानन्द के प्रभाव से बोलते हैं कि विधवा स्त्री की जो भयानक पीड़ा थी उसके लिए समाज तथा समाज की इस वैषम्यपूर्ण स्थिति के लिए पुरुष जिम्मेदार था-

"आप अनेक विवाह, बुढ़ापे तक करते हैं।
धार धार सिर मौर, नई नई वरनी वरते हैं।।
पर विधवा आजन्म, दूसरा वर न वरेगी।
कर पञ्चामृत पान, पुण्य भर पेट करेगी।।"[29]

स्त्रियों की बिगड़ती दशा तथा पुरुषों की लम्पटता का कवि शंकर ने जो प्रस्तुतीकरण किया है वह देखने योग्य है जो आज के युग से कितना मेल खाती हैं-

"ससुर अछूता प्यार, पतोहू पर करता है।
अनुज-बधू की ओर, जेठ सिसकी भरता है।

------x-----x------x------

बालक जन छै सात, मरी जिसकी घरवाली।
रख ली उसने राँड, सड़ाइन अथवा साली।।
इतने पर भी हाय, तनक संतोष न देखा।
विधवा की विपरीत, रीति पर करे परेखा।।"[30]

कतिपय स्थितियों में कवि शंकर ने अत्यन्त कुशल शोध से यह जाना है कि तत्कालीन समाज में स्त्रियाँ भी इतनी पाखण्डी बन चुकी थी कि वे अपना वैधव्य तो बना रखना चाहती है परन्तु विवाह नहीं करती। यह एक धार्मिक पाखण्ड कह सकते हैं या फिर उन विधवाओं को व्यभिचार करने का एक अवकाश। इसका पता कवि शंकर की निम्न व्यंग्य पंक्तियों से चल सकता है–

"विधवा होकर पान, चबाना, नयन नचाना।
वेष बनाकर ठौर, ठौर हुरदङ्ग मचाना।।
इतने तक तो पुण्य, प्रतिष्ठा कम घटती है।
पर करते ही ब्याह, नाक जड़ से कटती है।।
------x-----x------x------
जो बिन धन, संतान, तरुण विधवा होती है।
वह दुखिया आजन्म, मृतक पति को रोती है।।
कात-कात कर सूत, पेट अपना भरती है।
पर न दुबारा ब्याह, धर्म खोकर करती है।।
------x-----x------x------
विधवा दल को जार, बिजार ठगा करते हैं।
बहुधा गर्भस्वरूप, कलंक लगा करते हैं।।
पर वे अभया श्राव-पात से कब डरती हैं।
करतीं हैं सुख भोग, न कोई वर करती हैं।।"[31]

कवि नाथूराम शर्मा शंकर ने ऋषि दयानन्द के इन शब्दों को अपनी कविता में उतारा है "यदि इस समय हम लोगों में बाल-विवाह प्रचलित न होता, तो विधवाओं की संख्या कभी इतनी न होती और न इतने गर्भपात और भ्रूण हत्याएँ होती।"[32] कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' द्विवेदी काल के श्रेष्ठ कवि थे। "तेरह वर्ष की छोटी आयु में ही इन्होंने अपने एक साथी पर एक दोहा रचा था। कानपुर में ये भारतेन्दु मण्डल के प्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र के सम्पर्क में आये तथा 'ब्राह्मण' में इनकी कविताएँ छपने लगी। बाद में इन्होंने

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' के मुख्य कवियों में स्थान पाया।"[33] ऋषि दयानन्द के स्त्री सुधार कार्यक्रम को इन्होंने साहित्य के रूप में आगे बढ़ाया तथा उनके इस उत्थान की ओर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए समाज का दयानन्द के ऋण की ओर भी ध्यान इंगित किया कि यदि दयानन्द न आते तो स्त्रियों की स्थिति में सुधार होना अनिश्चित था। यह दयानन्द की उदारता ही थी जो स्त्रियाँ पुनः सम्मान को प्राप्त हुईं–

"पिय साथ सुहागिनि काल, समोद बितावे।
सधवा पुनि अक्षत योनि, रांड बन जावे।।
विधवा क्षत योनि नियोग, सिद्ध फल पावे।
कुलटा बन के कुल को न, कलङ्क लगावे।।
द्विज दम्पती क्या इस ओर, ध्यान कुछ लाते।
यदि दयानन्द गुरूदेव, उदार न आते।।"[34]

नारी के प्रति जो भावनाएँ भारतेन्दु युग में ऋषि दयानन्द की मौजूदगी में प्रारंभ हुई थीं उनका द्विवेदी युग में निरन्तर विस्तार होता गया तथा उसका साहित्य में सम्मान भी अधिक बढ़ता गया क्योंकि इस युग में समाज सुधार एवं स्त्री उत्थान का कार्य अब उनकी संस्था आर्य समाज ने संभाल लिया था। बड़े विद्वान् एवं विवेकवान् साहित्यकार उस संस्था से जुड़ चुके थे जो नित्य–प्रति अपनी बौद्धिक भूख दयानन्द के दर्शन शास्त्र से मिटाया करते थे। जिसे समय–समय पर समाज सुधार एवं देश सुधार के हित में साहित्य को जनहित के लिए सृजन किया करते थे। उत्तरोत्तर नारी समाज का महत्त्व बढ़ता गया। साहित्य की धारा जो मध्य युग में कलुषित थी उसे कवि शंकर एवं अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे कवियों ने बदल डाला था। जो नायिका मध्य युग में साहित्यकारों को काम वासना रूप में दिखाई देती थी वह हरिऔध जैसे कवियों की बदौलत दयानन्द के प्रभाव से एक सुलक्षण स्त्री के रूप में दिखाई देने लगी थी। जिस कृष्ण और राधा का चरित्र मध्यकालीन कवियों ने कलंकित कर रखा था। "सामान्य नायक–नायिका के स्तर से ऊपर उठा विश्व–सेवी तथा विश्व प्रेमी के रूप में चित्रित करने में 'हरिऔध' ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।"[35] उपाध्याय जी महर्षि दयानन्द से अत्यन्त प्रभावित थे इसी कारण उनके काव्य में नारी के महान् स्वरूप का उद्घाटन हुआ है। उन्होंने 'रसकलश' में देश–प्रेमिका, जाति–प्रेमिका, जन्म–भूमि–प्रेमिका, लोक–सेविका, धर्म–प्रेमिका इत्यादि नायिकाओं के नवीन रूपों की उद्भावना की। प्रिय प्रवास की राधा 'लोकसेविका' नायिका है वह अपने प्रिय से अलग होकर रोती नहीं रहती वरन् समाज की सेवा में ही अपने प्रेम की चरम परिणति देखती है। वह अपने प्रिय के सामीप्य का त्याग भी लोकहित के लिए कर सकती है– **प्यारे जीवें जग–हित करें गेह चाहे न आवें।**

इसी प्रकार हरिऔध जी की वैदेही भी आधुनिक जाग्रत नारी का सुष्ठु स्वरूप है। वह स्वयं वनवास के लिए उद्यत है। हिन्दी साहित्य के द्विवेदी युग में केवल दयानन्द से प्रभावित साहित्यकार थे जिन्होंने पुरानी मान्यताओं को छोड़कर साहित्य में नया रास्ता बनाया था। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध "का 'प्रियप्रवास' हिन्दी का पहला महाकाव्य है, जिसमें आधुनिक पुनर्जागरण की भावना की व्यंजना हुई है। 'प्रियप्रवास' का यही एक मात्र आधार है।"[36] जिसका श्रेय स्वामी दयानन्द को जाता है। जिस चरित्र को मध्यकालीन साहित्य में अत्यधिक कलंकित किया गया और राधा जो कि कल्पना मात्र थी उसे हरिऔध जी ने प्रियप्रवास की नायिका चुना क्योंकि ऋषि दयानन्द ने कृष्ण को ईश्वर न मानकर उन्हें आप्त पुरुष तथा योगी पुरुष माना है। समाज सेवक तथा अपने धर्म की रक्षा करने वाला कर्मठ कर्मयोगी माना है उसे ही आधार बनाकर हरिऔध जी ने कृष्ण को नायक पात्र चुना। जिससे मध्य युग में लगाया कलंक कृष्ण के ऊपर से धुल सके। काल्पनिक राधा को नायिका इसलिए बनाया कि मध्यकाल में लोगों की जबान पर राधा नाम ऐसा लग चुका था जो हटाए नहीं हट रहा था। प्रियप्रवासकार ने राधा को न ब्रह्म के साथ विहार करने वाली, न आद्या शक्ति, न विलासिनी और न कृष्ण की पत्नी का रूप दिया है, वरन् उसको आज की नारी के रूप में एक सभ्य मर्यादित, कोमल, प्रेममय, कर्त्तव्य परायण, लोकसेवी और सदस्या बनाया है। प्रियप्रवासकार ने राधाकृष्ण के मिलन के चित्र नहीं उतारे हैं उन्होंने उसके चरित्र का विकास प्रवास के अनन्तर दिखलाया है। इसलिए राधा के प्रेम में संयोग की विभिन्न लीलाओं एवं चेष्टाओं का फूहड़पन मध्यकाल की भाँति कोई स्थान नहीं पाता है। प्रियप्रवास की राधा वियोगावस्था में भी शान्त और विवेकशील है उद्धव के आने पर वह प्रेमपूर्वक स्वागत कर कृष्ण का संदेश सुनती है तथा बाद में अपना संदेश भिजवाती है। वह भारतीय नारी की पहचान दिखाती है और प्रणय में भी अत्यन्त धैर्य का परिचय प्रस्तुत करती है। वह रीतिकालीन साहित्य की भाँति न होकर एक आदर्श भारतीय शुद्ध, कृष्ण के गुणों से प्रेम करने वाली स्त्री है उसका प्रेम वासना से आवृत नहीं है। यही कारण है कि वह मोह–माया को त्यागकर विश्व में अपने प्रियतम के दर्शन कर लोक सेवा के कार्यों का वरण करती है। उसमें आधुनिक भारतीय नारी की परिकल्पना की गई है जो मानवीय, शील, संयम और मर्यादा से युक्त है।

अपने प्रियतम कृष्ण का संदेश पाकर राधा अपने आपको समाज सेवा में लगा देती है। विश्व–हित ही उसका सबसे बड़ा लक्ष्य बन जाता है। वह अपने कौमार्यव्रत की पूर्णता इसी में समझती है–

"आज्ञा भूलूँ न प्रियतम की, विश्व के काम आऊँ।
मेरा कौमार-व्रत भव में पूर्णता प्राप्त होवे।।"[37]

वास्तव में तो प्रिय प्रवास में हरिऔध जी की कोई राधा नाम की स्त्री ही नहीं वह तो मात्र एक आज की सुलझी हुई नारी का बिम्ब था जो हर दृष्टि में वैदिक नारी से कम न थी तथा तत्कालीन स्त्रियों की बिगड़ी हुई अवस्थाओं में ऋषि दयानन्द की आदर्श, चरित्रवान नारी थी। हरिऔध जी का लक्ष्य इस महाकाव्य के पीछे मात्र इतना था कि समाज में जो राधा-कृष्ण के प्रति लोगों की कलुषित सोच थी, वह बदले और स्त्रियों के सम्मान में वृद्धि हो तथा इस प्रसंग से प्रेरणा लेकर आने वाली स्त्रियाँ उत्तरोत्तर अपने चरित्र की वृद्धि से समाज में अपना पद पुनः प्राप्त करे जिस प्रकार हरिऔध की राधा प्राप्त करती है। यहाँ कौमार-व्रत का अर्थ है ऋषि दयानन्द की ब्रह्मचारिणी।

राधा-कृष्ण प्राप्ति से निराश होकर सदा के लिए कौमार-व्रत धारण कर समाज हितकारी कार्यों में जुट जाती है। वह शोक सन्तप्त गोप-गोपियों अर्थात् दुःखी समाज का अपनी व्यथा भूलकर सेवा द्वारा दुःख हरती है। वह दीन दुःखियों आर्तों और पीड़ितों की सहायता करती है। वह समाज में अपनी छवि से पूजा के योग्य बनती है-

"संलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना-कार्य में भी।
वे सेवा थीं सतत करती वृद्ध रोगी जनों की।
दीना-हीना निर्बल विधवा आदि को मानती थी।
पूजी जाती ब्रज अवानि में देवि-तुल्या अतः थीं।
वे छाया थीं सुजन-शिर की, शासिका थीं खलों की,
कंगालों की परम निधि थीं, औषधी पीड़ितों की।
दीनों की थीं भगनि, जननी थीं अनाथाश्रितों की।
आराध्या थीं ब्रज-अवनि की, प्रेमिका विश्व की थीं।"[38]

यह कहने में कोई संकोच नहीं कि 'प्रियप्रवास' की राधा 'हरिऔध' के हृदय में दयानन्द सरस्वती की वैदिक नारी ही थी जो भारत की सुसंस्कृत और विदुषी नारी है जो अपने संकुचित व्यक्तिगत प्रेम से ऊपर उठकर सम्पूर्ण विश्व से प्रेम करती है अर्थात् वह मानवीयता के गुणों से युक्त है। वह सम्पूर्ण विश्व को प्रेम भाव से देखती है वह निराश न होकर कौमार-व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्य धारण कर संयम से रहती है और लोकहित में ही अपना हित समझती है।

हरिऔध की राधा ऋषि दयानन्द के मूर्तिपूजा के पाखण्ड का खण्डन करती है। राधा नवधा भक्ति की नई व्याख्या करती है अब तक नवधा भक्ति का प्रयोग देश भक्ति और समाज सेवा के लिए किया। भक्ति की नई व्याख्या जो राधा ने प्रस्तुत की, कितनी समाजोपयोगी एवं हृदय ग्राही है–

"विश्वात्मा जो परम–प्रभु है रूप तो है उसी के।
सारे प्राणी सरि–गिरि–लता बेलियाँ, वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा
भवोपेता परम–प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है।"[39]

यहाँ पर 'हरिऔध' ऋषि दयानन्द के ईश्वर, जीव, प्रकृति के त्रेतवाद को भी सहज ही उजागर कर गये हैं।

कृष्ण का जो चरित्र पुराणों तथा रीतिकालीन कवियों ने रसिक रूप में कलंकित कर रखा था उसे हरिऔध जी ने सच्चे महापुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। जो चरित्र ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में तथा महाभारत एवं गीता में कृष्ण का प्रस्तुत हुआ वही रूप हरिऔध ने प्रस्तुत किया है। स्वामी दयानन्द से समाज सुधार के दौरान यह प्रश्न कई व्यक्तियों ने बार–बार पूछे थे कि आप संन्यासी हैं योगी हैं तो ईश्वर या मुक्ति प्राप्त करने में क्यों नहीं ध्यान देते इन समाज सुधार के पचड़ों से तो आपकी मुक्ति में बाधा ही पहुँचेगी तथा इस समाज सुधार से आपको क्या लाभ होगा। "स्वामी कैलास पर्वत ने भी उन से यह प्रश्न पूछा था। समाधि सिद्ध कर योग मार्ग से परम तत्व को हस्तामलकवत् प्राप्त कर लेने वाले तुरीयाश्रमी दयानन्द लोकहित और जनकल्याण के इस पचड़े में क्यों पड़े हैं ? क्या वे स्वयं की मुक्ति के लिए उत्सुक नहीं हैं ? लोक मंगल के लिये निर्विकल्प समाधि के आनन्द का भी तिरस्कार करने वाले दयानन्द का उत्तर स्पष्ट था–मैं अपनी मुक्ति के लिए उत्सुक नहीं हूँ। मैं तो उस दिन को देखना चाहता हूँ जबकि त्रिताप सन्तप्त जनसमाज नाना क्लेशों और पीड़ाओं से मुक्त होकर श्रेय मार्ग का पथिक बनेगा। पं. इन्द्रमणि ने भी स्वामी जी से यही बात पूछी थी। परमहंस पद प्राप्त दयानन्द के लिये धार्मिक कुरीतियों के खण्डन तथा सामाजिक कुप्रथाओं के उन्मूलन में माथा खपाने की क्या आवश्यकता है ? स्वामी जी का विनम्र उत्तर था– **'मेरे लिये यह कार्य कोई टंटा बखेड़ा जैसा नहीं है। पूर्वज ऋषियों के ऋण से उऋण होने के लिये ही मैं यह कार्य कर रहा हूँ। स्वार्थी लोगों ने शताब्दियों से ऋषि संतानों को मिथ्याडम्बरों और रूढ़ि जालों में फंसा रक्खा है। आर्य जाति**

के विलुप्त गौरव को पुनः प्राप्त कराना ही मेरे जीवन की एक मात्र साधना है।"[40] ऋषि दयानन्द के इन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुये कवि हरिऔध जी ने प्रिय–प्रवास से श्रीकृष्ण द्वारा मुक्ति से महत्त्वपूर्ण समाजहित को बताया है जो स्वयं की मुक्ति की कामना से तप करते हैं वे आत्मार्थी एवं स्वार्थी हैं और जो दयानन्द की भाँति मुक्ति छोड़कर सम्पूर्ण समाज की मुक्ति में अपनी मुक्ति समझते हैं वे लोकसेवा में लीन महान् आत्म त्यागी, समाज सेवक एवं परोपकारी महापुरुष होते हैं। ऐसा ही प्रिय प्रवास के कृष्ण कहते सामने आते हैं– **जी से प्यारा जगत–हित औ लोक–सेवा जिसे है।**

प्यारी सच्चा अवनि–तल में आत्म त्यागी वही है।

हरिऔध के कृष्ण भोगों की अपेक्षा जग हित कार्यों में लोकोत्तर शान्ति देखते हैं और संसार में आना वे उसी का सार्थक मानते हैं, जो दयानन्द की भाँति आत्म सुख को छोड़कर जनकल्याण के लिए अपना उत्सर्ग करे–

है आत्मा का न सुख किसको विश्व के मध्य प्यारा।
सारे प्राणी स–रूचि इसकी माधुरी में बँधे हैं।
जो होता है न वश इसके आत्म–उत्सर्ग–द्वारा।
ऐ कान्ते! सफल अवनी–मध्य आना उसी का।

इस प्रकार राधा और कृष्ण को माध्यम बनाकर जो सैंकड़ों वर्षों से नायक–नायिका के रूप में लम्पटों का घिनौना एवं अश्लील चित्रण आज तक चलाया जा रहा था वह ऋषि दयानन्द के प्रभाव से कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने बदल कर उस धारा को सच्चे अर्थों में मोड़ा और समाज में राधा–गोपी की जो कल्पित भावना थी उसे तोड़ा। जिस कारण स्त्रियों का भारी हनन हो रहा था। क्योंकि धर्म से जोड़कर एक महापुरुष को लंपट बनाकर उसका अनुसरण करने की आड़ में स्त्रियों का शोषण आम बात हो चुकी थी। हिन्दी साहित्य में द्विवेदी काल का हरिऔध जी द्वारा स्त्री सुधार एवं जागरण का यह प्रथम एवं सशक्त कदम माना जा सकता है जिसमें राधा के माध्यम से आज उच्च चारित्र्य विशेषता वाली नारी का निर्माण किया। जो वास्तव में एक बहुत ही महान् कदम था। "पुनर्जागरण परम्परा के विकास का विशेष क्रम है। इसकी विशेषता का आधार सामयिक आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ हैं। यह तो सभी जानते हैं कि कृष्ण लीला के प्रसंग के परिवेश में अनाचार और अनैतिकता को भी पुष्ट होने का अवसर मिलता है। ईसाई धर्म प्रचारकों ने कृष्ण लीला के इस पक्ष को आधार बनाकर समूची भारतीय सभ्यता और परम्परा का ही तीव्र विरोध शुरू

कर दिया था इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि भारतीय विचारकों का ध्यान इस ओर जाता। स्वामी दयानन्द ने राम और कृष्ण आदि सभी अवतारों को महापुरुषों के रूप में स्वीकार किया। इसी प्रयास का असर 'प्रिय–प्रवास' पर दिखाई देता है। यहाँ कृष्ण एक आदर्श भारतीय नायक के रूप में चित्रित हैं उन्होंने लोक के लिए व्यक्तिगत सुख और सुविधा को त्याग दिया है।"[41]

स्त्रियों की दशा सुधार एवं उनके सम्मान को उच्चस्थ करने के लिए इससे बढ़कर कोई उपाय अथवा कोई काव्य रचना आज तक हिन्दी साहित्य में नहीं है यह दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव नहीं था तो और क्या था ? हरिऔध का यह साहित्य में क्रान्तिकारी परिवर्तन तथा उनके विवेक एवं सूझबूझ का श्लाघ्य परिणाम था जो नारी सम्मान को साहित्य में पुनः प्रतिष्ठापित करने में कामयाब कदम रहा है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्त्री चिन्तन का प्रभाव पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पर कितना पड़ा और दयानन्द के प्रति हरिऔध के मन में कितनी श्रद्धा थी ? यह सब हरिऔध जी के छप्पय में देखा जा सकता है जिसमें स्वयं हरिऔध जी कहते हैं कि दयानन्द के आने के कारण ही यह धरती प्रकाशित हुई है। दयानन्द ने ही स्त्रियों के दुःख को समझा है तत्पश्चात् ही समाज का ध्यान उस ओर गया है और स्त्री उत्थान के बारे में सोचने लगे हैं–

"कर कर बाल विवाह अबल बन थे बल खोते।
दुःखी थे न विधवाओं के विधवापन से होते।।
समझ लूट का माल लूटते थे इसाई।
मुसलमान की मुसलमानियत थी दिखलाई।।
हम दिन–दिन थे तन बिन रहे तन को गिनते थे न तन।
निपतन गति थी दूनी हुई पल पल होता था पतन।।
------x-----x------x-------x------
भूल में पड़े, भूल को समझ भूल न पाते।
देख देख कर दुःखी जाति सुख देख न पाते।।
कर्म–भूमि पर था न कर्म का बहता स्रोता।
धर्म–धर्म कह धर्म–मर्म था ज्ञात नहीं होता।
उस काल अलौकिक लोक नेह में अलौकिक बल दिया।।
आ दयानन्द आलोक ने आलोकित भूतल किया।।"[42]

इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त ने भी स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव को अपने में समेटा और उसे समाजोत्कर्ष के लिए अपने साहित्य में उन स्त्री पात्रों की ओर जनता

का ध्यान आकर्षित किया जो उपेक्षित थी। उन्होंने पात्र प्राचीन लिये हैं किन्तु उनमें संदेश उपेक्षिता नारी का तत्कालीन उत्कर्ष रूप में ही था। इसी कारण वे राष्ट्र कवि के रूप में पहचाने जाने लगे। गुप्त सच्चे मन से दयानन्द से प्रभावित थे तथा सच्चे आर्य समाजी थे इसका प्रमाण उन्हीं की कविता 'आर्य समाज' में उनके शब्दों द्वारा मिलता है–

"आर्यसमाज!
आर्यभूमि का अरुणोदय–सा,
उठा उष्ण, तू सज कर साज।
अन्धकार था चारों ओर,
देख लिया पर, तू ने चोर;
घर में शोर मचाया घोर।
सोते स्वजनों को धिक्कार,
जगा दिया ठोकर तक मार!
कि हो प्राप्त भय का परिहार।
असल, प्रमादी, अवसादी,
हम थे सोने के आदी;
जागा तू भैरव–वादी।
लगे विवादी भी कुछ स्वर,
पर हम चौंक उठे सत्वर;
उतरा कुछ तो तन्द्रक ज्वर।
किया क्या तू ने खण्डन मात्र?
स्वयं तु था मण्डन का पात्र;
गये गुरूकुल में वर्णी छात्र।
हुई निःशुल्क शिक्षा, बढ़े अब वह तितिक्षा।
हिन्दू–मानस–महाराष्ट्र, तू
धरे राष्ट्रभाषा की लाज!
आर्यसमाज! आर्यसमाज!!
बरसावें सुरपुर–कन्याएँ
गाकर तुझ पर सुमन सलाज
किया बली, तू ने विद्रोह,

पर किससे? उससे जो मोह;
छोड़ा अपनों का भी छोह।
छाई थी समाज में श्रान्ति,
अन्धभक्ति, दुर्गति, भय, भ्रान्ति,
कर दी तू ने कर दी क्रान्ति।
घर था बना हाय! घूड़ा,
चमक रही थी बस चूड़ा;
तम ने झाड़ दिया कूड़ा।
उसके साथ किन्तु घर के,
जायँ न भूषण भी भर के;
रख निज रत्न, यत्न कर के।
देखती नहीं रोष में दृष्टि,
शान्त हो झंझा, सींचे वृष्टि;
ध्वंस के अंसों पर हो सृष्टि।
बजे सब ओर डंका, मिटे निज मुक्ति-शंका।
जिष्णु, तनिक परमत-सहिष्णु हो,
प्रिय पद पर वर विष्णु, विराज।
आर्जसमाज! आर्यसमाज!!
प्रभु की परम दया है तुझ पर,
आ, आनन्द मना तू आज।
शोक न कर तू कर अभिमान,
कर निज वेद-विजय-रस-पान;
किया वीर, तूने बलिदान।
विधर्मियों से, घर की फूट,
करा रही थी अपनी लूट;
तू सतर्क हो उठा अटूट।
पर जो मुँह की खाते हैं,
मन ही मन चिढ़ जाते हैं;
छिप कर घात लगाते हैं!
सहा सभी तू ने प्यारे,
सिद्ध कर गये हत्यारे;

निज अविजय न्यारे न्यारे।
राम ने रक्खी तेरी रेख,
न मुँह फेरा तू ने भय देख,
लिखा निज शोणित से यह लेख–
"कृणुध्वं विश्वमार्यम्" जयति कृतबुद्धिः कार्यम्।
शुद्धि–वितान–तले श्रद्धा का,
दान किया तूने द्विजराज!
आर्यसमाज!"[43]

मैथिलीशरण गुप्त का जन्म 1886 में उत्तर प्रदेश में हुआ था और दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् उत्तर भारत में 'आर्य समाज का प्रचार जोरों पर था। अत्यधिक बुद्धिजीवी आर्यसमाज व दयानन्द के सिद्धान्तों से प्रभावित थे। 1912 में गुप्त ने राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत भारत–भारती की रचना की जिसमें दयानन्द का स्पष्ट प्रभाव था तब से गुप्त जी राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात हुये।

नारी के प्रति उच्च भावना को प्रमुख रूप में लेकर चलने वाले इस युग के प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं इनकी कविताओं में नारी का बहुत महान् स्वरूप प्रस्तुत हुआ है अन्य कवियों द्वारा उपेक्षित नारी या कहो तत्कालीन समाज में नारी को आगे लाना अथवा उसके उत्थान को ही अपने काव्य में चित्रित किया है। 'साकेत' की उर्मिला और कैकेयी, 'यशोधरा' की यशोधरा और 'द्वापर' की विश्रुता ऐसी ही नारी है जिससे तत्कालीन नारी उत्थान की याद समाज को आ सके तथा नारी को उपेक्षित ढंग से न देखकर बराबर से समान भाव से उसके साथ व्यवहार हो यह गुप्त जी का लक्ष्य रहा है। 'साकेत' महाकाव्य के मूल में उर्मिला और लक्षमण की वह मर्म स्पर्शी कथा अनुस्यूत है जिसको गोस्वामी तुलसीदास ने राम और सीता के महान् चारित्रिक गुणों के बीच में दबा दिया था। इसके साथ ही एक और विशेषता है। साकेत की उर्मिला और कैकेयी का स्वरूप पौराणिक नारियों का सा नहीं है उन पर दयानन्द की जाग्रत अवस्था का भी प्रभाव है जिसके कारण वह अपनी स्वतंत्र उद्घोषणाएँ भी करती हैं तथा आधुनिक युग की सचेत दृष्टि से युक्त हैं। यहाँ तक कि उर्मिला स्वयं सैन्य संघठन बनाकर लंका प्रस्थान करने के लिए तत्पर होती है उस पर स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाली नारियों की प्रेरणा है। वह त्याग की महानता लिये हुए है वह अपने घर में रहना उचित समझती है। प्रिय के पथ में विघ्न नहीं बनना चाहती–

कहा उर्मिला ने–हे मन! तू प्रिय–पथ का विघ्न न बन।

गुप्त जी की उर्मिला मध्ययुग की स्त्रियों की तरह नहीं है वह यहाँ सम्पूर्ण स्त्रियों के दुःख को हल्का करना चाहती है वह एक समझदार आज के युग की नारी है स्वयं स्त्री होने से वह स्त्रियों के दुःखों को परखना और उनका उन्मूलन का करना चाहती है क्योंकि स्त्रियों के दुःखों को स्त्री ही अधिक बारीकी से समझ सकती है तथा कई जगहों पर व्यक्ति को दूसरों के दुःखों में सहयोग करने से स्वयं के दुःख का निराकरण मिलता है और आत्म सुख के साथ स्वयं के दुःख की पीड़ा कम होती महसूस होती है–

सुख दे सकते हैं तो दुःखी जन ही मुझे, उन्हें यदि भेंटूँ
कोई नहीं यहाँ क्या जिसका कोई अभाव मैं भी मेटूँ?

गुप्त जी की यशोधरा में नारी विश्व–कल्याणी रूप है। नारी पुरुषों के मार्ग का विघ्न नहीं है वरन् वह उसकी साधना की सहयोगिनी है, वह पति को क्षात्र धर्म पालने हेतु रणक्षेत्र में भेजती है–

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में
हमीं भेज देती हैं रण में, क्षत्र धर्म के नाते।

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा में नारी भारतीय संस्कृति की प्रतिमूर्ति है इसलिए उसमें तपस्या, संयम, त्याग एवं आत्मोत्सर्ग की भावनाँ कूट–कूट कर भरी है वह मिटना जानती है। यशोधरा के ये शब्द नारी जीवन की इसी साधना के द्योतक हैं–

इस दिन के उपयुक्त पात्र की उन्हें खोज थी भारी।
आर्यपुत्र ले चुके परीक्षा अब है मेरी बारी।।

पतिव्रता धर्म के निर्वाह के साथ वह उस आत्मबल से कई संकट पार करती हुई आत्म सम्मान भी दर्शाती है– मेरे ये विश्वास व्यर्थ यदि उनको खींच न लायें।

इस प्रकार कवि मैथिलीशरण गुप्त में नई सोच एवं दयानन्द के स्त्री उत्थान के नये विचार समाहित हैं जिनके माध्यम से वे स्त्री को पुनः पुरुष के समान समझ एवं स्वनिर्णयों की संवाहिका के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

राम नरेश त्रिपाठी के काव्य में नारीत्व के प्रति सम्मान स्पष्ट दिखता है। द्विवेदी युग में साहित्य की सम्पूर्ण धारा बदल चुकी थी। दयानन्द ने ऐसा यत्न किया कि साहित्यकार अपने विवेक का उपयोग सच्चाई की ओर करने लगे थे।

स्वामी दयानन्द की बात मानकर स्त्रियाँ शिक्षा एवं सेवा के कार्य को अपनी समझ से कर अपने आपको कृतज्ञ समझने लगी थी। दयानन्द के उपदेशों की उस समय स्त्रियों ने बड़ी तत्परता के साथ पालना की। "एक दिन दोपहर के समय कुछ स्त्रियाँ महाराज के दर्शन करने आईं और पूछा कि ज्ञान और शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। महाराज ने उत्तर दिया कि तुम्हारे पति ही तुम्हारे गुरू हैं। उन्हीं की सेवा किया करो, किसी साधु को गुरू मत बनाओ, विद्या पढ़ो। अपने पतियों को हमारे पास भेजा करो और उनके द्वारा हमारे उपदेश से लाभ उठाया करो।"[44] दयानन्द के उपदेशों से स्त्रियों पर शिक्षा का प्रभाव पड़ा और शिक्षा के द्वारा वे कर्म मार्ग को समझ कर उसके महत्त्व को बताती हैं। त्रिपाठी जी की नायिका उच्च भावनाओं से ओत–प्रोत है। रामनरेश त्रिपाठी के स्वप्न खण्ड काव्य में नायिका अपने पति को कर्म मार्ग की प्रधानता का महत्त्व समझाती है–

सेवा है, महिमा मनुष्य की, न कि अति उच्च विचार द्रव्य बल।
मूल हेतु रवि के गौरव का है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल।
मन की अमित तरंगों में तुम, खोते हो इस जीवन का सुख।

नायिका के उद्‌बोधन से उसका प्रिय स्वदेश प्रेम से विह्वल हो जाता है और अपनी अद्‌भुत वीरता द्वारा सबका नेता बनकर विजय प्राप्त करता है। इसी प्रकार 'मिलन' काव्य की नायिका अपने पति की जीवन सहचरी तथा राष्ट्र सेविका है।

दयानन्द के उपदेशों का तत्कालीन स्त्रियों एवं साहित्यकारों पर ऐसा प्रभाव था कि वे स्त्रियाँ जिन्हें दयानन्द ने शिक्षा प्राप्त करने का एवं पति सेवा का उपदेश दिया था वे उस शिक्षा एवं पति सेवा का ऐसा विस्तार कर देती है कि प्रत्येक दुःखी मानव की सेवा करने लगती हैं। पति जब राष्ट्र के लिये अपने प्राण न्यौछावर करते हैं तो उनकी स्त्रियाँ भी राष्ट्र सेवा को पति सेवा से कुछ कम नहीं मानती और वे उसे दयानन्द का आदेश समझकर देश हित में अपने पतियों के साथ अपना भी बलिदान देने से नहीं चूकतीं। 'मिलन', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' रामनरेश त्रिपाठी के काल्पनिक कथाश्रित खण्ड काव्य हैं किन्तु इनपर दयानन्द के चिन्तन का प्रभाव पड़ा है। तीनों में व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्यागकर देश के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की प्रेरणा दी गई है–

सच्चा प्रेम वही है जिसकी,
तृप्ति आत्म–बली पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है,

करो प्रेम पर प्राण निछावर।।
देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है,
अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें,
मनुष्यता होती है विकसित।।

इसके अतिरिक्त द्विवेदी कालीन कवियों में दयानन्द के चिन्तन का प्रभाव मिलता है अन्य कवि भी दयानन्द के स्त्री चिन्तन के प्रभाव से बच न सके उनकी साहित्य रचना कैसी भी हो किन्तु स्त्री उत्थान के दयानन्दीय विचार साहित्य में किसी न किसी रूप में तो आ ही जाते थे। अन्य कवियों में लाला भगवानदीन ने 'वीर क्षत्राणी' में स्त्री उत्थान की बात की तो सत्यनारायण 'कविरत्न' ने अपनी कविता में युग चेतना से प्रभावित हो दयानन्द का चिन्तन परिलक्षित किया है। नारी शिक्षा में 'भ्रमर दूत' की यशोदा कहती है–

नारी–शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी,
ते स्वदेस–अवनति–प्रचंड–पातक अधिकारी।
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समझि सब कोइ,
विद्या–बल लहि मति परम–अबला सबला होइ।।
लखौ अजमाइ कै।।

द्विवेदी काल में राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ–साथ स्त्री उत्थान आन्दोलन भी बड़े जोर पर चला जिसमें दयानन्द का प्रभाव प्रत्यक्ष था जहाँ उन्होंने सामाजिक कुरीतियों, पाखण्डों, धार्मिक आडम्बरों एवं निरर्थक रूढ़ियों पर जोरदार प्रहार किया वहाँ विकासवादी परम्परा के उपयोगी नये तत्त्वों का भी पोषण किया। उपन्यासों में लज्जाराम शर्मा के 'आदर्श दम्पत्ति', 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी', किशोरी लाल गोस्वामी के 'लीलावती' व 'आदर्श सती', पुनर्जन्म वा सौतिया डाह आदि में स्त्रियों के प्रति उत्थानवादी विचार प्रस्तुत हुए हैं।

"आलोच्यकालीन सामाजिक उपन्यासों में सुधारवादी जीवन–दृष्टि ही प्रधान है किशोरीलाल गोस्वामी, लज्जाराम शर्मा और गंगाप्रसाद गुप्त सनातन धर्म के समर्थक थे। आर्य समाज के नवीन सुधारवादी आन्दोलन के विरुद्ध होते हुए भी ये लेखक नैतिक जीवन दृष्टि की प्रतिष्ठा चाहते थे। गोस्वामी जी ने सती–साक्षी देवियों के आदर्श प्रेम के साथ ही अवैध प्रेम, विधवाओं के व्यभिचार, वेश्याओं के कुत्सित जीवन और देवदासियों की विलास लीला का भी चित्रण किया है। उनका उद्देश्य नारकीय कुत्सित जीवन के दुष्परिणाम

दिखाकर लोगों को उच्च नैतिक जीवन में प्रवृत्त करना था; यों निम्न कोटि के वासना परक चटकीले प्रेम–प्रसंगों के प्रभाव से युवा पाठकों के पथभ्रष्ट होने का खतरा भी उनके उपन्यासों में कम नहीं है।"

इस युग में आर्य समाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द पर लिखी जीवनियों का भी साहित्यकारों पर प्रभाव था। रामविलास सारदा का आर्य धर्मेन्दु जीवन महर्षि (1901), दयाराम का दयानन्द चरितामृत (1904), चिम्मनलाल वैश्य का स्वामी दयानन्द (1907) और अखिलानन्द शर्मा का दयानन्द दिग्विजय (1910) शीर्षक कृतियों का प्रभाव सम्पूर्ण द्विवेदी युग में था। जिस कारण कोई भी साहित्यकार दयानन्द के प्रभाव को अपने साहित्य में आने से रोक न सके।

द्विवेदी युग में दयानन्द का ही प्रभाव था या कहो उन पर लिखे गये जीवनी साहित्यों का जिसके कारण रचनाकारों में भी यह भाव उत्पन्न हुआ कि स्त्री चरित्रों के ऊपर भी जीवनी साहित्य लिखे जाएँ। कुछ भी हो किन्तु इन जीवनी साहित्यों से समाज में उन महान् स्त्रियों के माध्यम से नारी उत्थान में जागृति तो अवश्य फैली है इसका श्रेय भी दयानन्द पर लिखे जीवनी साहित्य को ही जाता है। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि इस काल में "महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र अधिक परिमाण में लिखा गया जिसका मुख्य कारण यह था कि इस युग में आर्य समाज द्वारा किये गये कार्य अपनी पराकाष्ठा पर थे।" इस कारण इस युग में देश विदेश की महान् महिलाओं से संबंधित जीवनियाँ भी पर्याप्त मात्रा में लिखी गईं।

गंगा प्रसाद गुप्त ने 'रानी भवानी' (1904), परमानन्द ने 'पतिव्रता स्त्रियों के जीवन चरित्र' (1904), हनुमन्त सिंह ने 'रमणीय रत्नमाला' (1907), पन्नालाल ने 'वीर पत्नी संयोगिता' (1912), यशोदादेवी ने 'आदर्श महिलाएँ' (1912), द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी ने 'ऐतिहासिक स्त्रियाँ' (1912), देवेन्द्र प्रसाद जैन ने 'विदुषी स्त्रियाँ–भाग 1,2 (1912), ललित प्रसाद शर्मा ने 'भारतीय विदुषी' (1912), रामजीलाल वर्मा ने 'भारत वर्ष की वीर माताएँ (1913), लालता प्रसाद वर्मा ने 'रानी दुर्गावती' (1914), सूर्य नारायण त्रिपाठी ने 'नूरजहाँ' (1917), रामानन्द द्विवेदी और दत्तात्रेय बलवंत पारस ने 'झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई' (1918) लिखकर द्विवेदी काल की स्त्रियों के प्रति सोच को सुदृढ़ किया। प्रसिद्ध महिलाओं के गुणों के कारण समाज में सामान्य स्त्री के आत्मबल का विकास हुआ और यही दयानन्द का कार्य था कि इस देश की स्त्रियाँ सुदृढ़ एवं शिक्षित

हों तथा पुरुषों के बराबर समान अधिकारी हों। जिसमें इन जीवनी ग्रंथों ने काफी हद तक मदद की। इतना ही नहीं स्त्री साहित्यकारों की भूमिका से भी इस युग को नकारा नहीं जा सकता।

इस युग में हिन्दी साहित्य में अपना स्थान रखने वाली बंग महिला के नाम से जाने जानी वाली राजेन्द्र बाला घोष की कहानी 'दुलई वाली' जो सन् 1907 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। वह हिन्दी साहित्य में प्रारंभिक दौर की कहानी के रूप में विख्यात है। 'दुलई वाली' कहानी में तत्कालीन स्त्रियों की दशा तथा कमजोर आत्मबल का भी उदाहरण देखने को मिलता है– जब ट्रेन के एक डिब्बे में बैठी स्त्री अपने पति के स्टेशन पर छूट जाने की आशंका में रोने लगती है। यहाँ शिक्षा एवं आत्मविश्वास का अभाव ही जानना चाहिए। राजेन्द्र बाला घोष ने 'स्त्रियों की शिक्षा', 'हमारे देश की स्त्रियों की दशा', 'जोधाबाई', 'गृहचर्या' आदि निबन्ध लिखे। बंग महिला का सम्पूर्ण साहित्य नागरी प्रचारिणी सभा काशी द्वारा पं. सुधाकर पाण्डेय के खोजपरक सम्पादन के रूप में 'बंग महिला ग्रन्थावली' शीर्षक से सन् 1989 में प्रकाशित किया गया। मूलतः बंगाली होते हुए भी हिन्दी साहित्य को अपने उपन्यासों एवं कथा संग्रहों से समृद्ध करने वाली द्विवेदी युगीन–प्रख्यात कहानी लेखिका उषादेवी मित्रा के 'वचन का मोल', 'प्रिया : 'नष्ट नीड़', 'जीवन की मुस्कान' व 'सोहमी' उपन्यास के अलावा आंधी के छन्द, महावर, नीम चमेली, मेघमल्लार, रागिनी, रात की रानी आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हुए।

द्विवेदी युग में ही एक ऐसे महापुरुष का अवतरण एवं कार्य क्षेत्र विकसित हुआ जिसने महिलाओं के जागरण एवं उनकी उन्नति के लिए भरसक सराहनीय प्रयास किये जो भुलाए नहीं भूले जा सकते। वह थे महात्मा गाँधी। उन्हें स्त्रियों की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्रों में मुक्ति की बड़ी चिन्ता थी। किन्तु महात्मा गाँधी ने जो स्त्री जागरण के कार्य किए वे सब स्वामी दयानन्द के स्त्री चिन्तन एवं उत्थान को आगे बढ़ाने का एक संकल्प था जिसे उन्होंने बड़े ही साहसपूर्ण ढंग से निडरता के साथ आगे बढ़ाया। उन्होंने स्वामी दयानन्द के प्रत्येक विषय–विधवा–विवाह, बाल–विवाह, स्त्री–शिक्षा, दहेज–प्रथा, भ्रूण–हत्या, लिंग–भेद एवं स्त्री समकक्षता के साथ उनके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सुधारों पर भी बड़ी तत्परता के साथ कार्य किया है। गाँधी जी के व्यक्तित्व पर दयानन्द का अत्यधिक प्रभाव था इसका प्रमाण हम देख सकते हैं।

महात्मा गाँधी ने स्वामी दयानन्द के बारे में एक स्थान पर लिखा है कि– "महर्षि दयानन्द के विषय में मेरा मन्तव्य यह है कि वह हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों, सुधारकों

श्रेष्ठ पुरुषों में से एक थे। उनका ब्रह्मचर्य, विचार–स्वतंत्रता, सर्व–प्रति प्रेम, कार्य–कुशलता आदि गुण लोगों को मुग्ध करते थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत ही पड़ा है। **मैं जैसे–जैसे प्रगति करता हूँ, वैसे–वैसे मुझे महर्षि जी का बताया मार्ग दिखाई देता है।** ब्रिटिश राज्य स्थापित होने के पश्चात् जनता के साथ सीधा सम्पर्क रखने का मार्ग महर्षि दयानन्द ने खोज निकाला इसका यश महर्षि दयानन्द एवं उनकी आर्य–समाज को प्राप्त है। महर्षि दयानन्द तथा उनकी आर्य समाज ने प्रजा में नव–चेतना को पैदा किया है। हिन्दू समाज की अनेक कुरीतियों को दूर करने का प्रयत्न किया है। राष्ट्रीय शिक्षण, स्त्री शिक्षण तथा दलितोद्धार आदि न भुलाई जा सके जैसी राष्ट्र की महान् सेवा की है। मुझे आर्य–समाज बहुत प्रिय है। महर्षि दयानन्द के इस पवित्र देशोपकारी कार्य का कभी–भी अपमान होगा तो मैं उसको महापाप समझूँगा।"[45]

इससे यह स्वतः सिद्ध है कि महात्मा गाँधी स्वामी दयानन्द से प्रभावित ही नहीं अपितु उनके अनुगामी भी थे जिन्होंने राष्ट्र एवं स्वयं की प्रगति का मार्ग दिखाने वाला स्व्यं दयानन्द को स्वीकार किया है। इससे बढ़कर और सच्चाई क्या हो सकती है। यह महान् व्यक्तियों और महापुरुषों की स्थिति होती है जो सच को सच के रूप में ही स्वीकार करते हैं जैसे दयानन्द अपने गुरु विरजानन्द से एक कदम आगे निकल गये थे उनके आदेश को अपना कार्य क्षेत्र चुनकर। उसी प्रकार गाँधी जी भी दयानन्द के सिद्धान्तों को अपना कार्य क्षेत्र चुनते हैं। निश्चय ही गाँधी जी अन्तरात्मा से दयानन्द के शिष्य थे, प्रकट में नहीं।

देखिए! महात्मा गाँधी ने एक सच्चे शिष्य की भाँति स्वामी दयानन्द का कितना अनुगमन किया है स्वामी दयानन्द ने अपने पूना प्रवास के दौरान इतिहास विषयक रविवार ता.25 जुलाई 1875 पेठ में भिड़े के बाड़े में रात्रि में आठ बजे के व्याख्यान में कहा था कि– "विवाह में परस्पर स्त्री–पुरुषों की यह प्रतिज्ञा होती है कि दोनों के मनोचित्त आदि एक होंगे और वे कभी एक दूसरे के विरुद्ध कोई काम न करेंगे। बचपन में विवाह होने से भला लड़का–लड़की इन बातों को क्या जान सकते हैं....इस अन्ध परम्परा को देखकर तो मानना पड़ता है कि इससे विधवा विवाह सब प्रकार अच्छा है....नियोग और पुनर्विवाह दोनों के बन्द होने से आजकल के आर्य लोगों में जो भ्रष्टाचार फैला हुआ है, वह आप लोग देख ही रहे हैं।"[46] इसी सत्य सिद्धान्त का महात्मा गाँधी ने अनुकरण करते हुए स्वामी दयानन्द के प्रति कृतज्ञता जताते हुए स्त्री सुधार कार्यक्रम को आगे बढ़या है और लोगों के प्रतिवाद का दंश पहले दयानन्द ने झेला अब महात्मा गाँधी झेल रहे थे। क्योंकि जो कार्य करेगा उसे ही तो प्रतिवाद का सामना करना पड़ेगा जो नहीं करेगा उसे क्या ? 52 वर्षों बाद भी गाँधी

जी ने इतना प्रतिवाद सहा, दयानन्द ने कितना सहा होगा ? इसका अनुमान हम लगा सकते हैं। बंगाल से एक विधवा बहन ने गाँधी जी को एक पत्र में लिखा था कि– "मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि आप बाल विधवाओं के पुनर्विवाह की स्वतंत्रता की हिमायत क्यों करते हैं, क्योंकि परम्परा से उनके लिए जिस प्रकार के संयमी जीवन का विधान है, उससे उन्हें वासनाओं के दमन में सहायता मिलती है और इसलिए वह उनके लिए आत्मोत्थानकारी है।"

इस महिला के पत्र की बातों का उल्लेख करते हुए गाँधी जी ने 21 दिसम्बर 1926 के 'नवजीवन' (गुजराती) में लिखा– "लेखिका बहन को यह पत्र शोभा देता है। पर इससे विधवा बहनों के प्रश्न का निपटारा नहीं हो सकता। जब बाल विधवा को 'धर्म' जैसी वस्तु का ज्ञान नहीं हो सकता तब 'विधवा धर्म' की हम बात भी कैसे कर सकते हैं ? धर्म के पालन में धर्म का ज्ञान नहीं है, असत्य के दोष का दोषी है ? नौ साल की बालिका यह नहीं जानती कि विवाह क्या वस्तु है, वह यह नहीं जानती कि 'वैधव्य' क्या चीज है ? उसके विषय में तो यही कहना होगा कि उसका विवाह ही नहीं हुआ। तब वह विधवा किस तरह मानी जा सकती है ? उसके विवाह की क्रिया तो माता–पिता ने की थी और उन्होंने ही मान लिया है कि वह विधवा हो गयी। इसलिए यदि वैधव्य का पुण्य किसी को मिलता हो तो कहना होगा कि वह उसके माता–पिता को ही मिलता है। पर क्या वे नौ साल की बालिका का बलिदान करके इस पुण्य के यशोभागी हो सकते हैं ? और यदि हो भी सकते हैं तो भी हमारे सामने इस बालिका का सवाल तो ज्यों का त्यों ही रह जाता है। मान लें कि अब वह बीस बरस की हो गयी। ज्यों–ज्यों वह समझदार होती गयी, उसने–अपने आस–पास की परिस्थितियों से यह जाना कि वह विधवा मानी जाती है पर इस धर्म को तो वह नहीं समझती। यह भी हम मान लें कि बीस वर्ष की अवस्था को पहुँचते–पहुँचते धीरे–धीरे उसमें स्वाभाविक विकार पैदा हो गये और बढ़े भी। अब उस बाला को क्या करना चाहिए ? वह अपने माता–पिता के सम्मुख तो अपने मनोभावों को प्रकट कर नहीं सकती, क्योंकि उन्होंने यह संकल्प कर लिया है कि उनकी युवती लड़की विधवा है और उन्हें अब उसका विवाह नहीं करना है। यह तो एक कल्पित दृष्टान्त है। पर भारत में ऐसी विधवाएँ एक नहीं हजारों हैं। हम यह तो देख ही चुके हैं कि उन्हें वैधव्य का कोई पुण्य–फल नहीं मिलता। ये युवतियाँ अपने विकारों को तृप्त करने के लिए अनेक पापों में फँसती हैं। इसके लिए कौन जिम्मेवार है ? मेरे ख्याल से उनके माता–पिता तो अवश्य ही उनके इन पापों में हिस्सेदार होते हैं। पर इससे हिन्दू–धर्म कलंकित होता है, दिन–प्रतिदिन क्षीण होता जाता

है और धर्म के नाम पर अनीति बढ़ती जाती है। इसलिए यद्यपि इन बहन जैसे ही विचार पहले स्वयं मेरे भी थे, पर अब विशेष अनुभव से, मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ कि जो बाल विधवाएँ युवावस्था को प्राप्त करने पर पुनर्विवाह करने की इच्छा करें, उन्हें उसके लिए पूरी स्वतन्त्रता और प्रेरणा भी मिलनी चाहिए। इतना ही नहीं, बल्कि माता–पिताओं को उचित रीति से इन बालाओं का विवाह कर देना चाहिए। इस समय तो पुण्य के नाम पर पाप का प्रचार हो रहा है।"[47] यह एक छोटा सा प्रमाण एवं उदाहरण है महात्मा गाँधी के जीवन एवं कार्यों में दयानन्द के सिद्धान्तों एवं कार्यों के अनेकानेक उदाहरण एवं प्रमाण मिलते हैं जिन्हें सम्पूर्ण को यहाँ प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। **गाँधी जी के आन्दोलनों का प्रभाव हिन्दी साहित्य के इस काल पर एवं उत्तर कालों पर अधिक पड़ा है किन्तु यहाँ शोध का विषय है कि गाँधी जी पर किसका प्रभाव पड़ा। जिस प्रकार भारतेन्दु ने स्वामी दयानन्द के राष्ट्र जागरण के सम्पूर्ण विषयों पर अपनी कलम चलाई तथा कुछ अपने विवेक का भी प्रयोग कर नई दिशा साहित्य को प्रदान की उसी प्रकार गाँधी जी ने भी दयानन्द के संपूर्ण राष्ट्र जागरण के विषयों को अपना कार्य क्षेत्र बनाया। भारतेन्दु एवं गाँधी जी में महान् अन्तर है भारतेन्दु ने कभी प्रकट न होने दिया कि राष्ट्र जागरण के विषय दयानन्द से प्रभावित हैं, किन्तु गाँधी जी एक सत्यनिष्ठ व्यक्ति हैं उन्होंने बड़े ही स्वाभिमान के साथ प्रकट किया कि दयानन्द उनके प्रेरणा श्रोत हैं। यह गाँधी जी का एक महान् चारित्रिक गुण कहा जा सकता है।**

उस समय ब्रिटेन में स्त्रियों को व्यस्क मताधिकार नहीं था अर्थात् राजनीतिक क्षेत्रों में लैंगिक आधार पर विभेद मौजूद था ब्रिटेन में राजनीतिक अधिकारों के लिए महिलाओं द्वारा चलाये जा रहे आन्दोलनों पर भी गाँधी जी की नजर थी। इस आन्दोलन से जुड़ी महिलाओं के साहस और दृढ़ता से गाँधी जी काफी प्रभावित थे इसलिए वे 'इंडियन ओपिनियन' में इस आन्दोलन के पक्ष में लिखकर जहाँ आन्दोलनकारियों को नैतिक समर्थन प्रदान कर रहे थे वहीं भारतीयों में स्त्री जागरण को भी इससे प्रेरणा लेकर अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने की मंशा रखते थे।

आगे विस्तार में न जाते हुए यहाँ लेखक का यह सिद्ध करना पर्याप्त है कि हिन्दी साहित्य में आगे भी गाँधी जी के प्रभाव से प्रभावित होकर अपार साहित्यिक वृद्धि हुई है जिसे हिन्दी साहित्य के पाठक हिन्दी में गाँधी जी के प्रभाव से अनभिज्ञ नहीं हैं। वह सम्पूर्ण प्रभाव उपरोक्त गाँधी जी के वक्तव्यानुसार दयानन्द से ही प्रारंभ हुआ था जिसका विस्तार गाँधी जी ने अपनी योग्यता से किया। दयानन्द के सिद्धान्त गाँधी जी ने अपने भीतर उतारे

और उनके कार्य क्षेत्र को बढ़ाया जिससे गाँधी से प्रभावित होकर आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य में स्त्री जागरण या स्त्री विमर्श को आगे बढ़ाया जो दयानन्द के स्त्री चिन्तन की परिणति थी। इस प्रकार सम्पूर्ण द्विवेदी काल दयानन्द से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित रहा।

5.3 छायावाद

सन् 1918 या 1920 से छायावाद का आरम्भ होता है तथा 1935 या 1936 के आसपास तक चलता है इस युग में साहित्य लेखन की प्रवृत्ति में बदलाव आने लगा था इस काल में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्त्री चिन्तन का हिन्दी साहित्य में असर बरकरार था वस्तुतः स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जो बीज 1857 की क्रान्ति से पहले एवं क्रान्ति में एवं क्रान्ति के पश्चात् बोये थे वे पूर्ण विकसित द्विवेदी काल में हुए थे तथा छायावाद, छायावादोत्तर काल एवं आज तक जो उनका प्रभाव हिन्दी साहित्य में दिखाई देता है और आगे भी देगा उसका मुख्य कारण यह है कि दयानन्द की मृत्यु नहीं हुई थी, उन्हें विष देकर मारा गया था। किन्तु उन्हें यह पता था कि मृत्यु के बाद भी किस प्रकार समाज, राष्ट्र एवं भाषा जागरण का कार्य करना है इसलिए वे आज भी वैचारिक दृष्टि से आर्य–समाज के रूप में तथा वैदिक गुरुकुलों के रूप में जीवित हैं और जो पेड़ द्विवेदी युग में हिन्दी साहित्य में विशाल हुआ स्वाभाविक है कि उसके फल हर काल में मिलते रहेंगे। हाँ यह बात अलग है कि कुछ फल वैसे ही होंगे और कुछ फल वर्णसंकर या कुछ पूरे गुणों से युक्त न होंगे लेकिन उनका कुछ असर तो दिखाई देगा ही ऐसा ही हिन्दी साहित्य में भी है कुछ साहित्यकार पूर्ण रूप से स्वामी दयानन्द से प्रभावित हैं जिनकी रचनाओं में उनका पूरा प्रभाव है लेकिन कुछ रचनाओं में मिश्रित प्रभाव दयानन्द का देखा जा सकता है। छायावाद के मुख्य स्तम्भ के रूप में प्रसाद, निराला और पंत का नाम लिया जा सकता है इसमें भी जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी की रचनाओं पर दयानन्द का स्पष्ट प्रभाव लक्षित है इनके अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाओं पर कुछ मिश्रित प्रभाव दयानन्द का है। बस अन्तर इतना है कि काल एवं विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार विचार और साहित्य में परिवर्तन एवं नवीनता आती गई लेकिन उसकी मूल प्रेरणा वही है। अब स्त्री के प्रति अत्याचारों दुःखों के प्रति साहित्य न के बराबर था किन्तु उसका विकास हुआ उसकी स्वाधीनता की बात होने लगी। उसकी विद्वता एवं साहसिक कार्यों की ओर साहित्य लिखा जाने लगा।

जयशंकर प्रसाद ने छायावाद को सौन्दर्य की शाश्वत विवृत्ति के रूप में मानते हुए विचारों के मूल में विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त एवं कल्पना प्रवणता के साथ प्राचीन समर्थ प्रतीकों का पुनर्जागरण एवं निर्माण किया है। उनका विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त वेद तथा दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश में मनु की सामाजिक व्यवस्था के नियम थे। जिसमें उन्होंने स्वानुभूति व प्रकृति सुन्दरी का स्वतंत्र चित्रण के साथ युगानुरूप वेदना को भी मिश्रित किया है। कामायनी में प्रसाद का प्रधान कथ्य दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक व्यापार ही था। ऐतिहासिक कथा तो आवरण मात्र ही थी। इससे उसकी गौणता ही सिद्ध होती है कवि ने मनु का अर्थ मनन, श्रद्धा का हृदय और इड़ा का मस्तिष्क किया है। इससे सांकेतिक अर्थों की पुष्टि होती है महर्षि दयानन्द ने मनु का अर्थ विवेक से किया है।

यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास होता है तो इसमें गलत क्या है। श्रद्धा या विश्वास एकांगी कल्याणकारक नहीं हो सकता जब तक मनन, चिन्तन एवं विवेक का सहारा न लिया जाये। जयशंकर प्रसाद की श्रद्धा महाकाव्य की नायिका है। जो भाव दयानन्द एक स्त्री में देखना चाहते हैं प्रसाद ने उन्हीं गुणों से युक्त आज की नारी पर संकेत करते हुए उसे करूणा, प्रेम, सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति बनाया है। कवि ने उसे नारी समाज की समर्पण भावना से युक्त बनाया है। प्रलय काल में शेष रही एकाकिनी वह इधर–उधर भटक रही है। यहाँ तत्कालीन स्त्री की दशा को चित्रित किया है कि उसकी दशा समाज में अच्छी नहीं थी वह भटकने के समान ही थी। उसे दयानन्द की तरह गृहस्थों को यज्ञों की प्रधानता से ज्ञान कराया और वह यज्ञ का ज्ञान प्राप्त करती है मनु से भेंट होने के बाद वह आज की जाग्रत नारी की भाँति मनु की निराशा और अकर्मण्यता दूर कर वह उसे पुनः कर्म क्षेत्र की ओर प्रवृत्त करती है। स्त्री इड़ा से ईर्ष्या नहीं करती है। इस प्रकार प्रसाद ने नारी को उच्च मानोभावों से सुदृढ़ किया है।

प्रसाद जी का युग नारी जागरण के शंखनाद का युग था। इस युग में एक ओर जहाँ नारी को युग की सहृदयता प्राप्त होती है, वहीं दूसरी ओर वह स्वयं भी अपने अधिकारों के लिए प्रयत्नशील दीख पढ़ती है। वह एक बार पुनः अपनी वैदिक व्यवस्था को प्राप्त करना चाहती है। वह स्वामी दयानन्द के वक्तव्यों के समान पुरुष समकक्षता प्राप्त करना चाहती है। यही कारण है कि प्रसाद जी की कामायनी की श्रद्धा और इड़ा मनु रूपी पुरुष की क्रीत दासी न होकर, सहायक के रूप में आती है। अहमवादी पुरुष जब पुरुषत्व मोह में नारी सत्ता को भूल जाता है तो उसे पग–पग पर जीवन में ठोकरें खानी पड़ती हैं। इन ठोकरों से बचने के लिए भी उसे नारी का ही दामन थामना पड़ता है और वही उसे सत् चित, आनन्द

तक ले जाती है इस प्रकार प्रसाद के अनुसार जीवन में समरसता तभी बनी रह सकती है जबकि नारी पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चले। नारी को छल और माया कहने वाले निवृत्ति मार्गियों पर भी प्रसाद व्यंग्य करते हैं और नारी को 'माया ममता का बल', 'शक्तिमती शीतल छाया', 'सुहाग की अजस्र वर्षा', 'स्नेह की मधु रजनी' और 'जीवन की चिर अतृप्ति को संतोष प्रदान करने वाली' बताते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि युग की उदात्त विचार धाराओं से प्रभावित होकर जो स्वामी दयानन्द ने नारी की भूमिका स्थापित की थी, उसे ही प्रसाद ने नारी की समभाव से प्रतिष्ठा की है। वे नारी को हीन न मानकर 'तप पूत स्वरूपिणी', 'सर्वमंगला' और 'पुरुष का कल्याण करने वाली शक्ति' मानते हैं यज्ञ वेदी, हवन आदि कामायनी में यह सिद्ध करते हैं कि उस समय इन सबका प्रचार आर्य–समाज सम्पूर्ण भारत में कर रहा था और वही प्रभाव कामायनी में भी देखने को मिलते हैं इड़ा, श्रद्धा एवं मनु के माध्यम से प्रसाद ने एक सुव्यवस्थित समाज जिसमें छल कपट न हो तथा स्त्री पुनः वैदिक सम्मान प्राप्त करे ऐसी इच्छा प्रकट की है।

जिस तरह विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द सरस्वती या राजाराम मोहन राय ने नवजागरण के लिए भारतीय प्राचीन ग्रन्थों को ही मूलभूत आधार बनाया, वैसा ही प्रयास करते हुए लिखते हैं– "हमारे आचार और धर्मशास्त्र की व्यावहारिकता की परंपरा विच्छिन्न सी है। जितने सुधार या समाजशास्त्र के परीक्षात्मक प्रयोग देखे या सुने जाते हैं, उन्हें अचिंतित और नवीन समझकर बहुत शीघ्र अभारतीय कह देते हैं।' इस तरह प्रसाद ने भी स्त्री के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए ही ध्रुवस्वामिनी का पुनर्विवाह चंद्रगुप्त के साथ सम्पन्न कराया है। वे स्त्री की इच्छा और चुनाव का आदर करते हैं।"[48] इतना तो है ही पर जो पति क्लीव हो नपुंसक हो विदेश गया हो तथा पत्नी के साथ मनुष्योचित व्यवहार नहीं करता हो उसे छोड़कर वह अन्य व्यक्ति को चुन सकती है किन्तु यहाँ तो और भी भयानक स्थिति से ध्रुवस्वामिनी गुजरती है उसका पति रामगुप्त केवल उसे शत्रु पक्ष को इसलिए देना चाहता है कि उसके बदले उसे राजा बने रहना है। वह केवल उसके साथ वस्तु जैसा व्यवहार करता है स्त्री जैसा नहीं। इतने बड़े अत्याचार पर तो उसे पुनर्विवाह करना ही चाहिए। देखिए! यहाँ स्वामी दयानन्द का कितना प्रभाव लक्षित होता नजर आता है। "ईश्वर के समीप स्त्री–पुरुष दोनों बराबर है; क्योंकि वह न्यायकारी है, उसमें पक्षपात का लेश नहीं है। जब पुरुषों को पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी जावे तो स्त्रियों को दूसरे विवाह से क्यों रोका जावे।"[49] छायावाद के कवियों पर भी स्वामी दयानन्द के स्त्री चिन्तन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। लेकिन यहाँ एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। यदि

साहित्यकार दयानन्द का प्रत्यक्ष शिष्य है अथवा वह आर्य समाज का सदस्य है। अथवा वह केवल दयानन्द से प्रभावित है तब भी प्रभाव पड़ेगा। किन्तु हमें यह देखना है कि वह अश्लील साहित्य रचना तो नहीं कर रहा है। वह मार्यादित है और मध्य युग जैसा बिगड़ाव साहित्य में नहीं ला रहा है तब भी इसे दयानन्द का प्रभाव ही माना जायेगा। क्योंकि स्त्रियों के प्रति साहित्यकारों का जो वासनापूर्ण लेखन था उससे स्वामी दयानन्द के क्रान्तिकारी एवं नवजागरण के विचारों से ही पीछा छूटा था। यदि साहित्यकार छायावाद तक आते–आते अपनी रचना में रहस्यवाद डालता है हालावाद डालता है तथा वह प्रकृति से प्रेम करता है तो उसमें उसका कोई दोष नहीं है समय एवं काल तथा युग की स्थिति के अनुसार परिवर्तन तो होगा ही एक ही विचार बाल–विवाह, विधवा–विवाह तथा उनके प्रति अत्याचारों के प्रति ही तो ध्यान थोड़े ही देगा। अब स्त्री शिक्षित भी हो चुकी है युग भी बदल गया है और इससे बड़ी बात यह है कि यदि दयानन्द का शिष्य भी है लिखने वाला, तो उसके भीतर भी एक लेखक का हृदय, कवि हृदय, साहित्यकार हृदय तो है ही, यदि वह मर्यादा नहीं त्यागता और विभिन्न पहलुओं को अपने साहित्य में रखता है तो भी दयानन्द का प्रभाव उस पर है। उसमें प्रेम की भावना है तो कोई अनुचित कार्य तो नहीं, वह प्रेम कर सकता है। प्रेम किसी से भी किया जा सकता है। वह प्रकृति से प्रेम करेगा तब भी, वह पशुओं से प्रेम करेगा तब भी तथा वह मानवीय प्रेम करेगा तब भी और ईश्वर से प्रेम का रहस्य यदि उसके साहित्य से, रचना से छिपकर सामने आता है तब भी दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव उसके ऊपर देखने को मिलेगा। रेल की पटरी भले ही दिल्ली से चलकर मुम्बई तक या इससे भी दूर कहीं जाये वह रेल की पटरी ही है उस पर जो समानान्तर होने का प्रभाव पड़ रहा है उससे इंकार नहीं किया जा सकता उसी प्रकार जो समानान्तरता स्त्री जागरण की दयानन्द ने 1857 के बाद से स्थापित की है वह चाहे किसी भी काल में क्यों न चली जाये उस पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा जैसे उस पटरी पर किसी भी तरह की लोहपथ गामिनी चले चाहे वह मालगाड़ी हो चाहे सवारी गाड़ी या खाली इंजिन ही क्यों न हो पटरी की समानान्तरता एक बार बन चुकी है रेल का पटरी पर दौड़ना उस पटरी की समानन्तरता पर निर्भर कर रहा है जिसे एक बार स्थापित कर दिया गया। उसी प्रकार आज साहित्य में युग के अनुसार किसी प्रकार का परिवर्तन आ सकता है परन्तु प्रभाव वही है जो एक बार स्वामी दयानन्द ने स्थापित किया है। वह कभी समाप्त होने वाला नहीं है।

रही बात प्रेम की वह ईश्वर की ओर जा रहा हो, वह प्रकृति की ओर जा रहा हो वह किसी जीव की ओर जा रहा हो उसे कुरेद कर निकालना है तो वह स्वामी दयानन्द के

ईश्वर, जीव, प्रकृति के त्रेतवाद के सिद्धान्त की परिधि में ही सिमट जायेगा, किन्तु वह मध्यकाल की भाँति विकृत नहीं होने पायेगा और यदि वह विकृत है वहाँ उसे दयानन्द के सिद्धान्त के प्रभाव से बाहर ही रखा जाना उचित है क्योंकि यह दयानन्द के सिद्धान्त के साथ मेल नहीं खाता है। अश्लीलता, संयमहीनता एवं मर्यादा का उल्लंघन होने पर वह दयानन्द के प्रभाव से वैसे ही अलग सिद्ध होता है।

भारतेन्दु युग में प्रत्यक्ष दयानन्द मौजूद थे तथा द्विवेदी युग में उनकी संस्था आर्य समाज द्वारा जो दयानन्द के तैयार किये हुए लोग थे उन्होंने जो साहित्यिक रचनाएँ की उसमें अक्षर सह दयानन्द की भाषा शैली मौजूद थी किन्तु युग एवं समाज के परिवर्तन से तथा प्रकारान्तर से संबंधित महापुरुषों को लोग विस्मृत कर बैठते हैं, फिर भी परिवर्तन सृष्टि का नियम है उसके अनुसार भाषा शैली तथा विचारों में बुद्धि तत्व निरन्तर आगे बढ़ता जाता है। इस कारण से भी साहित्य पर दयानन्द के विचारों का प्रभाव ढूँढने में कठिनाई हो सकती है। किन्तु यहाँ इसकी एक ही बात में सिद्धता है कि जहाँ–जहाँ संयम का अतिक्रमण नहीं हुआ है वहाँ–वहाँ स्त्रियों के प्रति जो भाव साहित्यकारों ने प्रकट किए हैं वे सब दयानन्द के स्त्री चिन्तन से अवश्य प्रभावित हैं।

देखिए कामायनी जैसा महाकाव्य जिसके नाम से छायावाद जाना जाता है उसमें स्त्री के प्रति कितने सुन्दर और उच्च विचार प्रकट किये गये हैं जिसमें स्त्री को श्रद्धा से युक्त तथा बुद्धि से युक्त बताना क्या दयानन्द का प्रभाव नहीं है, वे भी तो स्त्री के प्रति समाज की श्रद्धा तथा उसे विद्वान् बनना देखना चाहते थे–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास–रजत नग पदतल में,
पीयूष स्त्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।"[50]

कवि जयशंकर प्रसाद नारी के प्रति कितने सम्मान जनक शब्दों को मनु यानी मनुष्य के माध्यम से कहलाते हैं नारी के गुणों एवं उसकी विशालता का यहाँ वर्णन है–

"तुम देवि! आह कितनी उदार, यह मातृमूर्ति है निर्विकार,
हे सर्वमंगले! तुम महती, सबका दुःख अपने पर सहती,
कल्याण मयी वाणी कहती, तुम क्षमा निलय में हो रहती
मैं भूला हूँ तुम को निहार, नारी सा ही, वह लघु विचार।"[51]

जयशंकर प्रसाद की कामायनी पर तत्कालीन आर्यसमाज के द्वारा वेदों के प्रचार–प्रसार का भी प्रभाव अत्यधिक प्रतीत होता है उन्होंने कई स्थलों पर यज्ञ वेदी की तथा अग्निहोत्र

की चर्चा की है जो दयानन्द के अतिरिक्त अग्निहोत्र पर तब किसी ने भी अधिक जोर नहीं दिया था। **"अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ कहीं पर रख आते थे,**
होगा इससे तृप्त अपरिचित समझ सहज सुख पाते थे।"[52]

दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य–समाज के नवें नियम में लिखा है कि– "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।" इसी नियम को जयशंकर प्रसाद कामायनी की श्रद्धा के माध्यम से मनु अर्थात् मनुष्य, सम्पूर्ण मनुष्यों में यह संदेश पहुँचाना चाहते हैं–

"अपने में भर सब कुछ कैसे व्यक्ति विकास करेगा,
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु–हँसो ओर सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ।"[53]

नारी उत्थान के दयानन्द के प्रयासों को प्रसाद अपने नाटकों में भी समाहित करते हैं ध्रुवस्वामिनी के अतिरिक्त प्रसाद ने चन्द्रगुप्त में भी व्यापक भारतीय दृष्टि को उजागर किया है। "चन्द्रगुप्त नाटक प्रसाद का वह प्रथम राष्ट्रीय नाटक है जिसमें नारी को प्रेरक शक्ति के रूप में चित्रित किया है। इसमें जीवन संग्राम के लिए नारी के प्रेम और बलिदान दोनों की महत्ता स्वीकार कराई है। वीर नारी अलका हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती की ध्वनि का उद्घोष करती हुई, सर्वत्र क्रान्ति ज्वाला धधका देती है। इस प्रकार इस नाटक का घटना चक्र नारी के इंगित अथवा मूक इच्छा पर अविलम्बित है। इस व्यापक नारी भावना में ही प्रसाद की भारतीय दृष्टि अभिव्यक्त हुई है। अतीत की घटनाओं में ही वर्तमान की समस्याओं का हल ढूँढ़ निकालने की दृष्टि से यह नाटक अद्वितीय है।"[54] इस प्रकार प्रसाद का सम्पूर्ण साहित्य स्वामी दयानन्द के स्त्री चिन्तन के प्रभाव से प्रभावित है।

निराला स्वामी दयानन्द से अत्यन्त प्रभावित थे महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के शब्दों में हम इसे देख सकते हैं– "उन्नीसवीं सदी का परार्द्ध भारत के इतिहास का अपर स्वर्ण प्रभात है कई पावन–चरित्र महापुरुष अलग–अलग उत्तरदायित्व लेकर, इस समय इस पुण्य भूमि में अवतीर्ण होते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती भी इन्हीं में एक महाप्रतिभा मण्डित महापुरुष हैं।...महर्षि दयानन्द जी से बढ़कर भी मनुष्य होता है, इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता।...राष्ट्र भाषा हिन्दी के भी स्वामी जी एक प्रवर्तक हैं और आर्यसमाज के प्रचार की तो यह भाषा ही रही है।...आपका ही प्रवर्त्तन आर्यावर्त्त के अधिकांश भागों में,

महिलाओं के अध्यापन के सम्बन्ध में प्रचलित है। यहाँ स्त्री–शिक्षा–विस्तार का अधिकांश श्रेय आर्य समाज को दिया जा सकता है। यहाँ की शिक्षा की एक विशेषता भी है। महिलाएँ यहाँ जितने अंशों में देशी सभ्यता की ज्योति–स्वरूपा होकर निकलती हैं, उतने अंशों में दूसरी जगह नहीं। संस्कृति के भीतर से स्त्री के रूप में प्राचीन संस्कृति को ही स्वामी जी ने सामने खड़ा कर दिया है।"[55] यहाँ निराला जी ने कितनी महत्त्वपूर्ण बात कही है स्त्रियों के बारे में। स्वामी जी ने स्त्रियों के रूप में प्राचीन भारतीय संस्कृति को ही सामने खड़ा कर दिया। अर्थात् दयानन्द ने जो कार्य स्त्रियों के लिए किये शायद ही किसी महापुरुष ने किए हों और इन्हीं कार्यों के प्रभाव सम्पूर्ण आधुनिक हिन्दी साहित्य पर स्त्री संबंधी रचनाओं में पाये जाते हैं।

छायावाद में निराला की राम की शक्ति पूजा अत्यधिक सशक्त रचना कही जा सकती है। "'राम की शक्ति पूजा' निराला की ही नहीं, सम्पूर्ण छायावादी काव्य की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है।"[56]

यहाँ निराला ने राम नहीं सामान्य मानव में भी पुनःआत्म विश्वास एवं शक्ति जाग्रत हो, वह देवी की विकरालता एवं भयंकतरता से स्वयं भी शक्ति ग्रहण कर विजय प्राप्त करे। विजय किस पर ? इसका दूसरा अर्थ यह निकलता है कि जिस समय निराला ने राम की शक्ति पूजा की रचना की उस समय भारत अंग्रेजों का गुलाम था तथा गुलामी में स्त्रियों की दुर्दशा वही थी जैसी रावण के समय सीता आदि की और राम जब युद्ध को हारने लगते हैं तो पुनः उन्हें अपने आत्मबल को जाग्रत करने के लिए काल्पनिक शक्ति का आह्वान करवाना तथा पुनः शक्ति सम्पन बनना इस ओर का द्योतक है कि जैसे 1857 में देश में क्रान्ति पूर्णमनोयोग से नहीं लड़ी थी और हार का सामना हुआ, वैसे अब नहीं होना चाहिए। अब राम रूपी भारतीय ने शक्ति का संधान कर लिया है वह विजय प्राप्त करेगा और स्त्रियों को गुलामी से आजाद कराकर नये अधिकारों से सम्पन्न कर उसे स्वाधीनता का मार्ग दिखाने में सक्षम होगा।

निराला के युग में भारतीय समाज की संरचना का सारतत्व यह था कि उन्नीसवीं सदी के अन्त में भारत दो तरह की मार झेल रहा था प्रथम औद्योगिक पूँजीपति और उनके तहत काम करने वाला मजदूर। दूसरा देश पर राज्य करने वाले ब्रिटिश पूँजीपति पूरे भारतीय समाज का शोषण कर रहे थे, इसलिए भारतीय समाज का टकराव ब्रिटिश पूँजीपति वर्ग और उनकी राजसत्ता से भीतर ही भीतर चल रहा था निराला के समय में भारतीय

समाज और ब्रिटिश साम्राज्य रावण का साम्राज्य था और पूँजीपति उसकी सेना ने राम की सीता जनता को अपने अधीन कर रखा था। यह निराला के अपने दुःखों की कविता न थी। जो व्यक्ति दयानन्द जैसे युगद्रष्टा से प्रभावित हो और वह दुःख एवं व्यथा का अनुभव करे, यह किसी प्रकार संभव न था। उनके भीतर इस राष्ट्र की पराधीनता तथा स्त्रियों की कैद का दुःख अवश्य था जिसमें सीता जैसी उच्च मनोबल वाली स्त्रियाँ भी एक कैदी की भाँति नजर आ रही थीं वे आजाद न थी उन स्त्रियों की आजादी के लिए ही निराला ने तत्कालीन मनुष्य को राम बना दिया और शक्ति का आह्वान करने का संदेश देकर राम को शक्ति की पूजा की अनिवार्यता दिखलाई। राम की शक्ति पूजा का संवेदनात्मक उद्देश्य देश, काल एवं समाज संदर्भ में भी खोजा जा सकता है और उस प्रक्रिया में उसका नया आलोचनात्मक विमर्श तैयार होता है। रचना का अभिधात्मक पाठ यह बताता है कि राम और रावण के बीच एक समर चल रहा है इस समर में राम को लगता है– "मित्रवर, विजय होगी न समर"। इसकी वजह क्या है ? इसकी वजह यह है कि शक्ति संतुलन रावण के पक्ष में है– 'अन्याय जिधर है उधर शक्ति' कविता यह भी संकेत देती है कि यह समर किसके लिए लड़ा जा रहा है, 'जानकी! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका!' यह लड़ाई प्रिया की मुक्ति की लड़ाई है। इस लड़ाई में विजय तब तक संभव नहीं जब तक शक्ति संतुलन रावण के पक्ष में है। अन्याय को तब तक परास्त नहीं किया जा सकता जब तक शक्ति संतुलन न्याय के पक्ष में न हो जाये। यह सामरिक रणनीति का सार्वभौम सत्य है। यह कविता अपने देश और काल के संदर्भ में भारत की मुक्ति की लड़ाई से जुड़ जाती है क्योंकि इसमें जिस व्यक्ति की प्रतीकात्मक पूजा है वह अपने स्वरूप में भारत माता की छवि है असल में वह प्रतीकात्मक रूप में भारत की जनशक्ति है जिसे न्याय के पक्ष में होना है। सम्पूर्ण भारत की जनशक्ति यदि ब्रिटिश साम्राज्य रूपी रावण के विरुद्ध खड़ी हो जाती है, तो उसी क्षण विजय की आशा बलवती हो जाती है और जो सदियों से गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई भारतीय स्त्री है जिसके लिए आज तक उस ब्रिटिश सत्तारूपी रावण ने किसी भी प्रकार से सर्वसुलभ शिक्षा एवं उन्नति का कोई मार्ग प्रशस्त नहीं किया वह जानकी का उद्धार है। इस प्रकार राम की शक्तिपूजा भारतभूमि एवं नारी मुक्ति की लड़ाई है जिसमें जनशक्ति की अहम भूमिका है यही छायावाद कृति राम की शक्ति पूजा का रहस्यवाद भी है।

यह कविता यहाँ पर भारतीय जनमानस के मूर्तिपूजा के पाखण्ड एवं किसी अवतारी ईश्वर की स्थापना की मिथ्या चेतना को तोड़ती है कि देवता हमें गुलामी से मुक्ति दिलाता है, संभवामि युगे–युगे का उद्घोष ईश्वर अर्थ में एक झूँठ है, सच्चाई यह है कि

शोषित जन ? शक्ति ही संघठित होकर अन्याय पर खड़े शासन से मुक्ति दिलाती है इसका इतिहास गवाह है शक्ति के संतुलन की यहाँ आवश्यकता है शक्ति की सम्पूर्ण व्यवस्था न्याय के पक्ष में होगी तो ही मुक्ति मिल सकती है। हमारी आजादी की लड़ाई में भी यही प्रक्रिया सामने आई 1857 की क्रान्ति विफल होने का कारण यही था कि सारी शक्ति अर्थात् पूरे भारतवासी अविवेक का चश्मा पहने हुये थे और उन मुट्ठी भर अंग्रेजों के सामने सैनिक बनकर भारत के लोगों को गोली से उड़ाते रहते थे। लेकिन वैसी गलती पुनः न हो इसलिए निराला ने राम की शक्तिपूजा का अवतरण किया जिसमें उन्होंने दयानन्द का यह वाक्य याद रखा कि माता–पिता के समान विदेशी राज्य कितना ही सुखद क्यों न हो वह भी स्वराज्य के सामने फीका है। इस कारण जनशक्ति की आवश्यकता महसूस की। किन्तु यहाँ पर ध्यान देने योग्य महत्त्वपूर्ण बात यही भी है कि ब्रिटिश रावण पर विजय पाना ही राम भारत का लक्ष्य न था उसे कितने ही समय से कैद सीता भारतीय नारी को मुक्त कराने के लिए ही तो युद्ध किया था किन्तु यहाँ दोनों कार्य एक साथ सिद्ध हो जाते हैं कि रावण भी मारा जाता है और सीता नारी को भी मुक्त कर नई आकांक्षा प्राप्त कराने की भी उत्तेजना है और ये दोनों काम बिना जनशक्ति इकट्ठी किए कदापि पूर्ण नहीं किए जा सकते। पुरुषों की स्वाधीनता और स्त्रियों की मुक्ति दोनों आमजन की शक्ति एवं सोच पर निर्भर करती है।

वस्तुतः जो छायावादी प्रकृति प्रेम है वह परावर्तित प्रेम है जो दिखाई प्रेम देता है किन्तु इसका रिफ्लेक्शन जिधर भी मन चला जाता उधर घूम जाता है। यह प्रकृति प्रेम अतृप्त इच्छा भी हो सकता है और मन की शान्ति के लिए कल्पना या भीतर की तृप्ति का सूत्र भी, अथवा ईश्वर, जीव, प्रकृति के बीच में तादात्म्य बिठाने का एक साधन भी। इस प्रकार की प्रवृत्ति महादेवी एवं पंत में मिलती है।

सुमित्रानन्दन पन्त ने प्राकृतिक सौन्दर्य में भले ही नारी के रूप की कल्पना की हे परन्तु यह भी सच है कि वह लगभग दयानन्द के प्रभाव से तो परिचित थे ही क्योंकि यही कारण रहा है कि उनके काव्य में मध्य युग जैसी मर्यादाहीनता का आभास कहीं नहीं होता। "नारी को स्वतंत्र विषय के रूप में लेते हुए पंत ने उसकी ऐतिहासिक अवस्थाओं पर ही दृष्टिपात नहीं किया है बल्कि उसकी सामाजिक मर्यादा और गरिमा का उल्लेख भी किया है। नारी का गौरव गान 'देवी', 'माँ', 'सहचरि', 'प्राण' आदि शब्दों के माध्यम से करते हुए उन्होंने नारी के प्रति सम्पूर्ण सांस्कृतिक चेतना का प्रत्यय दिया है। नारी की आधुनिक स्थिति और प्रकृति का उल्लेख यत्र–तत्र उन्होंने आलोचनात्मक ढंग से भी किया है किन्तु सामान्यतः वह सर्वथा सामान्य और गरिमामयी है। इसीलिए वे उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व की

आकांशा करते हैं, 'मुक्त करो नारी को मानव' इसी के साथ प्रणय और वासना का भाव भी सम्बद्ध है किन्तु वह 'योनिमात्र' न रह जाए, इसके लिए वे सचेष्ट हैं क्योंकि स्वर्ग नारी के हृदय में ही है। इसलिए वे उसके व्यक्तित्व स्थापना के आग्रही हैं।"[57]

महादेवी वर्मा एवं पन्त ने छायावाद में जो प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है वह मानव के आंतरिक सौन्दर्य का भी उद्घाटन करता है छायावादी कवियों ने प्रकृति को अनेक रूपों में अपनी अन्तरात्मा को खोजा है। इसमें से पंत जैसे कवियों ने प्रकृति को सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में भी देखा है–

उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही, माँ
वह अपनी वय वाली में

प्रसाद में हमें प्राकृतिक पदार्थों के मानवीयकरण के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं जैसे कामायनी में उषा का चित्रण। लहर में एक कविता से वे उषा को अम्बर के पनघट में तारों के घट को डुबोती हुई नागरी रूप सी के रूप में देखते हैं–

बीती विभावरी, जाग री।
अम्बर पनघट में डुबो रही
तारा घट उषा नागरी।

निराला ने अपनी 'संध्या सुन्दरी' कविता में संध्या को मेघमय आकाश से उतरती हुई परी के रूप में देखा है–

दिवसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे।

महादेवी ने भी प्रकृति पर चेतनता का आरोप किया है। यह बसंत रजनी को क्षितिज से बुला रही है–

ताराकमय नव बेणी बन्धन
शीश फूल पर शशि का नूतन
रश्मि वलय सित अवगुंठन
धीरे–धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त रजनी।

छायावादी प्रकृति का सौन्दर्य है। कवि उसमें चेतना का आरोप करता है वह प्रकृति को प्राण से युक्त मानकर विस्मय का अनुभव करता है। कभी वह अज्ञात प्रियतम को भी उसमें देखने लगता है इससे उसे प्रकृति से अगाध प्रेम हो जाता है।

पंत प्रकृति के विविध रूपों में विस्मय बोध करते हैं–

देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये भर–भर अपना यौवन
पिलाना है मधुकर को।

छायावादी मानव जीवन की समस्त भावनाओं और अनुभूतियों की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से करने लगता है। महादेवी जी के काव्य की यह प्रवृत्ति अधिक है। सांध्य–गीत की प्रथम कविता में वे अपने जीवन की तुलना सांध्य गगन से करती हैं–

प्रिय सान्ध्य गगन, मेरा जीवन।
यह क्षितिज बना धुँधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग।

छायावादी प्रकृति–सौन्दर्य में करुणा के स्वर विद्यमान हैं कवि जब प्रकृति में फूल खिले देखता है तो एक कुतूहल मिश्रित वेदना उमड़ आती है कि यह मेरे हृदय में क्यों नहीं खिला। महादेवी में इस प्रवृत्ति को देखा जा सकता है–

जग पतझर का नीरव रसाल,
पहने हिमजल की अश्रुमाल,
मैं पिक बन गाती डाल–डाल
सुन फूल–फूल उठते पल पल
सुख दुःख मंजरियों के अंकुर।

वैसे तो मानव जीवन एवं प्रकृति आपस में एक दूसरे के पूरक हैं उनका तादात्म्य होना आवश्यक भी है सुख–दुःख प्रकृति के साथ बँटने पर वैसी ही अनुभूति प्रकृति में स्वतः दिखाई देने लगती है। किन्तु प्रकृति एवं अपने हृदय की वृत्तियों में एकरसता स्थापित होने पर ये पंक्तियाँ सामने आती हैं–

मेरा पावस ऋतु–सा जीवन, मानस–सा उमड़ा अपार मन।
गहरे धुँधले, धुले, साँवरे, मेघों से भरे मेरे नयन।।

छायावादी कवियों ने नारी के रूप को भी प्रकृति में डाला है यह एक नैसर्गिक प्रक्रिया है। छायावादी कवि ने नारी के सूक्ष्म–सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में की है। इन कवियों ने प्रकृति को स्त्री रूप में देखा है वह पार्थिवता का भूषण नहीं करती है वरन् प्रकृति की प्यारी है अपने नैसर्गिक रूप में विराजमान आत्मा को प्रकाशित करने वाली है–

अरुण अधरों का पल्लव प्रात, मोतियों सा हिलता हिम हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढक गात, बाल विद्युत का पावस–लास,
हृदय में खिल आता तत्काल, अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान, प्रिय प्राणों की प्राण।–पंत

छायावादी काव्य में प्रेम भावना का विकास विविध रूपों प्रकृति प्रेम, नारी प्रेम, मानव प्रेम, मातृप्रेम, अज्ञात चिरन्तन प्रिय प्रति प्रेम में प्रकट हुआ है–

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को।

छायावाद में नारी को प्रेम की मूर्ति मान काव्य का यह प्रेम वर्णन बड़ा उत्कृष्ट है इसमें वासना का सर्वथा अभाव है और हृदय की कोमल वृत्तियों का वर्णन है। प्राकृतिक माध यम हृदय को उच्च भावना से भरने वाला है–

वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।
जब सावन घन सघन बरसते इन आँखों की छाया भर थे।
सुरधुन रंजित नव जलधर से भरे, क्षितिज व्यापी अम्बर से।
मिलेचूमते जब सरिता के हरित कूल युग मधुर अधर थे।।

छायावादी काव्य में आध्यात्मिक प्रेम भावना का समग्र रूप महादेवी की कविताओं में बड़ा ही अनुभूतिपूर्ण है वे प्रेम की उस उच्च दशा में स्थित हो गई है जहाँ प्रेमी और प्रेमास्पद में कोई अन्तर शेष नहीं रह गया है–

तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या?

महादेवी की कविताओं में इस प्रेम भावना का बहुत अधिक विस्तार हुआ है। दीपशिखा में कवयित्री ने अपने इस प्रेम का वर्णन बड़े मार्मिक शब्दों में किया है–

मैं कण कण में ढाल रही हूँ, आँसू के मिस प्यार किसी का।
मैं पलकों में पाल रही हूँ, यह सपना सुकुमार किसी का।।

छायावाद के कवियों ने प्रेम को अत्यन्त पवित्र और सार्वभौम तत्व माना। उन्होंने उसे आत्मा का धर्म माना और शारीरिक संबंधों को प्रेम के क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया। पंत उच्छ्वास कविता में प्रेम को सार्वभौम एवं सर्वव्याप्त तत्व के रूप में देखते हैं–

अनिल सा लोक लोक में,
हर्ष में और शोक में।
कहाँ नहीं है प्रेम,
साँस सा सबके उर में।

निराला में यह आध्यात्मिक प्रेम इस प्रकार मुखरित हुआ है–

भर देते हो,
बार-बार प्रिय करुणा की किरणों से,
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
मेरे अन्तर में आते हो व्यथा भार लघु,
बार बार कर-कंज बढ़ाकर।

उपरोक्त पंक्तियों में कवि के अव्यक्त सत्ता के प्रति प्रेमपूर्ण मार्मिक उद्‌गार व्यक्त हुए हैं। मातृ-प्रेम का भी एक उदारहण पर्याप्त होगा। 'कामायनी' की श्रद्धा की पुत्र-प्रेम की कल्पना। **सूना न रहेगा यह मेरा लघु विश्व कभी जब रहोगे न।**
मैं उसके लिए बिछाऊँगी फूलों के रस का मृदु फेन।।

आगे चलकर इस मातृ-प्रेम-भावना का साकार रूप 'स्वप्न' सर्ग में है–

लुटरी खुली अलक, रज धूसर बाँहें आकर लिपट गईं,
निशा तापसी की जलने को धधक उठी बुझती धूनी।

इसी प्रकार मानव-प्रेम का चित्रण पंत में देखिए–

सुन्दर हैं विगह, सुमन सुन्दर,
मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरूपम।

छायावादी कवियों में स्वामी दयानन्द की स्त्री दृष्टि का विकास हुआ है। यह मानवतावाद कई रूपों में व्यक्त हुआ है, जैसे नारी के प्रति उच्च भावना। शृंगारकाल में

नारी का रूप विकृत हो चुका था, वह विलास की प्रसाधन हो गयी थी। छायावादी कवियों ने एक नवीन मानवतावादी दृष्टि से नारी का विचार किया–

युग–युग से अवगुण्ठित गृहिणी
सहती पशु के बन्धन।
खोलो हे मेखला युगों की
कटि प्रदेश से, तन से
अमर प्रेम हो उसका बन्धन
वह पवित्र हो मन से।

इस प्रकार नारी के शरीर के महत्त्व से ऊपर उठकर इन कवियों ने उसके मन की पवित्रता को महत्त्व प्रदान किया। अब कवियों की दृष्टि मानव को मानव के रूप में देखकर शोषितों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करने लगी है। 'निराला' में शोषित वर्ग के प्रति गहरी संवेदना है। कृषकों की दशा देखकर वे 'बादल राग' गा उठते हैं, स्त्री भी शोषित है–

तुझे बुलाता कृषक अधीर....
चूस लिया है उसका सार
हाड़ माँस ही है आधार।

इसी प्रकार उनकी 'भिक्षुक', 'विधवा', 'इलाहाबाद के पथ पर' इत्यादि कविताओं में मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। पंत ने भी मानव–सौन्दर्य–निरीक्षण किया है 'मानव तुम सबसे सुन्दरतम'।

छायावादी कवियों में प्राचीन जीवन–मानों के प्रति विद्रोह की भावना है। छायावाद में थोथी नैतिकता, रूढ़ि एवं परम्परा और सामन्ती संस्कृति के मानदण्डों का घोर विरोध हुआ। इन्होंने जन–कल्याण और विश्व–मंगल की भावना को प्रश्रय दिया और इसीलिए प्राचीन जीवन के मूल्यों की कमी इनके दृष्टि–पथ में आई। आचार्य डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इन कवियों में 'मानवीय आचारों, क्रियाओं, चेष्टाओं और विश्वासों के बदले हुए और बदलते हुए मूल्य को अंगीकार करने की प्रवृत्ति थी' और यही तो इनकी विद्रोह भावना है। छायावादी कविता में सौन्दर्य, प्रेम, करूणा, मानवतावाद, नारी उत्थान इत्यादि की जो भावनाएँ व्यक्त हुई हैं, जन्म, पद, सम्पत्ति आदि से उत्पन्न भेद–भाव को मिटाकर व्यक्ति को स्वतन्त्र रूप में देखने का जो प्रयत्न हुआ है–वह जीवन के बदले हुए और बदलते हुए मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है। क्या राजनीतिक आदर्श, क्या सामाजिक मान्यताएँ एवं

मर्यादाएँ सभी क्षेत्रों में स्वच्छन्दतावादी हैं और धार्मिक बन्धनों के प्रति अवज्ञावादी। किन्तु यह चेतना मुख्य रूप से मध्य वर्ग के साथ जुड़ी हुई है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने मध्यवर्गीय चेतना का प्रतिवर्तन छायावादी कविता में निम्नलिखित रूपों में बताया है– 1.सामन्ती 2. व्यक्तिवाद और व्यक्ति–स्वातन्त्र्य के आदर्श की स्थापना 3. बुद्धि के विरुद्ध हृदय का और स्थूल के विरुद्ध सूक्ष्म का विद्रोह। 4. यथार्थ के बन्धनों से ऊबकर प्रकृति, रहस्य, कल्पना और क्रान्ति के स्वप्नलोकों में पलायन। 5. ह्रासोन्मुख पूँजीवादी प्रवृत्तियों–कलावाद, निराशावाद, अहंवाद–का विकास। 6. सामाजिक यथार्थवाद का प्रगति का प्रारम्भ। इसी प्रसंग में डॉ. शम्भूनाथ सिंह आगे लिखते हैं, "इस युग में धर्म का प्रभुत्व बहुत कुछ छट गया और उसकी जगह आध्यात्मिकता और दार्शनिकता ने ले ली। छायावादी कवियों ने प्राचीन भारतीय दर्शन और भक्तिकालीन काव्य से प्रभाव ग्रहण किया और साथ ही रीतिकालीन काव्य–परम्परा का खुले रूप में विरोध किया। इस तरह इस युग में सामन्ती और दरबारी संस्कृति के बन्धनों से कवियों ने मुक्ति प्राप्त की।"[58]

यह विद्रोह काव्य–विषय और भाषा–शैली–दोनों में ही दिखाई पड़ता है। आज के युग में जीवन के मूल्य बदल रहे हैं और इस नई व्यवस्था में सदाचार और धर्म की महत्ता जन–हित पर निर्भर होगी।

धर्म, नीति और सदाचार का मूल्यांकन है जनहित।
सत्य नहीं वह जनता से जो नहीं प्राण सम्बन्धित।। –पंत

छायावादी कविता की इस प्रवृति में हमें सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं। यद्यपि इसमें नवीन शिक्षा का प्रभाव स्पष्ट है, तथापि यह केवल पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव नहीं है। इसके मूल में पूर्ववर्ती युग की परिस्थितियों के प्रति विद्रोह की भावना है, अतः यह भारतीय परम्परा में उद्भूत सांस्कृतिक चेतना है।

कुछ सुधी आलोचक रहस्यवाद को छायावाद का प्राण मानते हैं। महादेवी जी के अनुसार 'विश्व के अथवा प्रकृति के सभी उपकरणों में चेतना का आरोप छायावाद की पहली सीढ़ी है तो किसी असीम के प्रति अनुरागजनित आत्म–विसर्जन का भाव अथवा रहस्यवाद छायावाद की दूसरी सीढ़ी है।' महादेवी वर्मा और प्रसाद जी के काव्य में इस रहस्य भावना का सुन्दर परिपाक हुआ है। पंत में प्रकृति के प्रति रहस्य भावना है, जिसे बहुतों ने प्राकृतिक रहस्यवाद की संज्ञा दी है। रामचन्द्र शुक्ल भी छायावाद का एक अर्थ रहस्यवाद ही करते हैं किन्तु वे इसे संत–पुराने संतों या साधकों की उस वाणी का अनुकरण मानते

हैं जिसमें तुरीयावस्था या समाधि–दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का विषय रहा था। पं. नन्ददुलारे वाजपेयी छायावादी कविता की इस आध्यात्मिकता को परम्परागत "आध्यात्मिक चिन्तन के नियमों एवं प्रेरणाओं से भिन्न एक स्वतन्त्र विचारधारा मानते हैं। इसका मुख्य कारण वह यही देते हैं कि छायावादी काव्य की आध्यात्मिकता प्राचीन काव्य के आध्यात्मवादी सीमा निर्देशकों से आबद्ध नहीं है, वह भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबन्ध स्वीकार नहीं करती।" इसका कारण वाजपेयी जी यह देते हैं कि– "छायावाद मानव–जीवन– सौन्दर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है।" इसभावना का विकास महादेवी की कविता में अच्छी तरह देखा जा सकता है– **मधुर मधुर मेरे दीपक जल।**

युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल–गल।

इसमें आध्यात्मिकता की भावना मानव–सेवा की भूमिका पर पल्लवित हुई है किन्तु इस आध्यात्मिकता की भावना में भक्ति साहित्य के केन्द्र–बिन्दु 'लीला' तत्त्व का विकास भी हुआ है। महादेवी कहती हैं– मैं पलकों में पाल रही हूँ यह सपना सुकुमार किसी का।

इसी प्रकार निराला की एक कविता में प्रेयसी अपने प्राणधन के विरह में आँसू बहा रही है– **प्राण धन को स्मरण करते।**

नयन झरते, नयन झरते।।

पंत में भी आध्यात्मिक प्रेम एवं रहस्य की प्रेममयी झलक है, प्रेयसी प्रिय की पद छाया है– **तुम इस तरूवर की छाया हो।**

मैं उनके पद की छाया।।

हम शुक्ल जी की पदावली में कह सकते हैं कि छायावादी 'कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना' करते हैं।

छायावादी कविता में तत्त्व–चिन्तन की भी एक विशेष प्रवृत्ति है। इसमें प्राचीन अद्वैत–दर्शन, योग–दर्शन, विशिष्टाद्वैत, पुनर्जन्म और कर्मफल, आनन्दवाद, विश्वमानवतावाद एवं सामाजिक यथार्थवाद इत्यादि तत्त्वों का दार्शनिक चिन्तन मिलता है। प्रसाद, महादेवी,

पंत और निराला के काव्य में तत्त्व चिन्तन में विविध रूपों का विकास हुआ। प्रसाद का मूल दर्शन आनन्दवाद है, तो महादेवी ने अद्वैत, सांख्य एवं योग–दर्शन का विवेचन अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। प्रसाद की कामायनी में विश्वमानवतावाद के दर्शन होते हैं। पंत ने जगत की अनित्यता, तप का महत्त्व इत्यादि अपने काव्य में दर्शाया है।

छायावादी कविता में वेदनानुभूति के विविध रूप मिलते हैं। कहीं यह अनन्त वेदना के रूप में है, तो कहीं करूणा के रूप में, अन्यत्र निराशा की भावना के रूप में। प्रसाद और महादेवी के काव्य में वेदनानुभूति का दर्शन सेवावाद और आध्यात्मवाद है। महादेवी जी ने इस दुःख के दो रूपों की अभिव्यक्ति इन शब्दों में की है– "एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार में एक अविच्छिन्न बन्धन में बाँध देता है, और दूसरा वह जो काल और सीमा के बन्धन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रन्दन है।" किन्तु प्रसाद और महादेवी के काव्य में पाई जाने वाली इस वेदनानुभूति में निराशा का अंधकार एवं भौतिक दुःखों का धुँधलापन नहीं है। यह तो शुद्ध सेवा और आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति है, तभी तो महादेवी कहती हैं–

प्रिय! जिसने दुःख पाला हो।
वर दो यह मेरा आँसू
उसके उर की माला हो।
मैं दुःख से शृंगार करूँगी।

इस वेदानानुभूति में साधनात्मक जीवन का दृढ़ स्वर मुखरित हुआ है–

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती

प्रसाद में भी वेदनानुभूति 'हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य' है। उनको 'कामायनी' की 'श्रद्धा' प्रकृति में भी वेदना का पाठ पढ़ती है। आध्यात्मिक वेदना की कलात्मक अभिव्यक्ति 'श्रद्धा' के इस चिन्तन में मिलती है–

दृष्टि जब जाती हिमगिरि ओर, प्रश्न करता मन अधिक अधीर।
धरा की यह सिकुड़न भयभीत, आह कैसी है? क्या है पीर।

पंत में सौन्दर्य की खेज और अनित्यता के परिचय के कारण दुःख की भावना जाग्रत हुई– **चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में,**
अस्थिर है रूप जगत का मद,

निराला के जीवन में सामाजिक जीवन की कठोरताओं में एक सजीव निराशा की झलक एवं झुंझलाहट आई है–

जीवन चिरकालिक क्रन्दन
मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भर कर झकझोर।

महादेवी और प्रसाद की सेवा के जीवन की वेदना, आध्यात्मिक प्रेम की पीर और संसार की स्वार्थपरता से उत्पन्न व्यथा अपना विशिष्ट स्थान रखती है। आधुनिक युग की सबसे अधिक प्रगति वैज्ञानिक आविष्कारों में देखी जा सकती है। वैज्ञानिक युग में बौद्धिक प्रक्रिया का प्राधान्य हुआ और एक वैज्ञानिक संस्कृति का जन्म हुआ। बिखरे हुए शक्ति के कणों का संयोजन करके मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है। इसी से विश्व की दुर्बलता बल में परिणत होगी और मानव–संस्कृति की चेतना का इतिहास सुन्दर होगा। प्रसाद जी ने कामायनी में शक्ति के संचार का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है और मानवता की विजय की कामना की है–

शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरूपाय।
समन्वय उनका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।

वैज्ञानिक संस्कृति में बुद्धिवाद का महत्त्व बहुत अधिक है। प्रसाद जी की 'इड़ा' भी बुद्धिवाद की प्रतीक है–

बिखरी अलके ज्यों तर्कजाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल।
––––––x–––––x––––––x–––––––x––––––
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान।।

बुद्धिवाद में संघर्ष है, संघर्ष में दुःख और अभिशाप है। प्रसाद जी ने बुद्धिवाद के विकास का वर्णन भी किया है। विज्ञान से मानवता विजयिनी हो सकती है, उसके समुचित समन्वय से। लेकिन उसका असामंजस्य एवं असन्तुलन तो सृष्टि का विनाश करने वाला है–

तांडव में थी तीव्र प्रगति, परमाणु विकल थे,
नियति विकर्षणमयी, त्रास से सब व्याकुल के। –कामायनी

इसीलिए वैज्ञानिक उन्नति में बड़ा भय भी है। पंत में भी वैज्ञानिक विकासवाद का (समर्थ और शक्तिवान को जीने का अधिकार) वर्णन मिलता है–

जो है समर्थ जो शक्तिवान जीने का अधिकार उसे।

और यही सिद्धान्त तो वैज्ञानिक संस्कृति का महान् अभिशाप है।

छायावादी कविता में राष्ट्रीय भावना एवं देश–प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। देश–प्रेम की भावना के कई रूप हैं। एक है पुरातन के गौरव का स्मरण–

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल
भूतियों का दिगन्त छवि जाल,
ज्योति–चुम्बित जगती का भाल।

प्रसाद जी ने भी देश के प्राकृतिक स्थलों के प्रति स्वाभाविक अनुराग व्यक्त किया है। भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति कवि का यह उल्लास–

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामस–गर्भ–विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल–कुँकुम सारा।

देश–प्रेम के अतिरिक्त राजनीतिक आन्दोलन का वर्णन भी मिलता है। स्वतन्त्रता आन्दोलन को सक्रिय प्रेरणा देने वाला माखनलाल चतुर्वेदी का "पुष्प की अभिलाषा"[59] गीत बहुत प्रसिद्ध है–

मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पथ में देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।

इस राष्ट्रीयता की भावना में कहीं–कहीं क्रान्ति के भी स्वर हैं, जैसे–नवीन जी के 'विजय गायन' दिनकर की 'हुँकार' और नरेन्द्र की 'प्रभात फेरी' में।

छायावादी काव्य विशुद्ध सौन्दर्यवादी और प्रेमवादी काव्य है किन्तु इसमें कहीं–कहीं ऐन्द्रिकता और अश्लीलता की भावना अपरिपक्व एवं उच्छृंखल कवियों में पाई जाती है। प्रसाद और महादेवी, पंत और निराला आदि में शृंगार की भावना का बड़ा संयत रूप है। महादेवी में प्रेम के प्रथम प्रभाव को देखिये–

सजनि तेरे दृग बाल, चकित से विस्मित से दृग बाल,
आज खोए से आते लौट, कहाँ अपनी चंचलता हार।
झुकीं जाती पलकें सुकुमार, कौन से नव रहस्य के भार,
सजनि वे पद सुकुमार, तरंगों से द्रुत पद सुकुमार।। –रश्मि

प्रसाद जी ने भी लजीले सौन्दर्य का बड़ा संयत और सौम्य वर्णन किया है–

तुम कनक–किरन के अन्तराल में लुक छिपकर चलते हो क्यों?
नव मस्तक गर्व वहन करते, यौवन के घन रसकन ठरते–ठरते।
अधरों के मधुर कगारों में, कल–कल ध्वनि की गुंजारों में;
मधु सरिता सी वह हंसी तरल, अपनी पीते रहते हो क्यों;

कामायनी वेदों और ब्राह्मणों का सार है जो युग के अनुरूप ढालकर प्रस्तुत किया है। प्राचीन ऋग्वेद के प्रतीक जैसे मित्र, वरुण, सविता, उषा आदि का इसमें व्यवहार है। अनेक प्रकार के यज्ञों की चर्चा भी वेदों से ली गई है। पंत ने उपनिषदों को अपनी कविता में उतारा है। निराला जी की प्रवृत्ति भी वेदादि के पुनर्जागरण और सांस्कृतिक पुनरुत्थान की रही है। महादेवी ने वेदान्त और सांख्य आदि के आधार पर अपनी कविता में अध्यात्म विषय की चर्चा की है।

छायावादी कविता की देन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में सहयोग प्रदान करना है। छायावादी कविता द्वारा कवियों ने देश के प्राचीन वीरत्व एवं आत्मगौरव को जाग्रत किया तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग प्रदान किया। इन्होंने भारत की गौरव–गरिमा गाने में प्रकृति का सहारा भी लिया है इसलिए 'अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल' अथवा 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' का चित्रण भी किया है। इस स्वदेश प्रेम की भावना में द्विवेदी युग सी साहित्यिक दृढ़ता का अभाव तथा देश की प्राचीन संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का पोषण है। छायावादी काव्य का 'सबको सुखी बनाओ' नारा युगानुकूल है।

सबकी सेवा न पराई, वह अपनी सुख–सृंसति है,
अपना ही अणु–अणु कण–कण द्वयता ही तो विस्मृति है।

सबकी सेवा का सिद्धान्त भारतीय राष्ट्रीय जागरण में दयानन्द का सिद्धान्त था जो भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग से चलता हुआ छायावाद तक आ पहुँचा यह दयानन्द का 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' की पराकाष्ठा का परिणाम था। जिससे हिन्दी साहित्य में अपार लाभ हुआ महर्षि दयानन्द सरस्वती के एक–एक वाक्य का प्रभाव अलग–अलग बिन्दुओं से हिन्दी साहित्य में अवतीर्ण हुआ है यह अतिश्योक्ति न होकर सच्चाई है तथा यह भी सच्चाई है कि आगे भी साहित्य एवं अनेक क्षेत्रों पर वह प्रभाव जारी रहेगा। सत्य सिद्धान्त का प्रभाव सृष्टि अंत तक विद्यमान रहता है। छायावाद में ऐसी कई रचनाएँ सामने आई हैं जिनमें स्त्री एवं मानव जीवन की समस्याओं के कल्याण एवं उपाय को भिन्न–भिन्न विवेक एवं बुद्धि चातुर्य द्वारा हल करने की कोशिश की गई।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्त्री चिन्तन का प्रभाव छायावाद में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भगवती चरण वर्मा आदि पर भी पड़ा है। रामनरेश त्रिपाठी, नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी आदि ने जिस राष्ट्र प्रेम और सांस्कृतिक गौरव का चित्रण किया उसमें स्त्रियों के प्रति भी उच्च भावना प्रदर्शित हुई है जिसकी अभिव्यंजना पद्धति पर छायावादी प्रवृत्ति का गहरा प्रभाव है। माखनलाल चतुर्वेदी ने भारतीय प्राकृतिक सुषमा के जो सरस, सजीव और मूर्त चित्र खींचे हैं, वे उन्हें छायावादी कवियों के समीप ले आते हैं। 'नवीन' ने 'अपलक' स्वानुभूति की आवेशमयी विवृत्ति की है जिसमें राष्ट्रीयता के नये स्वरों में नारी मुक्ति की भी झलक दिखाई देती है–

सिहर उठा मलयानिल, हम सिहरे बेकल–से
काँपा मन, उमड़ा हिम, नयन झरे झर झर प्रिय
फिर गूँजे नव स्वर प्रिय।

इसी प्रकार भगवतीचरण वर्मा कृत 'मधुकण' (1931) की कुछ कविताओं में प्रणयानुभूति की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति मिलती है। डॉ. रामकुमार वर्मा के 'रूपराशि', 'निशीथ', 'चित्ररेखा', 'आकाशगंगा' आदि काव्य संग्रहों में छायावादी पद्धति की रचनाएँ संग्रहित हैं। उदयशंकर भट्ट की 'राका', 'मानसी', 'विसर्जन', 'युगदीप', 'अमृत और विष' में भी दयानन्दीय प्रभाव देखने को मिलता है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के 'अशोक' (1927), 'संन्यासी' (1929), 'मुक्ति का रहस्य' (1932), 'राक्षस का मंदिर' (1932), 'राजयोग' (1934), 'सिन्दूर की होली' (1934), 'आधी रात' (1934) आदि सभी नाटकों में सामाजिक समस्याओं विशेषकर नारी समस्याओं को आधार बनाया गया है नारी की स्थिति एवं उसकी समस्याओं को अपने दृष्टिकोण से चित्रित किया है। इसमें स्वतः ही दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव दृष्टिगत होता है। स्त्री शिक्षा के प्रचार, नारी स्वातंत्र्य आन्दोलन तथा नवीन जीवन दर्शन के फलस्वरूप आधुनिक नारी का ऐसा रूप सामने आया है जिससे हमारा समाज आज तक अपरिचित था। प्रेम और विवाह, प्रणय और दाम्पत्य, काम और नैतिकता विषयक अनेक समस्याएँ समाज के समक्ष सहसा उपस्थित हो गयी। मिश्र जी ने इन समस्याओं को उठाते समय सामाजिक वैषम्य की पृष्ठभूमि में नारी और पुरुष के संबंधों का चित्रण किया है। उन्होंने प्रेम, विवाह, शिक्षा संबंधी समस्याओं के लिए बुद्धिवादी दृष्टिकोण का आग्रह रखा है। यद्यपि उनके नाटकों की नारियाँ अपने काम संबंधों में पर्याप्त स्वतंत्रता बरतती है और उनका चरित्र पहली दृष्टि में भारतीय मान्यताओं के प्रतिकूल दीख पड़ता

है, पर गहराई में जाकर देखने से विदित होता है कि उनकी जीवन दृष्टि मूलतः भारतीय है। 'मुक्ति का रहस्य' में पश्चिम के उन्मुक्त प्रेम पर भारतीय दाम्पत्य विधान की विजय और 'सिंदूर की होली' में विधवा विवाह एवं नारी उद्धार के प्रति मनोरमा के दृष्टिकोण से इस कथन की पुष्टि होती है। सहशिक्षा और आधुनिक शिक्षा का स्थान–स्थान पर विरोध भी मिश्र जी को दयानन्द से प्रभावित सिद्ध करता है।

इसी प्रकार विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' कृत 'अत्याचार का परिणाम' (1921) और हिन्दू विधवा नाटक (1935), बलदेव मिश्र कृत 'विचित्र विवाह' (1932), केदारनाथ बजाज कृत 'बिलखती विधवा' (1930), जमुना दास मेहरा कृत 'हिन्दू कन्या' (1932) रघुनाथ चौधरी कृत 'अछूत की लड़की या समाज की चिनगारी' (1934), महावीर वेनुवंश कृत 'परदा' (1936), बेचेन शर्मा 'उग्र' कृत 'चुम्बन' (1936), रघुवीर स्वरूप भटनागर कृत 'समाज की पुकार' (1936), चन्द्रिका प्रसाद सिंह कृत 'कन्या विक्रय या लोभी पिता' (1937) आदि उल्लेख के येाग्य हैं।

भले ही मुंशी प्रेमचंद महात्मा गाँधी से प्रभावित रहे हों क्योंकि उनके लेखन का समय एवं गाँधी के राष्ट्रीय आन्दोलनों का समय एक था इस कारण उनके जीवन पर गाँधी का प्रभाव पड़ना आवश्यक है किन्तु उनके उपन्यासों में जो स्त्री दशा का चित्रण हुआ है उसमें स्वामी दयानन्द का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। सेवासदन (1918) उनकी पहली प्रौढ़ कृति है 'सेवा सदन' के बाद 'प्रेमाश्रम' (1922), 'रंगभूमि' (1925), 'कायाकल्प' (1926), 'निर्मला' (1927), 'गबन' (1931), 'कर्म भूमि' (1933) और गोदान (1935) में प्रेमचन्द की भारतीय सामाजिक अव्यवस्था की पीड़ा का उद्घाटन हुआ है। चारों ओर फैले हुए क्षुब्ध जीवन और अनेक सामाजिक समस्याओं–पराधीनता, जमींदारों, पूँजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अन्ध विश्वास, दहेज की कुप्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिन्दगी, वृद्ध–विवाह, विधवा–समस्या, साम्प्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यम वर्ग की कुंठाओं के चित्रण में प्रत्येक जगह स्त्री का शोषण हुआ है।

'सेवा सदन' में उनका ध्यान मुख्यतः विवाह से जुड़ी समस्याओं तिलक–दहेज की प्रथा कुलीनता का प्रश्न, विवाह के बाद घर में पत्नी का स्थान और समाज में वेश्याओं की स्थिति पर रहा है। 'निर्मला' में दहेज–प्रथा और वृद्ध–विवाह से होने वाले पारिवारिक विघटन तथा विनाश का चित्रण है। कृषक–'जीवन की समस्या एवं स्त्री दशा', 'प्रेमाश्रम' एवं

गोदान में दिखाई देती है। रंगभूमि और कर्म–भूमि में ग्रामीणों की स्थिति का चित्रण है। सेवा सदन, रंगभूमि, प्रतिज्ञा, कर्मभूमि और गोदान में अन्तर्जातीय विवाह के प्रश्न को उठाया गया है। उच्च वर्ग और मध्यम वर्गीय समाज में नारी की स्थिति तथा अपने अधिकारों के प्रति उसकी क्रमशः उभरती गई जागरुकता तो प्रायः उनके सभी उपन्यासों में चित्रित है। विधवा–विवाह का प्रश्न 'प्रतिज्ञा' में उठाया गया है। मध्य वर्ग की कुंठाओं का सबसे अच्छा चित्रण 'गबन' और 'निर्मला' में है। यद्यपि सेवासदन और कर्मभूमि में इनकी झलक देखी जा सकती है। समाज में हरिजनों की स्थिति और उनकी समस्याओं का चित्रण 'कर्मभूमि में मिलता है। यह सब विषय स्वामी दयानन्द और उनके बाद महात्मा गाँधी के रहे हैं।

प्रेमचन्द यद्यपि राष्ट्रप्रेमी और देशभक्त लेखक थे दयानन्द और गाँधी से प्रभावित थे पर अपने उपन्यासों में वे राष्ट्रीय भावना को सशक्त अभिव्यक्ति न दे सके। जगह–जगह ऐसा लगता है। कि वे इस ओर बढ़ना तो चाहते हैं पर उनकी व्यावहारिक बुद्धि जैसे रास्ता रोक देती है। वे सामाजिक सुधारों तथा प्राकृतिक विपत्तियों में सहायता कार्य करने वाली सेवा समितियों के गठन और उनकी गतिविधियों का तो वर्णन करते है; पर सत्याग्रह आन्दोलन या स्वतंत्रता प्राप्ति के निमित्त किये गये आन्दोलन के चित्रण से बचते हैं। यह बात प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गबन और कर्मभूमि में देखी जा सकती है। इसी प्रकार कतिपय सामाजिक समस्याओं को सही संदर्भ में उठाने पर भी वे उन्हें उचित तर्कसंगत परिणति नहीं दे पाये हैं। कई उपन्यासों में अन्तर्जातीय विवाह की समस्या उठाई गई है। दो विभिन्न जातियों के युवक–युवतियों में प्रेम संबंध स्थापित होता है, पर प्रेमचंद उस संबंध को विवाह में बदलने के पूर्व ही प्रेमी–प्रेमिका को मृत्यु या किसी अन्य बहाने से एक दूसरे से अलग कर देते हैं, सोफिया–विनय, अमरकान्त–सकीना, चक्रधर–मनोरमा आदि प्रेमी युगलों की कहानी इसका प्रमाण है। इसी प्रकार प्रतिज्ञा में विधवा–विवाह की समस्या को उठाकर भी वे अमृतराय और पूर्णा का विवाह सम्पन्न नहीं करा पाते। केवल गोदान में मातादीन और सिलिया का विवाह दिखाने का साहस उन्होंने किया है। संभवतः सामाजिक आलोचना के भय से प्रेमचंद समाज सुधार की दिशा में क्रान्तिकारी कदम उठाने से रह गये थे। हालांकि वे दयानन्द और गाँधी से प्रभावित होते हुए भी उनमें सामाजिक आलोचना का भय था परन्तु महापुरुषों की भाँति यह सब सहन करना एक लेखक की क्षमता से बाहर था वैसे भी उस समय जो पराधीनता थी और उसमें भी वे नाम बदलकर साहित्य लिखकर समाज को तो संदेश पहुँचा ही रहे थे इसका एक कारण यह भी रहा होगा कि वे अंग्रेजों के द्वारा पहले भी दंश झेल चुके थे। इसी क्रम में दयानन्द के शिष्य एवं आर्यसमाजी रहे आचार्य

चतुरसेन शास्त्री ने 'हृदय की परख' (1918), 'हृदय की प्यास' (1932), 'अमर अभिलाष' (1932) और 'आत्मदाह' (1937) शीर्षक उपन्यासों की रचना की।

देवनारायण द्विवेदी के 'कर्त्तव्य घात', 'प्रणय', 'पश्चाताप और दहेज' उपन्यास तथा बेचेन शर्मा 'उग्र' जिन्होंने 'चन्द हसीनों के ख़ुतूत' (1927), 'दिल्ली का दलाल' (1927), 'बुधुआ की बेटी' (1927), 'शराबी' (1930) आदि उपन्यासों में समाज की बुराइयों को, उसकी नंगी सच्चाई को बिना किसी लाग लपेट के बड़े ही साहस के साथ, किन्तु सपाटबयानी के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने समाज के उस वर्ग को अपने उपन्यासों का विषय बनाया जिसे दलित या पतित वर्ग कहते हैं और उसके चित्रण में उन्होंने किसी प्रकार के शील या अभिजात शिष्टता का परिचय नहीं दिया।

इनके पश्चात् जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास को नई दिशा दी। जिसमें उनके 'परख' (1929), 'सुनीता' (1935) और 'त्याग पत्र' (1937) में सामाजिक यथार्थ ही नहीं, मनोवैज्ञानिक यथार्थ के द्वारा व्यक्ति मानस की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है।

सियारामशरण गुप्त कृत 'नारी' (1937) मनोवैज्ञानिक सामाजिक उपन्यास है जिसमें नारी समस्याओं के निराकरण के लिए नये–पुराने मूल्यों के समन्वय पर बल दिया है। इस काल में स्वच्छन्दतावादी पद्धति के प्रेम मूलक उपन्यासों की रचना का श्रेय सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' को है उनके द्वारा रचित 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती' और 'निरुपमा' आदि उनकी कवि चेतना से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में नारी जीवन की कहानियों का महत्त्व है। इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद की कहानियों में मनोवैज्ञनिक पहलू सामने आया है 'आकाशदीप', 'कला', 'देवदासी', 'आंधी', 'महुवा', 'इन्द्रजाल', 'सालवती' आदि कहानियों में उलझनपूर्ण मनः स्थिति तथा मानसिक द्वन्द्व के चित्रण में प्रसाद ने सफलता प्राप्त की। एक ख़ास प्रकार के नारी पात्रों की सृष्टि में प्रसाद अद्वितीय हैं जो अपने निश्छल प्रेम, त्याग और बलिदान से पाठकों के मन पर अमिट प्रभाव छोड़ जाती है 'आकाशदीप' की चम्पा, 'देवरथ' की सुमाता, 'पुरस्कार' की मधूलिका, आदि प्रसाद की अनुपम नारी–सृष्टि है, नियति और समाज से एक साथ संघर्षरत नारी का ऐसा चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है। विशम्भरनाथ 'कौशिक' ने भी पारिवारिक जीवन की अनेक समस्याओं जैसे बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज प्रथा आदि का अंकन किया है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने ऐतिहासिक प्रसंगों पर मार्मिक कहानियाँ लिखी। पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र' ने बलात्कार, 'दोज़ख की आग', निर्लज्जा में समाज के नग्न यथार्थ का चित्रण किया है। 'चिनगारियां' में उन्होंने अपनी विद्रोहपूर्ण राष्ट्रीय चेतना को वाणी दी है। उनकी कहानियों में सामाजिक शोषण अनाचार एवं कुप्रथाओं के प्रति आक्रोश है।

जैनेन्द्र ने स्त्री मनोविज्ञान पर आधारित कहानियाँ लिखी हैं 'खेल' 'अपना–अपना भाग्य', 'बाहुबली', 'वातायन', 'नीलम देश की राजकन्या', 'दो चिड़िया', 'ध्रुवयात्रा', 'पाजेब', 'एक दिन' आदि में जैनेन्द्र ने व्यक्ति मन की शंकाओं, प्रश्नों तथा गुत्थियों का अंकन किया है। उनकी कहानियों का मुख्य विषय नारी है, ऐसी नारी जो घर ही नहीं पतिव्रत्य की चारदीवारी से भी बाहर निकलकर मुक्ति की सांस लेना चाहती है। भगवती प्रसाद वाजपेयी की 'निंदिया लागी' में मध्यमवर्ग की समाज की विसंगतियों का बड़ा अच्छा चित्रण हुआ है। इन्सटालमेन्ट (1936) में संगृहीत उनकी कहानियों में जीवन की कुरूपताओं का परदाफाश करते हुए वर्तमान सभ्यता और आधुनिक समाज के खोखलेपन का चित्रण किया है। आधुनिक युग में नारी–पुरुष के संबंधों के विघटन का यथार्थ अंकन हुआ है।

देश और समाज के विभिन्न कार्य क्षेत्रों में निष्ठावती महिलाओं के इतिहास–प्रसिद्ध जीवन चरित्र लिखने से यह प्रमाणित हो गया था कि दायनन्द के प्रभाव ने स्त्रियों को स्वतः कितना सम्मान साहित्यकारों की कलम से करवा दिया था।

जीवन चरित्र लेखन में शिवव्रत लाल वर्मन ने 'सच्ची देवियाँ', मनोरमा बाई ने 'विद्योतमा' (1924), जहूरबख्श ने 'आर्य महिला रत्न' (1924), जटाधर प्रसाद शर्मा विमल ने 'अहिल्याबाई' (1926), जगन्नाथ शर्मा ने 'रमणी नवरत्न' (1927) तथा पं. भगवद्दत्त ने 'भारतीय महिला' (1935) आदि रचनाओं का प्रणयन किया।

दयानन्द के शिष्य अमर स्वतंत्रता सेनानी गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द के पुत्र इन्द्र विद्यावाचस्पति ने हिन्दी में 'मुगलसाम्राज्य का क्षय और उसके कारण' में भी स्त्रियों की दशा का वर्णन किया है। इस युग की नारी लेखिकाओं में सुभद्रा कुमारी चौहान की कहानियाँ सामाजिक पारिवारिक जीवन के व्यावहारिक चित्रण के लिए विशेष प्रसिद्ध हैं 'बिखरे मोती' (1932) और 'उन्मादिनी' (1934) में संगृहीत कहानियों में उन्होंने अधिकतर भारतीय नारी की परिस्थितियों समस्याओं तथा भावनाओं का सजग चित्रण किया है। उनकी 'पापी पेट' शीर्षक प्रसिद्ध राष्ट्रीय कहानी भी इसी

अवधि की रचना है। महादेवी वर्मा ने समाज के दीनहीन तथा शोषित व्यक्तियों को कथ्य रूप में चुनकर भारतीय समाज का जीवन चित्र प्रस्तुत किया है। उनके रेखा चित्रों में रामा,बिन्दा, साबिया, बिट्टो, घीसा आदि हैं।

शिवरानी देवी भी छाया युग की साहित्यकार रही हैं ये बाल विधवा थी। इन्होंने शिक्षा एवं ऋषि दयानन्द के प्रभाव से ही स्त्री जागृति का परिचय देते हुए उस बाल विधवापन को छोड़ते हुए पिता द्वारा विवाह हेतु एक विज्ञापन जारी करवाया तथा विधवा स्त्री ने यह बड़ा ही अच्छा कार्य किया ताकि उस समय समाज में फैली विधवाओं की पुनः विवाह न करने की बुराई को समाप्त करने के दयानन्द के कार्य को आगे बढ़ाया। शिवरानी देवी मुंशी देवी प्रसाद की पुत्री थी। मुंशी प्रेमचंद भी स्वामी दयानन्द से एवं आर्य समाज से प्रभावित थे। इन्होंने उस विज्ञापन को पढ़कर सामाजिक कुरीतियों एवं बंधन को तोड़ते हुए शिवरानी देवी से विवाह का प्रस्ताव भेजा। उनकी कहानियाँ प्रेमचन्द से भिन्न थीं। उनकी सर्वप्रथम कहानी 'साहस' सन् 1924 में 'चाँद' पत्रिका में छपी थी जिसके सम्पादक आर. सहगल थे। उस कहानी को लेकर पैदा हुए विवाद के बारे में शिवरानी देवी स्वयं अपनी पुस्तक प्रेमचन्द घर में लिखती हैं– "आप (मुंशी प्रेमचन्द) दफ्तर से आने पर कापी मेरे हाथ में देते हुए बोले–आप अब लेखिका भी बन गई। लो, यह तुम्हारी कहानी छप कर आई है। कहानी भी लिखी तो पुरुषों पर कटाक्ष! सारे दफ्तर में लोग शोर मचा रहे थे। सब कहते थे, पुरुषों पर आक्षेप किया है।"[60] इस का अर्थ यह हुआ कि स्वामी दयानन्द के प्रभाव एवं आर्य समाज की क्रान्ति से द्विवेदी काल में स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध स्त्रियों में भी प्रतिकार करने की क्षमता का विकास हो चुका था जिसका प्रमाण हमने देख लिया है। इसके अतिरिक्त शिवरानी देवी की पारिवारिक समस्याओं, राष्ट्रीय समस्याओं आदि पर अनेक रचनाएँ लिखी हुई सामने आती हैं इनका कहानी संग्रह 'कौमुदी' और 'नारी हृदय' है जिनमें स्त्री उत्थान के दयानन्द के प्रभाव को देखा जा सकता है।

नवजागरण और शौर्यपूर्ण रचना करने वाली तथा जिसकी कविता से झाँसी वाली रानी को मर्दानी रूप में सारा विश्व जानता है ऐसी सुभद्रा कुमारी चौहान पर भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रभाव था जिनके व्यक्तित्व से उनके पति भी वकालात छोड़कर स्वाधीनता आन्दोलन में कूद पड़े। सुभद्रा जी को बचपन से लेखन का शौक था। माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आने से तथा दयानन्द और गांधी के संस्कारों के कारण राष्ट्रप्रेम पर कविताऐं लिखने लगीं। स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु आन्दोलन एवं राष्ट्रीय कार्यों के लिए सुभद्राजी कई बार जेल गईं। उनके साहित्य सृजन के पीछे अदम्य देश प्रेम, आत्मोत्सर्ग और साहस

की भावना ही कार्य करती थी। सुभद्रा जी की रचनाओं 'वीरों का कैसा हो बसन्त' या 'झाँसी वाली रानी' का ओज भारतीय युवाओं को राष्ट्र के लिए प्रेरित करता है।

कह दे अतीत ! अब मौन त्याग,
लंके? तुझमें क्यों लगी आग?
ऐ कुरुक्षेत्र अब जाग, जाग,
बतला अपने अनुभव अनंत,
वीरों का कैसा हो वसंत,
हल्दी घाटी के शिला खंड,
ऐ दुर्ग! सिंह गढ़ के प्रचंड
राणा नाना का कर घमंड
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा वसन्त?

सन् 1922 का जबलपुर का झण्डा सत्याग्रह देश का अनूठा सत्याग्रह था जिसमें सुभद्रा जी प्रथम महिला सत्याग्रही थी। जेल की यातनाओं से वे हताश नहीं हुई–सकारात्मक दृष्टिकोण उनकी रचना में था–

मैंने हसना सीखा
मैं नहीं जानती रोना
बरसा करता पल–पल में
मेरे जीवन में सोना।

इससे बड़ा प्रभाव दयानन्द का देश पर क्या हो सकता था जिसने स्त्रियों के मन में इतना आत्मबल भर दिया कि वे पुरुषों से आगे निकल गईं।

मेरी अभिलाषाओं में है
कोमलता, उन्माद नहीं।
मेरी आलोकित आशा में
आभा है, अवसाद नहीं।।
इस उल्लास–भरे जीवन में।
है अटूट यह प्रेम शृंखला
दुर्बल पीड़ित प्यार नहीं।

उनकी कहानियों में देश प्रेम के साथ समाज में अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत नारी की छटपटाहट और विद्रोह के स्वर भी मुखरित होते हैं। 'मुकुल' तथा 'बिखरे मोती' दोनों पर इन्हें सेकसरिया पुरुस्कार भी प्राप्त हुआ। छायावादी युग पूर्णरूप से दयानन्द के स्त्री चिन्तन के प्रभाव से प्रभावित रहा है। इसका कारण यह है कि भारतेन्दु युग में 1857 की क्रान्ति हुई थी। लोग जोश में थे और उस समय दयानन्द विद्यमान थे तो जो जागरण था उसमें स्त्री जागरण भी प्रमुख था। वहाँ उसके अत्याचारों तथा दुःखों के साथ हो रहे अन्याय से मुक्ति की बात हिन्दी साहित्यकारों ने प्रत्यक्ष अनुभव की थी। द्विवेदी युग में उस महान् आत्मा दयानन्द के अचानक मृत्यु तथा सम्पूर्ण जीवन को राष्ट्रहित एवं समाज सुधार के लिए झोंकने पर राष्ट्र में उनके कार्यों के प्रति जोश व आक्रोश और अधिक बढ़ गया इस पर सम्पूर्ण द्विवेदी युग पर भारतेन्दु युग से भी अधिक प्रभाव पड़ा और कुछ हद तक नारी जंजीरों से मुक्त भी हुई। किन्तु छायावाद तक आते–आते वह मुक्ति की उस चरम सीमा पर पहुँच गई जहाँ स्वामी दयानन्द का सुधार काल पीछे छूट गया और वह स्वामी दयानन्द के सुधार के साथ महान् लक्ष्य आध्यात्म और रहस्य से प्रभावित हुई और रचनाकारों का नारी को प्रकृति तथा वैदिक रीति में ढूँढना प्रारंभ हुआ। हुआ यह कि वह शारीरिक दासता से तो द्विवेदी युग में मुक्त हो गई अब उसमें आध्यात्मिक भूख जाग गई और यह स्वाभाविक भी था क्योंकि स्वामी दयानन्द ने ही स्त्री को पुरुषों के समकक्ष बताया था प्रत्येक क्षेत्र में वह पुरुषों के बराबर है।

यहाँ साहित्यकारों की सामन्तकालीन एवं मध्य युग की दुर्गन्ध भी पीड़ाजनक थी इसलिए कवि साहित्यकार स्त्री को वह वैदिक सम्मान देने लगे जो उसे मिलना चाहिए था। उस निराकार ईश्वर तथा प्रकृति के रूप में उसे देखना स्वामी दयानन्द का आध्यात्मिक प्रभाव है उपनिषदों एवं वेदों में स्त्री का वर्णन उषा, संध्या, इन्द्राणी, शचि, सूर्या, सावित्री, सिकता निवावरी, अदिति, श्रद्धा, कामायनी, जुहू आदि कई नामों से विख्यात है और यही असर छायावाद में प्रकृति एवं रहस्य रूप में नारी पर पड़ा। यह स्वामी दयानन्द के वेदों एवं आर्ष ग्रन्थों के प्रचार का प्रभाव था। इस कारण कवियों ने नारी का उदात्त रूप प्रकृति, रहस्य एवं आध्यात्म में ढूँढकर उसे वैदिक प्रतिष्ठा प्राप्त कराने की चेष्टा की है।

छायावादी कवियों का प्रकृति रहस्य एवं आध्यात्म की ओर जाने का प्रमुख कारण स्वामी दयानन्द का प्रभाव था क्योंकि वे अब 1857 से लेकर 1936 तक दयानन्द के विभिन्न राष्ट्रीय जागरणों से एवं वेदों के प्रचार–प्रसार से इतने विवेकशील हो गये थे कि उस मध्यकाल की तरह या भक्तिकाल की तरह अनचाही रचना तो नहीं कर सकते थे और न

ही नारी के बारे में या उसके सौन्दर्य या अन्य कोई भी बिन्दु पर वे चर्चा करने से पहले दयानन्द के प्रभाव से इतने सतर्क बना दिये गये थे कि यदि एक शब्द भी नारी की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाने के प्रति लिखा, तो समाज जो दयानन्द के जागरणों से शिक्षित हो चुका था वह उस साहित्य को स्वीकार नहीं करेगा। कवि चारों ओर से बँध गया था इसीलिए भी उसके पास कोई रास्ता नहीं था कि नारी के प्रति अनर्गल प्रलाप करे और उसकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचाए इस कारण उसे एक ही मार्ग प्रकृति दिखाई दी जिसमें उसने नारी की कल्पना कर अपने हृदय को तृप्त किया और यह अनुचित भी नहीं रहा, क्योंकि विवेक के कारण इसमें वासना का निवास भी नहीं था।

दूसरा लम्बी गुलामी से कवि हृदय त्रस्त था इस कारण भी उसने दयानन्द के वेदों के प्रचार में से प्रकृति जन्य तत्त्व निकालकर अपने हृदय को शान्ति प्रदान की और उस पराधीनता के दुःख को लोगों से अलग करने की कोशिश की और उन्हें प्रकृति की गोद में बैठाकर स्वाधीन होने की भी याद दिलाई। छायावाद को पढ़ते-पढ़ते ऐसा महसूस होने लगता है कि वैदिक और उपनिषिद काल में आ गए यहाँ नारी और प्रकृति को मिश्रित कर कवियों ने नारी के वैदिक एवं उदात्त भावों की प्रति कृति की है।

स्वामी दयानन्द ने अपने यजुर्वेद भाष्य में जो प्राकृतिक वर्णन स्त्री के साथ जोड़कर किया है उससे सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि छायावाद में प्रकृति एवं स्त्री के जुड़ाव में स्वामी दयानन्द का कितना प्रभाव है बस ध्यान यह रखना है कि जहाँ वासना एवं अश्लीलता नहीं है वहाँ-वहाँ छायावाद में दयानन्द का प्रभाव है और जहाँ वासना दिखाई देती है वहाँ अन्य प्रभाव है। जरूरी नहीं कि प्रत्येक साहित्यकार एवं कवि पर पूर्णरूप से दयानन्द का प्रभाव पड़े। यह पहले भी बता चुके कि कहीं पूर्ण एवं कहीं आंशिक प्रभाव दयानन्द का आधुनिक हिन्दी साहित्य पर अवश्यमेव रहा है और जब तक यह सृष्टि रहेगी इस प्रभाव से कदापि मुक्त नहीं हो सकती, यह ऐसा प्रभाव है जैसे सूर्य के प्रकाश से कोई नहीं बच सकता। केवल वही बच सकता है जो उसे प्राप्त नहीं करना चाहता। इसीलिए दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ का नाम सत्यार्थ-प्रकाश रखा क्योंकि प्रकाश किसे प्यारा नहीं अर्थात् जो प्रकाश की इच्छा रखता है उसे मिलता है और जो प्रकाश से बचना चाहता है वह छिपकर रहेगा तो प्रकाश वहाँ कैसे पहुँचेगा। वैसे भी कवि एवं साहित्यकार का हृदय सदा प्रकाश की खोज में रहता है।

प्रकृति चित्रण के दयानन्द के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करने से छायावाद की प्रकृति का सहज निरूपण हो जाएगा- "हे स्त्र! तेरा स्वामी जिसके अग्न्यादिक प्रकाशमान अधिष्ठाता है वैसे तू पूर्व दिशा के समान राणी है।"[61]

"हे स्त्र! जो तू विविध पदार्थों से प्रकाशमान दक्षिण दिशा के तुल्य है।"[62]

"हे स्त्र! जो तू पश्चिम दिशा के समान है।"[63]

"हे स्त्र! स्वयं प्रकाशमान उत्तर दिशा है वैसा तेरा पति हो।"[64]

इस प्रकार वेदों में ऐसे सैंकड़ों मन्त्र आते हैं जिसमें स्त्री का प्रकृति से तादात्म्य बैठाकर समझाया है। इसलिए छायावाद में जहाँ स्वच्छ प्रकृति का स्वच्छ स्त्री के साथ संयोग हुआ है वहाँ वह वेदों और दयानन्द के प्रभाव के अधिक निकट ठहरता है और यदि इससे इतर वहाँ अन्य भाव है तो वह इस प्रभाव से दूर है।

वैसे भी पाँच हजार वर्ष के लम्बे अंतराल के बाद स्वामी दयानन्द ने वेदों को पुनर्जीवित किया और यह प्रभाव समकालीन साहित्य में आना कोई अधिक आश्चर्य की बात नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि छायावाद ने नारी को मुक्त कराने की घोषणा तो की पर वह प्रकृति एवं कल्पना में उलझकर रह गई यथार्थ में मुक्त न हो सकी।

5.4 छायावादोत्तर काल

सन् 1936 के बाद से छायावादोत्तर काल में कवियों ने अपना रुख बदला। कल्पना, प्रकृति, रहस्य के साथ–साथ आध्यात्म के विषय में नारी को देखना छोड़कर अब इनकी कविताओं में लोकोन्मुखता का भी स्वर दिखाई देने लगा। इसमें निराला का जीवन संघर्षमय तथा वास्तविक अनुभवों से युक्त रहा। हालांकि उनकी रचनाओं में पहले भी लोकोन्मुखता का स्वर दिखाई देता था। अब युग परिवर्तन के साथ–साथ उनकी कविताओं में 'छायावाद' से एकदम अलग हटकर प्रगतिशीलता की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। उनकी 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम गीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग्स', 'स्फटिक शिला' और 'नये पत्ते' आदि कविताओं में प्रगतिवादी विचारधारा का विकास हुआ है।

सन् 1936 में युगान्त की घोषणा कर पंत ने 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचना की। 'ग्राम्या' में पंत ने ग्राम नारी एवं ग्राम संस्कृति का भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। छायावाद के बाद जो काल आया वह अत्यल्प समय का रहा किन्तु बड़ा ही प्राणवान व ऊर्जावान साहित्य का काल था। 1936 से 1943 तक चलने वाला यह काल प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ इस काल में पहले से चले आ रहे प्रगतिवादी विचार साहित्यकारों के जुड़ गये जैसे निराला में ये भाव पहले से विद्यमान थे, लेकिन इस काल का एक तरफा प्रश्रय या इस धारा के कालावधि के सबसे सशक्त कवि दिनकर रहे हैं।

प्रथम विश्व–युद्ध के उपरान्त भारतीय राजनीति में महात्मा गाँधी के आगमन ने एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए सभी विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने की घोषणा की। यह भी विदेशी शोषण के प्रति खुला विद्रोह था। परन्तु इसमें वर्ग–संघर्ष न होकर राष्ट्रीयता की भावना सबसे ऊपर थी। मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, प्रसाद, निराला, प्रेमचन्द जैसे कलाधर्मी साहित्य में इसी राष्ट्रीय भावना का चित्रण करते रहे। इनका साहित्य सामयिक स्वाधीनता– आन्दोलन का सचित्र इतिहास है। इसमें देश–गौरव के गीत गाये गए, क्रान्ति का आह्वान किया गया, सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन कर नवीन चेतना का प्रसार किया गया। इसका वर्ण्य–विषय प्रधानतः विदेशी–शासन और शोषण का विरोध कर स्वराज्य की स्थापना करना रहा था। इस आन्दोलन का नेतृत्व महात्मा गाँधी के हाथों में रहने के कारण इन कलाधर्मियों का दृष्टिकोण उग्र क्रान्तिपरक न होकर मानवतावादी और समझौतावादी ही अधिक रहा।

द्विवेदीयुगीन साहित्य में तथा छायावादी–साहित्य में इसी विश्वबन्धुत्व वाली भावना का अंकन हुआ था। किन्तु छायावादोत्तर काल में ये सारी भावना और उच्च स्तर पर पहुँच गई। राष्ट्रीय जागरण का जो महर्षि दयानन्द का मिशन था उसे अब गाँधी जी दयानन्द से प्रेरित होकर आगे बढ़ा रहे थे। छायावाद में राष्ट्रीय जागरण की उत्कंठा कुछ ढीली पड़ गई थी किन्तु गाँधी जी के आन्दोलन के कारण प्रगतिवाद में साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा उसमें सम्पूर्ण समाज के हितों, शोषण, अत्याचार, दासता, गुलामी आदि के बिन्दुओं की ओर अधिक ध्यान जाने लगा। इस संघर्ष में शोषित वर्ग में सारी भारतीय जनता आने लगी। स्त्री को भी शोषित वर्ग के साथ ही जोड़ा गया। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति दासता की गुलामी से भयंकर आतंकित एवं पीड़ित था। अब दयानन्द जी के सुझाये मार्ग से राष्ट्र एवं राष्ट्रीय संस्कृति पुनः जागृत होने लगी।

'राष्ट्रीय' शब्द अपने आधुनिक अर्थ में आधुनिक है जिसमें जाति, सम्प्रदाय, धर्म, सीमित भू–भाग आदि की संर्कीणता के स्थान पर क्रमशः एक समग्र देश और उसके भीतर निवास करने वाली समस्त जातियों, भिन्न–भिन्न भू–खण्डों, सम्प्रदायों और रीति–रिवाजों के लोगों का संश्लिष्ट, सामूहिक रूप उभरता गया। कहना न होगा कि अंग्रेजों के आने के समय तक अपनी सांस्कृतिक एकता के बावजूद भारत व्यवहारिक रूप से भिन्न–भिन्न राज्यों में बंटा हुआ था। वास्तव में पूरे भारतवर्ष की एकता के अर्थ में राष्ट्रीयता का विकास आधुनिक काल में हुआ। अंग्रेजों ने समूचे देश में एक शासन स्थापित किया, जिससे पूरे देश के लोग एक राजा की प्रजा हुए और पूरे देश को समान यातना का अनुभव हुआ।

अपने–अपने में बँटे हुए लोगों को यह प्रतीत हुआ कि वे सब मिलकर एक हैं, वे चाहे किसी जाति या धर्म के हों, अंग्रेजों के गुलाम हैं और फिर जब अंग्रेजी शासन के विरुद्ध मुक्ति का अभियान आरम्भ हुआ तो मुक्ति की चेतना किसी धर्म या प्रदेश में सीमित न रहकर पूरे देश में व्याप्त हुई। इस प्रकार आधुनिक काल में जो राष्ट्रीयता का स्वरूप उभरा और विकसित हुआ, उसके तीन आधार हैं– पूरे देश में अंग्रेजी शासन की स्थापना, समग्र भारतीय प्रजा द्वारा अंग्रेजी शासन से उत्पन्न यातना का समान अनुभव तथा स्वाधीनता आन्दोलन और उसका देशव्यापी प्रसार।

जहाँ तक आधुनिक हिन्दी–कविता में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि वह विकसित होता रहा है। आरम्भ में छोटे–मोटे दुःख–दर्दों, सहज भावात्मक प्रतिक्रियाओं तथा अतीत स्मरण के रूप में लक्षित होने वाली राष्ट्रीयता धीरे–धीरे जटिल और संश्लिष्ट होती गयी तथा अनेक मानवीय और सार्वभौम प्रश्नों तथा संवेदनों से सम्पन्न होती चली गयी। नयी–नयी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों ने उसे जटिल रूप प्रदान किया। द्विवेदी–काल तक भारतीय राष्ट्रीयता बहुत कुछ हिन्दू राष्ट्रवाद के रूप में दिखायी पड़ती है। इसका कारण सायास हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रसार नहीं था, वरन् उस भारतीय दृष्टि का अभाव था, जो गाँधी जी के व्यक्तित्व में उभरकर आयी।

राष्ट्रीयता का सम्बन्ध देश के स्थूल सुख–दुःख और आक्रोश के चित्रण से ही नहीं होता बल्कि राष्ट्र की आत्मा या चेतना की पहचान से होता है। यह चेतना स्थिर न होकर गतिशील रहती है, अर्थात् नव–नव परिस्थितियों में नये–नये कोण उभारती रहती है और पुराने कोण छोड़ती रहती है। संस्कृति का सम्बन्ध इसी आत्मा या चेतना से होता है। यह संस्कृति जहाँ इतिहास के रूप में हमारे लिए प्रेरणा और पृष्ठभूमि बनती है, वहाँ वर्तमान चेतना से स्पन्दित होकर हमारा जीवन बन जाती है। प्रतिभावान् और नव–दृष्टि–सम्पन्न कवियों ने संस्कृति के उदात्त अतीत रूप को वर्तमान जीवन–सन्दर्भों में पुनर्परीक्षित करके ही स्वीकार किया है। यह प्रयास प्रस्तुत अवधि के पूर्व रचित महत्त्वपूर्ण काव्य–कृतियों–'यशोधरा', 'पंचवटी', 'साकेत', 'प्रिय–प्रवास', 'कामायनी', 'राम की शक्ति पूजा' आदि में भी लक्षित होता है।

प्रस्तुत अवधि में प्रकाशित काव्य–कृतियों में प्रमुख हैं– 'कुरुक्षेत्र', 'जयभारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त', 'रश्मिरथी', 'विक्रमादित्य' आदि। इनके अतिरिक्त 'इतिहास के आँसू' की फुटकल कविताओं को भी इस सन्दर्भ में देखा जा सकता है। इन कृतियों में वर्तमान जीवन–प्रश्नों का प्रत्यक्ष या परोक्ष अंकन आकलन तो अवश्य है, किन्तु उन्हें परिणति देने

वाला स्वर भारतीय है, अर्थात् भारतीय संस्कृति के किसी उदात्त स्वर की तलाश ही इन प्रश्नों के बीच भटकती है। मैथिलीशरण गुप्त इस धारा के श्रेष्ठ कवि हैं। कवि ने अपने समय की समस्त राष्ट्र–चेतना को अपने शब्दों में स्वर दिया है। काव्यात्मक दृष्टि से यह स्वर बड़ा ही विषम है, कहीं गहन, कहीं एकदम विवरणात्मक। फिर भी, जहाँ अपने युग को उसके बहुरंगी रूप में पकड़ने का प्रश्न है, गुप्त जी बहुत जागरूक कवि रहे हैं। माखनलाल चतुर्वेदी और बालकृष्ण शर्मा नवीन इन दोनों कवियों में बहुत साम्य है। यों नवीन जी सौन्दर्य और प्रेम की कविताएँ लिखने के कारण छायावादी कवियों के समीप पहुँच जाते हैं; किन्तु जहाँ तक राष्ट्रीय–सांस्कृतिक कविता का प्रश्न है, इन दोनों ने पराधीन राष्ट्र की व्यथा, अंग्रेजी शासन के अत्याचारों, स्वाधीनता सेनानियों के अदम्य उत्साह, कारागाह–यात्रा और उनकी बेबसियों आदि के चित्रण में ही अपनी व्यस्तता दिखायी है; सांस्कृतिक पक्ष उनसे प्रायः छूट ही गया है। वर्तमान के सन्दर्भ में अतीत के पुर्नपरीक्षण, संक्रान्त मूल्यों के आकलन, बृहत्तर मानवीय प्रश्नों और संवेदनाओं के अनुभव में इनका मन उतना रम नहीं सका है।

प्रगतिवादी काव्यधारा के सबसे सशक्त कवि दिनकर को माना जा सकता है। विलासी उच्च समाज के आधार स्तम्भ कृषक और मजदूर हैं, दोनों शोषित हैं। गुलाम भारत में गरीबी एवं अमीरी का यह फासला इतना अधिक हो चुका था कि चन्द गुलाम पूँजीपति अंग्रेजों की गुलामी करके मजदूर तथा कृषक को दिनोंदिन अधिक शोषण का शिकार बना रहे थे।

दिनकर ने जब लिखना प्रारंभ किया तब देश की स्थिति गुलामी खत्म करने के लिए प्रयत्नशील थी। देश गुलामी से कराह रहा था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन, कांग्रेस की पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य की घोषणा, भगतसिंह तथा उनके साथियों को फाँसी आदि अनेक कारण थे जिससे सम्पूर्ण देश के जनमानस पर आन्दोलन का प्रभाव था। बीसवीं शताब्दी के तीसरे–चौथे दशक का यह कालखण्ड बड़ा महत्त्वपूर्ण था जिस प्रकार द्विवेदी युग में दयानन्द और आर्य समाज का प्रचार होने से वह सुधार काल में परिवर्तित हो गया वैसे ही भगतसिंह चन्द्रशेखर, रामप्रसाद बिस्मिल, अश्फाक उल्ला खाँ, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानंद, दयानन्द के शिष्य एवं आर्य समाज से प्रभावित होने से आम जनता का ध्यान स्वामी दयानन्द एवं आर्य समाज से कुछ सीखकर देश के लिए कुछ करने को गया।

हिन्दी साहित्य में इसी प्रभाव से प्रभावित होकर दिनकर ने हूँकार भरी और सारे भारत को अपनी कविताओं से हिलाकर रख दिया। जब सारा भारत स्वतंत्रता के लिए आगे बढ़ रहा था तो स्त्रियाँ भी इस स्वतंत्रता में आगे बढ़ रही थी और देश की स्वतंत्रता के साथ–साथ अपनी भी स्वतंत्रता का भान कर रही थी। दिनकर ने नारी को भी शोषित माना वह पुरुष की दासी बनकर बहुत समय से उसकी छाया बनी। उसे अपने स्वतंत्र अस्तित्व की तलाश थी। दिनकर का कुरूक्षेत्र एक दृष्टि से तो युधिष्ठिर की आन्तरिक खिन्नता से उठने वाले प्रश्नों का भीष्म द्वारा जवाब था और दूसरी दृष्टि से तत्कालीन सामाजिक अव्यवस्था, युद्ध व पूँजीपतियों के विरुद्ध शोषित जन का आक्रोश था लेकिन यहाँ शोधार्थी की दृष्टि से इसमें एक और बिंदु था जो शोध योग्य है और वह था इन सब परिस्थितियों के बीच में और साहित्यकार के अन्तर्मन में भी दयानन्द की दृष्टि विद्यमान थी।

वस्तुतः नारी घर की गृहणी होती है लेकिन जिस घर का पुरुष ही गुलाम हो या शोषित हो तो वहाँ की नारी तो गुलाम की गुलाम या शोषित की भी शोषित हुई। जैसे तिल से तेल निकालने के बाद बची हुई खल को फैक्ट्रियों में ले जाकर उनमें से फिर तेल निकालते हैं इसी प्रकार स्त्री दो बार पिसती है पहले परिवार फिर सरकार! इसमें भी यदि कम पड़े तो अभी उसे समाज भी पीसने के लिए तैयार बैठा है! ताक में है चौबीसों घण्टे। इसीलिए तो मनु ने नियम बनाया था कि स्त्री क्रमशः पिता, पति एवं पुत्र से रक्षित रहे। कम से कम समाज के पिसाव से तो बच जाये किन्तु लोगों ने इस मनु के नियम का उलटा अर्थ कर दिया और अब तो बड़ी–बड़ी स्त्री–विमर्श लेखिकाएँ भी इस पिता, पति व पुत्र से रक्षित वाली बात को रात दिन दकियानूसी विचार बताकर अपने स्त्री मुक्ति ग्रन्थ की संख्या बढ़ाकर प्रशस्ति पा रही हैं। अस्तु।

बात यहाँ पर सीधी है कि दिनकर के काव्य का बोध विद्वानों ने जो भी दिया हो किन्तु यहाँ शोध की जगह बाकी है।

"शान्ति नहीं तब तक, जब तक
सुख–भाग न नर का सम हो,
नहीं किसी को बहुत अधिक हो,
नहीं किसी को कम हो।"[65]

वेदों का भाष्य करते हुए भी स्वामी दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है कि व्याकरण के नियम या सृष्टि नियम के अनुसार 'पुरुष' शब्द का अर्थ यदि मनुष्यों के अर्थ में आता

है वहाँ स्त्री एवं पुरुष दोनों समझना चाहिए। उन्होंने अपने व्याख्यानों में सैंकड़ों बार कहा है कि– **"पर यह अवश्य कहूँगा कि ईश्वर के समीप स्त्री–पुरुष दोनों बराबर हैं।"**[66] विश्व में जितने भी युद्ध हैं ये सब सम न होने से अर्थात् असमानता के कारण ही हैं चाहे वह कैसा भी क्षेत्र हो छोटा या बड़ा यदि विचारों का भी आदान–प्रदान समान न होगा उसमें भी युद्ध की संभावना रहती है।

"पर, जिनकी अस्थियाँ चबाकर
शोणित पीकर तन का,
जीती है यह शान्ति, दाह
समझो कुछ उनके मन का।"[67]

शोषित वर्ग का रक्त तो पूँजीपति और ब्रिटिश शासक पी ही रहे थे किन्तु उन स्त्रियों का भी तो रक्त शोषित वर्ग पी रहे थे। जिनके वे स्वामी थे। उनके मन की दाह को कौन समझेगा। उच्च वर्ग और पूँजीपतियों में भी स्त्रियों की दशा कुछ ठीक नहीं थी वहाँ वे केवल भोग एवं ऐश्वर्य मात्र के लिए उपयोग ली जाती थी। शोषित वर्ग स्त्री के रक्त को पीता था, तो पूँजीपति स्त्रियों के मांस के भूखे भेड़िये बने हुए थे, वे अपनी पूँजी के दर्प में रौंदते थे। स्त्रियाँ पूँजीपति होकर भी पूँजीपतियों द्वारा रोज कुचली जाती थीं अतः उन्हें भी वहाँ अपने शोषण का पूरा आभास था; वे भी इस वातावरण से मुक्त होना चाहती थीं। ब्रिटिश शासन तथा पूँजीपति गुलामों के विरूद्ध पूँजीपति पतियों की स्त्रियाँ भी देश के गरीब, शोषित और कुचली गई जनता के साथ थीं, जो उनकी आजादी के साथ अपनी भी आजादी का स्वप्न देख रहीं थीं, उन्हें भी उन बन्द कमरों और पूँजीपतियों के मर्दन से मुक्ति का प्रकाश चाहिए था–

"सबको मुक्त प्रकाश चाहिए
सबको मुक्त समीकरण,
बाधा रहित विकास, मुक्त
आशंकाओं से जीवन।"[68]

उदाहरण हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में से देख सकते हैं इस समय स्त्रियों के प्रति लोगों की वासना मध्यकाल की तरह भड़कने लगी थी। भारतेन्दु और द्विवेदी युग में तो दयानन्द के सुधार आन्दोलन के साथ अनेक सुधारवादी महापुरुषों ने स्थिति नियंत्रित कर स्त्रियों के प्रति शिक्षा एवं सम्मान के भाव जागृत किए थे, जिसका असर छायावादा तक रहा। किन्तु 1857 के स्वाधीनता आन्दोलन के पश्चात् अंग्रेजों की दमनकारी नीति और उनका प्रभाव अधिक हो गया। महारानी विक्टोरिया का धूर्ततापूर्ण घोषणा पत्र पंडितों,

मुल्लाओं, राजा महाराजाओं तथा पूँजीपतियों को तुष्टिकरण करना प्रदान कर देश में अंग्रेजियत का प्रभाव और अधिक करने का रहा। फलस्वरूप वर्ग–संघर्ष की दमित भावना तथा स्वाधीनता की आग भीतर ही भीतर तीव्र होती गई। केवल गाँधी का प्रभाव भारतीय जनता पर कायम था। लेकिन अंग्रेजों की चालाकी से इस देश की जनता में पाश्चात्य संस्कृति पनपने लगी और स्त्रियों के प्रति भेड़िया–दृष्टि का पुनः विकास होने लगा। जिसका दंश आज तक भी निर्भया दिल्ली जैसा हमें भुगतना पड़ रहा है। कुछ प्रभाव स्वामी दयानन्द का आर्यसमाज के द्वारा जनता में था, उसका धीरे–धीरे लोप होने लगा। जहाँ सौ प्रतिशत प्रभाव था वहाँ वह विदेशी सभ्यता के हावी होने पर घटकर पचास प्रतिशत ही रह गया। इस विदेशी सभ्यता की आँधी ने स्त्रियों की मनोदशा को झकझोर कर रख दिया। दिनकर की कविताओं में वर्ग संघर्ष एवं स्वाधीनता के स्वर तो हैं ही लेकिन गूढ़ता से देखने पर यह सहज ही पता चलता है कि उसमें स्त्रियों पर होने वाले अनैतिक कार्य भी द्रौपदी के माध्यम से उजागर हुए हैं। पाश्चात्य सभ्यता से जो स्त्रियों के प्रति लोगों की वासना थी उनका दिनकर ने बड़ा स्पष्ट विवरण दिया है–

"वासना की यामिन, जिसके तिमिर से हार,
हो रहा नर भ्रान्त अपना आप ही आहार;
बुद्धि में है नभ की सुरभि, तन में रुधिर की कीच,
यह वचन से देवता, पर, कर्म से पशु नीच।"[69]

दिनकर में यह स्वामी दयानन्द का ही प्रभाव था कि वे गाँधीवादी होते हुए भी क्रान्ति, विध्वंस और स्वाधीनता का समर्थन करते हैं। क्योंकि उनके मन में पूर्ववर्ती कवियों जो कि दयानन्द से प्रभावित थे उनका भी प्रभाव पड़ा। रामनरेश त्रिपाठी तथा नवीन की राष्ट्रीय रचनाओं से प्रभावित थे। क्योंकि दयानन्द काल के बाद से दयानन्द के स्वतंत्रता संबंधी इन शब्दों की गूँज सब के मन में थी– "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अपनी प्रजा पर माता–पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं होता।"[70]

व्यक्तिगत रूप से दिनकर जी अपनी माता जी की धर्म–परायणता और काव्य प्रेम से बहुत प्रभावित हुए थे। उनकी पत्नी ने भी, प्रत्यक्षतः या परोक्षतः, उनके कवि जीवन को बराबर प्रभावित किया। उनकी नारी संबंधी विचारधारा में इन दोनों ही स्त्रियों का प्रभाव स्पष्टतया देखा जा सकता है। 'पुरुष प्रिया', 'नारी', 'बालिका से वधू' तथा 'कत्तिन का गीत' आदि रचनाओं में नारी के आधुनिका, रक्षणीया एवं माता आदि रूपों में कवि अन्तिम

रूप को ही श्रद्धेय मानता है। हूँकार के कवि की कालजयी पंक्तियों में तत्कालीन पूँजीवाद वर्ग संघर्ष तथा शोषित की भी शोषित नारी की जो दशा का वर्णन हुआ है वह राष्ट्र एवं नारी स्वाधीनता की माँग करता है–

"श्वानों को मिलता दूध वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं।
माँ की हड्डी से चिपक ठिठुर, जाड़े की रात बिताते हैं।।
युवती के लज्जा वसन बेच, जब ब्याज चुकाये जाते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं।।
पापी महलों का अहंकार, देता मुझको तब आमन्त्रण।"[71]

छायावादोत्तर युग के प्रगतिवाद में कवियों ने नारी को भी शोषित माना उसकी पीड़ा का आतुर भाव यहाँ दिखाई देता है। पंत ने अपनी 'आधुनिक कवि की भूमिका' में लिखा है– 'सामन्त युग के स्त्री–पुरुष–सदाचार का दृष्टिकोण अब अत्यंत संकुचित लगता है। उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर यष्टि रहा है।'

प्रेमचन्द के उपन्यासों में तथा कहानियों में भी छायावादोत्तर काल की स्वतंत्रता एवं स्त्रियों पर होते अत्याचारों एवं उनकी समस्याओं का चित्रण है। ग्रामीण एवं शहरी दोनों स्त्रियों की स्थितियों का वर्णन है। गाँधीवादी एवं प्रगतिशील विचारों की पुष्टि उनके साहित्य में भरपूर है। कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द के बाद के उपन्यासों एवं कहानियों में प्रगतिवादी स्वर दिखाई देता है। निराला अपने 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा', जैसे लघु उपन्यासों तथा 'देवी', 'चतुरी चमार' जैसी कहानियों में प्रगतिवादी विचारधारा के अनुसार सामाजिक चित्रण करते हुए सामने आए हैं। यशपाल ने 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या', 'झूठा–सच' आदि उपन्यासों तथा दर्जनों कहानियों में तत्कालीन प्रगतिवादी विचार प्रस्तुत किए हैं। नागार्जुन ने बिहार के विभिन्न आँचलिक क्षेत्रों के जन–जीवन का चित्रण कर शोषण, अन्याय, अत्याचार, रूढ़ि–बंधन आदि का विरोध किया है। अमृतलाल नागर 'महाकाल', 'सेठ बाँकेमल', 'बूँद समुद्र' जैसे उपन्यासों में प्रगतिशील चित्रण हुआ है।

छायावादोत्तर काल वह समय था जब भारत देश आजादी की ओर अग्रसर था। छायावाद सन् 1936 पर खत्म हो चुका था साहित्यिक प्रवृत्तियों में साहित्यकारों द्वारा युग की माँग के आधार पर बदलाव प्रारंभ हो चुके थे। ब्रिटिश सरकार के धूर्ततापूर्ण एवं दमनकारी नीति से सारे भारत की जनता में हाहाकार मचा हुआ था। इसी युग में लोगों को स्वतंत्रता से युक्त और अपने पौरुष का विकास करने वाला साहित्य ही प्रिय लगने

लगा। प्रगतिवाद में देश तथा लोगों की यथार्थ स्थिति पर साहित्य प्रगतिशील था। इसके पश्चात् हिन्दी साहित्य में प्रयोगवाद के नाम से साहित्यिक रचनाएँ होने लगी जिसमें अज्ञेय की काव्य रचनाएँ प्रमुख रही। प्रयोगवादी कविताएँ ह्रासोन्मुख मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र है। इनमें मध्यवर्गीय दीनता–हीनता अंतर्मुखता, पलायन आदि का चित्रण हुआ है। प्रयोगवाद सन् 1943 में तार सप्तक से प्रारंभ होता है। प्रायः प्रयोगवादी कवि कुण्ठाग्रस्त है, धर्मवीर भारती की पंक्तियों में कुण्ठा दिखाई देती है–

"अपनी कुण्ठाओं की
दीवारों में बन्दी
मैं घुटता हूँ।।"[72]

इसके पश्चात् भी कुछ कवियों में स्वामी दयानन्द का प्रभाव जागृत हो जाता है और वह अपनी कुंठाओं और ह्रासोान्मुखता को कम करता हुआ सामाजिक वैशम्य और आर्थिक वैशम्य की पीड़ा को स्वामी दयानन्द के दार्शनिक स्तर पर एक चिरन्तन सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। अपने दुःख को दयानन्द के प्रभाव से सबको मांजने और मुक्त रखने की सीख के रूप में प्रचारित करते हैं, अज्ञेय की निम्न पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है–

"दुःख सबको मांजता है
और
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने, कन्तु
जिनको मांजता है
उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखें।"[73]

इसी बीच सन् 1946 में हिन्दी साहित्य जगत के प्रसिद्ध लेखक हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्म–कथा' आया। इसमें बाणभट्ट और महाराज हर्ष के एक छोटे काल खण्ड को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास के केन्द्र में स्वयं बाणभट्ट का जीवन है जो राष्ट्रीय अस्मिता की प्रतीक तुवरमिलिंद की कन्या भट्टिनी की मुक्ति के महत् उद्देश्य को लेकर आगे बढ़ता है। लेकिन यहाँ द्विवेदी जी की जो मुख्य विशेषता है वह केवल भट्टिनी की मुक्ति तक ही सीमित न रहकर पराधीन भारत की राष्ट्रीय मुक्ति, नारी मुक्ति को भी रेखांकित करती है। इस प्रक्रिया में द्विवेदी जी ने ऐतिहासिकता की पूरी तरह रक्षा करते हुए अपने युग के राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए अनिवार्य एकता, सामाजिक–साम्प्रदायिक सद्भाव, नारी मुक्ति, जातिवाद की भावना को अत्यंत कलात्मक ढंग से संकेतित किया है। यह समूचा प्रयास उपन्यास को समकालीन यथार्थ से जोड़ता है।

छायावादोत्तर काल की यह सबसे सशक्त रचना है। जिसमें स्वामी दयानन्द के स्त्री चिन्तन का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। वैसे भी हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने लेखों में कई स्थलों पर स्वामी दयानन्द और आर्य समाज की खुलकर सत्यता प्रकट की है। इस कारण दयानन्द के प्रभाव से यह उपन्यास अभिभूत है। मध्यकाल में नारी की भारतीय समाज में स्थिति भोग्या वस्तु के रूप में थी। स्त्रियों का अपहरण और उनकी खरीद फ़रोख़्त सामान्य बात थी उस ऐतिहासिक तथ्य को आज के युग से मेल कराते हुए नारी महिमा का जो रूप खड़ा किया है वह अनूठा है बाणभट्ट की आत्म कथा में एक भी ऐसा नारी पात्र नहीं है जो अपने चरित्र से स्त्री की गरिमा को बढ़ाता न हो। भट्टिनी, निपुणिका महामाया, सुचरिता आदि सभी प्रमुख नारी पात्र स्त्री का ऐसा आदर्श सामने रखते हैं जो वंदनीय है। विभिन्न पात्रों के द्वारा नारी के संबंध में व्यक्त कराए गये विचार भी द्विवेदी जी के नारी विषयक दृष्टिकोण तथा स्वामी दयानन्द के स्त्री चिन्तन से भरपूर स्पष्ट दिखाई देते हैं उन पात्रों में पूरे संयम की विद्यमानता दिखाई देती है। महामाया भैरवी भट्टिनी से कहती है– "हाँ बेटी, नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। यह धर्मकर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संघठन और राज्य व्यवस्थापन सब फेन–बुदबुद की भाँति विलुप्त हो जाएंगे; क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है। ये सारा ठाट–बाट संसार में केवल अशान्ति पैदा करेगा।"[74] महामाया 'नारी तत्त्व' की व्याख्या करती है– "जहाँ कहीं अपने आपको उत्सर्ग करने की, अपने आप को खपा देने की भावना प्रधान है, वहीं नारी है। जहाँ कहीं दुःख सुख की लाख–लाख धाराओं में अपने को दलित द्राक्षा के समान निचोड़कर दूसरे को तृप्त करने की भावना प्रबल है, वहीं 'नारी तत्त्व' है, या शास्त्रीय भाषा में कहना हो, तो 'शक्ति तत्त्व' है।"[75]

बाणभट्ट प्रथम बार सुचरिता को देखकर अपने भाव व्यक्त करता है 'मुझे बार–बार वराहमिहिर की याद आती रही और मैं उनकी सहृदयता पर मुग्ध हुए बिना नहीं रहा। उन्होंने ठीक ही कहा है, **स्त्रियाँ ही रत्नों को भूषित करती हैं, रत्न स्त्रियों को क्या भूषित करेंगे।**' बाणभट्ट निपुणिका के प्रसंग में चिन्तन करता है– "नारी से बढ़कर अनमोल रत्न और क्या हो सकता है ? पर उससे अधिक दुर्दशा किसकी हो रही है ? मुझसे निपुणिका क्या आशा रखती है ? अवधूतवाद की साधना इसीलिए अधूरी है कि उन्हें विशुद्ध नारी का सहयोग नहीं मिला और निपुणिका की बलिदानाकांक्षा इसीलिए अपूर्ण है कि उसे पुरुष का करावलम्ब नहीं मिला।"[76] भट्टिनी की कामना है कि भारतवर्ष बार–बार क्रूर और आततायी 'प्रत्यत्त दस्युओं' से पादाक्रान्त न हो, उनके द्वारा स्त्रियों और बच्चों का, ब्राह्मणों और श्रमणों का, वृद्धों और बालिकाओं का संहार न हो, मन्दिरों और विहारों का ध्वंस न हो,

ग्राम और नगर जलाकर भस्मीभूत न किए जाएँ। महामाया इस समस्या के समाधान के लिए जनजागरण का सन्देश देती हैं। भट्टिनी महामाया से सहमत है कि 'राजाओं और राजपुत्रों की ओर ताकते रहने से आर्यावर्त का उद्धार नहीं होगा।' पर उसकी दृष्टि में यह अर्ध सत्य है। वह एक ऐसे विश्व की कल्पना करती है कि जिसमें युद्ध हो ही नहीं। वह इस सत्य को सामने रखना चाहती है कि 'यवन' और भारतवासी दोनों ही मनुष्य हैं। महामाया जिन्हें यवन कह रही हैं, भट्टिनी की दृष्टि में वे भी 'मनुष्य' हैं, "भेद इतना ही है कि उनमें सामाजिक ऊँच–नीच का ऐसा भेद नहीं है। जहाँ भारतवर्ष के समाज में एक सहस्र स्तर हैं वहाँ उनके समाज में कठिनाई से दो तीन होंगे।"[77]

'बाणभट्ट की आत्मकथा' में प्रेम को उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठा मिली है। बाणभट्ट कहता है कि– 'मैं स्त्री शरीर को देवमंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।' वह नारी को विलास की नहीं, करूणा की मूर्ति मानता है। यहाँ प्रेम देह कामना से बहुत हद तक निरपेक्ष है। भट्टिनी और बाण दोनों ही प्रेम को शारीरिक तृप्ति का माध्यम नहीं बनने देते। इसीलिए प्रेमास्पद पर एकाधिकार की वह कामना यहाँ दिखाई नहीं देती जो विकारों को पल्लवित करती है। भट्टिनी एवं भट्ट का प्रेम अक्षुण्ण बना रहता है। दरअसल, प्रेम का यह लोकोत्तर चरित्र है जिसमें विश्व की कल्याण भावना निहित है। 'मैं ऐसा काव्य लिखता कि युग–युग तक इस पवित्र आर्य भूमि में नारी–सौन्दर्य की पूजा होती रहती और इस पवित्र देव–प्रतिमा को अपमानित करने का साहस किसी को न होता।' अघोर भैरव ने कहा था कि भट्ट पशु नहीं है अर्थात् उसकी वृत्तियाँ पशुवत् नहीं है। वैसे भी, प्रेम शरीरी होकर भी मानव–जगत् में ही स्थायित्व पाता है। दैहिक तृप्ति प्रेम की गहराई नहीं है। वह प्रेम को स्थायित्व नहीं दे सकती। उसका प्रेम व्यापक सामाजिक सरोकार से जुड़ जाता है। प्रेम और सौन्दर्य की सार्थकता उसके रचनात्मक होने में है। भट्टिनी का प्रेम और सौन्दर्य पूरी तरह रचनात्मक हैं। यही कारण है कि भट्टिनी के प्रति भट्ट का प्रेम आर्यावर्त के उद्धार का महान् लक्ष्य लेकर अग्रसर होता है जिसमें स्त्री जाति की शुचिता और सुरक्षा का भाव निहित है। यह रचनाकार की उदार दृष्टि का प्रमाण है कि उसने बाणभट्ट के प्रेम की वैयक्तिक सार्थकता को लोभ की सार्थकता के साथ जोड़ दिया है और उसे एक उच्च आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए प्रेम का यह स्वरूप एकनिष्ठ होते हुए भी सामाजिक है।

स्वामी दयानन्द के अनुसार स्त्रियाँ पूजा योग्य हैं– "पूजा शब्द का अर्थ सत्कार है।"[78] इसलिए स्त्रियों का सत्कार सम्मान करना चाहिए।

वराहमिहिर कहता है 'स्त्रियाँ ही रत्नों को भूषित करती है रत्न स्त्रियों को क्या भूषित करेंगे ? तो प्रकारांतर से ये भी मनुष्य सत्ता का बोध कराना चाहते हैं। स्त्री के दुर्गम–अथाह दुःख को समझना बहुत कठिन है। बाणभट्ट कहता है कि ' स्त्री के दुःख इतने गंभीर होते हैं कि उसके शब्द उसका दशमांश भी नहीं बता सकते। इस प्रकार यह स्त्रियों की मुक्ति की चेतना से भरा हुआ है। यहाँ दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव हजारी प्रसाद द्विवेदी पर दिखाई देता है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' में भी स्वामी दयानन्द का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इसी दौरान स्त्री साहित्यकार भी पीछे न रही और स्वामी दयानन्द के प्रभाव से शिक्षित होकर स्वतंत्र रचनाएँ करने लगी। इनमें से अधिक तो आर्यसमाज से प्रभावित एवं स्वयं खुद आर्यसमाजी स्त्रियाँ थीं जो हिन्दी साहित्य में अपने तप से आगे बढ़कर स्त्री की स्वतंत्रता एवं उसके ज्ञान की परीक्षा दे रही थी। इनमें से ही विद्यावती कोकिल का नाम है प्रयाग विद्यापीठ से शिक्षा प्राप्त कर साहित्यिक रचनाएँ की, साहित्य साधना के साथ आध्यात्म मार्ग का भी अनुसरण किया। इनके गीतों का प्रथम संग्रह 'अंकुरिता' नाम से सन् 1941 में प्रकाशित हुआ।

"आज जल उठा एकाकीपन
तोड़ो मेरी कारा तोड़ो,
घाव बन गया यह दुराव
खोलो मेरे बंधन खोलो।"[79]

स्त्री मुक्ति की और स्वतंत्रता की ओर कामना उपरोक्त कविता में दिखाई देती है यह स्त्री जागरण का ही फल है।

शकुन्तला सिरोठिया का जन्म सन् 1915 में कोटा राजस्थान में हुआ। इनके काव्य में स्त्री मुक्ति की पीड़ा जो सूर्य की आग को अपने स्त्री मुक्ति की दाह में देखती है–

"किसके अंतर की दाह दिखाता
सुलग सुलगकर दिनकर?
किसकी उर–प्याली भरता नभ
नित निशि में टपक–टपक कर?।"[80]

इसी प्रकार जीवन के प्रति स्त्रियों में धैर्य एवं आशा की किरण की ऊर्जा से धीरे–धीरे स्त्रियों के दुःखों में कमी आने का सकारात्मक संदेश इन पंक्तियों में दिया है–

यह स्त्री जागरण की सशक्त पंक्तियाँ हैं–

"कितनी रात अंधेरी हो पर
धीरे–धीरे घट जाती है।
कितनी दूरी मंजिल की हो
चलते चलते कट जाती है।"[81]

शकुन्तला सिरोठिया ने कितना बड़ा संदेश स्त्री जागरण का यहाँ प्रस्तुत कर दिया है कि एक न एक दिन तो स्त्रियाँ समकक्षता पाकर रहेंगी। इनकी प्रमुख रचनाएँ 'मेरे परदेसी', 'चाँद इतना हँसा' तथा 'सुधि के स्वर' हैं।

हीरा देवी चतुर्वेदी की कविताएँ सन् 1940 में तीन संग्रह 'मंजरी', 'नीलम', 'मधुबन' प्रकाशित हुए। राष्ट्रीय सामाजिक परिस्थितियों से युक्त कविता में इन विषमताओं को देखिए– **"मेरा कवि क्या गीत सुनाए?**

युग की पीड़ित मानवता का
लेखा जोखा कौन लगाए?
आज भूख से व्याकुल रोते
शस्य श्यामलता भू पर सोते
मानव के कंकाल पथ पर
जीवन में ही मृत्यु छिपाए!"[82]

इनकी पुस्तक 'मधुबन' 1940 में साहित्य प्रेस जबलपुर से प्रकाशित है इसके अलावा इनके निबंध व कहानियों में समाज की विसंगतियों एवं साहित्य में चल रहे प्रयोगों पर भी ध्यान दिया है।

प्रणय और सौन्दर्य की रचना करने वाली रामेश्वरी देवी चकोरी पर भी स्वामी दयानन्द का प्रभाव पड़ा और उन्होंने देश को दासता से मुक्त करने के लिए युवाओं में जागृति के लिए भी कविताएँ लिखी–

"दासता मिटा दो औ, भगा दो भाव भीरूता को
भारत वसुन्धरा की, वीरों हां बचा लो लाज।
देश बलिवेदी पर मरना यही हो प्रण,
लेकर अहिंसा–अस्त्र रण के सजा दो साज।
कहर मचा दो आततायियों के झुंडों पर,

कायर शिखंडियों के गर्व पै गिरा दो गाज।
मोहिनी स्वराज्य ध्वनि गूंज उठे भारत में
ऐसी रणभेरी नवयुवकों बजा दो आज।"[83]

शान्ति अग्रवाल का नाम स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व के लेखकों में प्रमुख है। वे बरेली के एक धनाढ्य वैश्य परिवार की जन्मी हुई हैं। इनकी कृतियों में 'स्वतंत्रता संग्राम', 'गौरव पद्य', 'बालवीणा' आदि प्रमुख हैं ओज से भरी हुई रचनाएँ क्रान्ति के लिए सहायक थीं जिससे युवकों में देश के प्रति सम्बल प्राप्त हो–

"सिंहनाद सुन हुई प्रकंपित चोरी चोरी–गिरि की,
फड़की निज जन शोर्य देखकर बोरी–बोरी गिरि की।
निज–निज अगणित आयुध लेके गरज उठे मस्ताने,
चले निराशा में आशा के मानो दीप जलाने।"[84]

स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों पर चलने वाली आर्य समाज परिवार से सम्बद्ध तथा राष्ट्र की स्वतंत्रता में सहयोग प्रदान करने वाला चन्द्रकिरण सोनरेक्सा का पूरा परिवार दयानन्द का भक्त था। चन्द्रकिरण सोनरेक्सा का जन्म पेशावर में हुआ। इनकी सबसे पहली कहानी 'अछूत' सन् 1931 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'विषय' में छपी थी। इन्होंने अपनी रचनाओं में स्त्री स्वतंत्र्य एवं सामाजिक विद्रूपताओं को बड़े सूक्ष्म ढंग से प्रस्तुत किया है। उपेक्षित के प्रति इनके मन में संवेदना थी पुरुष का वर्चस्व एवं स्त्री की विवशता, उत्पीड़ित वर्ग के यथार्थ आदि का चित्रण इनकी कहानियों में हुआ है। "अपने समाज में नारी विडम्बनापूर्ण स्थिति पर अपनी कहानियों के माध्यम से प्रकाश डालने वाली चन्द्रकिरण सोनरेक्सा स्वदेशी आन्दोलन से भी जुड़ी।...चन्द्रकिरण सोनरेक्सा सन् 1940 के बाद उभरने वाली कथा लेखिकाओं में सबसे सफल लेखिका रही हैं।"[85] उनकी आत्मकथा 'पिंजरे की मैंना' के माध्यम से सन् 1857 की क्रान्ति में अपने पूर्वजों का वर्णन तथा दयानन्द के प्रभाव की भूमिका को भी दर्शाया है। इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन महिला लेखिकाएँ दयानन्द का कितना उपकार मानती थी और स्त्री जागरण में वे उनसे कितनी प्रभावित थीं।

सन् 1926 में बूँदी राजस्थान में जन्मी शान्ति मेहरोत्रा ने 1944 में अपनी काव्य कृति को 'निष्कृति' नाम से निकाला इसके बाद भी कई अन्य रचनाएँ इन्होंने लिखी। इसके बाद चन्द्रमुखी ओझा, कुमारी शकुन्तला शर्मा आदि ने भी हिन्दी साहित्य में नारी लेखन को गति प्रदान की है।

इनके अतिरिक्त स्वामी दयानन्द से प्रभावित होकर सुशीला देवी और दुर्गा भाभी भी ऐसी महिलाएँ थीं जो आजादी की लड़ाई में क्रान्तिकारियों का वेष बदल–बदल कर निरन्तर सहयोग किया करती थी अपनी जान की परवाह किए बिना। स्त्रियों की उन्नत राष्ट्रभक्ति के पीछे दयानन्द ही था।

भारत की स्वतंत्रता के बाद मुस्लिम समाज की स्त्रियाँ भी शोषण व पीड़ा की शिकार थीं और वे भी दयानन्द की विचारधारा आर्य समाज से प्रभावित थीं। परिणाम यह हुआ कि जो स्त्रियाँ उनके सामाजिक बंधनों के बारे में आवाज तक नहीं उठा सकती थीं वे अपनी आजादी के लिए छटपटाने लगी। मुस्लिम समाज में शोषण एवं दासता को उजागर करती हुई एक मुस्लिम महिला जहान आरा बेगम 334 विले पार्ले बंबई से भारतीय प्रधानमंत्री के नाम एक खुला पत्र लिखती है भारत में सभी जगह कानून में सुधार हुए "मगर हिन्दुस्तान की मुस्लिम औरतों को मुस्लिम पर्सनल लॉ और शरियत के तहत लौण्डी, बान्दी, गुलामी तथा दोजखी जिन्दगी गुजारने पर मजबूर होना पड़ रहा है। इसी कानून के तहत अगर मुस्लिम मर्द अपनी बीबी के सामने तीन बार 'तलाक', 'तलाक', 'तलाक' कह दे तो वह तलाक जायज करार दिया जाता है, औरतों को अपनी सफाई देने का भी हक हासिल नहीं है। शरियत के मुताबिक कुरान में औरतों को मर्दों की खेतियाँ बताया गया है और एक जगह उन्हें मर्दों का लिबास अर्थात् पोशाक बताया गया है। इसी बात का फायदा उठाकर मुस्लिम मर्द जब समझता है कि एक औरत पुरानी हो गई तो वह पोशाक की तरह ही उसे बदल कर नयी ले आता है जिसकी वजह से मुस्लिम औरत को दिमागी तकलीफ दी जा रही है। यदि मुस्लिम पर्सनल लॉ और शरियत के ठेकेदार चाहते हैं कि यह कानून बना रहे और लागू रहे तो कुरआन के मुताबिक चोरी करने वाले मुसलमान को हाथ पैर काट देने की सजा का फरमान है, क्या यहाँ हिन्दुस्तान में इन शरियत के ठेकेदारों ने किसी मुसलमान चोरी करने वाले को हाथ काटने की सजा दी है। कभी नहीं। फिर सौतेला तरीका मुस्लिम औरतों के साथ ही क्यों बरता जाता है।"[86]

इस प्रकार केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं दयानन्द की विचारधारा का प्रभाव सम्पूर्ण भारतवर्ष में था। यहाँ तक कि विदेशों में भी इस भारतीय संन्यासी की खासी धूम थी यही कारण था कि एक मुस्लिम महिला अपनी पीड़ा सहन न कर सकी और उस दुःख को व्यक्त करने की क्षमता का विकास उसने स्वामी दयानन्द सरस्वती से सीख लिया था।

छायावादोत्तर काल के बढ़ते–बढ़ते नई कविता तक भी स्वामी दयानन्द का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। 'मन की सीपी में' शीर्षक गीत में दिनकर सोनवलकर ने

दयानन्द के निराकार परमेश्वर तथा उसके निजनाम ओ३म् को किस प्रकार कविता में बाँधा है मन का आध्यात्मिक निरूपण तो हुआ ही है किन्तु पूरी कविता में दयानन्द के विषय अन्ध विश्वास, रागद्वेष, कर्मकाण्ड आदि का पाखण्ड भी दिनकर सोनवलकर ने भस्म किया है–

"अन्तर में बहती रहे प्रेम सरिता
ज्योति से मिले ज्योति
अन्धविश्वास। राग–द्वेष। कर्मकाण्ड
भस्म हो जाएँ सभी
तेजस्वी लपटों में।
बच रहे आनन्द–मात्र
चैतन्य–रूप। निर्विकार।
करुणामय से एकात्म
गले मिलें व्यक्त से अव्यक्त
किरणें सब दौड़ पड़ें सूरज की तरफ।
सुगन्ध एकाकार हो सौन्दर्य से;
स्वर से भी हो जाएँ 'ऊँ' कार रूप
चेतना बने विराट।"[87]

शोधार्थी जब 1994 में एन.सी.सी. (राष्ट्रीय केडेट कोर) में था तो वहाँ बारह बोर की बंदूक भी होती थी जिसका निशाना उड़ती हुई तश्त्री पर साधना होता था। इस पर शोधार्थी ने एन.सी.सी अधिकारी से उस बारहबोर की बंदूक की गोली की जानकारी माँगी। जानना यह था कि इस गोली में क्या है जवाब मिला कि इसे तोड़कर देख लो। तोड़कर देखने पर पता चला उसमें लगभग तीन सौ छोटे–छोटे छर्रे थे। यह भी पता चला कि वह एक बार चलने के बाद वे छर्रे चौड़ाई में फैलते हुए जाते हैं जितनी दूरी तक जाएँगे उतने भी चौड़े क्षेत्र को घेरते जाएंगे। इसी प्रकार दयानन्द का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर है गोली की भाँति एक बार शब्द विचार रूपी गोली दयानन्द के मुँह से चली और वह सब जगह फैल गई। फर्क इतना है कि जिसके वह मस्तिष्क, हृदय आदि में लगी वह तो पूरे दयानन्द के प्रभाव में आ गया और जिसके हाथ–पैर आदि में लगी वह कुछ ही प्रभावित हुआ। लेकिन उस क्षेत्र में जितने भी थे सब उससे प्रभावित अवश्य हुए। किन्तु वह तो गोली थी गोली का प्रभाव कुछ समय बाद नष्ट हो जाता है किन्तु यहाँ विचारों का प्रभाव है जो जब तक जीवन रहेगा तब तक रहेगा। वैसे भी शब्द को ब्रह्म कहा गया है जो एक बार ब्रह्माण्ड में आने के बाद कभी नष्ट नहीं होता।

दयानन्द के स्त्री चिन्तन का प्रभाव आधुनिक हिन्दी साहित्य पर ही नहीं पड़ा परन्तु उनका यह प्रभाव विश्व की, ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु पर पड़ा है और पड़ता रहेगा। यही सिद्ध करना शोधार्थी का मुख्य लक्ष्य और ध्येय है। यहाँ शोध का लक्ष्य पूरा होता है।

इसका प्रमाण स्वयं दयानन्द के शब्दों में ही दिया जाये तो अधिक उचित होगा। वेद इस सृष्टि के आद्य ग्रन्थ स्वीकृत हो चुके हैं। वेद का प्रभाव पूरी सृष्टि पर है, सम्पूर्ण चराचर जगत पर है! और वेदों में जो है वही दयानन्द ने कहा है। इस आधार पर उनका प्रभाव भी सब पर है यह प्रमाणित है। स्वयं दयानन्द के शब्दों में– "अब जो वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनी पर्यंतों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूँ; मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना व मत मतान्तर चलाने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझे अभीष्ट है।"[88]

महर्षि दयानन्द और युगान्तर में महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के शब्दों के साथ इस शोध ग्रन्थ की पूर्णता सिद्ध होती है। अस्तु।

"ऋषि दयानन्द से बढ़कर हमारा उपकार इधर किसी भी दूसरे महापुरुष ने नहीं किया, जिन्होंने स्वयं कुछ भी न लेकर हमें अपार–राशि वेदों से परिचित कर दिया।"[89]

निष्कर्ष :

1. 'दयानन्द' के स्त्री चिन्तन का प्रभाव भारतेन्दु युग के सारे कवियों पर था इसी कारण देश की स्वाधीनता के साथ कवियों ने स्त्री स्वाधीनता की चर्चा अपने साहित्य में की।
2. द्विवेदी युग के लगभग नब्बे प्रतिशत साहित्यकार दयानन्द से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित थे तथा वे साहित्य में भी दयानन्द के अनुसार स्त्री के लिए मानवीय मूल्य स्थापित कर रहे थे। जिसमें महाकवि नाथूराम शर्मा, 'शंकर', मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि के साथ अन्य भी उनसे प्रभावित थे। जिन्होंने हिन्दी साहित्य परम्परा से हटकर असाधारण परिवर्तन किए।
3. छायावाद एवं छायावादोत्तर काल में प्रेमचन्द, निराला, सुभद्रा कुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, चतुरसेन शास्त्री आदि अनेक साहित्यकार दयानन्द के प्रभाव में स्त्री सम्मान व राष्ट्र सम्मान की रचनाएँ लिख रहे थे।
4. यह दयानन्द का ही प्रभाव था कि हिन्दी साहित्य में प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी, राम की शक्ति पूजा, कुरुक्षेत्र आदि रचनाओं से सम्पूर्ण साहित्य जगत परिचित है। जो परम्परा से हटकर जगत प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

♦♦♦♦

सन्दर्भ 5.0

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–447
2. नव जागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती; डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–137
3. महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रसंशक और सत्संगी : प्रो भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–14
4. निष्काम परिवर्तन पत्रिका, सितम्बर 2008, पृ.सं.–4
5. महर्षि दयानन्द के भक्त, प्रशंसक और सत्संगी, प्रो. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–15–16
6. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–38
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–263
8. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती : डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–201
9. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–39
10. पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली–3, पृ.सं.–481
11. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती : डॉ. भवानी लाल भारतीय, पृ.सं.–208–209
12. राधाचरण गोस्वामी की चुनी रचनाएँ, पृ.सं.–27
13. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती : डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–218
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृ.सं.–261
15. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–405
16. उपदेश–मञ्जरी (पूना प्रवचन) स्वामी दयानन्द सरस्वती के पूना में दिये गये पन्द्रह व्याख्यानों का संग्रह, पृ.सं.–119
17. वही, पृ.सं.–119–122
18. हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास : नीरजा माधव, पृ.सं.–79
19. सत्यार्थ प्रकाश : महर्षि दयानन्द सरस्वती, अष्टम समुल्लास, पृ.सं.–231
20. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–487–488
21. उपदेश मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–119
22. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–422
23. उपदेश–मंजरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–91–92

24. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–422
25. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–495
26. वही, पृ.सं.–490
27. गर्भरण्डा रहस्य : पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर', पृ.सं.–1
28. वही, पृ.सं.–11
29. वही, पृ.सं.–20
30. वही, पृ.सं.–20
31. वही, पृ.सं.–36
32. उपदेश–मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–119
33. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–495
34. दिव्य दयानन्द : सं. आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक', पृ.सं.–157
35. हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–497
36. प्रियप्रवास की टीका : डॉ. तारकनाथ बाली, द्वितीय संस्करण की भूमिका, पृ.सं.–(ग)
37. प्रिय–प्रवास : अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
38. वही
39. वही
40. नवजागरण के पुरोधा दयानन्द सरस्वती : डॉ. भवानीलाल भारतीय, पृ.सं.–100
41. प्रियप्रवास की टीका : डॉ. तारकनाथ बाली, द्वितीय संस्करण की भूमिका, पृ.सं.–(घ)
42. दिव्य दयानन्द : सं. आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक', पृ.सं.–38
43. वही, पृ.सं.–124–126
44. महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित : बाबू श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, पृ. सं.–376
45. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा, पृ.सं.–81–82
46. उपदेश–मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–120–122
47. गाँधी और दलित भारत जागरण : भगवान सिंह, पृ.सं.–133–134
48. आजाद औरत कितनी आजाद : सं. शेलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त, पृ.सं.–148

49. उपदेश मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–119
50. कामायनी सटीक : टीकाकार डॉ. शिवप्रसाद भारद्वाज शास्त्री, पृ.सं.–27
51. वही, पृ.सं.–23
52. वही, पृ.सं.–26
53. वही, पृ.सं.–27
54. अजात शत्रु समीक्षा : डॉ. कृष्णदेव शर्मा, पृ.सं.–23
55. वैदिक पथ नवम्बर 2008 में महर्षि दयानन्द और युगान्तर–स्व. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। पृ.सं.–29–35
56. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–549
57. छायावाद के कवि प्रसाद निराला और पंत : विजय बहादुर सिंह, पृ.सं.–93
58. छायावादी युग : डॉ. शम्भूनाथ सिंह, पृ.सं.–56
59. यह गीत माखनलाल चतुर्वेदी ने 18 फरवरी 1922 को बिलासपुर जेल में लिखा था। इससे पूर्व 1921 में उन्होंने 'बलि–पंथी से' शीर्षक गीत लिखे। उनका 'कैदी और कोकिला' गीत हिमकिरीटनी में छपा (जबलपुर सैंट्रल जेल : 1930) इन पर महर्षि दयानन्द के साहित्य का प्रभाव था तथा तत्कालीन महात्मा गाँधी से प्रभावित होकर कई बार राष्ट्र के लिए जेल गये।
60. प्रेमचन्द घर : शिवरानी देवी, पृ.सं.–76
61. यजुर्वेद भाष्य : स्वामी दयानन्द सरस्वती 15/10
62. वही, पृ.सं.–15/11
63. वही, पृ.सं.–15/12
64. वही, पृ.सं.–15/13
65. कुरुक्षेत्र : रामधारी सिंह दिनकर, पृ.सं.–23
66. उपदेश मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–119
67. कुरुक्षेत्र : रामधारी सिंह दिनकर, पृ.सं.–23
68. वही, पृ.सं.–77
69. वही, पृ.सं.–68–69
70. साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा, पृ.सं.–459–460
71. साहित्यिक निबन्ध : डॉ. देवीशरण रस्तोगी, पृ.सं.–135

72. साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा, पृ.सं.–491
73. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, पृ.सं.–628
74. बाणभट्ट की आत्मकथा : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ.सं.–156
75. वही, पृ.सं.–156
76. वही, पृ.सं.–246
77. वही, पृ.सं.–271
78. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–91
79. हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास : नीरजा माधव, पृ.सं.–128
80. वही, पृ.सं.–129
81. वही, पृ.सं.–130
82. वही, पृ.सं.–131
83. वही, पृ.सं.–134
84. वही, पृ.सं.–134–135
85. वही, पृ.सं.–136–138
86. इस्लाम में नारी : ले. कुंवर आनन्द सुमन (द्वितीय संस्करण), पृ.सं.–15
87. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल, पृ.सं.–564
88. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द, अंतिम पार्श्व पृष्ठ
89. वैदिक पथ नवम्बर, 2008, पृ.सं.–31

अध्याय षष्ठ

शोध प्रबन्ध के निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ

"चाहे मरण पर्यंत कन्या पिता के घर में बिना विवाह के बैठी भी रहे, परन्तु गुणहीन, असदृश, दुष्ट पुरुष के साथ कन्या का विवाह कभी न करे। और वर–कन्या भी अपने आप स्व सदृश के साथ ही विवाह करे।"

– दयानन्द सरस्वती

"महर्षि दयानन्द जी से बढ़कर भी मनुष्य होता है, इसका प्रमाण प्राप्त नहीं हो सकता।"

– महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

"मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता नहीं है। दयानन्द के नेत्र उस दिन को देखना चाहते हैं, जब देश के लाखों करोड़ों निवासी अज्ञान, अविद्या तथा अन्धविश्वासों की कारा से मुक्त होंगे तथा दैन्य, दारिद्रय, शोषण, अभाव तथा पराधीनता के पाशों को छिन्न-भिन्न कर सच्चे स्वराज्य की प्राप्ति कर लेंगे।"

लोक कल्याण के लिए जिस संत ने जन्म लिया हो और कौन अपनी मुक्ति की आकांक्षा को त्याग कर गृहत्याग के पश्चात् भी अपना हित न करेगा फिर भी दयानन्द ने जो संस्कार प्राप्त किए थे उनमें गुरु की आज्ञा का उल्लंघन नहीं था और जिस कारण उन्होंने घर छोड़ा उस कारण को मात्र गुरु के आदेश पर छोड़कर इस भारत देश पर होते हुए शोषण तथा इस शोषण में पिसती हुई भारत की जनता के दुःख को अपना दुःख समझकर समाज में फैले असंतुलन वैमनस्य तथा भयंकर अन्धकार को दूर करने के लिए अपना सारा जीवन लगा दिया। यही इनका उदात्त व्यक्तित्व रहा है।

स्त्रियों की दशा एवं तत्कालीन हो रहे स्त्रियों पर अत्याचार से स्वामी दयानन्द बड़े दुखी थे उन्होंने अपने साहित्य में प्रत्येक जगह कहा है कि इस देश की स्त्रियों की दशा सुधरनी चाहिए। उन्होंने अपने भाषणों, प्रवचनों तथा लौकिक व्यवहार में प्रतिदिन स्त्री समाज को मुक्त कराने का चिन्तन किया। उसके लिए उन्होंने जो प्रयास किए वे सब शोध ग्रन्थ में देखने को मिलते हैं।

स्वामी जी बार-बार स्त्रियों को शिक्षा के क्षेत्र में आगे बढ़ाने की बात करते थे। इसके लिए उन्होंने कई कन्या विद्यालय भी खोले, जो पुरुष उनसे प्रभावित थे तथा उनके सत्संग में आते थे उन्हें निरन्तर स्वामी दयानन्द अपने समाज परिवार में स्त्री शिक्षा पर जोर देते थे और उन्हें पढ़ाने की आए हुए लोगों से पूछते थे। हमेशा स्वामी जी स्त्रियों की शिक्षा पर प्राचीन वैदिक ग्रन्थों के प्रमाण देते थे। जैसा सम्मान वेदों में तथा वैदिक काल में स्त्रियों का था उस प्रकार वे आज के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते थे। लोगों में फैले अंधकार की सदा आलोचना करते थे। जितना उस समय के लोगों में स्त्रियों के प्रति दुराभाव तथा सदियों के अज्ञान से उसे पैर की जूती समझा जाता था उसका उन्होंने विरोध कर वैदिक मार्गदर्शन किया जिससे स्त्रियों के बारे में, लोगों की सोच में, परिवर्तन हो सके। दयानन्द का व्यक्तित्व विशाल तो था ही ग्राह्य भी था।

स्त्री शिक्षा के बारे में स्वामी दयानन्द वेदों में नारी की जो उच्च शिक्षा थी उसके उदाहरण देते थे उनको इस बात का बड़ा शोक था कि "प्राचीन आर्य लोगों में गार्गी, मैत्रेयी

आदि कैसी–कैसी विदुषी स्त्रियाँ हो गई हैं। आज कल स्त्री को विद्या पढ़ने का अधिकार नहीं, वह शूद्र के समान है। यदि स्त्रियाँ पढ़ी–लिखी होतीं, तो इन पण्डितों की बड़बड़ाहट का खण्डन करके एक घड़ी में इनका मुंह बन्द कर देती।"[1] इतनी पीड़ा दयानन्द के हृदय में स्त्री शिक्षा को लेकर थी।

शोध की सबसे बड़ी उपलब्धि तो यह है कि जो कार्य दयानन्द ने स्त्रियों के लिए किए उनका प्रभाव सम्पूर्ण भारत वर्ष पर पड़ा है जिसका माध्यम हिन्दी भाषा रही है और वह प्रभाव धीरे–धीरे सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में भी प्रवेश कर गया। जिसका सफल परिणाम यह सिद्ध हुआ कि जब अत्यन्त पीड़ाजनक स्त्री थी वह बिना परदे के तथा बिना घूँघट के घर से बाहर नहीं निकल सकती थी। उसमें अब परिवर्तन आने लगा था। यह विचार महान् विचार बन गया था कि अब स्त्रियाँ पशु नहीं हैं। जिसे लोगों ने सैकड़ों वर्षों के अज्ञान के कारण यह समझ लिया था कि यह एक भोगने का पदार्थ है। जितना अधिक इसको मसलोगे, कुचलोगे उतना ही पुरुष समाज का गौरव ऊँचा होगा। यह भ्रांति लोगों की अब नित्य दयानन्द ने दूर करने में सफलता प्राप्त की और शोधार्थी ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि तत्कालीन सुधारकों में केवल दयानन्द ही ऐसे पुरुष हुए हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में लम्बी अवधि तक कार्य किया है। उस असंभव कार्य को सम्भव कर दिखाया जिसे पाँच हजार वर्ष से लेकर सन् 1850 तक कोई विश्व का योद्धा नहीं कर पाया। केवल और केवल दयानन्द ही ऐसे पुरुष थे जो हिमालय की भाँति अनेक झंझावातों को झेलकर भी अडिग खड़े रहे और शेर की दहाड़ की भाँति उस असभ्य समाज में जहाँ नारी मिट चुकी थी, वह निरीह प्राणी बन गई थी, उसे पशु की भाँति बाँधा जाने लगा था। शिक्षा के लिए दूर रखा जाता था। गर्भ में विवाह कर दिया जाता था। या फिर पाँच वर्ष नौ वर्ष आदि में विवाहित कर दिया जाता था। उसे बेच दिया जाता था। उसे वैश्या बना दिया जाता था। अनेक पुरुषों के साथ उसको नग्न होने के लिए मजबूर किया जाता था। जबरदस्ती बलात्कार किया जाता था। पति के मरने पर यदि युवती थी तो उसके साथ रस्सी से बाँधकर जिंदा जला दिया जाता था। यदि बाल विधवा रहती तो वह कई व्यक्तियों द्वारा देवालयों आदि में भोगने के लिए काम में ली जाती थीं। ऐसे अत्याचार को दयानन्द ने लगभग 1857 के आस–पास होने से रोक दिया तथा वेदों के कई उदाहरणों से तत्कालीन समाज में लोगों का ध्यान आकृष्ट कर उन्हें यह समझाने में सफल हुए कि यह आपके शरीर का आधा अंग है। पुरुष के समकक्ष नारी है सुशिक्षित नारी ही अच्छी संतान पैदा कर सकती है इसलिए इसे शिक्षा दो तब जाकर कहीं स्त्रियों को शिक्षा के अवसर प्राप्त हुए। दयानन्द ने प्रमाणित किया कि

पूर्व में स्त्रियों का महत्व समाज में पुरुषों से अधिक था क्योंकि वे इस विश्व की जननी है। इस ग्रन्थ में यह प्रमाणित हुआ है कि स्त्रियों के प्रथम उद्धारक केवल मात्र दयानन्द ही थे। यह इस शोध की महान् उपलब्धि है क्योंकि जिस व्यक्ति ने इतने बड़े सुधार के लिए अपना सारा जीवन बलिदान कर दिया, आज उसे साहित्य से यह कहकर दूर कर दिया कि वे तो धर्म प्रचारक थे। मैं साहित्यकारों से यह पूछना चाहता हूँ जो विद्वानों की श्रेणी में गिने जाते हैं, धर्म का अर्थ क्या है ? इसे कोई नहीं जानता अधिक विस्तार में इसका अर्थ नहीं करने पर भी छोटे अर्थ में धर्म का अर्थ मानवता है। किसी विशेष वर्ग के उपदेश नहीं दयानन्द ने मानवता के लिए कार्य किया है साहित्य के लिए कार्य किया है, इस देश को सुधारने के लिए कार्य किया है। अपने घर को सुधारने की कोई फैक्ट्री नहीं खोली। भाषा सुध ाारने का प्रयत्न किया है किसी एक पंथ की चर्चा नहीं की जो सार्वभौम है उस धर्म की चर्चा की है जो प्रत्येक मनुष्य पर लागू हो सकता है उस नियम की चर्चा की है। फिर साहित्यकार उनकी दृष्टि से कैसे बच सकते थे क्योंकि साहित्यकार विद्वान् होता है वह धर्म और जाति आदि से अलग एक मानव जाति का होता है। उसी मानव को ऊँचा उठाने का कार्य दयानन्द ने किया है, तो साहित्यकारों में दयानन्द का प्रभाव अपने साहित्य में आना स्वाभाविक है और यह भी शोध ग्रन्थ की उपलब्धि ही गिनी जाएगी।

वैदिक साहित्य में स्त्री के स्वरूप एवं उसके प्रति आमजन मानस की जो अवधारणाएँ थीं उनमें यह प्रमाणित करना कि वैदिक युग में क्या स्त्री आज के युग की भाँति थी ? नहीं। आज के युग से मिलान करने पर स्त्री का जो स्थान वैदिक युग में था वह आज के युग में बिल्कुल नहीं है और उस स्थान को स्त्री जीवन में आते-आते अभी एक दो शताब्दि अवश्य लगेगी। लेकिन स्त्रियों के वे दिन दूर नहीं जिसमें उन्हें वैदिक युग की भाँति सम्मान मिलेगा। कुछ-कुछ क्षेत्रो में जहाँ स्त्रियाँ सतर्क हैं और ऋषि दयानन्द से प्रभावित होकर अपनी शिक्षा-दीक्षा गुरुकुल आदि में कर रही हैं अथवा जिन्होंने घर को ही गुरुकुल बना रखा है जहाँ सुशिक्षा के लिए अर्नगल प्रलाप छोड़ दिया है जिस परिवार में स्त्रियों की रक्षा होती है, जहाँ दयानन्द के स्त्री पूजा शब्द को भली भाँति जान लिया है। जहाँ उनके स्वास्थ्य की चिंता है। जहाँ स्त्री स्वयं अपने लिए सतर्क है। जागरुक है, जहाँ स्त्री अपने वस्त्रों को ढीला रखती है, चलते हुए उनके अंग उधड़े नहीं, जहाँ वह इतनी जागरुक है कि किसी पुरुष की कुदृष्टि अपने ऊपर न पड़ने दे उसके भावों को समझकर निर्णय लेवें, स्त्री अबला नहीं सबला है, पराक्रमी एवं अजेय है। नारी शत्रु विजयिनी है, निर्भीक है। वीर जननी हो, वीर पुत्र-पुत्री पैदा करती हो, योग्यता में प्रतिष्ठा वाली हो, परिवार के लिए

सुखद हो, सबके लिए सुखद हो, पत्नी–पति मतभेदों से दूर हों, माता संतानों का केन्द्र बिन्दु हो, स्त्रियाँ यज्ञों में भाग लेती हों, पति–पत्नी यज्ञ करते हों, प्रतिदिन यज्ञ करते हों, यज्ञ की रक्षा करती हों, सरस्वती के समान विद्वान् हों, दयालु हो, ज्ञान दात्री हो, बहिनों में प्रेम व्यवहार हो, भाई–बहिन का सम्बन्ध पवित्र हो, अपने शील की रक्षा को राष्ट्र का कर्तव्य समझती हो, इन सबके साथ वह इतनी स्वस्थ हो इतनी बलवान हो, वह प्रतिदिन व्यायाम से आलस्य को छोड़कर अपने शरीर को वज्र की भाँति इतना मजबूत कर ले कि शत्रुओं की निगाह को पहचान कर उनकी संहारक भी बने, वहाँ वहाँ उसको वैदिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है। उसके स्वरूप की महत्ता है उसके प्रति जन मानस की धारणाएँ विकसित होकर उच्चता को प्राप्त करती हैं। यदि स्त्री में इन कार्यों की क्षमता है तो जन मानस की उसे निम्नता से देखने की हिम्मत भी नहीं है। सहस्र पुरुष मिलकर भी एक स्त्री का गौरव नष्ट करने की क्षमता नहीं रख सकते। यही वैदिक युग का स्त्री विमर्श है, किन्तु इनके विपरीत आलस्य एवं प्रसाद से जहाँ सारे कार्य स्त्रियों में होते हैं, वहाँ वह अपने गौरव से च्युत होकर अपना पतन कर लेती है। मध्ययुग के स्त्री–विमर्श की भाँति वह पुरुष की लालसा, भोग, प्रताड़ना प्राप्त करती है और इधर से उधर अपने शील को बचाने के लिए दौड़ा करती है। वेद में मंत्र आता है कि स्त्री इस प्रकार चले कि अपने अंग न उघाड़े या न उघड़े, इसका अर्थ यह कतई नहीं है कि वह पर्दे में रहे, वैदिक काल में स्त्रियाँ युद्धों में जाती थीं न्यायालय में जाती थीं। न्यायाधीश होती थीं लेकिन अपने शील की रक्षा करते हुए। मध्य युग में स्त्री के पतन के लिए पुरुष तो जिम्मेदार हैं ही स्त्री ने भी प्रमादवश अपने शिक्षा युक्त कार्य छोड़ दिए, वैदिक आचरण छोड़ने से तथा शिक्षा को त्यागने से पुरुष को स्त्री का घर्षण, शोषण, मर्दन करने का मौका मिल गया। वेदों में वर्णन आता है कि स्त्री वीर हो वीरता के साथ सतर्क भी हो। वेदों में स्त्री की सतर्कता एवं जागरुकता को लेकर कई मंत्र हैं। लेकिन यह सतर्कता मध्ययुग में खो चुकने के कारण वह पदाक्रान्त दासी बन गई। जबकि वेदों में स्पष्ट लिखा है कि विवाह होकर घर में आने पर स्त्री ही घर है तथा वह उस घर की साम्राज्ञी है दासी नहीं किन्तु स्त्री अपनी शक्ति को भूल चुकी थी, जो उसे वैदिक आचरण ने प्राप्त करवाई थी। इसका बड़ा भारी परिणाम यह हुआ कि वह एक लम्बे समय तक लगभग 5000 वर्ष तक शोषण की शिकार रही है। आज भी कई स्थानों पर निर्भया जैसे काण्ड उसी मध्ययुग की मानसिकता की ओर संकेत करते हैं। वैदिक काल के पतन के बाद से दयानन्द के प्रादुर्भाव तक मध्ययुग माना है। आज के विद्वान् मध्ययुग की गणना किसी भी प्रकार करते हों किन्तु यहाँ शोधार्थी ने स्वामी दयानन्दानुसार वैदिक

गणना को माध्यम बनाकर गणना की है। जिसमें सृष्टि की आयु आज तक 1,96,08,53,115 एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तरेपन हजार एक सौ पन्द्रह वर्ष पूर्ण हो चुकी है। कुल सृष्टि की आयु स्वामी दयानन्द ने वेदों के आधार पर चार अरब वर्ष मानी है। इसकी विस्तृत जानकारी स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से प्राप्त होती है। इसलिए मध्ययुग वह युग है जहाँ वैदिक क्रिया कलाप, वैदिक शिक्षा एवं वैदिक आचरण समाप्त हो गया। वहाँ से लेकर अर्थात् महाभारत के एक सहस्त्र वर्ष पूर्व से सन् 1850 तक मध्ययुग है। पूरे पाँच–छह हजार वर्ष का लम्बा काल मध्ययुग है। इसमें वेद पूर्णतः लुप्त कर दिये गए या फिर उनकी व्याख्या इस ढंग से की गई कि किसी बेशर्म को भी शर्म आ जाए। इस कारण सामान्य जन का जो भारतीय संस्कृति के प्रति मोह था, उसके आदर्शों का लोहा पूरा विश्व मानता था। वह कम होकर लेागों की भावनाएँ मिथ्या कार्य कलापों की ओर जाने लगी। आर्यावर्त की मूल संस्कृति के आधार स्तम्भ वेदों को गिराने के बाद मनगढ़न्त साहित्य, ग्रन्थों की रचना होने लगी। वेद विहीन चतुर एवं चालाक लोगों द्वारा संस्कृत में रचे गये पुराण, तंत्र ग्रंथों में से अपनी स्वार्थ पूर्ति का श्लोक निकालकर लोगों को पंडित नामधारी धूर्त ठगने लगे। ऐसी अवस्था में स्त्रियों का घोर पतन प्रारंभ हो गया। स्त्रियों को धर्म की आड़ में ना जाने क्या–क्या चुकाना पड़ा। वैदिक ज्ञान नहीं होने के कारण वे सहज ही उन ढोंगियों की काम पिपासा का साधन बन जाती, क्योंकि उस समय राजाओं के चरित्र भ्रष्ट होने से प्रजा में भी अनुकरण होने लगा था। राजा शान्तनु ने वृद्धता में भी वैश्या तुल्य स्त्री सत्यवती से विवाह किया। अशिक्षित स्त्री की संतानों से देश का क्या भला हो सकता था इस कारण निरन्तर पतन होते हुए सम्पूर्ण ग्रन्थों में स्त्री को काम एवं भोग का पर्यायवाची बना दिया। इसका असर तत्कालीन संस्कृत साहित्य पर भी पड़ा जिसमें श्रृंगारपरक साहित्य लेखन को प्रधानता मिली। सबसे अधिक स्त्री की स्थिति बौद्धकाल तथा जैन काल के अस्तित्व में आने से बिगड़ी। हालांकि महाभारत के युद्ध के बाद वर्णशंकर संताने पैदा होकर मद्य–मांसादि के प्रयोग से समाज में विकृतियाँ प्रारंभ हो चुकी थी। चक्रवर्ती राज्य नष्ट होकर माण्डलिक राज्यों का निर्माण हो चुका था जो आपस में लड़ा करते थे। एक–दूसरे को श्रेष्ठ समझने या सिद्ध करने के लिए वे अपनी कुचालों में सबसे अधिक स्त्रियों का प्रयोग करते थे। फिर भी कुछ नियंत्रण प्रजा पर माण्डलिक राज्यों में था, किन्तु बौद्ध और जैन दर्शन के अस्तित्व में आने से इन्होंने पत्थरों की नग्न मूर्तियाँ बनाकर स्त्रियों का मानसिक शोषण भी करना प्रारंभ कर दिया। वेदों में पशु हिंसा तथा यज्ञों में पुत्रेष्टि के लिये यजमान की स्त्री को घोड़े के लिंग से पुत्र प्राप्ति

जैसे मूर्खता पूर्ण अर्थों को जनता में प्रचारित करना प्रारंभ किया। इसी कारण लोगों में वेदों के प्रति घृणा होने लगी। लोग वैदिक धर्म को छोड़कर जैन व बौद्ध बनने लगे। इन्हीं के परवर्ती या समकक्ष महीधर ने वेदों का जो भाष्य किया वह अत्यन्त अश्लील था। जैनियों ने वेदों के ग्रन्थ जलाना प्रारंभ कर दिया। सर्वत्र मूर्ति पूजा का बोलबाला प्रारंभ हो गया। उधर पुराणों में कृष्ण के चरित्र को मलिन कर के कल्पित राधा की रचना कर कुट्टा आदि का एवं कृष्ण के साथ मिथ्या संभोगादि का वर्णन किया जाने लगा। पुराणों की संख्या में वृद्धि होने लगी जयदेव गीतगोविन्दकार के भाई बोब देव ने भागवत पुराण की रचना कर कृष्ण के चरित्र को इतना उछाला जितना शायद ही इतिहास में किसी महापुरुष को कलंकित किया हो।

यहाँ पर निष्कर्ष के साथ यह सिद्ध करना शोधार्थी का लक्ष्य रहा है कि स्त्रियों की जो दुर्दशा हुई वह सब इन धार्मिक पाखण्डों आदि के कारण ही हुई है क्योंकि आम जनता का सबसे अधिक भरोसा धर्म पर रहता है और धर्म ही स्त्रियों को खुला व्याभिचार करने की छूट एवं मजबूर बनाकर खुद व्याभिचार करे तो देश का कोई सा साहित्य उस राष्ट्र की जनता को नहीं बचा सकता। इसलिए मध्य युग में शोधार्थी ने सबसे अधिक धार्मिक पाखण्डों, अत्याचारों, शोषण एवं धूर्वता की पोल खोली है।

इसी एक कारण धार्मिक अस्थिरता से ही इतने वर्षों तक स्त्रियों ने जो पशु तुल्य संताप झेला उस पर अधिक ध्यान पाठक का कराना शोध में मध्ययुग की उपलब्धि रही है। जितने भी साहित्य व आचरण धर्म की परिधि में से ही निकलते हैं, क्योंकि मनुष्य प्रकृति से धार्मिक तथा ईश्वर के प्रति उर्ध्वगामी रहा है इसलिए भी वह ईश्वर से भयभीत रहता है। यही कारण है कि पंडाओं ने उसके इस भय को आध्यात्म में बदलकर शोषण एवं अत्याचार में परिवर्तित कर दिया, धर्म के नाम पर डराकर पैसे वसूलना, स्त्रियों से उनकी आबरू हथियाना आम बात हो गई थी।

जब बौद्ध और जैन धर्म का विकास हुआ तो प्रारंभ में बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ बड़ी सुदृढ़ एवं मानवीय थीं किन्तु बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् इसमें जो व्याभिचार फैला वह अति भयानक था। इसमें सभी प्रकार की असम्मानित स्त्रियों की भीड़ इकट्ठी होने लगी विशेष कर वे महिलाएं अधिक थीं जो उन्मुक्त एवं स्वेच्छाचारिणी थीं। समाज से बहिष्कृत कर दिए गए तबके की महिलाएँ अधिक थीं। उन्हें बौद्ध की शिक्षाओं से कोई सरोकार न था वे केवल उन्मुक्त अपनी वासना को पूर्ण करने में जीवन का आनन्द समझती थीं। जाति बंधन से मुक्त होकर संयमहीन जीवन ही उनका लक्ष्य था। उधर जैनियों ने धर्म के नाम पर दुराचार

फैला रखा था। वैदिक धर्म ग्रन्थों के प्रति दुश्प्रचार तथा वेदों को जहाँ भी देखते थे उनकी होलियाँ जलाना प्रारंभ कर दिया था। तीर्थंकरों के नाम पर नग्नता का तांडव प्रारंभ कर नग्न रूप में ही समाज के सामने घुमाने लगे इससे स्त्रियों एवं बालिकाओं का मानसिक बलात्कार होने लगा। अपने ग्रन्थों में इतने गपोड़े भरे जो सृष्टि विरूद्ध थे। नग्न मूर्तियों के मंदिर, एक मंदिर में कई नग्न मूतियाँ इसके भोगवाद का प्रतीक थी। इनकी इस तांडव लीला से जनता का ध्यान अस्थिर हो गया वह यह समझने में असक्षम हो गई कि सत्य क्या है ? इनके साथ–साथ बौद्ध की शाखाएं महायान हीनयान और अन्य तंत्र–मंत्र युक्त वातावरण में सिद्ध–नाथ आदि ने तंत्र शास्त्रों की रचना की। वाममार्गियों ने धर्म का मजाक बनाकर रख दिया और पाँच मकार एवं मदिरा पीकर किसी भी स्त्री के साथ संभोग परम्परा की नींव डाल दी।

शंकराचार्य ने पुनः वैदिक मत की स्थापना कर धर्म के दिग्गजों से शास्त्रार्थ किया और तत्कालीन राजा सुधन्वा को वैदिक मत का अनुयायी बनाया, चार वैदिक आश्रमों की स्थापना की। लोगों की आस्था वेदों के साथ जुड़ी हुई थी। अतः लोगों ने जैन मूर्तियों को तोड़ना प्रारंभ किया तथा जैनियों ने उन्हें गाड़ना प्रारंभ किया। इस प्रकार जब समाज का ढाँचा पटरी पर आने लगा तो शंकराचार्य की उपस्थिति पाखण्डियों को अच्छी नहीं लगी उनके पेट पर लात पड़ने से उनको विष देकर समाप्त कर दिया गया। पुनः पाखण्डियों का बोलबाला प्रारंभ हो गया।

स्त्रियों की स्थिति इस फेरबदल से बद से बदतर होती गई। वे पिसती गई राजाओं के अन्तःपुरों में सैंकड़ों रानियाँ कराह भरती थी। आम जनता की भी यही स्थिति थी। विवाह का कोई मापदण्ड न रह गया था। स्त्री का स्वरूप एक वस्तु एवं भोग की सामग्री के रुप में था। उसके प्रति लोगों की धारणा थी कि उसे शिक्षा का अधिकार नहीं वह बस एक ही काम आती है भोग के।

बाहरी आक्रान्ताओं के भारत में प्रवेश करने पर जो संस्कृति बची थी वह भी धीरे–धीरे नष्ट होने के कगार पर थी। सात–आठ सौ वर्ष तक मुस्लिम शासन से उनका प्रभाव भारत पर पड़ा और कहना न होगा कि जिस सभ्यता में स्त्रियाँ लिबास की तरह बदलने की स्वीकृति उनका धर्म ग्रन्थ देता हो उसमें आश्चर्य नहीं! कि खेती की तरह स्त्री को उपयोग में लिया और उससे फसलें तैयार की जाएँ तो।

ऐसी सभ्यता का भारत गुलाम रहा तो वहाँ स्त्रियों की रक्षा तथा उनके आत्म सम्मान की बात करना मूर्खता ही होगी। कई स्थलों पर वर्णन आता है कि स्त्रियों की दशा यह थी कि उन्हें छुपाकर परदे में रखा जाता था। यदि मुस्लिम सामंतों की निगाह पड़ गई तो वे उसे लूटकर जे जाते थे। यहाँ तक आते-आते स्त्रियाँ पिंजरे में कैद हो चुकी थीं।

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार संवत् 1375 से 1900 तक माना जाता है इस काल में भी स्त्रियों की दशा पूर्ववत ही थी भोग्या एवं वासना को पूरी करने वाली मशीन। वीरगाथा काल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल के सभी कवियों की रचनाएँ स्त्री को केन्द्र बिन्दु बना कर होने लगी। शासक के लिए जितनी अश्लील कविताएँ होती थी, उतनी ही मुद्रा कविराज को मिलती थी। इस प्रकार स्त्री कभी इस कैद से मुक्त न हो सकी, जिसमें वह वैदिक काल के अन्त से आज तक बंदी थी।

यहाँ तक आते-आते इस शोध प्रबन्ध की उपलब्धियों में जनमानस का ध्यान इस ओर भी ले जाना रहा है कि जितने भी पंथ चले वे सब पाखण्ड के दम पर चले और उन पाखण्डों के पीछे किसी ईश्वर का नहीं दुष्ट मनुष्य का मस्तिष्क कार्य कर रहा था। इसलिए जो गुलामी भारतवासियों ने झेली और यहाँ की माताओं, बहिनों तथा बेटियों ने जो दंश झेला है शायद ही विश्व में किसी काल में कोई भोग पाया हो। आत्मा चीत्कार कर उठती है कि किस तरह का दुर्वव्यवहार तत्कालीन स्त्रियों के साथ हुआ इसका प्रमुख कारण बताना शोध का लक्ष्य है। इस दशा का मूल कारण धामिक पाखण्ड, धर्म भीरुता एवं शिक्षा का अभाव होना रहा है। कुछ ऐसे तथ्य भी प्रमाणित किए हैं जो इस राष्ट्र की संस्कृति और स्त्रियों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार थे। वे सब शोध ग्रन्थ के अवलोकन से स्पष्ट हो जाएंगे।

वेदों से विमुखता के कारण ही भारतवंशियों की अद्वितीय मूल प्रवृति, सम्पन्न वीरता सुसुप्तावस्थ्य में विलीन हो गई। जिन स्त्रियों के गौरव से यह आर्यवर्त विश्व गुरु था उस मूल जननी की यातनाओं एवं पीडा से आज भी यह देश कराह रहा है। धार्मिक पाखण्ड ने उसका जीवन नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जिसे वेदों में वीर प्रसूता, उषा के समान प्रकाशवती, वीराङ्गना, विद्यालङ्कृता, स्नेहमयी माँ, पतिंवरा, अन्नपूर्णा आदि सम्मानप्रद नामों से जाना जाता था। ये सब विपरीत हो गये। आज इस स्थिति के लिए हम सब जिम्मेदार हैं। उस महान् जगत कल्याणी स्त्री को घोर यातनाऐं इस मध्ययुग ने दी है। जिसने इस संसार को चक्रवर्ती सम्राट, महापुरुष तथा संन्यासी दिए और निरन्तर इस सृष्टि को आगे बढ़ाया। मध्य युग में उसे किन-किन घृणित नामों से नहीं बुलाया गया यह विचारणीय एवं गवेषणा का विषय है। जिसकी जानकारी सामान्य पाठक को नहीं है।

मुस्लिम आधिपत्य में जब स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी तब एक और मुस्लिम सामन्त लूट–लूटकर अपने हरम में स्त्रियों की संख्या बढ़ा रहे थे तो दूसरी और धार्मिक पाखण्ड से स्त्रियों की गति निम्नतर बनती जा रही थी। बाल–विधवाओं की संख्या में अधिकता आने लगी, विधवाओं के हुजूम के हुजूम मंदिरों में घोर व्यभिचार के बीच जीवन जीने को मजबूर थे। देव दासियों की भी कमी न थी। इसी बीच अंग्रेजों का अधिपत्य कोढ़ में खाज का काम कर गया चारों ओर हाहाकार फैला हुआ था। हिन्दी साहित्य के दिग्गज रीति एवं श्रृंगार पूर्ण रचनाएँ करने में मग्न थे। इनकी रचनाओं में अश्लीलता भरी पड़ी थी। सामान्यजन दुविधा से पूर्ण जीवन यापन कर रहा था। देश का प्रत्येक नागरिक अब इस सड़ी हुई स्थिति से दुःखी था। वह किंकर्तव्यमूढ़ हो चुका था। कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण होता है किन्तु जब साहित्यकार ऐसी रचना करे कि वह दर्पण उस साहित्य के प्रकाश को नहीं झेल पाया और बिखर गया तो अवश्य ही समाज भी बिखर गया।

इसी बीच सन् 1824 को एक महापुरुष का अवतरण हुआ जो इस देश–दशा के लिए, भारतवासियों की मुक्ति के लिए, स्त्रियों की मुक्ति के लिए, यहाँ के युवाओं की मुक्ति के लिए, घर से भाग निकला और घोर तपस्या एवं आजीवन ब्रह्मचर्य के तप से इस देश से घुले हुए कीचड़ को साफ करने लगा।

भारत की स्वतंत्रता 1947 से पूर्व जो स्त्री–विमर्श हिन्दी साहित्य में हुआ वह विश्वइतिहास के पन्नों से न मिटाये जाने वाला पृष्ट बन चुका है। स्वामी दयानन्द इतने प्रतिभाशाली थे कि एक मात्र मुक्ति के लक्ष्य को लेकर घर छोड़ा था, किन्तु जब भारत भ्रमण किया और देखा कि इस देश की बड़ी दयनीय स्थिति है तो इन्होंने मुक्ति का मार्ग बदल दिया और घोषणा की, कि जब तक मेरे देश का प्रत्येक नागरिक मुक्त नहीं होता तब तक में अपनी मुक्ति के लिए नहीं देश की मुक्ति के लिए लड़ूंगा।

कई समय तक साधना में रहने के बाद दयानन्द ने खोज की, कि यहाँ भी भाषा देवनागरी ही होना चाहिए मूल रूप से गुजराती तथा संस्कृत के प्रकांड ज्ञाता होने पर स्वामी दयानन्द ने अपने भारत सुधार की भाषा संस्कृत न चुनकर हिन्दी भाषा को चुना।

यहाँ से शोध का मुख्य विषय प्रारंभ होता है जब दयानन्द अपनी साधना पूर्ण कर इस भारत सुधार के क्षेत्र में आए तक तब हिन्दी के भारतेन्दु युग नाम से पहचाने जाने वाले भारतेन्दु, जिनको हिन्दी के सुधार का मुख्य माना जाता है, वह पैदा भी नहीं हुए थे।

यहाँ पर शोधार्थी इस विचारधारा को निर्मूल ठहराता है कि भारतेन्दु ने ही आधुनिक हिन्दी का सुधार किया। उन्होंने मात्र अनुकरण किया है दयानन्द का। दयानन्द ने देश सुधार के लिए जो–जो विषय चुने थे वे सब धीरे–धीरे भारतेन्दु के साहित्य में आने लगे। अन्यथा भारतेन्दु की दयानन्द के काशी शास्त्रार्थ में उपस्थिति से पहले की रचनाएँ देखिए ? उन्हें देखने पर ज्ञात होगा कि जिस प्रकार रीतिकाल के कवि रचनाएँ लिख रहे थे उसी प्रकार भारतेन्दु शृंगारी एवं भक्तिपरक साहित्य लेखन में व्यस्त थे। दयानन्द संस्कृत के अनुसार हिन्दी में लिंगों का प्रयोग करते थे। भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र ने भी यही शैली अपनाई। इससे स्पष्ट है कि दयानन्द ने जो राष्ट्र जागरण में स्त्री जागरण की स्थापना की वह भारतेन्दु ने अपनाकर हिन्दी साहित्य में अपना नाम कमाया। यहाँ पर शोध यह सिद्ध करता है कि भारतेन्दु एवं उनके समकालीन साहित्यकार खुले रूप से या चोरी–छिपे उनसे अत्यधिक प्रभावित थे। भले उनके मूर्तिपूजा विरोध एवं पाखण्ड के विरोध करने के कारण खुले रूप से उनके साथ नहीं आए उन्हें समाज का डर था किन्तु वे सब रचनाकार दयानन्द स्वामी का ही अनुकरण कर रहे थे।

स्वामी दयानन्द को ईश्वर के अतिरिक्त किसी का भय न था। वे जो कार्य कर रहे थे वह ईश्वर की प्रेरणा व गुरु की आज्ञा से कर रहे थे। भारतेन्दु युग के रचानाकार राधाचरण गोस्वामी दयानन्द से अत्यधिक प्रभावित थे। दयानन्द ने स्त्री–शिक्षा, बाल–विवाह निषेध, सती–प्रथा निषेध, विधवा–विवाह, वृद्ध–विवाह, बेमेल–विवाह, स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार, स्त्रियों को उत्तराधिकार, स्त्रियों को आगे लाने जैसे, अनेक सुधारों को समाज में लाए और स्त्रियों को जागरुक होकर हमें सब बुराईयों को छोड़कर शिक्षा के क्षेत्र में आगे आने के लिए प्रेरित किया। कालान्तर में स्त्री शिक्षा के लिए कन्या विद्यालयों को भी प्रारंभ किया। भाषा के सुधार का सबसे प्रथम दयानन्द ने अपनी स्थापित आर्य समाज में नियम बनाया कि प्रत्येक आर्यसमाजी हिन्दी की मदद करेगा, अपने कार्य व्यापार हिन्दी में ही करेगा। इसके अतिरिक्त स्वाधीनता, स्वदेशी प्रयोग आदि अन्य देशोपकारी कार्य दयानन्द ने किए वे सब भारतेन्दु एवं भारतेन्दु कालीन कवियों की कलम के हिस्से बने। यह सब देश हित एवं भाषा हित के साथ स्त्री जागरण में सहयोगी तत्व रहे, किन्तु यहाँ यह प्रमाणित करना शोधार्थी का उद्देश्य है कि यह जो जागृति दयानन्द लेकर आये थे उसे सर्वप्रथम प्रारंभ दयानन्द ने ही किया था। अन्यों ने उसका अनुकरण कर दयानन्द का कार्य आसान कर दिया क्योंकि दयानन्द भी यही चाहते थे कि साहित्य के माध्यम से यह जागृति सारे देश

में पहुँचे और देश की प्रजा के साथ दयनीय स्थिति वाली स्त्री भी इन कठिन एवं मूर्खतापूर्ण सामाजिक पाखण्ड युक्त निराधार बंधनों से मुक्त हो। भारतेन्दु काल में 1857 के विप्लव या प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन में स्वामी दयानन्द के प्रभाव से कई स्त्रियाँ इस संग्राम में सामने आई। जो दयानन्द की जागृति का ही परिणाम था। क्रान्ति के पश्चात् भी महिलाएँ लेखन एवं स्वाधीनता कार्यक्रमों से जुड़ी। अंग्रेज सरकार का भी ध्यान इस ओर गया और उसने भी स्त्रियों पर होते अत्याचारों की ओर ध्यान दिया। किन्तु वह प्रयास ऊँट के मुँह में जीरे के समान था।

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श के परिणामस्वरूप आमूल चूल परिवर्तन देखे गए जो दयानन्द के प्रभाव के कारण ही संभव थे। स्त्रियों में आत्मबल की वृद्धि हुई, स्त्रियाँ शिक्षा के लिए आगे आने लगी, स्त्रियाँ विधवा–विवाह के लिए तैयार होने लगी तथा बाल–विवाह का निषेध करने की हिम्मत जुटाने लगी, सती न होने की परिभाषा दयानन्द से सीख चुकी थी। कुल मिलाकर स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी साहित्य में जो स्त्रियों के दुःख थे उनकी सब साहित्यकारों ने चर्चा कर जन सामान्य में चेतना का विस्तार किया। इससे स्त्री का स्वरूप धीरे–धीरे बदलने लगा। वह शिक्षा की ओर उद्यत होने लगी। उसके प्रति लोगों की धारणाओं में बदलाव आने लगा। उनके समझ में आने लगा कि स्त्री भी पुरुष के समान पढ़ सकती है।

द्विवेदीयुग दयानन्द की मृत्यु के पश्चात् का युग था इसे सुधार एवं जागरण काल कहा गया। जितना कार्य दयानन्द के सामने नहीं हो सका उससे सहस्र गुणा दयानन्द के प्रभाव से इस युग में देश सुधार एवं स्त्री सुधार पर होने लगा। इसका प्रमुख कारण यह था कि दयानन्द के जीवनकाल में जो युवा थे वे द्विवेदी युग में प्रोढ़ हो गये तथा जो पैदा हुए थे उनके ऊपर उनके माता–पिता का दयानन्दीय प्रभाव था। इससे भी अधिक उनकी स्थापित संस्था आर्य समाज का सारे भारत में इतना जबरदस्त प्रचार था कि घर–घर में दयानन्द का समाज सुधार पहुँच चुका था। दयानन्द के सिद्धान्त सत्य पर आधारित थे। वे मानव निर्माण की क्षमता से युक्त थे। इस कारण सम्पूर्ण द्विवेदी युग का हिन्दी साहित्य एवं साहित्यकार या तो आर्य समाजी थे या आर्य समाज से प्रभावित थे।

शोध में यह भी लक्षित करना बहुत बड़ी कड़ी है कि दयानन्द और आर्य समाज का ही प्रभाव था कि पूरा का पूरा युग प्राचीन ग्रन्थों में से स्त्री को निकालकर वर्तमान में उसकी आजादी का प्रयास कर रहा था। यह हिन्दी साहित्य में कभी नहीं भूलने वाला पृष्ठ है। कि जिस द्विवेदी युग ने सम्पूर्ण जागरण से पूरे भारत को तथा स्त्री जागरण से पूरे विश्व की

निगाहें अपनी ओर खींच ली थी। मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्र कवि का सम्मान मिला, जो आर्य समाजी थे। महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर 'आर्य समाजी थे। सरस्वती पत्रिका के संपादक स्वयं आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ऋषि दयानन्द के प्रभाव में थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' दयानन्द के शिष्य थे। रामनरेश त्रिपाठी आर्य समाज से प्रभावित थे। यह पूरा का पूरा युग आर्य समाजी विचारधारा एवं स्वराज्य के लिए एक जुट होकर कार्य कर रहा था। इस प्रकार यह सब साहित्यकार छायावाद तक एवं भारत की स्वतंत्रता तक इस प्रकार साहित्यिक रचनाएँ करते रहे जिसमें निरन्तर स्त्री मुक्ति की कामना के साथ उसे समकक्षता का दर्जा दिलाने की भी बात थी। यही परिणाम था कि स्त्री रचनाकार भी इस युग में सामने आई। स्त्री के स्वरूप में काफी बदलाव आ चुका था। वह शिक्षा तथा लेखन दोनों कार्यों में अपनी पहचान बना चुकी थी। उषादेवी मित्रा, राजेन्द्र बाला घोष आदि महिला लेखिकाओं ने द्विवेदी युग में महिलाओं के विषय में लिखा। इस प्रकार उनके प्रति जनमानस की धारणा में बदलाव आना सम्भव था। उन्हें धीरे–धीरे सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा।

स्वामी दयानन्द ने जो स्त्री जागरण के प्रयास किए और तत्कालीन जनमानस एवं साहित्यकारों को अपनी कलम चलाने के लिए मजबूर कर दिया। उनमें आखिर कोई तो बात होगी जिससे उनका प्रभाव इन सबको सूर्य की किरण की तरह प्रकाशित करता चला गया। स्वामी दयानन्द ने स्त्री के स्वरूप को सदा माता के रूप में देखा है एक प्रसंग में जब लोगों के षड़यंत्र के तहत उनके पास किसी वैश्या को भेजा, स्वामी जी गंगातट पर ध्यान में थे। स्त्री ने जाकर स्वामी जी से प्रश्न किया कि मुझे आपके जैसे सुगठित शरीर वाले पुत्र की कामना है, स्वामी जी ने उत्तर में कहा मुझे ही अपना पुत्र मान लो माता।

इस आधार पर स्वामी दयानन्द की दृष्टि स्त्री पर सर्व विश्व को संस्कारित करने वाली माता के रूप में थी। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय अध्याय में लिखा है कि "जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता संतानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता।"[2] ऐसी दृष्टि को लेकर स्वामी दयानन्द चले थे तब जाकर इस राष्ट्र की नारी को शक्ति मिली है। जिससे वह अपने आपको शिक्षित करें। अपने पर होते हुए अत्याचारों का विरोध करे अपने दुःख को कम करने अथवा समाप्त करने के लिए स्त्री को शिक्षा का गुरु मंत्र दिया। उन्होंने एक ओर नारी को पूजा योग्य माना वे नारी की पूजा के साथ उसके गुणों को अधिक महत्व देते थे तथा एक ओर नारी शिक्षा के लिए बड़े ही प्रबल विचारों के साथ सत्यार्थ प्रकाश के

तृतीय समुल्लास में लिखते हैं।... "राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके, विद्वान् कराना। जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता–पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का व लड़की किसी के घर में न रहने पावें, किन्तु आचार्यकुल में रहें।"[3] दयानन्द ने स्त्रियों को सम्मान देने की दृष्टि से कन्या गुरूकुल की व्यवस्था की है। उन्हें संयम व ब्रह्मचर्य पूर्वक शिक्षा का ग्रहण करने की प्रेरणा दी है। स्वामी दयानन्द स्त्रियों को पुनः वही वैदिक सम्मान प्राप्त करवाना चाहते थे जो वैदिक युग में स्त्रियों को प्राप्त था। दयानन्द ने स्त्री के स्वास्थ्य और सुसन्तान प्राप्त करने के साथ पति–पत्नी के वेदानुकूल व्यवहार, पति–पत्नी के कर्तव्य, पारस्परिक सहयोग के साथ स्त्रियों के अध्यापिकाएँ बनने से लेकर युद्ध क्षेत्र में, राजकार्य के कामराज एवं न्यायधीश विभाग में मुख्य रूप से कार्य करना बताया है।

शोध में यह प्रमाणित किया है कि आज तक स्वामी दयानन्द के प्रति आलोचनात्मक टिप्पणियों में तथा कई साहित्यकारों द्वारा यह आरोप लगाया है कि दयानन्द ने स्त्री को केवल पति–पत्नी संबंध, घर की गृहणी और पाक कला में निपुण बताकर घर की देखरेख करने वाली संतानों को पालने वाली, बना दिया है जबकि यह असत्य है यहाँ शोधार्थी ने शोध में प्रमाण प्रस्तुत किए हैं कि दयानन्द ने अपने भाष्य तथा ग्रन्थों में स्त्रियों को विभिन्न कार्यों के लिए भी योग्य बताया है यह शोध की उपलब्धि है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जो स्त्री–विमर्श का विकास निरन्तर दिखाई पड़ता है यह स्वामी दयानन्द सरस्वती की ही देन है। 1857 की क्रान्ति से दयानन्द ने साहित्यकारों एवं देश के विद्वानों में यह भाव प्रवाहित किए कि मानवीय सम्यता में स्त्री ही प्रथम है जिसकी मुक्ति से राष्ट्र की मुक्ति सम्भव है जहाँ तक स्त्री शिक्षा एवं स्त्रियों के प्रति होते हुए अत्याचार खत्म न होंगे तब तक वास्तविक अर्थों में स्त्री मुक्त नहीं है। सावित्री बाई फूले जो महात्मा ज्योतिबा फूले की पत्नी थी ने सर्व प्रथम स्त्री शिक्षा की प्रेरणा महाराष्ट्र के समाज में स्थापित की इससे पहले स्वामी दयानन्द पूना आगमन पर न्यायाधीश एवं उनके परम् शिष्य महादेव गोविन्द रानाडे के साथ ज्योतिबा फूले से मिल चुके थे। फूले दयानन्द से प्रभावित थे। "ज्योतिबा फूले एवं दयानन्द के सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ थे।"[4] तब से लेकर और आज तक स्वामी दयानन्द के प्रभाव से जो स्त्रियों की शिक्षा, सुरक्षा, बाल–विवाह निषेध, विधवा–विवाह समर्थन, अनमेल–विवाह, सती–प्रथा विरोध, वृद्ध–विवाह निषेध, बहुपत्नी निषेध से लेकर स्त्री मुक्ति, स्त्री स्वाधीनता एवं स्त्री स्वातंत्र्य के जो भी

लेख साहित्यकारों, भारतेन्दु, राधाचरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र से लेकर अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा, सूर्यकांत त्रिपाठी, 'निराला', सुभद्राकुमारी चौहान, चन्द्रकिरण सोनरेक्सा से होते हुए दिनकर सोनवलकर से लेकर चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, अनामिका, मैत्रीयी पुष्पा आदि तक जो विकास स्त्री–विमर्श का हुआ है उसने हिन्दी साहित्य के भंडार को भरा है तथा उन प्रश्नों के उत्तर दिए हैं जो अन्तर्मन में चलते रहते हैं। इस विकास को सतत प्रकाशित करना शोध का लक्ष्य है। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श का विकास सतत गतिमान है और इसके अभी और अधिक विकास की सम्भावनाएँ हैं। किन्तु यह विकास ग्रामीण स्त्रियों की उपेक्षा कर रहा है।

सार्वभौमिक दृष्टि से स्त्री मुक्त है, वह पूर्णरूप से मुक्त है। बस इतना करना आवश्यक है कि वह देशकाल वातावरण को देखते हुए अपने आप में कितना आत्मबल विकसित कर सकती है? सवाल यहाँ आकर ठहरता है जहाँ–जहाँ उसका आत्मबल विकसित है वहाँ–वहाँ वह मुक्त है, किन्तु जब यदि उसे अपना आत्मबल बढ़ाना न आता हो वहाँ–वहाँ वह स्वयं ही पराधीन एवं आतंकित है। मार्ग उसके लिए खुले हुए हैं करना है तो उसे विकसित अपना शिष्ट जागरुक रूप।

आधुनिक हिन्दी साहित्य पर स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों का प्रभाव इतना पड़ा कि हिन्दी की चाल बदल गई। जो हिन्दी 1857 की क्रान्ति के पहले स्त्री के नख–शिख में उलझ कर अपने फूहड़पन का परिचय दे रही थी वह अब पूरे उत्तर भारत में मान पा रही थी। यह प्रताप स्वामी दयानन्द सरस्वती के महान् व्यक्तित्व एवं उनकी सत्यनिष्ठा हिन्दी के प्रति प्रकट करता है।

साहित्य और साहित्यकार समाज का सजग प्रहरी है स्वामी दयानन्द से भारतेन्दु अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने अपने साहित्य के सम्पूर्ण अंग को स्वामी दयानन्द से प्रेरित होकर राष्ट्र हित में सुचालित कर दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी साहित्य के अन्य रचनाकार भी स्वामी जी के राष्ट्रीय सुधार पर अपनी कलम चलाने लगे। भारतेन्दु में लेखन प्रतिभा थी जिसका उन्होंने देश हित में प्रयोग कर स्वामी दयानन्द के लिए अप्रत्यक्ष कृतज्ञता प्रकट की। प्रतापनारायण मिश्र तथा राधाचरण गोस्वामी ने स्वामी जी के सिद्धान्तों पर खूब लिखा। राष्ट्रीय सुधार का ही एक अंग स्त्री–जागरण एवं सुधार भी था। इस लेखन से वास्तव में स्त्रियों की स्थिति में सुधार होना प्रारंभ हो गया था। स्त्रियाँ शिक्षा की ओर उन्मुख होने एवं अपने आत्मबल के विकास में बढ़ोतरी महसूस करने लगी थी।

तत्कालीन पाखण्डी एवं स्त्रियों का शोषण, अत्याचार करने वाला समाज भयभीत होने लगा था। उन्हें उनका ऐश्वर्य एवं वासना छिनती हुई दिखाई देने लगी थी। इसी कारण इन पाखण्डियों ने स्वामी दयानन्द को मारने के लिए कई बार प्रयास किए।

द्विवेदी युग में दयानन्द की विचारधारा का पूरा का पूरा साहित्य रचनाकार मण्डल साथ में था जिसने आधुनिक हिन्दी की बहती हुई हवा के रुख को बदल दिया था। सदियों से कृष्ण का चरित्र राधा की कल्पना तथा उनका अश्लील चित्रण हिन्दी साहित्य में विद्यमान था, उसे स्वामी दयानन्द के शिष्य अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने प्रिय प्रवास में बदलकर रख दिया और लोगों को बता दिया कि कृष्ण कौन थे। वे महापुरुष थे तथा जन सेवा के लिए उनका जन्म हुआ। यह महाकाव्य हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है जो दयानन्द के प्रभाव का परिणाम था।

महाकवि पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने गर्भरण्डा रहस्य रच कर यह प्रमाणित कर दिया कि हम दयानन्द के शिष्य उनके स्त्री संबंधी व स्त्री जागरण सम्बन्धी विषयों पर किस प्रकार लिखकर जनता को जाग्रत कर सकते हैं और स्त्रियों के प्रति होते द्वेष पूर्ण व्यवहार की पोल खोल सकते हैं, समाज की पोल खोल सकते हैं। गर्भरण्डा रहस्य इनकी सुप्रसिद्ध व्यंग्य रचना है जिसमें गर्भ में ही विधवा हो जाने वाली बालिका के माध्यम से सामाजिक कुरीति का पर्दाफाश किया है।

मैथिलीशरण गुप्त आर्य समाज तथा दयानन्द से अत्यधिक प्रभावित थे इसी कारण उनके काव्य में दयानन्द के सिद्धान्त दिखाई देते हैं उनके इसी प्रभाव ने उन्हें ऐसी रचनाएँ रचने का साहस प्रदान किया जो स्त्रियों की कमजोरी दूर करे और उन्हें आत्मबल प्रदान करे उनके इस गुण के कारण मैथिलीशरण गुप्त को राष्ट्र कवि के नाम से जाना जाता है। मैथिलीशरण गुप्त की भारत–भारती में स्वामी के प्रायः सभी सुधारों का वर्णन है तभी तो दिनकर ने कहा है कि साकेत के राम तो स्वामी दयानन्द के कृष्वन्तो विश्वमार्यम् का नारा लगाते हैं।

छायावाद के साहित्यकारों में महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला पर स्वामी दयानन्द का प्रभाव था। वे फक्कड़ संत की भाँति थे। निराला की कृतियों में कई स्थलों पर दयानन्द का प्रभाव स्पष्ट झलकता है इनकी राम की शकित पूजा पर स्वामी दयानन्द का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। जिसमें तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्य को जानकी रूपी स्त्री को मुक्त कराने के लिए नष्ट करने की मन में ठानी थी। यह स्त्री मुक्ति का प्रसंग निराला ने स्वामी दयानन्द

के प्रभाव से ही स्थापित किया। छायावाद की रचनाओं में सबसे प्रमुख स्थान निराला की राम की शक्ति पूजा को मिला है। प्रेमचंद के उपन्यासों में व कहानियों में स्वामी दयानन्द का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

जयशंकर प्रसाद की कामायनी में अनेक प्रसंग ऐसे आये हैं जो स्वामी दयानन्द से प्रभावित हैं वहाँ स्त्री को श्रद्धा के रूप में तथा बुद्धि दोनों रूपों में देखा गया है जो हृदय से तथा बुद्धि से पुरुष से किसी भी प्रकार कम नहीं है। अनेक स्थलों पर वेदों तथा मनु स्मृति के स्त्री के उच्चादर्श प्रस्तुत हुए हैं वे महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश के हैं।

इसके अतिरिक्त पंत के काव्य में दयानन्द के वेद भाष्य के प्रकृति चित्रण के दृष्य प्रस्तुत हुए हैं। जिसमें स्त्री को प्रकृति रूपी इस गृह की सर्वोच्च सत्ता माना है।

छायावादोत्तर काल में रामधारीसिंह दिनकर एवं उपन्यासकार हजारीप्रसाद द्विवेदी की रचनाओं में दयानन्द का स्त्री मुक्ति प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा है। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता तथा समकालीन साहित्य में यत्र–तत्र महर्षि दयानन्द के विचार बिखरे पड़े हैं आवश्यकता है उन्हें समेटने की। ढूँढने की। खोजने की।

यहाँ शोधार्थी का उद्देश्य यह प्रमाणित करना है कि जितने भी साहित्यकार हिन्दी साहित्य में प्रशस्ति को प्राप्त हुए हैं उनके मूल में स्वामी दयानन्द सरस्वती की तेजस्वती शक्ति निहित है। दयानन्द का प्रभाव उनकी कृतियों पर ही नहीं है अपितु उनके मस्तिष्क पर भी है, उनके विचारों में है। दयानन्द एक मानव का नाम नहीं दयानन्द एक क्रान्ति का नाम है। एक विचार धारा का नाम है। जो दयानन्द से परिचित हो चुका वह दयानन्द के प्रभाव में आये बिना नहीं रह सकता तथा उसकी रचनाओं में वह प्रभाव स्वमेव ही लक्षित होगा।

शोधग्रन्थ में शोधार्थी का प्रमाण द्वारा यह सिद्ध करना ध्येय है कि सम्पूर्ण साहित्य जो आज तक लिखा गया और लिखा जा रहा है उसमें कहीं न कहीं अवश्य दयानन्द के प्रभाव का, उनके स्त्री सुधार का, विवरण अवश्य हुआ है और आगे भी गवेषणा करने पर स्त्री चिन्तन का प्रभाव ही नहीं, राष्ट्रीय चिन्तन, सामाजिक चिन्तन, आर्थिक चिन्तन, पारिवारिक चिन्तन, राजनैतिक चिन्तन, मानवीय चिन्तन आदि और भी अनेक चिन्तनों का प्रभाव अवश्य प्राप्त होगा। इन विषयों पर शोध की आवश्यकता है। शोध ग्रन्थ की उपलब्धियों को और भी अधिक सुदृढ़ करने के लिए यहाँ एक उदाहरण देना अनुचित न होगा– "महर्षि दयानन्द सरस्वती व आर्य समाज

ने सुधारवादी मार्ग अपनाते हुए बाल–विवाह, विधवा–विवाह, अनमेल–विवाह, छुआछूत आदि अनेक कुप्रथाओं के विरूद्ध आवाज उठाई इन्हें अनुगामी साहित्यकारों ने भी अपनाया। मिश्र बंधुओं ने लिखा है कि अनेक भूलों और पाखण्डों में फँसे हुए लोगों को सीधा राह दिखाकर जो अपने समय में महात्मा बुद्ध, स्वामी शंकराचार्य, रामानन्द, कबीरदास, बाबा नानक, वल्लभ भाई, चैतन्य महाप्रभु और राजाराम मोहन राय ठौर–ठौर कर गए, हम आर्य समाजी नहीं हैं तो भी हमारी समझ में ऐसा आता है। हम लोगों को जो वास्तविक हित दृष्टि से प्रयत्नों द्वारा हुआ और होना सम्भव है, उतना उपर्युक्त महात्माओं में से बहुतों ने नहीं कर पाया।"[5]

यहाँ शोध के निष्कर्ष एवं उपलब्धियों की सार्थकता इसी में है कि पाठक यह महसूस करे कि वास्तव में इस भारत की धरती पर ऐसा भी एक निर्भीक संन्यासी हुआ जिसने हिन्दी साहित्य के प्रचार के साथ स्त्रियों का इतना बड़ा भारी उपकार कर दिया। जिसका ज्ञान हिन्दी जानने व पढ़ने वालों को भी नहीं है। भारत देश की सम्पूर्ण स्त्रियों को दयानन्द के इस कार्य के लिए उनके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए तथा हिन्दी के जानने वालों को भी।

♦♦♦♦

सन्दर्भ 6.0

1. उपदेश मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, पृ.सं.–119
2. सत्यार्थ प्रकाश : स्वामी दयानन्द सरस्वती, सं. भगवद्दत्त, पृ.सं.–23
3. वही, पृ.सं.–70
4. दयानन्द और हिन्दी दलित साहित्य : दत्तात्रेय गौतम, पृ.सं.–28
5. निष्काम परिवर्तन पत्रिका वर्ष–19, अंक 9 सितम्बर 2008, पृ.सं.–6

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ – स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित

1. ऋग्वेद भाष्य (हिन्दी)
2. यजुर्वेद भाष्य (हिन्दी)
3. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका
4. सत्यार्थ प्रकाश (प्रथम संस्करण)
5. संस्कार विधि
6. सत्यार्थ प्रकाश
7. आर्याभिविनय
8. पंचमहा यज्ञ विधि
9. आर्योद्देश्यरत्नमाला
10. व्यवहारभानु
11. वेद विरुद्ध मतखण्डनम्
12. गोकरुणानिधि
13. दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह
14. पूना प्रवचन
15. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश
16. भागवत् खण्डनम्

(ख) सहायक ग्रन्थ/पुस्तकें

1.	ऋग्वेद भाष्य (हिन्दी)	दयानन्द सरस्वती	वैदिक यंत्रालय, अजमेर
2.	यजुर्वेद भाष्य (हिन्दी)	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
3.	ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
4.	सत्यार्थ प्रकाश	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
5.	आर्याभिविनय	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
6.	आर्योद्देश्यरत्नमाला	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
7.	व्यवहारभानु	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
8.	वेद विरुद्ध मतखण्डनम्	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
9.	गोकरुणानिधि	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
10.	दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह	दयानन्द सरस्वती	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली

11.	पूना प्रवचन	दयानन्द सरस्वती	वैदिक यंत्रालय, अजमेर
12.	नवजागरण के पुरोधा	डॉ. भवानी लाल भारतीय	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
13.	महाभारत	वेदव्यास	गीता प्रेस, गोरखपुर
14.	मनुस्मृति	प्रो. सुरेन्द्र कुमार	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रेस्ट, दिल्ली
15.	रामायण	वाल्मीकि	गीता प्रेस, गोरखपुर
16.	प्राचीन भारत की सामाजिक और आर्थिक संस्थाएँ	डॉ. कैलाश चन्द्र जैन	मध्यप्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
17.	शिल्प कर्म दयानन्द	हरिकेश दत्त शास्त्री	विश्वकर्मा साहित्य प्रकाशन, मन्दिर फतेहपुर
18.	वेद सौरभ	जगदीश विद्यार्थी	गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली
19.	दयानन्द निर्वाण शताब्दी (विशेषांक)	आर्य संसार सं. उमाकांत उपाध्याय	आर्य समाज कलकत्ता
20.	धर्मशास्त्र का इतिहास (हिन्दी पाँच भाग)	डॉ. पी.वी. काणे	हिन्दी संस्थान, लखनऊ
21.	समाजकल्याण तथा सुरक्षा	प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार	विजयकृष्ण लखनपाल, देहरादून
22.	समाज विज्ञान	राजाराम शास्त्री	प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार दिल्ली
23.	आदर्श भोजन	आचार्य चतुर सेन	राजपाल एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली
24.	महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र	धर्मवीर लेखराम	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
25.	महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र	देवेन्द्रनाथ मुखोपध्याय	आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली
26.	दयानन्द शिक्षा, राजनीति, कला सम्बन्धी विचार	डॉ. रामनाथ वेदालंकार	पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

27. समाज का कायाकल्प — प्रियव्रत वेदवाचस्पति — समर्पण शोध संस्थान, नई दिल्ली
28. प्राचीन भारत का इतिहास — डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी — मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
29. वैदिक साहित्य — पं. रामगोविन्द त्रिवेदी — भारतीय ज्ञान पीठ, काशी
30. वैदिक सम्पदा — वीरसेन वेद श्रमी — गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली
31. वैदिक विनय — अभयदेव वेदालंकार — गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली
32. दयानन्द सरस्वती का आर्थिक चिन्तन — डॉ. रामकृष्ण आर्य — वैदिक यंत्रालय, अजमेर
33. उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों की स्थिति — संतोष यादव — प्रिटवेल पब्लिकेशन, जयपुर 1987
34. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों में नारी — डॉ. नीता रत्नेश — पाण्डूलिपि प्रकाशन, नई दिल्ली वर्ष–1996
35. हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी — डॉ. हरिशंकर शर्मा — प्रकाशक अराधना ब्रदर्स, कानपुर वर्ष 1992
36. साहित्य चिन्तन की नई दिशायें — डॉ. हरिश्चन्द्र शर्मा — प्रकाशक साहित्य संस्थान, रोहतक (हरियाणा) मार्च 1995
37. सामाजिक न्यास एवं दलित संघर्ष — डॉ. रामगोपाल सिंह — राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर वर्ष 1994
38. दलित जीवन की कहानियाँ — गिरिराज शरण — प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
39. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास — डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार — विजय कुमार, गोविन्दराम, हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली
40. पारासर गृह्यसूत्र : मधुर प्रकाशन, दिल्ली
41. शतपथ ब्राह्मण : भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
42. ऐतरेय ब्राह्मण : भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
43. जैमिनीय उपनिषद् : भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
44. तैत्तिरीय ब्राह्मण : भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
45. वायु पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर

46. ब्रह्मवैवर्त पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
47. भागवत् पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
48. शिव पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
49. वराह पुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर
50. वाल्मीकि रामायण : सं. जगदीश्वरानन्द सरस्वती विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली
51. याज्ञवल्क्य स्मृति : भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली
52. उपदेश मञ्जरी : स्वामी दयानन्द, मधुर प्रकाशन, दिल्ली
53. भारतवर्ष का इतिहास : रघुवीर शरण दुबलिस, भास्कर यंत्रालय, मेरठ नगर सं. 1975 विक्रम।
54. ऋग्वेद : सायण भाष्य
55. यजुर्वेद : सायण भाष्य
56. अथर्ववेद : सायण भाष्य
57. ऋग्वेद : महीधर भाष्य
58. यजुर्वेद : महीधर भाष्य
59. अथर्ववेद : महीधर भाष्य
60. पाली साहित्य का इतिहास : भिक्षुधर्मरक्षित, ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी
61. धम्मपद : डॉ. त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित, प्र. मास्टर खेलाड़ी लाल संकटाप्रसाद, संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ी गली, वाराणसी–1987
62. पाली साहित्य का इतिहास : डॉ. भरतसिंह उपाध्याय, प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग–1972
63. गीता : वेदव्यास, गीता प्रसे गोरखपुर
64. अभिज्ञान शकुंतलम : कालिदास, महालक्ष्मी प्रकाशन आगरा
65. संस्कृत साहित्य का इतिहास : द्वारिका प्रसाद सक्सेना, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा
66. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र, मयूर पैपर बैक्स, दिल्ली
67. कबीर वचनामृत : विजयेन्द्र स्नातक, रमेश चन्द्र मिश्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज, दिल्ली।
68. कबीर साखी सार : डॉ. तारकनाथ बाली व श्रीराम वशिष्ठ प्र. विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।
69. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, प्र. नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
70. जायसी ग्रन्थावली : राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
71. विनय पत्रिका : गोस्वामी तुलसीदास, डॉ. कृष्णदेव शर्मा, प्र. साहित्य भण्डार शिक्षा साहित्य प्रकाशक, सुभाष बाजार, मेरठ।

72. मीरा पदावली : सं. डॉ. शम्भू सिंह मनोहर, रिसर्च पब्लिकेशन्स त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।
73. गाँधी और दलित भारत जागरण : श्रीभगवान सिंह प्र. भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली
74. हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : डॉ. जयकिशनप्रसाद खण्डेलवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
75. औरत कल, आज और कल : आशारानी व्होरा; कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली
76. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा।
77. बाण भट्ट की आत्म कथा : आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी
78. वीमेन्स एण्ड सोसल इंजस्टिस : महात्मा गाँधी
79. प्रेमचन्द के पात्र : प्रयागराज मेहता
80. निर्मला : प्रेमचन्द, पुस्तक संसार, सेवा पथ चौड़ा रास्ता, जयपुर
81. गबन : प्रेमचन्द
82. हिन्दी उपन्यासों में नारी : शैल रस्तोगी
83. प्रेमचन्द और गुण : रामविलास शर्मा
84. विकास : प्रताप नारायण श्रीवास्तव
85. कंकाल : जयशंकर प्रसाद
86. तितली : जयशंकर प्रसाद
87. कल्याणी : जैनेन्द्र
88. शेखर एक जीवनी : अज्ञेय भाग द्वितीय
89. इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास : वल्लभ तिवारी
90. गुनाहों का देवता : धर्मवीर भारती
91. मृगनयनी : वृन्दावनलाल वर्मा
92. वृन्दावन लाल वर्मा उपन्यास और कला : शिवकुमार मिश्र
93. दादा कामरेड : यशपाल
94. देशद्रोही
95. प्रगतिशील साहित्य की समस्याएँ : रामविलास शर्मा
96. घरौंदे : रांगेय राघव
97. शोले : भैरवप्रसाद गुप्त
98. महाकाल : अमृत लाल नागर

99. बीज : अमृतराय

100. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व

101. सूरज किरन की छाँव : राजेन्द्र अवस्थी

102. हिन्दी उपन्यास में दाम्पतय चित्रण : उर्मिला भटनागर

103. आपका बंटी : मन्नू भण्डारी

104. हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला : रोहिणी अग्रवाल

105. हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक : जयश्री वराहाटे

106. हिन्दी उपन्यास के पद चिह्न

107. रुकोगी नहीं राधिका : उषा प्रियंवदा

108. परछाइयों के पीछे : शशि प्रभा शास्त्री

109. अपने पराये : शशि भूषण सिंहल

110. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में नारी के विविध रूप

111. आज का हिन्दी उपन्यास : इन्द्रनाथ मदान

112. हिन्दी उपन्यास उत्तरशती की उपलब्धियाँ : विवेकीराय

113. मेरी तेरी उसकी बात : यशपाल

114. मन्नू भंडारी एक इंच मुस्कान : राजेन्द्र यादव

115. उखड़े हुए लोग : राजेन्द्र यादव

116. शरीफों का कटरा : मन्मथ नाथ गुप्त

117. छोटी चम्पा बड़ी चम्पा : लक्ष्मीनारायण लाल

118. न आने वाला कल : मोहन राकेश

119. आत्मनेपद : अज्ञेय

120. रात खोगई : मनहर चौहान

121. अमृत और विष : अमृतलाल नागर

122. हिन्दू संस्कार : गीता प्रेस, गोरखपुर

123. बोधायन सूत्र : गीता प्रेस गोरखपुर

124. हिन्दी साहित्य का ओझल नारी इतिहास : नीरजा माधव सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली–2

125. भारत भारती : मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य प्रेस चिरगाँव झाँसी संस्करण 1999

126. हिन्दी अनुशीलन

127. आदमी की निगाह में औरत : राजेन्द्र यादव

128. ठीकरे की मंगनी : नासिरा शर्मा

129. स्त्री उपेक्षिता : प्रभा खेतान

130. हिन्दी उपन्यास सार्थक की पहचान : मधुरेश

131. कहती हैं औरतें : अनामिका

132. स्त्री विमर्श की उत्तर गाथा : अनामिका, प्र. सामयिक प्रकाशन नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली

133. हम सभ्य औरतें : मनीषा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली–2

134. स्त्री आकांक्षा के मानचित्र : गीता श्री, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

135. आधुनिक परिवार में स्त्री : कमला सिंघवी, कल्याणी शिक्षा परिषद जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली

136. स्त्री अस्मिता और समकालीन कविता : प्रमीला के.पी. सामयिक बुक्स, नई दिल्ली

137. स्त्री–विमर्श का कालजयी इतिहास : डॉ. संजय गर्ग, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

138. इस्पात में ढलती स्त्री : शशिकला राय, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

139. मोर्चे पर स्त्री : अंजुदुआ जैमिनी, कल्याणी शिक्षा परिषद नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली

140. स्त्री मुक्ति संघर्ष और इतिहास : रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

141. भारतीय नारी जीवन की कहानियाँ : प्रेमचन्द, कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली

142. नारीवादी काउंसलिंग सिद्धान्त और व्यवहार : सुनीता ठाकुर कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली

143. एन.जी.ओ. कार्यप्रणाली, सिद्धांत और व्यवहार : गोपाल नारायण आवटे, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली

144. पिछले पन्ने की औरतें : शरद सिंह, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

145. आधी दुनिया का सच : कुमुद शर्मा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली

146. मात्र देह नहीं औरत : मृदुला सिन्हा, सामयिक प्रकाशक, नई दिल्ली

147. नारी शोषण : आइने और आयाम

148. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली–3

149. अठारह सौ सत्तावन और स्वामी दयानन्द : वासुदेव वर्मा प्र. भारतीय लोक समिति, आर्यसमाज मार्ग, करौल बाग, नई दिल्ली

150. गर्भरण्डा रहस्य : पं. नाथूराम शर्मा 'शंकर' प्र. हरिशंकर शर्मा, हरदुआगंज, अलीगढ़, प्रथम संस्करण सं. 1976 वि.

151. दिव्य दयानन्द : सं. आचार्य सत्यानन्द 'नैष्ठिक' प्र. सत्यधर्म प्रकाशन, गुरुकुल कँवरपुरा, तहसील कोटपुतली, जयपुर
152. कामायनी सटीक : टी.डी. शिव प्रसाद भारद्वाज शास्त्री, प्र. अशोका प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली–6
153. अजात शत्रु समीक्षा : डॉ. कृष्णदेव शर्मा, प्र. अशोक प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली–6
154. छायावादी युग : डॉ. शम्भूनाथ सिंह
155. प्रेमचन्द घर : शिवरानी प्र. आत्माराम एण्ड संस, कश्मीरी गेट दिल्ली–6
156. प्रिय प्रवास टीका : डॉ. तारकनाथ बाली, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
157. प्रिय प्रवास : अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।
158. आजाद औरत कितनी आजाद : सं. शेलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली
159. इस्लाम में नारी : कुवर आनन्द सुमन, पं. (श्रीमती) सरस्वती सिंह संचालक, क्रान्ति प्रकाशन–तपोवन आश्रम, देहरादून, द्वितीय संस्करण।
160. मैं नारी हूँ : विष्णु प्रभाकर, प्र. सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
161. अनामिका एक मूल्यांकन : अभिषेक कश्यप, प्र. सामायिक बुक्स, नई दिल्ली
162. मैत्रेयी पुष्पा तथ्य और सत्य : सं. दया दीक्षित, प्र. सामयिक बुक्स, नई दिल्ली
163. नासिरा शर्मा एक मूल्यांकन : सं. एम. फिरोज अहमद, प्र. सामयिक बुक्स, नई दिल्ली–2
164. चित्रा मुद्गल एक मूल्यांकन : सं. के. वनजा, प्र. सामयिक बुक्स, नई दिल्ली–2
165. विश्व की प्रसिद्ध महिलाएँ : आशा रानी व्होरा, प्र. कल्याण शिक्षा परिषद, जटवाड़ा, दरियागंज, नई दिल्ली–2
166. औरत इतिहास रचा है तुमने : कुसुम त्रिपाठी, प्र. कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली–2
167. ऋषि दयानन्द सरस्वती स्वरचित लिखित वा कथित जन्म चरित्र सं. पंडित भगवद्दत्त, वि. संवत् 2008 प्र. रामलाल कपूर ट्रस्ट गुरुबाजार, अमृतसर
168. महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी स्मारिका, प्र. महर्षि दयानन्द निर्वाण शताब्दी समारिका अजमेर
169. आर्य समाज का इतिहास (प्रथम भाग) : इन्द्रवाचस्पति, प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली
170. संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर

171. पूर्ण पुरुष का विचित्र जीवन चरित्र : कुन्दन लाल आर्य चूनियाँ वाला, प्र. अनीता प्रकाशन 500/2 हलवाई हट्टा, पानीपत (हरियाणा)

172. स्वामी दयानन्द सरस्वती पश्चिम की दृष्टि में : डॉ. भवानीलाल भारतीय, प्र. दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर

173. महर्षि दयानन्द के सर्वश्रेष्ठ भाषण, आर्य प्रकाशन, 814 कूण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली

174. ग्लिम्प्सेस ऑफ दयानन्द : चमूपति, प्र. रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर

175. कुरुक्षेत्र : रामधारी सिंह दिनकर, प्र. राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली

176. साहित्यिक निबन्ध : राजनाथ शर्मा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

177. साहित्यिक निबन्ध : डॉ. देवीशरण रस्तोगी, प्र. राजहंस प्रकाशन मंदिर, धर्म आलोक, रामनगर, मेरठ (उ.प्र.)

(ग) कोश एवं विश्वकोश –

1. हिन्दी साहित्य कोश — डॉ. धीरेन्द्र वर्मा
2. मानक हिन्दी–अंग्रेजी कोश — सं. सत्यार्थ प्रकाश एवं बलभद्र मिश्र
3. मानक हिन्दी कोश — रामचन्द्र वर्मा
4. संस्कृत–हिन्दी कोश — वामन शिवरामन आप्टे
5. हिन्दी शब्द सागर–मूल सं. श्याम सुन्दर दास, बी.ए., नागरी प्रचारिणी सभा काशी
6. संस्कृत धातु कोश, सम्पादक युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट बहालगढ़, सोनीपत
7. अमरकोश, अमरसिंह, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
8. वैदिक इण्डेक्स रामलाल, कपूर ट्रस्ट, अमृतसर
9. निघण्टू कोश, परोपकारी सभा, अजमेर
10. पाणिनी अष्टाध्यायी, रामलाल, कपूर ट्रस्ट, दिल्ली

(घ) पत्र एवं पत्रिकाएँ –

ज्ञानोदय, मधुमती, दीर्घा, व्यंग्य यात्रा, आलोचना, हंस, वागर्थ, तद्भव कथादेश, वैदिक पथ निष्काम परिवर्तन पत्रिका आदि।

♦ ♦ ♦ ♦

परिशिष्ट–एक : स्त्री–विमर्श के प्रथम प्राण

भारत में स्त्री विमर्श की चर्चा चलती है तो सर्वप्रथम नाम यह आता है कि यह आन्दोलन सर्वप्रथम ब्रिटेन और अमेरिका से शुरू हुआ। यहाँ यह समझ नहीं आता कि जो भी प्रारंभ होता है वह सब इंग्लैण्ड और अमेरिका से ही शुरू होता है क्या ? क्या भारतीयों के मस्तिष्क में केवल नकल करने की ही क्षमता है ? उनमें किसी चीज को या सोच को स्वयं अपने मस्तिष्क से पैदा कर विकसित करने का दिमाग नहीं दिया है क्या ? सारी सोचें, सारा विज्ञान, सारी तकनीक सब विदेशों की नकल से यहाँ आते हैं क्या ? यह सही नहीं है यह मात्र हमारी बुद्धि का दिवालियापन है और कुछ नहीं।

जब भी भारत में या हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श की बात चलती है तो इसे भी यहाँ के लेखकगण अमेरिका इंग्लेंड से आई हुई जागृति मानते हैं हमारी मौलिक जागृति जैसे कुछ हो ही नहीं ?

हिन्दी साहित्य की एक उच्च प्रकाशन संस्था भारतीय ज्ञानपीठ की पत्रिका नया ज्ञानोदय नवम्बर 2006 के पृष्ठ 11 पर छपा है कि नारी में अपनी पराधीनता से मुक्ति की चिन्ता का विचार इंग्लैण्ड और अमेरिका से सर्वप्रथम जागृति रूप में आया। यहाँ पर शोधार्थी इस बात को पूर्ण प्रमाण बल के साथ निरस्त करता है कि यह बाहरी जागृति थी। यह केवल मात्र भारतीय जागृति थी। वह भी परिस्थिति जन्य। स्त्री–स्वाधीनता व स्त्रियों में जागृति का आना पूर्णतः भारतीय विचार था। चाहे इससे पहले ब्रिटेन व अमेरिका में मताधिकार को लेकर आन्दोलन हो चुका हो।

आगे उसी अंक में लिखा है कि "भारत की आंरम्भिक आन्दोलन कर्ताओं में प्रमुख थीं पंडिता रमा बाई और सावित्री बाई फूले। दोनों ही उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में सक्रिय रहीं। पंडिता रमा बाई ने स्त्रियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया, हिन्दू धर्म की रूढ़िवादिता पर आघात किया तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में स्त्रियों की स्वतंत्रता की बात की उन्होंने स्वयं सदा स्वाधीन जीवन बिताया। सावित्री फूले ने स्त्रियों की शिक्षा के लिए महत्त्वपूर्ण काम किए। उनके लिए अलग स्कूल खोला एक तरह से हम उन्हें देश की पहली शिक्षिका कह सकते हैं।" इसके अतिरिक्त आधुनिक युग के स्त्री–विमर्श में सबसे पहले स्त्रियों में ये देश की पहली शिक्षिकाएँ थीं।

यदि मानते भी हैं कि प्रथम स्त्रियों में ये शिक्षित थीं तो दोनों ही ऋषि दयानन्द से प्रेरित थीं तथा भारतीय संस्कृति का प्रभाव भी इन पर था। हो सकता है कि इन पर कुछ

अंग्रेजी सभ्यता का प्रभाव हो, किन्तु स्वामी दयानन्द की जो मौलिक सोच स्त्री उत्थान की थी, उनसे ही प्रेरणा लेकर इन्होंने स्त्री जागरुकता की लहर आगे बढ़ाई।

सावित्री बाई फूले महात्मा ज्योतिराव फूले की पत्नी थी और वे स्वामी दयानन्द के समकक्ष थे। महादेव गोविन्द रानाडे के पूना आमन्त्रण पर स्वामी दयानन्द पूना गये और वहाँ पर व्याख्यान दिए इस दौरान वे ज्योतिबा फूले से भी मिले। महात्मा फूले के मराठी जीवनी लेखक धनंजय कीर के अनुसार "स्वामी दयानन्द के सम्मान में जब पुणे में रानाडे तथा उनके साथियों ने एक शोभा यात्रा का आयोजन किया तो उसमें फूले भी उपस्थित थे।" फूले भी स्वामी दयानन्द के समाज एवं धर्म संशोधन विषयक अनेक मुद्दों से पूर्ण सहमति रखते थे अतः वे 5 सितम्बर 1875 को निकाली गई इस शोभा यात्रा में उत्साहपूर्वक सम्मिलित हुए। प्रो. हरिदत्त वेदालंकार के अनुसार स्वामी दयानन्द के एक ओर न्यायमूर्ति रानाडे और दूसरी और महात्मा फूले चल रहे थे। इसके अतिरिक्त महात्मा फूले की जीवन पर आधारित एक मराठी फिल्म के निर्माता आचार्य प्रहलाद केशव अत्रे ने स्वामी दयानन्द की शोभा यात्रा में महात्मा फूले की उपस्थिति को प्रमुखता देकर प्रदर्शित किया है। इस आधार पर यह स्वतः सिद्ध है कि महात्मा ज्योतिबा फूले स्वामी दयानन्द के कई विचारों से सहमत और उन से प्रभावित थे। एतएव जब 1875 में पूना में स्वामी दयानन्द के आगमन के पश्चात् सन् 1878 में पूना में बुधवार पेठ में श्रीभिड़े के मकान में उन्होंने मराठों के लिए मराठी भाषा का स्कूल खोला तो उन्होंने खुद अपनी स्त्री को भी मराठी पढ़ा दिया था। एतएव उससे वे अपने स्कूल में सहायक अध्यापिका का काम लेने लगे। इस स्कूल में लड़कियाँ भी भर्ती की जाती थीं किन्तु ज्योतिबा के पिता को अपनी पुत्र–वधू का स्कूल में अध्यापिका होकर रहना अच्छा नहीं लगा एतएव पिता की ओर से पुत्र के इस काम में बहुत कुछ बाधाएँ भी डाली गईं। थोड़े ही दिनों बाद लड़कियों के लिए सरकारी स्कूल के खुल जाने पर ज्योतिराव ने यह स्कूल बन्द कर दिया। वैदिक काल की गार्गी, मैत्रेयी तथा महाभारत के कुछ शिक्षित स्त्री पात्रों के बाद जब मध्य युग ने देश को खराब हालत में स्त्रियों की शिक्षा को खत्म कर दिया तथा वे पूर्णतः अशिक्षित हो गईं जिसके पश्चात् स्त्री जागरण काल व आधुनिक काल में यहाँ पर यह सत्य है, कि उन्नीसवीं शताब्दी के आठवें दशक में सावित्री बाई फूले को देश की प्रथम शिक्षिका के रूप में माना जा सकता है। किन्तु यहाँ यह भी सत्य एवं स्पष्ट है कि इसके पीछे जो जागृति एवं शक्ति काम कर गई थी वह स्वामी दयानन्द की स्त्री संबंधी सोच थी जो उन्होंने पूना प्रवचनों के दौरान सन् 1875 में प्रवाहित की थी। देश की पहली महिला शिक्षिका को पैदा करने का श्रेय भी

स्वामी दयानन्द सरस्वती को जाता है। यह शोध का निर्विवादित सत्य विषय है जो पूर्णतः सौ प्रतिशत भारतीय आन्दोलन था। न कि ब्रिटिश और अमेरिका से आयातित। क्योंकि पन्द्रह दिन तक चले स्वामी दयानन्द के पूना में दिए गए व्याख्यानों को अपने पति ज्योतिराव फूले के साथ सुनने के प्रभाव से ही सावित्री बाई फूले में स्त्रियों के लिए कुछ करने का भाव जागा। स्त्री–विमर्श की दूसरी प्रथम आन्दोलन कर्ता एवं जागरुक महिला में नाम पंडिता रमा बाई का आता है। रमा बाई शिक्षित थी और उन्हें संस्कृत का अच्छा ज्ञान था। वह भी तत्कालीन भारतीय मनीषी स्वामी दयानन्द सरस्वती से प्रभावित थी इसको यहाँ इस प्रकार से समझा जा सकता है–

पंडिता रमा बाई मंगलोर (कर्नाटक) की रहने वाली थी। इसके पिता और माता दोनों संस्कृतज्ञ थे, अतः उन्होंने अपनी पुत्री को भी प्रारंभ से ही संस्कृत की शिक्षा दी। माता–पिता की मृत्यु के बाद अपने भाई के साथ 1878 ई. में कलकत्ता चली गई। वहाँ इसके भाई की भी मृत्यु हो गई। इसी समय स्वामी दयानन्द सरस्वती का इससे पत्र व्यवहार प्रारंभ हुआ था। मेरठ में स्वामी दयानन्द का आगमन छटी बार था। आर्य समाज मेरठ की स्थापना दो वर्ष पूर्व 1878 में हो चुकी थी इस समय यह आर्य समाज एक कन्या पाठशाला भी चला रहा था। इस पाठशाला के लिए एक सुयोग्य, सुपठित अध्यापिका की आवश्यकता थी। इसी बीच स्वामी दयानन्द को एक दक्षिणात्य विदूषी ब्राह्मण कन्या पण्डिता रमा बाई का पता चला। वह उस समय कलकत्ता में थी। रमा बाई से स्वामीजी ने पत्र व्यवहार किया। स्वामी दयानन्द और रमा बाई का यह पत्र व्यवहार संस्कृत में हुआ था। स्वामी जी ने रमा बाई को दो पत्र लिखे प्रथम (आषाढ़ शुक्ला 6,1937 विक्रम तथा द्वितीय आषाढ़ पूर्णिमा 1937 वि.) इनके उत्तर में रमाबाई ने तीन पत्र (आषाढ़ शुक्ला प्रतिपदा 1802 शकाब्द, 1 अगस्त 1880 ई. तथा अन्तिम तिथि रहित) भेजे यह पत्र व्यवहार सर्वप्रथम परोपकारी के कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा 1946 वि. के अंक में प्रकाशित हुआ। कालान्तर में इसे रामविलास सारदा ने स्वलिखित आर्य धमेन्द्र जीवन में संकलित किया। ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन में भी यह पत्र व्यवहार (सं. 238, 250) अद्धृत किया गया। फलस्वरूप वह मेरठ आ गई, मेरठ में रमा बाई के साथ दो नौकर भी आये थे जिनमें एक पुरुष तथा दूसरी महिला थी। कुछ समय पश्चात् कलकत्ता का एक कायस्थ विपिन बिहारी एम.ए.बी.एल. भी मेरठ आया जो रमाबाई का परिचित मित्र था। यह भी उसी के साथ ठहरा। बाबू छेदीलाल गुमाश्ते के घर पर रमा बाई के निवास की व्यवस्था कर दी गई।

मेरठ में रमा बाई के चार–पाँच व्याख्यान हुए एक तो बाबू छेदीलाल के घर पर ही हुआ, जहाँ वे ठहरी थी। बाकी आर्य समाज में हुए। स्वामी जी स्वंय उसके व्याख्यानों में कभी नहीं गये। पं. ज्वालादत्त इन व्याख्यानों में उपस्थित रहते थे, इन व्याख्यानों का सार संक्षेप में स्वामी जी को बाद में सुना देते थे। रमा बाई की संस्कृत में असाधारण गति थी। उसने व्याकरण, काव्य तथा रामायण, महाभारत आदि का अच्छा अभ्यास कर रखा था। यद्यपि स्वामी दयानन्द ने किसी नारी को शिष्या बनाकर विधिवत कभी नहीं पढ़ाया था और वे सन्यास आश्रम की प्रचलित मर्यादा के अनुसार ऐसा करना अनुचित भी समझते थे, तथापि रमा बाई में विद्या के प्रति स्वाभविक रुचि तथा इस आशा के साथ कि शास्त्रज्ञ बनकर यह देवी भारतीय महिला वर्ग की उन्नति में अपना योगदान कर सकती है। स्वामी दयानन्द ने रमा से जो आशा रखी थी उसे उन्होंने अपने पत्र में इस प्रकार व्यक्त किया था– "यथा ऽऽर्यावर्तीयाः सत्यो विदुष्यो गार्ग्यादयः कुमार्य्यो ब्रह्मचर्ये स्थित्वा स्त्रिजनादिभ्यो यावान् सुखलाभः। प्रापिवत्यस्तथा तावान् विवाहे कृतेऽनेकप्रतिबंधक प्राप्त्या प्रापितुमशक्यः।" जैसे आर्यावर्तीय सती विदुषी गार्गी आदि कुमारियों ने ब्रह्मचर्य में स्थित होकर स्त्रीजनों को जितना सुख लाभ प्राप्त कराया है, वैसा उतना सुख आप विवाह करने पर अनेक प्रतिबन्धों के कारण नहीं प्राप्त करा सकेंगी (स्वामी दयानन्द का रमाबाई के नाम पत्र) उन्होंने रमाबाई को न्याय और वैशेषिक के कुछ सूत्र पढ़ाये। जिस समय महाराज रमा बाई को पढ़ाते उस समय उनके शिष्य पं. ज्वालादत्त तथा आर्य समाज मेरठ के सदस्य पं. पालीराम और बाबू ज्योतिस्वरूप उपस्थित रहते थे।

स्वामी जी का रमाबाई को प्रोत्साहन के पीछे उनके मन में स्त्रियों के लिए एक ऐसी शिक्षिका ढूँढने की प्रबल इच्छा थी जो यहाँ की स्त्रियों को पुनः गार्गी जैसी बना सके। स्वामीजी के मन में स्त्रियों की शिक्षा न होने के कारण बड़ी पीड़ा थी। उनका हार्दिक विश्वास था कि रमा बाई यदि भारत के नारी वर्ग में शिक्षा, सुसंस्कार तथा धर्म प्रचार का व्रत ले सके, तो निश्चय ही शताब्दियों से अज्ञान अविद्या, अंधविश्वास तथा रूढ़ियों की जंजीरों में जकड़ी भारत की नारी उत्थान की दिशा में अग्रसर हो सकेगी। अतः उन्होंने रमा बाई को वैदिक धर्म की उपदेशिका बनकर स्त्री वर्ग के जागरण का महान् कार्य सोंपना चाहा। परंतु रमा बाई के चरित्र में वैसी दृढ़ता नहीं थी, जिसको सबल बनाकर वह महिला जागरण का शंखनाद करने में सफल होती। रमा बाई ने स्वयं की दुर्बलता को इस प्रकार स्वीकार किया था– "सनातनभारतवर्षभूषणानि ललनारत्नानि गार्ग्याद्या आजन्म ब्रह्मचारिण्यो ब्रह्मवादिन्यश्च यथा स्वजातिदेशोन्नतिं साधयन्ति स्म तदुपममहत्तमकर्म नामग्रहणमपि

मादृशबालिशमतौ बालिकामात्रायां न शोभत इत्येतत् स्फुटमेव।" गार्गी आदि ब्रह्मचारिणी और ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ जैसी स्वजाति और देश की उन्नति साधती थीं, यह स्पष्ट है कि उनकी उपमा वाले महत्तम काम का नाम ग्रहण भी मुझ बालिशमति बालिका मात्र में शोभा नहीं देता (रमाबाई का स्वामीजी के नाम पत्र)। जो बंगाली कायस्थ मेरठ में उनके पास आकर रहने लगा था। रमाबाई उसी से विवाह करना चाहती थी। स्वामी जी के निकट आकर रहने में तथा उनका सम्पर्क प्राप्त करने में उसका प्रयोजन तो इतना ही था कि गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था मानने वाले स्वामी दयानन्द उसके इस कार्य की अनुशंसा कर दें। जब स्वामी जी को रमा बाई की मंशा का पता चला तो उन्होंने उससे स्पष्ट कह दिया कि अपने सामने बिठाकर अब तक वे उसे इसी आशा से पढ़ाते रहे थे कि पूर्ण शास्त्रज्ञ होकर वह देश की नारी वर्ग को भी शिक्षित बनाने का व्रत लेगी। अब जबकि वह विवाहिता नारी के रूप में अपना भावी जीवन बिताना चाहती है, तो उसकी इच्छा। इसी बीच उन्हें रमा तथा विपिन बिहारी के संबंधों का भी पता चला (द्रव्टव्य–स्वामी दयानन्द का बाबू दुर्गा प्रसाद के नामपत्र भाद्रपद शुक्ला 4, 1937 वि.–पत्र व्यवहार पृ.230) यह सब जानकर महाराज इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि रमाबाई उनके द्वारा बताये मार्ग पर चलने के लिए तैयार नहीं है ऐसी स्थिति में उन्होंने यही उचित समझा कि उसे ससम्मान विदा कर दिया जाये। आर्य समाज मेरठ के द्वारा एक विदाई समारोह आयोजित किया गया इसमें बोलते हुए पं. पालीराम ने रमाबाई से स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट आदर्शों को अपनाने की प्रेरणा की। अपने सम्मान का उत्तर देते हुए रमा ने स्वामी दयानन्द की भूरि–भूरि प्रशंसा की, विद्या में उन्हें बृहस्पति तुल्य बताया, किन्तु यह भी स्पष्ट कर दिया कि देश में यत्र–तत्र घूमकर धर्म प्रचार करना उसके लिए सामर्थ्य से बाहर है। आर्य समाज की ओर से रमा बाई को 125 रुपए तथा कपड़े का एक थान भेंट रूप में दिया गया। स्वामी दयानन्द ने स्वलिखित ग्रन्थों का एक सेट भी दिया।

रमा बाई के जीवन की यह विडम्बना ही थी कि संस्कृत शास्त्रों को विधिवत अध्ययन कर लेने के पश्चात् भी वह स्वामी दयानन्द द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने में असमर्थ रही। कालान्तर में उसने उस विपिन बिहारी से विवाह किया जो मेरठ में उसके साथ था। परन्तु दुर्भाग्य की मारी रमा बाई दो वर्ष बाद ही विधवा हो गई। उस समय उसकी गोद में एक बालिका थी। 1883 में वह इंग्लैण्ड गई और इसी वर्ष के अन्त में उसने ईसाई

मत ग्रहण कर लिया। कालान्तर में उसने पुणे में शारदा सदन नामक एक विधवाश्रम स्थापित किया। इस संस्था के माध्यम से जहाँ उसने सामाजिक अत्याचारों में त्रस्त, पीड़ित और अनाथ महिलाओं को संरक्षण दिया, वहाँ बहुसंख्यक हिन्दू नारियों को ईसाई मत में प्रविष्ठ कराने में भी कोई कसर नहीं रक्खी।

यह सत्य है कि पण्डिता रमा बाई स्वामी दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट देशोत्थान तथा नारी वर्ग के सुधार के उच्च लक्ष्य को पूरा करने में असमर्थ रही, किन्तु स्वामी दयानन्द के व्यक्तित्व के प्रति उसकी धारणा अत्यन्त सम्मानस्पद रही। देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को लिखे अपने 13 नवम्बर 1903 के पत्र में रमाबाई ने दयानन्द के सम्बन्ध में निम्न उद्‌गार व्यक्त किये– "वह सर्वभावेन दया स्वरूप थे। वह प्रांशु विशाल दर्शन भद्र पुरुष थे। उनका मेरे साथ व्यवहार कृपापूर्ण और पितृतुल्य था। वह शुद्ध भाषा प्रभावोत्पादक स्वर में बोलते थे। वह कभी हिन्दी और कभी संस्कृत में बातें किया करते थे।....छहों दर्शनों में से वे वैशेषिक दर्शन को सबसे अधिक पसन्द करते थे। उनकी शिक्षा अद्वैत वेदांत से भिन्न थी और उस समय मैं केवल एक इसी बात में उनसे सहमत थी।" उसने स्वामी जी की इस बात के लिए भी प्रशंसा की है कि उन्होंने स्त्री और शूद्र वर्ग को भी वेद के अध्ययन का अधिकारी घोषित किया था। उसने यह भी स्वीकार किया कि धार्मिक विषयों में वह स्वयं अव्यवस्थित थी अतः स्वामी दयानन्द के धर्म प्रचार विषयक प्रस्ताव को स्वीकार करना उसके लिए संभव नहीं हो सका। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में स्त्री–विमर्श का उद्‌भव का पाठ नहीं है इसके कारण तथा स्त्री–विमर्श की कई पुस्तकों में स्त्री विमर्श का प्रारंभ या तो ब्रिटेन, अमेरिका की स्त्री जागरुकता से या किसी अन्य से जोड़कर दिखा दिया जाता है। इसलिए यहाँ उक्त परिशिष्ट अनिवार्य बन गया।

भारतीय ज्ञान पीठ से प्रकाशित नया ज्ञानोदय नवम्बर 2006 के लेख में पृष्ठ 11 पर स्त्री विमर्श को ब्रिटेन व अमेरिका से बताने के बाद सावित्री बाई फूले एवं रमा बाई को प्रथम स्त्री आन्दोलनकर्त्री बताया है ऐसा ही कुछ अन्य ग्रन्थों में भी लोग बताते हैं। इसी आधार पर स्त्री–विमर्श को ब्रिटेन एवं अमेरिका से खारिज करते हुए सावित्री बाई फूले और रमा देवी से उस आन्दोलन के मूल कारण को जानते हुए प्रारम्भ ठीक ही ठहरता है किन्तु यहाँ पर भी प्रश्न यह उठता है कि इन स्त्रियों को प्रेरित करने वाला कौन था ? इनके आन्दोलन या स्त्री प्रयासों का मूल विकास कहाँ से हुआ था ? उत्तर स्वतः सिद्ध है स्वामी दयानन्द से ! यहाँ अतिरिक्त परिशिष्ट देने के पीछे शोधार्थी का यह सिद्ध करना कर्तव्य है,

कि स्त्री–विमर्श, स्त्री–जागरण, स्त्री–स्वाधीनता, स्त्री–उत्थान तथा स्त्रियों पर हो रहे अत्याचार जैसे बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, अमेल–विवाह, सती–प्रथा, विधवा–विवाह निषेध आदि के प्रथम उद्घोषक, द्रष्टा, कार्यकर्त्ता स्वामी दयानन्द ही थे। उद्घोषणा तो कोई भी कर सकता है, की भी होगी किन्तु इस क्षेत्र में स्त्रियों की स्थिति सुधारने का जो कार्य भारत में दयानन्द ने किया वह शायद किसी ओर ने किया हो। उन्होंने स्त्री उत्थान के लिए क्षेत्र में कार्य किया है, केवल भाषण नहीं दिए जिसका प्रमाण आज भी इस क्षेत्र में कार्यरत उनकी संस्था आर्य समाज है।

इसी बात को भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित (संस्करण 2008) पुस्तक गाँधी और दलित भारत जागरण के लेखक भगवान सिंह ने भी द्वितीय अध्याय स्त्री–जागरण अर्थात् स्त्री सशक्तीकरण का उद्धार में पृष्ठ 115 पर "भारत की आंचलिक आन्दोलन कर्त्ताओं" में प्रमुख पंडिता रमाबाई और सावित्री बाई फुले को माना है और नीचे के पेरा में स्वामी दयानन्द सरस्वती और उनके आर्य समाज को स्त्री सुधार से संबंधित कार्य में जबरदस्त मुहिम चलाने वाला स्वीकार किया है यह उनकी सत्य स्थापना है, किन्तु यहाँ दोनों स्त्रियों के मूल में कौन था यह स्पष्ट नहीं हो पाया है और न ही नॉर्थ इंडिया क्रश्चियन ट्रेक्ट एण्ड बुक सोसायटी इलाहाबाद से प्रकाशित पंडिता रमा बाई के जीवन चरित्र में रमा बाई ने स्वामी दयानन्द से अपनी भेंट आदि का कहीं उल्लेख नहीं किया है और इसका उल्लेख नहीं होने का कारण भी स्पष्ट है कि ईसाई मिशनरियों का षडयंत्र था। कुन्दन लाल आर्य पूनिया वाला द्वारा लिखित पूर्ण पुरुष का विचित्र जीवन चरित्र अनीता आर्ष प्रकाशन 500/2 हलवाई हट्टा–पानीपत (हरियाणा) की प्रस्तावना में प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु ने लिखा है कि "जब कुन्दनलाल जी शिष्ट मण्डल के साथ पण्डिता रमा बाई से मिले तो उसने अत्यन्त नम्रता से ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति को व्यक्त किया। ऋषि दयानन्द को एक निष्कंलक महापुरूष बताया। ऋषि के पवित्र जीवन की भूरि–भूरि प्रशंसा की।" परन्तु इतने पर भी उसने अपने आत्म वृतांत में कहीं दयानन्द से भेंट का उल्लेख नहीं किया। इसका कारण यहाँ यही मालूम होता है कि उसे ईसाई मिशनरियों ने ऐसा जकड़ रखा था कि वह उस विचारधारा से बाहर उबर नहीं पाई। जिज्ञासु जी भूमिका में आगे लिखते हैं कि "पण्डिता रमा बाई को ऋषि जी ने ब्रह्मचारिणी रहकर प्रचार की प्रेरणा दी थी। यह ऋषि की दिव्य दृष्टि ही थी। पौराणिकों की कृपा से रमा बाई ईसाई बन गई। उसने न्यून

अति न्यून 50000 हिन्दू स्त्रियों को ईसाई बना दिया। यह उसकी लग्न, योग्यता व कार्य क्षमता का फल था। उसने पौराणिकों की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर इतनी स्त्रियों को धर्मच्युत कर दिया।"

यही कारण था कि उसने अपने आत्म वृतांत में दयानन्द जी से भेंट का वर्णन नहीं किया वह ईसाई मिशनरी के भ्रष्ट तंत्र में फंस चुकी थी। एक कारण यह भी था कि यदि वह दयानन्द के साथ भेंट का उल्लेख करती तो जब वह मेरठ में गई थी तो उसके साथ जिस व्यक्ति से उसने स्वामी जी के सामने विवाह की इच्छा जताई थी और स्वामी जी ने मना कर दिया था तथा उसके चरित्र की भी जानकारी लोगों से माँगी थी तब उसका चरित्र अच्छा नहीं होने की सूचना स्वामी जी को मिलने पर उसे तुरन्त विदा कर दिया था। यही सब बातें प्रकाश में आई और उसकी चरित्र भ्रष्टता के साथ बाद में उस व्यक्ति की दो वर्ष बाद मृत्यु के बाद की भी संयमहीनता एवं स्वेच्छाचारिता सामने आती, इसलिए उस बिन्दु पर वह चुप रही। कुछ भी हो फिर भी स्त्री–विमर्श के शुरूआती दिनों में उसका स्थान तो है ही।

हिन्दी साहित्य के स्त्री–विमर्श में प्रथम दो महिलाओं की मुख्य भूमिकाओं का लेखक जहाँ वर्णन कर रहे हैं वहाँ वे लोग संस्कृत की उक्ति 'जड़ को छोड़ पत्तों को सींचने' का कार्य मात्र कर रहे हैं। स्त्री जागरण के उत्थान में इन दो महिलाओं की भूमिका के मूल द्रष्टा स्वामी दयानन्द ही थे। यह प्रमाण हिन्दी साहित्य के स्त्री–विमर्श के अन्य शोधकर्त्ताओं के लिए महत्त्व का विषय होगा। इस कारण इस परिशिष्ट को जोड़ा गया है। मुख्यतः स्त्री–विमर्श का प्रारंभ दयानन्द सरस्वती से ही है।

♦♦♦♦

परिशिष्ट-दो : छायाचित्र

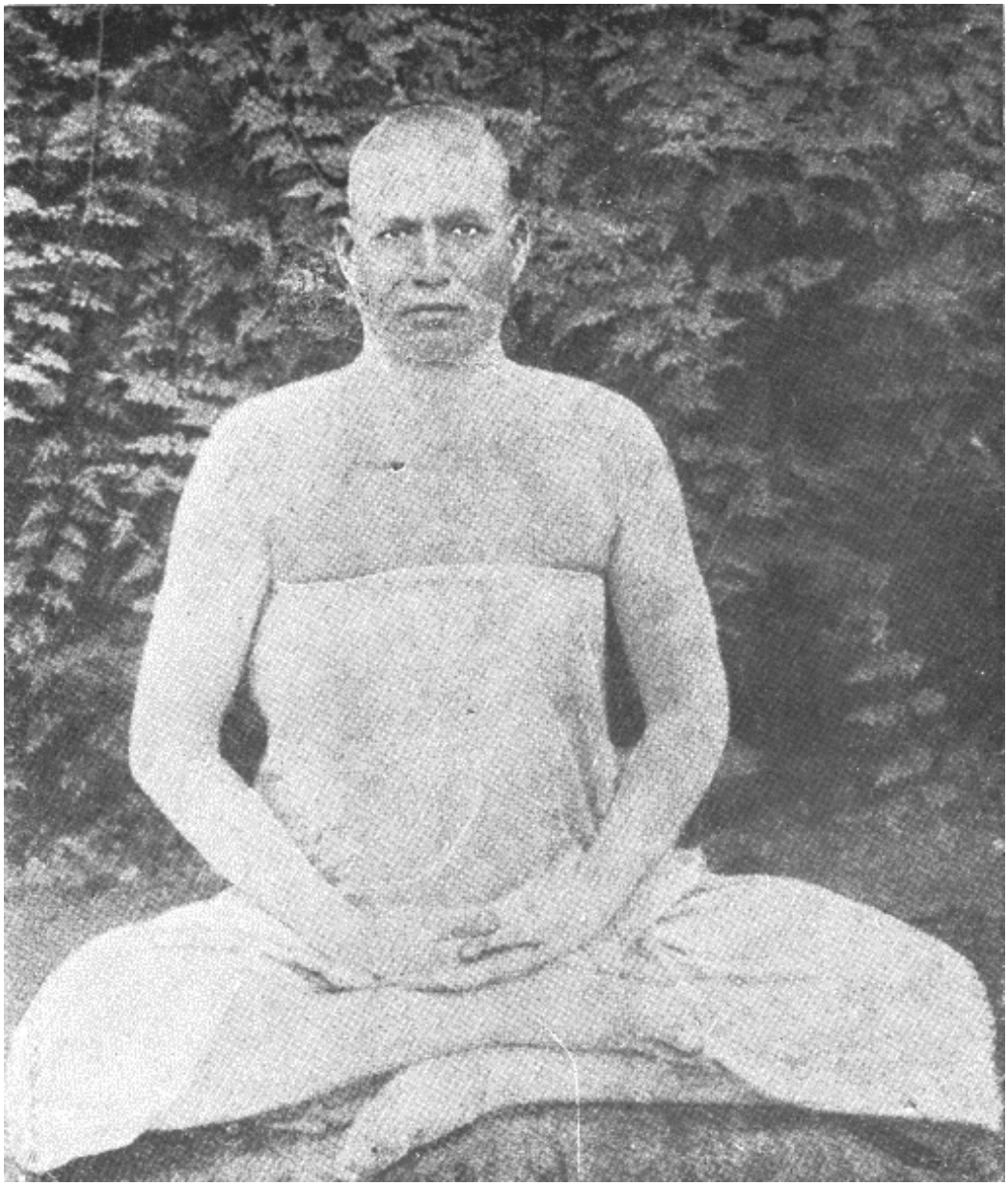

संवत् 1924 (सन् 1867) में मेरठ में लिया गया चित्र
ऋषि-भक्त श्री मामराज सिंह जी द्वारा संग्रहीत

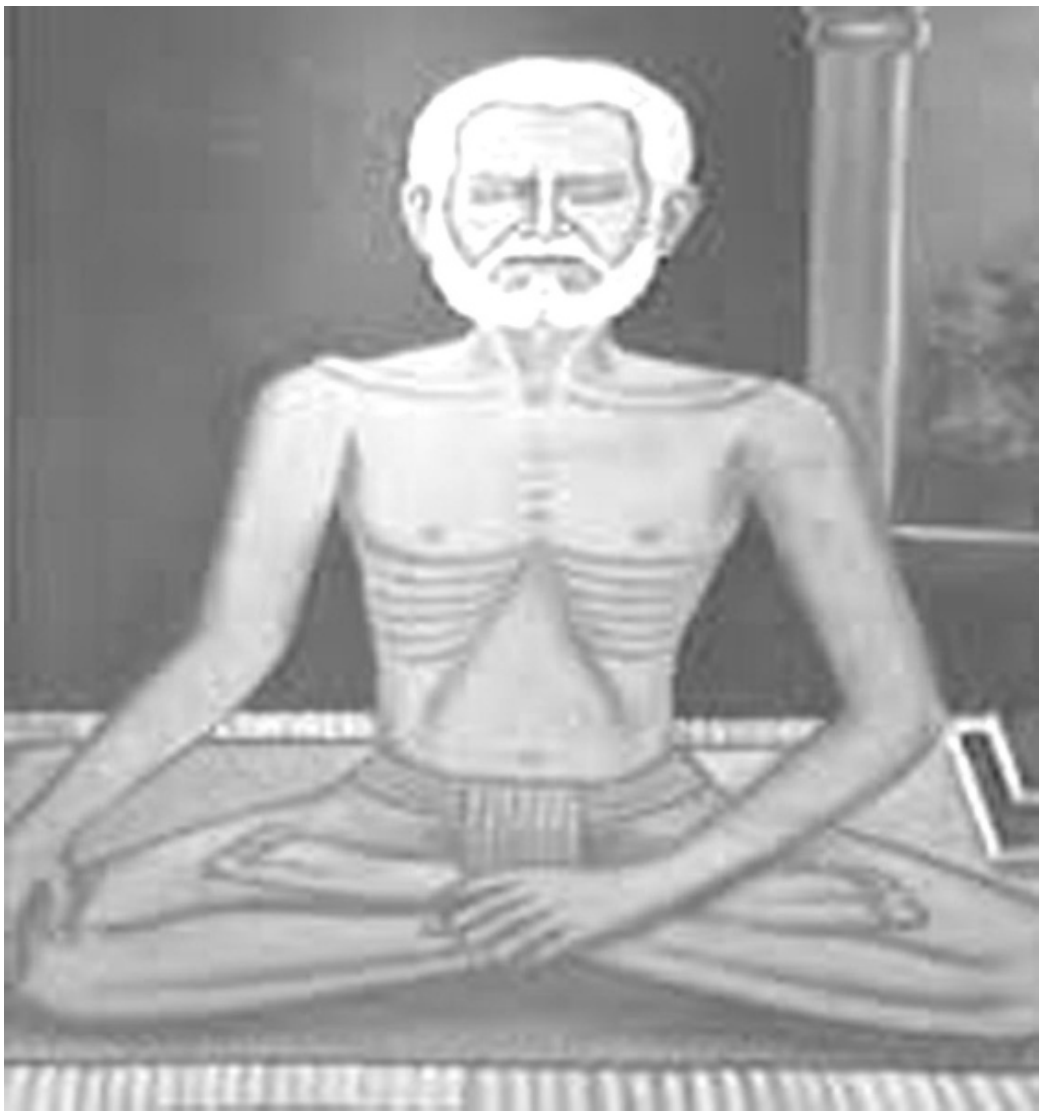

व्याकरण के सूर्य प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती
स्वामी दयानन्द सरस्वती के गुरु

पुस्तकों की छपाई हेतु स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अजमेर राजस्थान में यंत्रालय स्थापित किया जो अपने समय का उत्तर भारत का सबसे बड़ा मुद्रणालय था।

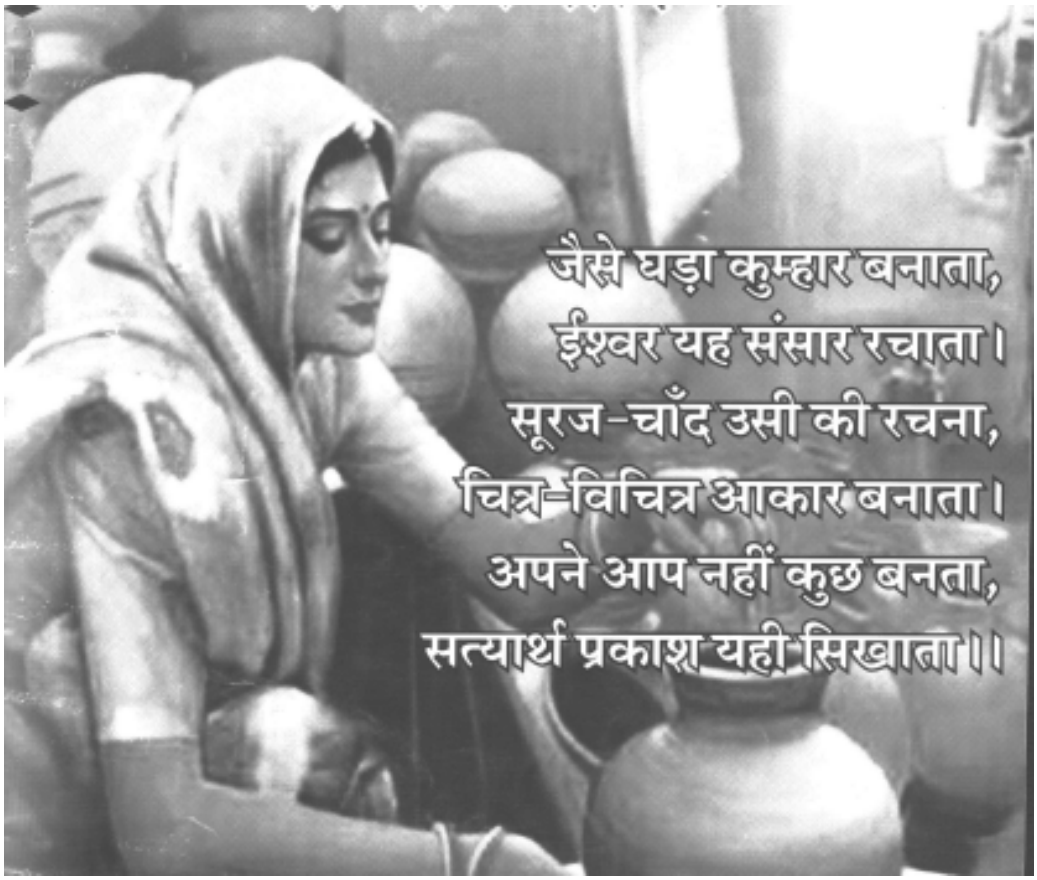
जैसे घड़ा कुम्हार बनाता,
ईश्वर यह संसार रचाता।
सूरज-चाँद उसी की रचना,
चित्र-विचित्र आकार बनाता।
अपने आप नहीं कुछ बनता,
सत्यार्थ प्रकाश यही सिखाता।।